

GOVERNMENT OF INDIA
ARCHÆOLOGICAL SURVEY OF INDIA
CENTRAL
ARCHÆOLOGICAL
LIBRARY

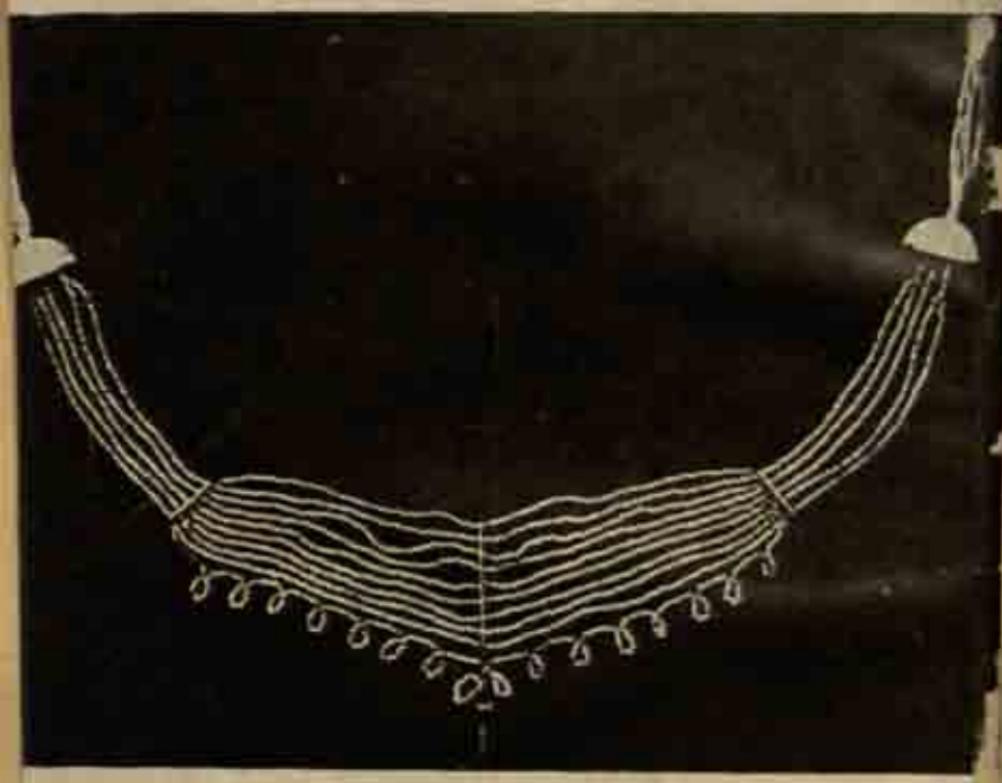
ACCESSION NO. 3685

CALL No. 901.0954 / Har.

D.G.A. 79.







पिल्लरी दशावधी में भारतीय पूर्णताव की एक बड़ी लोज भारत
में सिन्धु सभ्यता के ग्रन्थों का पता लगाना है। इसका सबसे
महत्वपूर्ण इधान लोधल है। इसकी खुदाई में प्राप्त एक
स्वरांहार (पृ. ३१) ।

भारत का
३५८६।
सांस्कृतिक
इतिहास

* ४७

हरिदत्त वेदालंकार

१८९५ प्र.

मुमुक्षुल विश्वविद्यालय
कामपीँ

तोमरा संस्करण



१०१.०९५४

Har

"Specimen" 1867

११६२

आत्माराम प्रण अस, दिल्ली-६

BHARAT KA SANSKRITIK ITIHAS
(Cultural History of India)

by
Hari Dutta Vedalankar
Rs. 8.00

(Third Edition, 1962)



COPYRIGHT © ATMA RAM & SONS, DELHI-6

प्रकाशक

रामलाल पुरी, संचालक
आत्माराम एण्ड संस
कालमोरी गेट, विल्सो-6

शाखाएँ

- हीरा बाज, नई दिल्ली
- चौहा रास्ता, तग्पुर
- माई हांगा गेट, बालमधर
- बग्गमाल रोड, मेरठ
- विश्वविद्यालय थोल, लखनऊ

मूल्य चाठ रुपए

मुद्रक

रसिक प्रितम
करोल बाग, नई दिल्ली

CENTRAL LIBRARY 10 AM

36851 -
21.5.63.
901.0954

तृतीय संस्करण की भूमिका

इस संस्करण को गुणांतर्या अंशोधित करते हुए इसमें विषये दस नवीन में हुए नवीन पुरातत्त्वीय घटनाएँ तथा सांस्कृतिक परिवर्तनों का विस्तार से वर्णन किया गया है। दूसरे अध्याय में लोकल की गुदाई वर एक नपा प्रकरण वर्णया गया है। भारतीय भाषाओं तथा आधुनिक भारत वासे अध्यायों को सामग्री को भारतीय बनाने के लिये अनेक अंशोधन किये गये हैं। अंशोधन के लिये सुधे ३० वासुदेवज्ञानीय भारतीय, हिन्दू विश्वविद्यालय, तथा अन्य कलादत्तजी वालोंयों, गाँधर विश्वविद्यालय, में बहुमूल्य सुभाषण मिले हैं, मैं इनका इसके लिए धन्यवान् ध्यामरही हूँ। भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग ने लोचन, मोहनलोदहो भारदि के सम्बन्ध में यहाँ बहुमूल्य किस छापने की अनुमति प्रदान की है। इसके लिए इस विभाग का बहुत धनुषोदीत है।

गुरुकुल कांगड़ी

२४५-२५६

हरिदत चेदालांसर

प्रथम संस्करण की भूमिका

इस पुस्तक का नवेश्य प्राचीन भारतीय संस्कृति के सब पहलुओं का सच्च एवं मुख्य रूप से विभिन्न तथा प्रामाणिक विश्वासों कराता है। यह जड़ी प्रस्तुति भी बात है कि स्वतन्त्रतान्प्राप्ति के बाद जनता का इस विषय में अनुराम विश्वास नहीं रहा है और विश्वविद्यालय अपने पाठ्य-क्रमों में इसका समावेश कर रहे हैं। यह पुस्तक विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्य-क्रम को ज्ञान में रखते हुए लिखी गई है, उनमें विभिन्न सभी विषयों का इसमें विभिन्न एवं सारांशित प्रतिपादन है। यामा है कि विश्वविद्यालयों के छात्रों के लिए वह पुस्तक उपलब्धी होनी तथा प्राचीन संस्कृति के सम्बन्ध में विज्ञान रखने वाले यामान्य पाठ्यक भी इसमें जाम डाल सकते।

पुस्तक के पहले अध्याय में भारतीय संस्कृति की महत्ता, सम्पत्ति और संस्कृति के स्वरूप, तथा हमारे देश को सांस्कृतिक एकता को महात्म्यपूर्ण विवेचनाओं द्वारा प्रकाश दाता गया है और विभिन्न राजनीतिक गुणों की सांस्कृतिक उन्नति का संधिष्ठन निर्देश है। इस भवतरायिका के बाद दूसरे से तेरहवें अध्यायों तक वैदिक, महाकाव्य-कालीन, गुरुत एवं मध्य नृग की सांस्कृतिक दशा का तथा खोड़, खेन, भक्तिप्रवाद, पौराणिक हिन्दू-यम, बृहस्पर भारत, वर्ण-व्यवस्था, भारतीय वर्णन, वासन-प्रणाली, विद्या-वद्वति तथा जला भारदि संस्कृति के महात्म्यपूर्ण ग्रंथों का विवेचन

है, जिसके अंतर्गत इसलाम के पारस्परिक सम्बन्धों का भी उल्लेख है। नीदहवे भव्याय में भारतीय संस्कृति की विशेषताओं और उसके भवितव्य पर विचार किया गया है। एनडहवे भव्याय में भारतीय भारत के सांस्कृतिक नव व्यागरण का वर्णन है, इसमें बाह्य-समाज, धार्म-समाज आदि धार्मिक वान्दोलनों, साती-प्रथा के निर्णय से हिन्दू कोड तक के सामाजिक गुणार्थों, वर्तमान भारत के वेदानिक विकास, भारतीय उभारी और कलात्मक गुणवान्वयिता का संक्षिप्त उल्लेख है।

पुस्तक की कुछ प्रधान विशेषताओं का वर्णन घटनुकित न होगा। इसकी भाषा और शीर्षी भव्याय भरतीय और सुविधा रखी रखी है। इसमें इस बात का प्रत्यन्न किया गया है कि प्रत्येक पुण और भारतीय पहलु के अधिक विस्तार में न जाकर उसकी मुख्य बातें की ही बच्ची की जाति, विभिन्न विषयों का काल-अन्तराल सार इस प्रकार बर्तीन लिया जाय कि भारत विषय हस्तामलकाता ही जाति। यादृक और विचारी स्पष्ट कहा से यह जान सके कि हमारी मंस्कृति में कौन-सी संस्कृता, प्रथा, ध्यानस्था, कला-वीक्षा विद्यानिक विचार किस समय और किन कारणों से प्राप्तरु हुए। उदाहरणार्थ जाति-प्रेक्षा का वेदिक, भीषण, सातवाहन, गृह्ण तथा मूल शुरों ने कौनो विकास हुआ, इसका मंशिक वर्णन किया गया है। इस प्रकार यह सभी सम्बन्धों में भी सांस्कृतिक उभारी की कमिक घटनाओं का निरूपण है। भारतीय बला वाले ध्यानाय में न केवल भारतीय बला की विशेषताओं तथा उसकी विभिन्न विनियोगों का परिचय दिया गया है किन्तु उनके स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए १५ चित्र भी दिये हैं, विभेद वा भूमात्र इस द्रुटि से किया गया है कि इनमें भारतीय बला के तभी कालों के एक दो उत्तम नमूने दी जाएँ। सेवक कुछ प्रधिक चित्र देना चाहता था किन्तु पुस्तक के लक्ष्यों में उपर्योग के कारण, उसे इतने चित्रों से ही लक्षीय करना पड़ा है। यहां संस्कृताय में बहु इस-दोष को पूरा करने का भरतीय प्रबल करेगा। सात चित्र भारतीय धूसातर्क-विभाग की कृपा से प्राप्त हुए हैं। इनके प्रकाशित करने की छन्दमति प्रदान करने के लिए मैं इस विभाग का ध्यानत आभारी हूँ। विदेशों में भारतीय संस्कृति का प्रसार स्पष्ट करने के लिए एक मान-चित्र भी दिया गया है।

यदि यह पुस्तक छात्रों-तथा भारतीय संस्कृति के विभिन्नों को इस विषय का ज्ञान करा सके और इसके प्रति अनुराग उत्पन्न कर सके तो जेलक यपता प्रयत्न सफल समझेगा।

पुस्तक कीमती

हरिदत वेदालंकार

विषय-सूची

१. विषय-प्रवेश	१
२. प्रार्थनात्मिक गुण	१५
३. वैदिक साहित्य और संस्कृति	३५
४. रामायण और महाभारत तथा उत्कालीन भारत	५४
५. जैन और बौद्ध-धर्म	६५
६. भक्ति-प्रभाव औराणिक धर्म का उदय और विकास	७४
७. दर्शन	८६
८. गौड़-गात्राहन-कृदान्त गुण	९८
९. गृष्ठ-गुण का समाज, साहित्य और विज्ञान	११७
१०. बृहस्पति भारत	१२८
११. मध्याकालीन संस्कृति	१४०
१२. इस्लाम और हिन्दू धर्म का सम्पर्क तथा उसके प्रभाव	१५३
१३. गात्रान् प्रभावी	१६५
१४. भारतीय कला	१७३
१५. प्राचीन विज्ञा-पद्धति	२०३
१६. प्राचुर्यिक भारत	२१८
१७. भारतीय संस्कृति की विद्यमान	२४१
पहला परिचय-ग्रास्कृति विद्यमान संस्कृत के महत्वपूर्ण प्रत्येक तथा लेखकों का काल	२५३
दूसरा परिचय-ग्राचीन भौतिकीयिक स्पानी के वर्तमान तथा सहायक ग्रन्थ-कृची	२५८
ग्रन्थमणिका	२६४

हाफटोन चित्र-सूची

१. लोधल की शुद्धाई से प्राप्त स्वसंहार ।
२. अदोकालीन वृपभाकित स्तम्भशीर्ष (१ री. श० ई० प०) ।
३. अमरावती स्तूप का एक दृश्य ।
४. भारहुत में कुद्र की उपासना का एक दृश्य ।
५. भारहुत स्तूप में उल्लिखण रथकुमार जैत के उचान को लगोद्धेने का दृश्य (२ री. श० ई० प०) ।
६. भद्रामाया का स्वप्न (२ री. श० ई० प०) ।
७. भारहुत स्तूप पर उल्लिखण थोड़ो की सूति (२ री. श० ई० प०) ।
८. अस्त्रकावलि से सुशोभित पार्वती मस्तक, अहिञ्जत्रा बरेली से प्राप्त, (५ बी० श० ई०) ।
९. चामर गाहिणी वस्त्री दीदारवंज, पटना ।
१०. भगवान् राम की कांस्य प्रतिमा (११ बी० श० ई०) ।
११. प्रजा पारमिता (१२ बी० श०) ।
१२. होयशलेश्वर (होयशिल, मैसूर) के मन्दिर का बाहरी दृश्य ।
१३. विजय में भारतीय संस्कृति के प्रतारक महाय वगस्तम (चिदम्बरम्, १३ बी० श० ई०) ।
१४. सारनाथ की कुद्रसूति ।
१५. राजराज चोल द्वारा लंबोर में बनवाया वृहदीश्वर का मन्दिर (१० बी० श० ई०) ।
१६. पारशुरामी (पालिकैष्टा) की चित्रसूति ।
१७. देववाहा (धारु) के जैन मन्दिर में उगमरमर की कारीगरी वासी जल (१०३१ ई०) ।
१८. वच्चे की दुलार छत्ती मी (भूवनेश्वर, उडीसा, ११ बी० श०)
१९. पत्र लिखाती हुई नारी (भूवनेश्वर, ११ बी० श०)
२०. लिमराज (भूवनेश्वर) के मन्दिर ।
२१. कोणार्क (उडीसा) के रथ का चित्रालचक ।

लाइन बसाक चित्र-सूची

१. हरपा के दो कब्ज़े	पृ० १७८
२. मोहेज्जोदहो की मुहरें	पृ० १७९
३. सातों का स्तूप	पृ० १८०
४. उत्तराखण्ड (जिं० गया) में अशोक की बनवाई सीमा छापि की मुका	पृ० १८२
५. अजनता का एक भित्तितिव	पृ० १८३
६. पट्टमपाणि छवलोकितेश्वर	पृ० १८३
७. मामलतपुरम् का एकाइम भवित्व	पृ० १८५
८. भगीरथ की तपस्या	पृ० १८५
९. एतोरा का कैलाश भवित्व	पृ० १८५
१०. राजुराहो के भवित्व	पृ० १८५
११. मोहेज्जोदहो की भर्तकी	पृ० २०१
१२. नटराज चित्र	पृ० २०२
१३. नालन्दा के प्राचीन अवशेष	पृ० २१४



विषय-प्रवेश

भारतीय संस्कृति की महत्ता—भारतीय संस्कृति विद्व के इतिहास में एक दृष्टियों में नियोग महत्त रखती है। वह समाज की प्राचीनतम संस्कृतियों में से है। भोजोद्दी का अध्यार्थ के बाब से वह मिश्र और मनोलालभिया की गवर्म पुरानी गम्यताओं के नमकातीन गम्यमी जैसे रही है। प्राचीनता के साथ इसकी दूसरी विद्याता यसस्ता है। जोनी उच्छाव के वित्तिका धुगनी दुकिया की गम्य रही—बोलालभिया की शुद्धिसिद्धि, असोरियन, बोक्लोवियन और जाह्दी प्रभृति जैसा मिश्र, द्वितीय, गृहान और रोम की—संस्कृतियों काल के कामन गाल में गम्य रही है, कुछ विद्यायों की उनको गौरवकाश भाने के लिए बचे हैं; किन्तु भारतीय संस्कृति कई हजार वर्षों काल के कुर धर्मों को रही हुई आज तक बीचित है। उसकी गीतरी विद्योगता उसका उग्रदृश्य होता है। उसे इस बात का ऐसे प्राप्त है कि उसने न केवल इस महाद्वैष्णवीय भारतार्दों गम्यता का गठ बनाया परन्तु भारत के बाहर भी बहुत घोड़े दिनें को अमरी जातियों की गम्य बनाया, साइबेरिया से सिल्वन (बोल्का) तक और सिङ्गापुर तक, द्वितीय विद्यालय से प्रगत महामार्ग के बोनियो, जानों के द्वीपों तक के विद्यालय भू-मण्ड पर गम्यता अमिट प्रभाव लोहा। गीतीजीता, विद्यापत्ता, उद्यानता और गतिध्युमा की धूकि से अन्य संस्कृतियों उसकी गम्यता नहीं कर सकती।

इन प्रत्याम और वित्तिक संस्कृति के उत्तराधिकारी होने के नाते इसका विवाह गान प्राप्त करना हमारा वर्तम सावधान करने चाहे। इससे न केवल हम उसके लूप, प्रत्यक्ष दोष भी, मालूम होंगे। यह भी जात होगा कि किन कारणों से उसका उत्तराधिकार अप्रकरण हुया। इसमें तो कोई सम्बद्ध नहीं कि भारतीय संस्कृति का प्रतीत गम्यता उत्तराधिकार का, किन्तु हमारा कर्तव्य है कि हम अविष्य को भूत से भी परिष्कार करना विद्या का प्रयोग करें। यह सांस्कृतिक इतिहास के गम्यों अप्रयोग में ही सम्भव है।

किन्तु इससे पहले संस्कृति के स्वरूप तथा भारतीय संस्कृति की भी गोचिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का सामान्य परिचय आवश्यक है।

गम्यता और संस्कृति—संस्कृति का गम्यता है उनम या मुख्यों हुई विति। गुणव संसाक्षण गतिविद्या का प्राप्ति है। वह धुकि के प्रयोग से जाने वाले और जो

प्रारंभिक परिस्थिति को निखलते भूमारता और उच्चत करता रहता है। ऐसी प्रतिक्रियेवन्यदलि, शैक्षिनीयि, रहन-महन, आचार-विवार, मरीन मनुष्यान्त और आदि-दोग, जिनमें मनुष्य पशुधौं और जंगलियों के दबे से छोड़ा जाता है तथा अभ्यवहार है, मन्यता और संस्कृति का अंग है। मन्यता (Civilization) से मनुष्य के भौतिक धैर्य की ओर संस्कृति (Culture) से मानवान्तर क्षेत्र की प्रवृत्ति मूर्छित होती है। प्रारंभ में मनुष्य शैक्षिनीयि, मुर्दा-नर्मी सदृकृत सहजा हृष्टा जंगलों में रहता था, लूटे-खेते। उसने इन प्राकृतिक विषयाओं से प्रपूर्ण रुक्ता के लिए गहरे मुकाब्ले और किंवद्दन लकड़ी, इंट या पत्थर के मकानों की इरण ली, घब वह लौह और सौमेष्ट की ममल-नुम्बरी अट्टुलिकाओं का निर्माण करते रहा है। प्राप्तीन काल में गतिशील का माध्यम लिफ्ट मानव के हाँ पैर ही थे, किंवद्दन सोडे, ऊट, ताढ़ी, रह और बहली जा आधार लिया, अब वह घोटर और डेक्काडी के डारा थोड़े वस्त्र में बहुत लम्बे फासने तय करता है, हावाई जहाज डारा साकाश में भी उड़ने रहा है, मूर्तियों, रामेटी, पांतरिक-याती डारा चरदूमा, शुक जपा मगाल रहो तक पृथिव्ये का धैर्य कर रहा है। वहले मनुष्य जंगल के कान्द, दूस और फल तथा मासेट से अपना निर्वाह करता था। बाद में उसने पशु-मालन और छाति के आदिलाल शाय शाजीविका के साथमों में उपर्युक्त की। वहले वह अपने सब कामों की पारदीर्घि धक्का से करता था, और उसने भूमुखों को आत्मू बनाकर और उत्ताकर उनकी धर्मित का छूट, गाँड़ी शादि में उपयोग करता रही। यसने मन्यता, वाती, वाता, विवरी शादि भौतिक शक्तियों को जपा पाणविक छान्ति वीर वज्र में कर्मके तेजों मधीते बनाई जिनसे उसके भौतिक वर्वन में कामा-प्रवरद हो गई। मनुष्य को वह सारी धर्मित मन्यता कहुलती है।

संस्कृति का सदर्शन—मनुष्य के बन भौतिक परिस्थितियों में भूमार करके ही संस्कृत नहीं हो जाता। वह भोजन से ही नहीं जीता, भगीर के साथ पन और प्रातों भी है। भौतिक उद्धरण से यहीं की भूम्भ मिह रहती है, किन्तु इसके बावजूद मन और भास्ता को भ्रातृत ही करे रहते हैं। इन्हें संस्कृत करने के लिए मनुष्य प्राप्ता जो विकास और उपर्युक्त करता है, उसे संस्कृति कहते हैं। मनुष्य को विकास का परिणाम वर्द्ध द्यो उर्जन होते हैं। गो-नर्दर्प को लोक करते हुए वह मधीत, वाहिनी, भूति, जिव और जातु भावि योग उत्ताप्तों को उच्चत करता है। मूलाद्युवंक निवास के सिए सामाजिक और राजनीतिक संघटनों का निर्माण करता है। इस प्रकार मानसिक क्षेत्र में उपर्युक्त की सूचक उत्ताप्तों प्रतिक 'मन्यता-उत्तिं' संस्कृति का अंग बनती है। इसमें प्राप्तान रूप से धर्म, दर्शन, गमी ज्ञान-विवासायों और कलाओं, सामाजिक जपा-राजनीतिक संघटाओं और प्रधानों का समावेश होता है।

संस्कृति का निर्माण—जिसी देश की संस्कृति उसको संस्कृत मानसिक निर्मि को मुक्ति करती है। यह जिसी विशेष व्यक्ति के पूर्वाधार का फल नहीं प्रविष्ट अन्तर्गत भाव उपा उत्ताप्त व्यक्तियों के भगीरथ प्रयत्न का परिणाम होती है। उक-

व्यक्ति भागी सामर्थ्य और प्रीगति के बहुआर संस्कृति के निर्माण में तहायोग देते हैं। संस्कृति की तुलना शास्त्रजिति के निष्ठार समृद्धि में पाइ जाते वाली मूँग की भीमाशाम भट्टाचार्य से भी जो सत्ती है। मूँगे के दानाएँ कीड़े खाने सौटे कर कानकर समाप्त हो गए, किंतु नवे कीड़े ने वह बगाए, उनका भी अन्त हो गया। इसके बात उनको भगवती गीड़ों ने भी मही जिया, और यह एक हजारों वर्ष उप निरन्तर बहत रहा। आज उन सब मूँगों के कहें-नहें घरों ने परस्पर जुड़े हुए विशाल लड्डूओं का रूप भारत कर जिया है। संस्कृति का भी इसी प्रकार ऐरें-बोरे निर्माण होता है और उसके निर्माण में हजारों वर्ष लगते हैं। मनुष्य विभिन्न स्वभावों पर रहे हुए विवेष प्रकार के समाजिक वातावरण, संस्थापन, धरायी, व्यवसायों, धर्म, दर्शन, जिह्वा, भाषा तथा साजाओं का विकास करके साजों विशिष्ट संस्कृति का निर्माण करते हैं। भारतीय संस्कृति को भी इसी प्रकार बना मूँद है।

भारतीय संस्कृति में सम्मिश्रण—भारतीय संस्कृति को प्राप्त केवल आपों की कृति नहीं बल्कि किंतु हमारी संस्कृति के विभाव में प्रधान भाग उन्हीं का ना, किन्तु हम वह नहीं भूल सकते कि भाज इमारों को संस्कृति है वह आपेक्षा नहीं भौतिक भागीत है। इसमें प्राप्ति ने, उनसे पूर्ण पढ़ी वरसे पाती सबा उनके बाद गहरी प्राप्ति बालों गहरी प्राप्तिर भागीतों ने अभी देन चाही है। जिस प्रकार मिट्टी के घोड़ेक त्तरों के जमाने से देखा जनता है, उसी प्रकार भाजीय संस्कृति नाना जातियों की साजनाओं के परस्पर साम्यान्तर से बनती है। मैटिटो, पान्नीय शर्म, द्विष्ट, ईरानी, यवन, शक, कुलाण, पतलव, तुग, भगव, तुक, मुक्त अमृति घोड़ेक जातियों ने सास्कृतिक बज्ज में भगवनी-शपनी भावुकता दी है। अमरीका और शास्त्रजिति में जिस प्रकार समूची-नामूची पूरानी सास्कृतियों और जातियों का कम्भियन छठके राष्ट्रीय एकता की प्रतिष्ठा की गई, ऐसा वही कर्मी नहीं हुआ। वहाँ किसी जाति के दूसरी जाति के उच्छेद को बात नहीं सीखती। याज भाजीय संस्कृति जिस रूप में विद्याई दे रही है, वह आज भी और भावेतर व्यापिष्ठ जातियों की साधनाओं के सम्मिश्रण का फल है। कर्तमान याज का घोड़ेक विकार, विकास और भामारिक तथा दरबनीकिल प्रथा विभिन्न जरों से जिलकर बने हैं। भगवन्युज की विसीनी में वीज भारतीय का बनने होता है, किन्तु भारतीय संस्कृति घोड़ेक युवंता भारतीय के सम्मान से बनी है।

सम्मिश्रण का कारण सहिष्णुता—इस प्रकार का सम्मिश्रण बहुत एक बात देती है। इस सम्मिश्रण का प्रभाव कारण आपों की सहिष्णुता भी प्रभुति प्रतीत होती है। याक विजेता भसहिष्णुता होते हैं, वे विजेतों गत भगवन भगव, भावार-विभार, विल्वास व्यवहरतों भोपना जाहूते हैं। घोड़ेक में कई जातियों शक न भेजने विभिन्नों अण्ठितु ईशायों में भी घाने ये प्रतिष्ठुत भत रखने वाली का कूरहा-दूर्वा इमग बत्ते लगा रक्त की नवियाँ बहाने के बाद ग्रामिक सहिष्णुता का पाठ गया है। जिन्हु भारत में आपों न वृद्धिक के समय से यह विद्वान भगव जिया था—एक ही भगवान् की जीव नामा नामों से युकारते हैं (एक सदिप्रा बहुता बदृति)। घोड़ेक घरने वर्ष से पूरा

करने, प्राचीन विद्यालय रखने तथा उसके अनुसार जीवन जिताने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। सभूते भारतीय इतिहास में वह प्रवृत्ति अबल-रही है। इसी कारण भारतीयों ने बाहर से आने वालों को विशेषी नहीं नमस्त, उनमें पृष्ठा नहीं की, उनकी संति-सोचि और प्राचार-विचार का विशेष नहीं किया। उनका यह, भाषा और रहन-सहन भवे ही चिन्ह हो, भारतीयों ने उसे स्वीकार किया। भारत ने महादे, पारसी, मुगल-मान, हिन्दू ग्रन्थों को साध्य प्रिया। ताहिरगुला के कारण यार्य, इविह, सर्वील, शक, ईरानी, तुर्क यादि जातियों का सुगमता-गूर्वक सम्मिश्रण हुआ। वहीं जो जातियाँ आई, ताहिरगुला और उदारता से उन्हें अपना बना लिया गया। इसलाम तिन्हूं एवं ना कहूं दिलोंको या; किन्तु कुछ ही जातियों में मुसलमान किंवदी नहीं रहे और भारतीय बन गये। अन्यों बुझती हो इस बात का यह था कि वह हिन्दूस्तानी है। उसका कहना था—‘यशापि मेरा जन्म तुर्क-कूल में हुआ है तथापि मैं भारतीय हूँ।’ मैं मिल से प्रेरणा नहीं बहण करता, मैं अखब को जात नहीं करता, मेरा जितार भारतीय भाषाओं के गोल गाता है।’

समिश्रण के परिणाम—इस समिश्रण में भारतीय दृष्टिकोण शाधिक विद्यालयमा, विचार से उदारता और व्यवहार से सहितगृहा आई। सभूते देश में एक ऐसी गहरी मौजिक एकता उत्पन्न हुई जो इस प्राचार के द्वारा प्रदेशों में नहीं पाई जाती। यूरोप से गई कल को निकाल दिया जाये तो योग प्रदेश का द्वेषफल यस्तक भारत के लगभग है। जेतिन यूरोप में वैसी महरों मौजिक एकता नहीं दिखाई देती जैसी भारत में दृष्टिकोण द्वारा होती है।

भारतवर्ष की विविधता तथा मौजिक एकता—जाना जातियों के सम्बन्ध से समृद्ध भारतीय संस्कृति की एक बड़ी विशेषता यह है कि उसने सब प्रकार की विविधताओं जे परिपूर्ण इस देश में मौजिक एकता स्थापित की है। भारतीय दृष्टिक विवेन का उच्चतम धारार्थ बहवत में एकत्व द्वेषन्य रहा है और इस देश की संस्कृति ने उसे विविधत का क्षय में बोज लियाला है। भोजीजिक दृष्टि से भारत प्रधान कल से भारत भागों में बोटा जाता है : (१) हिमालय, उसर पूर्वी और उत्तर परिवर्षी सीमा के पश्चिम, (२) सिन्हू और मंगा का उत्तर भारतीय मैदान, (३) विन्ध्य-मैदान (४) दक्षिण। इनमें सब प्रकार की विविधता है। कहीं ऊंचे पहाड़ हैं और कहीं सपाट मैदान, कहीं शस्त्रवामन प्रदेश हैं और कहीं तिर्यक मरुन्यियों, घासीतम और शुष्कतम, छड़ी से ठण्डा और दर्द-से-नर्म सभी प्रकार का जलवायु, जाना प्रकार के दृष्टि-विवरण और पशु-नशी वही मिलते हैं।

इसमें रहने वाले जोगों की जलत, जोलियों, भर्म, उहन-उहन, बेश-मूणा, जान-पान एक नहीं है। भारत को इन सबका अकाशवर पक्ष बायं तो शामद अस्तुक्षित न होनी। भारत में कई जिनियाँ नहीं हैं : जैसे (१) यार्य, (२) इविह, (३) किरात (ठिक्कत-न्यर्मी), (४) मुण्डा (कोल-भील)। दूसरे अव्याय में इनका विस्तृत वर्णन होगा। इनके समिश्रण में जीसियों संकर नस्ते पैदा हुए। तिन्हूं समाज जात-पौत्र में

विभक्त है और जातियों की संख्या लगभग २,००० है। यही वैविध्य भाषाओं में है। यी प्रियंका के मतानुसार भारत की विभिन्न भाषाओं की संख्या कमज़ोर है। और ४८५ है। भारत में हिन्दू, मुस्लिम, बैन, पारसी, ईसाई, गहवी आदि धर्मों के पाये जाते हैं। विविह प्रतिवासियों के बेश-भूषा, रुहन-बहन, बास-बाट में काही समस्ता नहीं। बगाली, बिहारी, बंजारी, उडिया, मराठे, मुजराती, रामिल, तल्लु, कश्मीर केरल सभी एक दूसरे में विवरणीत होते हैं।

आनन्दरक एकता— किन्तु यह विविहता बाह्य है। वास्तव में इसकी तरह में एक भौतिक एकता है, जो हमारे देश की और्तीतिक और तात्त्वकृतिक एकता का अद्यार्थ है। उत्तर में हिमालय की विद्यालय पर्वत-भाला सभा दक्षिण में समुद्र ने यारे भारत में एक विशेष प्रकार की छतु-पद्धति बनाई है। "गर्भों की छतु में जो वाण बादल बनकर उठती है वह हिमालय को घोर बढ़ती है। वादल हिमालय की जही लाल पाते, वे या तो बरस जाते हैं या हिमालय की छोटियों पर बढ़ के क्षय में जह जाते हैं, यमियों में विप्रवक्तर नदियों की चाराएं बनकर शारीर समुद्र में जले जाते हैं। समाज काल में समुद्र और हिमालय में एक दूसरे पर पानी लोकों वा जैव वस्तु रहता है। इससे बरसात जाती है, नदियों से यान्त्रों आता है, विभिन्न वर्ष के धनुसार अनुर्धा आती है और यह छतु-चक्र समूचे देश में लगता है।" भारत में अनेक दौलियों तथा भाषाओं हैं, किन्तु अधिकार्य प्रधान भाषाओं की वर्णमाला एक है। भारत में अनेक मस्ते हैं, किन्तु एक-मिलकर एक प्रदेश में समान और्तीतिक परिस्थिति में रहते, एक भूमि के घल-घास से पोषण पाते हुए उनमें काली एकता उत्पन्न हो गई है। उन वर भास्तीवता की अमिट ऊपर अकिल हो गई है। भारत का एक देश स्त्रीकार-स-वस्त्र वालों को भी यह और्तीत एकता स्वीकार करनी ही पड़ती है। नर लंबे रिक्ती के शब्दों में—भारत के दौलों ने भौतिक लेख में और सामाजिक रूप में, भाषा, भाषाओं और वर्मे में जो विविहता दिखाई देती है, उसकी तरह में, विमालय के अन्धाकुमारी तक एक व्यानन्ति-का-पक्षा है।'

सांस्कृतिक एकता— यह एकता प्रधानत भस्त्रकृति के प्रधार में प्राप्त हुई और प्राचीन काल से उसे समूचे देश की विभिन्न जातियों को एक गुप्त में जिरोने से सफलता प्रिया है। बंजारी, बगाली और गढ़ासी भाषाएँ, कान-रेण, भाषा आदि स तद प्रकार से विद्यन है, किन्तु आनन्दरक क्षय में एक है। ये एक ही हिन्दू धर्म के अनुभावी हैं। उनके भावसे पुरुष मरवाड़ा-नुकरातम औराम और और्कुल एकते हैं। वे अमान क्षय से वेद, उपनिषद, धर्मेण्यास्त्र, गीता, रामायण और भगवान्नास्त, पुराण और वात्सल्यों की अतिथ्य करते हैं। ये, गता, साधारी संवेद विविह माती जाती है। विष, विज्ञ, तुर्यों आदि पुराण-प्रतिपादित देवी-देवताओं की सभी पूजा करते हैं। उन्हें देश में हिन्दूओं के विविह की दीर्घ लिंग हुए हैं। यारों विद्यायों के बारे धार्म—उत्तर में देवी-नाम, ईश्विन में दामेश्वरम्, गुर्ज में जगन्नाथ पूरी और विश्वमें द्वारिका, भारत की विभिन्नतिक एकता और व्यानन्ति के पूर्व प्रभाव है। मोक्ष प्रदान करने वाली विविह

पुरियों, भगवान्ना, गद्यरा, माया, दासी, काव्यी और यातनों जारी रखे से विजयी हुई है। प्राचीन वायर से हिन्दू, बैग, पशुना, शत्रुघ्नी, नमेदा, मिथु और बालरी को पूज्य मानते थाए हैं। समूचे देश का धाराविक सहस्रान् लक्षणम् ग्रन्थ-ना है, सब अवगत वैदिक उल्लङ्घन और अगुलाम व्यापित है, भवेद् वाणि-देव, वर्तु-वल्लभा, द्वितीया वा विकार लक्षण का से याता जाता है। योर भारत के धाराविक और महाभास्त्र की जारी जड़े वायर से सुनी जाती है। पूर्वो व्याप्ति में लगूने भूमि के विद्युत सुमात्र को एक दूध में लियोने का वायर पहलि संस्कृत ने और विर प्राकृत ने तिया, तीव्रप्य में गहरा कार्य दियो से पूरा होना।

एकता वा वायर—प्राचीन भास्त्र में यातायात की अविद्यायी वहुत प्राचिक थी। विभिन्न प्राचिन उत्तर व्याप्ति, गहरी नविनी, तत्त्व जगती, वीहर गैरिलासी इत्या एक दूतरे से पूरक है। किंतु भी उसमें उत्तर्युक्त संस्कृतिक एकात्म जगत्ता करने में वो व्याप्तियों ने मुख्य भाग लिया, इनसे गहरी है—जूषिन्मुनि, तन्म, वीर्य-वायर और विद्युती, तथा दूसरे तीनिहिन्दिवेता।

जूषिन्मुनि—प्राचीन भास्त्र में जूषिन्मुनियों ने भवकार वाष्ट बठाते हुए दक्षिण भाग में व्याप्ति तपोवन और वायर स्थापित किये। यमस्त्र आदि महापुरुषों ने इसमें दक्षिण की भागार्थ जागियों को वायर सम्भाला था यह यथा पढ़ाया। यह यातनों में धाराविक तांत्रों की साकार करने वाले व्यक्तियों ने संस्कृतिक एकता में वडाया। कल्याण-कुमारी वे विद्यों की प्रसिद्धयों का प्रवाहित करने के लिए इतिहार भास्त्रे वाले दक्षिण भारतवासियों और नंगा का जल रामेश्वरम् के अन्दर में बढ़ाने वाले उत्तर भारत वायरों के वायरस्त्रिक स्थानों से एकता का गुप्त होना संसाधाविक ही था। संस्कृत के विद्यानों और यर्म-सुधार्यों ने भी इस प्रवृत्ति में सहजोग दिया। केरल के वीर धनकराचार्यों ने हिमालय तक यातना प्रवाह किया, महाप्रभु वैतन्य ने बगाल से शूद्राचार्य तक समूचे भास्त्र को कृष्ण-भक्ति की विविध संवादिनी से साधावित किया। पूर्वो व्याप्ति में वहे विद्यविद्वालय तीर्थं-व्याप्तियों और राजधानियों में होते हैं। तत्त्विता, व्यापारा, नायन्या और उत्तरायिनी इनी प्रकार के विद्याकेन्द्र हैं। भारत के विभिन्न प्रवृत्तियों में विद्यार्थी इन स्थानों पर विद्या वाप्त करने के लिए जाते हैं। इन्होंने भी एक संस्कृति के विकास में सहायता दी। जूषिन्मुनि, मायु-भास्त्र उन दिनों विभिन्न प्राचीन सम्बन्ध स्थापित करते हुए, वायरारथ जनता के विद्युत धर्मों को शान्तिपूर्वक एकता के सूक्ष्म में लिये रखे हैं।

विद्युत—विद्युत् इस कार्य को बल-दूर्बल करने वाले भवहवाकाशी और साक्षी राता है। प्राचीन भास्त्र से रावाणी की इच्छा विभिन्न वर्करके वक्तव्यर्ती सम्भास्त्र बगाल की रहस्यी थी। प्राचीनी रावा दूसरे रावों को वीतकर एकराह्द सम्भास्त्र सावेद्योम और वायरपिराह आदि उत्तरायिक धारण करते हैं। कौटिल्य के कथनामुगार वक्तव्यर्ती का साकार विमालय में समृद्ध तक फैला होना चाहिए। इसी प्रकार के वक्तव्यर्ती राज्यों से विद्यान् भूषण एक शासन-सूत्र के नीति भा जाते और वासन-

नेतृत्व सांस्कृतिक एकता के प्रमाण में सहायता करती थी। चंद्रगुप्त, अशोक तथा समुद्रगुप्त के समय राजनीतिक एकता ने इस प्रवृत्ति को पूरा किया।

सांस्कृतिक और राजनीतिक इतिहास— ग्रामीण और मध्य युग में राजनीतिक एकता बहुत बड़ी काल तक रही। ऐसी तातों ई० तू० में योगीक ताता थीं तो तातों ई० में चंद्रगुप्त के समय भारत कुछ ताता के लिए पक्ष-छवि वापस के लिए रहा, मध्य युग में याजाहीन (१२५५-१३१५ ई०) और शीर्षेश्वर (१३२८-१३५० ई०) ने समृद्ध भारत को राजनीतिक टीक्ट ने एक किया। यह तातों मध्य या ही लोट-लोटे ताता रखते रहे। किन्तु राजनीतिक एकता के मध्य तू० नी तातों मध्य में सांस्कृतिक एकता नहीं रही। भारत इस राजनीतिक इतिहास विषय में राजनीतिक एकता नहीं रही। भारत इस राजनीतिक इतिहास के लिए यही महात्म्यगुण प्रतीत की जाती रही। इसके लिए भारत-विजय के लिए यही महात्म्यगुण प्रतीत की जाती रही। राजनीतिक इतिहास के लिए यही यही महात्म्यगुण प्रतीत की जाती रही। किन्तु सांस्कृतिक इतिहास के लिए यही यही महात्म्यगुण प्रतीत की जाती रही। और इसके लिए यही महात्म्यगुण प्रतीत की जाती रही। इसके लिए यही महात्म्यगुण प्रतीत की जाती रही। इसके लिए यही महात्म्यगुण प्रतीत की जाती रही।

भारत का सांस्कृतिक इतिहास राजनीतिक इतिहास के बाहर वर प्रचान लघ में निम्न युगों में बढ़ा जाता है—

प्रारंभिक युग— भारत में मातृत्व के आदित्यों ने विदेश युग तक के काल को आरंभिकानाम कहा जाता है। इन काल वर प्रकाश ताता या योही थीं विषय सामग्री या इन्ह तहीं है। वह भारतीय सम्पत्ति का उपा कात है। इसके जात का एकमात्र भावन यह युग के मातृत्व ताता थोहे योजात-हृषिकार तथा घर्षण सम्प्रोप्त है, जिसमें यह तात होता है कि उसने यहों-यहों, किस प्रकाश या योही युद्ध के अद्योग से नये आविष्कार किये, या योही जातों थोर को परिवर्तित यह विदेश याती युक्त ही, या योही योजातिका ग्राम करने तथा रथा की दृष्टि से उसम विशिष्ट उपायानों से योजार और हृषिकार बनाये। इस दृष्टि से योजित मानव थोहे प्रसवि को बार घर्षण-स्थानों में बढ़ाता जा रहता है; यहीं प्रवस्था में वह परवर के हृषिकारों का योगा करता था। इसके बाद उसने यहों तातों थोहे और यिन कामों के दृष्टिपात्र बनाये युक्त हैं। भगत में योहे के हृषिकारों का निर्माण और अवधार होते जाता। इन चार युगों की विमय-प्राप्ति, तात, कौरम और लौह युग कहते हैं। प्राप्ति-युग को दो वह उपायमानों में बढ़ा जाता है—पुरातनमकाल और नवायम काल। पुरातनम कैल मानव-सम्पत्ति की विवरी देया थी, इसमें वह सामान्य तातों को हृषिकारों वा योजारों के काल से बरतता था। इस समय उसका योजार कान्द-मूल, जनी-कल और दिक्षार से प्राप्त सामग्री थी, जैसे कृषि का जात नहीं था। पुरातनम काल के अनेक विवर, विनोदी भवार के बहुत-से हृषिकार नर्सदा, योदावरी वा वातियों में तथा दृष्टिवन के उठार में पाए गए

है। अर्थोंमान दायु में नेहिटो जाति भी लक इस व्यवस्था से रहती है। पापाण्य-युग की दूसरी दशा नववास्म काल था। यह उस समय प्रारम्भ हई जब मनुष्य ने पत्तर को विस्तार धारदार और चिकने हथियार बनाए थए तिथा। इसी समय कृषि, मिट्टी के बर्तन बनाने तथा पौधे खालने की कलाओं का प्राविकार हुआ। भारत में इस युग का शीघ्रगत करने वाले वर्तमान गोपाल ग्राहि जातियों के पूर्वज थे। तबाप्स काल के बाद तालं-युग का प्राविनीव हुआ। भारत में इस युग के व्यवसे धूधिक व्यवस्था प्रभावशाली से बिले हैं। गोप्युर, फलताल, मधुर, मैसपुरी से भी कुछ उपकरण बिले हैं। गोके बाद कठि का युग आया, जब उसीके हवार वर्ष पूर्व निम्न और उत्तर में उत्तरी वर्षभूमि उत्तरित हुई। इस भूमिका के सबसे धूधिक व्यवस्था गोहेवाइडों द्वारा हड्डिया में बिले हैं।

प्रारंतिहासिक युग में भारत में धूधिक जातियों के समाजमें भारतीय संस्कृति का सुभवात हुआ और वह विभिन्न जातियों से अनेक व्यंग वहण करके समृद्ध हुई। आज जिसे भारतीय संस्कृति कहा जाता है, वह ग्राम्य आदों की है जिन्हें उसमें आवेदन जातियों का धर्म करने नहीं है। इसका ताता आर्य है, पश्चिम वर्षों आपेक्षन। अपने आरम्भिक जाल में इसने बहुत-से महसूलपूर्ण तत्व संपादन आदि जातियों के सूक्ष्म पूर्वज नियाओं या ध्रामेलों (Proto Australoid) से इस भूमिय-सामरस्य (इविड) जनतों में वहण लिए हैं। पास, कपास व देवत की जेती, केला, नारियल, नींव आदि कलों का तथा कुम्हार, विंगन आदि लाल-ज्याजियों का उत्तरायन, गोमात्रिक जीवन में गोन-मुगारों का व्यवहार, वामिक वर्ष-काश्च भेंटि भिन्न-हृष्णवी आदि का प्रयोग, भाजों बोयन और मुनज्जेन के विनार, गोरा आर्य नांदियों तथा तीव्रों की पूजा और उनमें अस्थि-प्रदाह, विंगन-मूजा, हाजी की गोलमूज बनाना, मूतों बस्तों का बुनाया, बीज (फोड़ी) के आवार पर गोमाता, ध्रामेल जाति की देन हैं। ग्राम्य-युगम, भाल-आंकित वी-उत्तरायन, उमा विनाय, शरीर, हृष्णमान, लक्ष्म आदि देवताओं की पूजा इविड प्रधान का पर्यायाम है। अपने सूल में ही भारतीय संस्कृति प्रधान कप से घासना (निशाद), इविड और यांत्रे संस्कृतियों की विवेगों के सामने समृद्ध हुई है।

वैदिक युग (६००-३०० पूर्व ई.)—इस युग में आदों ने भारत के सभी भागों में आप्य संस्कृति का प्रवाह किया। यावत्तर जातियों का समाज का यह पहाड़ा। इस काल से वैदिक संहिताओं, आद्योगी, धारणाओं और उपचिन्द्रों की रसना हुई। यह युग और उपचिन्द्रों में बंदा है—गृह वैदिक युग और उत्तर वैदिक युग। भारतीय संस्कृति के विकास में वैदिक आदों की विदेष देने सहित्याएँ और सामरस्य की भावना, जातकियाल का विकास, उपोक्तव्य-दृढ़ति, धर्मशम्भववस्था और नारियों की पर्वतका थी।

महाजनपद या प्राहृ और यम (६००-३६६ ई० पूर्व)—भारतके राजनीतिक

दृष्टि से उस समय (१६ वडे जनवरी (महाजनपदी) में बौद्ध हुआ था, इसे महाजनपदी युग कहा जाता है। इस काल की सबसे महत्वपूर्ण सास्कृतिक पट्टना है छठी खतों ३२० पू० से ऐसे यंत्र के पीछे बौद्ध कर्म के प्रवर्तनक भ्रमणान् महार्दीर और तुड़ का शाविभाव। इनों समय ममय के राजाओं ने साम्राज्य-निर्माण प्रारम्भ किया। इस युग की प्रथान् विदेशतार्गत बौद्ध तथा शूष्म-भावित्य और देशों का निर्माण, भारतीय दर्शन और धर्मविद्या का जन्म है। इस समय नाटक-कला का भी शोधगेत्र हो जाता था। बौद्ध तथा जैन धर्मों ने धनेक प्रकार से भारतीय सभ्यता को समृद्ध किया। भगवान् तुड़ के मनुष्यादियों को इस काल का यंत्र है कि उन्हें यशवती युगों में भारतीय वास्तु, मूर्ति एवं विद्य-कला के विकास में बहा भाग लिया, उसके द्वारा वर्तमान मध्य सीढ़ी, भारतीय और भ्रमणावती के स्तूप, धर्मोदय के धिलो-न्दर्शन, अवस्था के विविच्छिन्न भारतीय कला के स्वरूपों में से है। मूर्ति-पूजा का प्रसार, सम-व्यवस्था बौद्धिक स्वतन्त्रता, उच्च वैतिक धाराएँ, लोक-भावित्य का विस्तार तथा विद्या में विदेशप्रथा-मध्य एवं वाया, चीन, जापान में—भारतीय सभ्यता का प्रसार उसकी उत्तरी लंगों द्वारा है। जैनों ने भारतीय सभ्यता में विद्याना को प्रथम यंत्र बनाया, उपर्युक्त धर्मों की सभ्यता में वर्तमान यह स्तूपों, मूर्तियों तथा तंत्रणों में भारतीय कला का सम्मुख दिया। वर्तमान लोक-भावादियों को विकसित एवं समृद्ध कराने की कृती यह यंत्र जैनों की है।

नवं मौर्य युग (३५८-२३१ ई० पू०)—यह धर्मितयाली साम्राज्यों का युग था। इसमें भगव ने वहने नवदी द्वारा फिर मौर्यों का प्रतारी भारतीय सभ्यता का युग ३२९-३० पू० से सिवानन्द ने भारतवर्ष-पर इमला किया। वैदिक के सभ्य राज्यों नाटकर इमका मूलादला किया। उसकी सेना हिन्दुपत हार बैठी और विद्य-विद्याका व्याप तरीके तट से बाहर नोटना पड़ा। उसके बातें के बाबू भगव ये उन्हाँगे मौर्य (३२५-२०० ई० पू०) ने भीमवंश स्वामित्व किया। इसके समय में विद्या के सेनावति सेन्युक्तन में भारत यह व्यापकमय किया। चन्द्रगुल ने उसे वाराणसि का हिन्दुपत गवंत तक धारी राज्य-नमस्ता कर्त्तव्या की। उसके उत्तराधिकारियों में अर्था (२५४-२३२ ई० पू०) उत्तराधिकारी थे। वह भारत का सबसे बड़ा समाज था, भारत सामाजि के इतिहास में भी उसमें महत्वपूर्ण वायाक होई नहीं हुआ। वह तुलनात्मक इम-यिनि राजाओं में से है, जिन्हें ग्राम-वासियों का जप्तवाय वैष्णविक भगवन् कालादियों की पूजा में नहीं किया, वहा बनने के जिए हूँ की भवित्वों नहीं बहाए, वह वैष्णव तत्त्ववाद के लोर यह नहीं कीते; विन्यु विद्य-व्रेम, व्राणि-मात्र के प्रति वहा अध्यनुकरण के प्रसार से निरापेक्ष इस से उसके यम-विजय की। उसके समय में यह यंत्र का विदेशों में प्रभाव लोगे जाय। मौर्य काल में भारतीय कलाओं का व्याप्ति इतिहास में लियने लगता है। इस युग की सबसे महत्वपूर्ण साहित्यिक कृति कीति का 'धर्म-वास्तव' है।

सातवाहन युग (२१० ई० पू०—१५६ ई० पू०)—सोमवंश के बाबू-

में कोई रेसा शक्तिशाली राजनवय नहीं हुआ, जो भारत के अधिकार भाग को धारणे अग्रिमार में रख सकता। इसके बाद अमरा युद्ध (लगभग १८५ ई० यू०—१२५ ई० यू०), काल्प (१२५ ई० यू०—१३० ई० यू०) और रातवाहन (१०० ई० यू०—१२५ ई० यू०) राजनवयों ने वासन किया। इनमें से अन्तिम वश-सवर्ण प्रतापी और दीप्ति काल तक वासन करने वालों थे, यानि उन्हीं के नाम से इन नुग को रातवाहन युग वाला जाता है। इस काल में भारत पर युद्धानियों, शस्त्रों और युद्धाणों के हमले हुए। कुमाणों का सबसे उपर्युक्त राजनवय (१३०-१४० ई०) था, इसने जीव धर्म स्वीकार करने अमीर को जीति इसके प्रसार का बल किया। सांस्कृतिक कारण से यह काल कहे दुष्टियों से बड़ा महत्वपूर्ण है। इसी युग में भारतीयों ने कही संस्कार में बाहर आकर विदेशों में भारते उपनिषद स्थापित करके यूहतर भारत का गिरोह प्रारम्भ किया। अम्बोदिया और चन्दा (चनाम) में हिन्दू राजनवयापित दृष्टि। जीव के साथ सौत का सम्बन्ध हुआ, मध्य एशिया तथा चीन में भारतीय संस्कृति की, रोम के द्वारा भारत का व्यापार चूक वाला। भक्ति-विद्यान वीराणिक हिन्दू धर्म तथा महायान द्वारा लिये हुए, व्याकुल हुए थे भूति एवं लिङ्ग-पूजा युग हुई। महाभाष्य और मनुस्मृति तो युग की रक्षाएँ हैं। भाष्य गत भाष्यांतर इस युग के अंत भाद्रकाल एवं किये। चरक, गुप्त, चीमिनी, कण्व, तीतम और बादायामन इनी युग में हुए। याकृत तात्त्विकों का उत्थान भी इनी युग में हुआ। मूलि-कला में युसामी एवं भारतीय चित्रों के समानम से साम्बाह ईती का उत्तम हुआ।

नारायणाकाश-गुप्त राज्यालय (१७६ ई०—१४० ई०)—दूसरी शती के उत्तर कान्तिपूरी (कान्तिपुर) के नाम वश ने मंगो-ममुना-प्रदेश की कुमाणों के द्वारा से मुक्त किया। जीवरी शती के मध्य में तामों की यक्षित उनके मामन्त्र शास्त्रापित (२४८ ई०—२८४ ई०) के पास चत्ती गई, उनके बाटे भावरसेन के समय २५४—२८४ ई०) काकाक-मालाज उपति ने दिल्ली पर वही व गया। जीवी २८८ के पूर्वान्तर में सगृज में युग्म वाला स्वार्गीत हुआ। इसके प्रतापी राजा समुद्रगुप्त (३०८—३२० ई०) ने भारते राज-कीवत में काकाक-नारायण ता घटन किया, उस के बड़े भाग तो दिल्लीव रहके प्रशासन-पत्र किया। न केवल भारत के लिये युग्म के कुमाण वशी तथा चिह्न धार्दि भव भारतीय द्वीपों के राजाओं ने उसे ना धर्मापति स्वीकार किया। इसके बाद लक्ष्मणगुप्त दिनीय विष्वमादित्य में साम्भाल्य धर्मिक अक्षितदारी बनाया। कुमारगुप्त प्रथम ने ४० वर्ष (४१५—४५५ ई०) तक सन किया। गोवी शती के मध्य में भारत पर हुओं के धाकमण युक्त हो गए। शट-स्वनशगुप्त (४५५-४६३ ई०) ने गुलों की 'इगमगाती राज्य-वशमी' की स्थिरता, जोकिं उठी शती के शुक्रमें हुओं के नो जबरदस्त धाकमण हुए, उनमें गुल आव्य समाप्त हो गया।

युग्म युग भारतीय संस्कृति और कला का स्वर्ण-युग कहलाता है। उस समय ज में जैसी शान्ति और समृद्धि थी, जैसी न तो पहले किसी युग में हुई थी और

न याएं करी हुई। उसमें प्राचीन यात्रों समेता और महत्विक के उच्चारण विलक्षण नहीं है। अपार की अभ्यासगुण उच्चति हुई। विशेषों में भारतीय गुणों द्वारा अस्तित्व का असाधारण विलक्षण हुआ। तुलने द्वारा (East Indies) में भारतीय राज्य बोनियों के युद्धों और ताक प्रतिक्षेप हुए। तभी, भारतीय, स्थान, हिंदू वोन, बाबा, माल एवं विद्या वाला भीन, ने हिन्दू और वीष भारी का अन्वार लुप्त। इस वार्ष के लिए युक्तिवाचीय और युक्तिवाचीय वेत्ता लोकियों विवाह भास्त से बाहर गए। और जोन ने प्राचीनता, तेसे अपेक्ष विवाह लोकों यानी वर्ष-विवाहों वाले करने तक तीन-चार वर्षों से अधिक वार्ष लाने लगे। भारत में शीढ़, वैत और हिन्दू भारी का उच्चतम विवाह हुआ। इस युग की शारीरिक विवाहता गरजती गुणों के वलतारों के लिए यादवों का लाभ करती रही। यद्यन्दा के विष इस वार्ष में है। भारतीय उस समय वाम-विजय के यात्री लोकों में अब भव सम्बन्धियों से यादे बढ़ गए। नीचों तथा लूप्त द्वारा अक्ष-सेवन की असमुक्तता एवं तात्पुरता-व्यवहार भीरी यात्रा १०० में भारतीयों ने निकाली और इनियों के नव देशों में उसे यहाँ से लोका। आवेद्यहृते गुरुत्वाकर्षण और सूर्य के जारी सार गुणों के लंबाते के लियान् भवावित किये। इस युग की विवाहिक उच्चति का अवलम्बन द्विभाषा कुतुबीयोंनार के याद वाली लोहे की बोती है। ऐसे हृद्वार गणों की विवाहते भेजते के बाद भी इस पर तभी कोई घटना नहीं हुआ। संस्कृत-भावित्य के नवमे बड़े विवाहिताम एवं द्विविवाह विवाह इनों दुन वा भानते हैं। भाजन्दा के विवाह-विनियुक्त विवाहों की स्वामता भी इसी काल में हुई। इस समय भारत में जाति को ज्योति प्रकट हुई, वह एक हृद्वार वाले तक संमार को यथाने भासतोंके में प्रकाशित करती रही।

मध्य युग (१५०—१५२५ ई०)—युग युग में भारतीय मस्तियों द्वारा के विवाह तक युद्ध जूकी थी। अब उसका अपकर्य युक्त हुआ। यससे एक हृद्वार वाले तक यह सक्षिया जारी रही। इस वाले को दो बड़े उपचिन्द्रों ने बोति बाता है—पूर्व मध्य युग (१५०—१५१० ई०) तक उसर मध्य युग (१५१०—१५२५ ई०)। पूर्व मध्य युग में भारी शासन-भवा हिन्दुओं के हाथ में थी और उसके यथा में दिल्ली गढ़ मुस्लिम शासन स्वाभित हो जाय। पूर्व मध्य युग में भारत के विभिन्न प्रदेशों पर बर्खन, बाल्क्य, पाल, सेन, गुर्जर, ग्रन्तिहार, राज्याल्पत, चन्देल, गरमार, लोहान, याहुदवाल, गहलोत, गलतक, पाटिय, बोज आदि राजवंश यथा स्वाभित करते रहे।

इसी शती के अन्त में युक्ती ने उत्तर भारत जीता, दिल्ली पर अपने दाम (१२०६—१२६० ई०), लिलजी (१२६०—१३२० ई०), तुलवक (१३२०—१४१२ ई०), सम्यद (१४१६—१४५० ई०), लोदी (१४५०—१५२६ ई०) वर्षों ने शासन किया। किन्तु राजपूताना और द्विविवाह भारत में स्वतन्त्र हिन्दू राज्य बने रहे। इसी नदी के उत्तरांड में विवाहित भाजन्दा का उदय हुआ। यथापि इस समय भारत को छालूतिक उच्चति युक्त-युग की भाँति नहीं हुई थी, किंर भी राजाओं के प्रेतसाहन में जास्तु एवं विल की प्रदूषित कला-कृतियाँ—एलोरा और देल्ली (धार्म) के मन्दिर—

इसी समय में त्रिपाठ हुई। हिन्दू धर्म के महान् पालकाये कुमारिल, शकर और रामानुज इसी समय हुए। संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार मन्महि इसी युग की विभूति है। उसीन में अपनीकोति, यामतारवित्त और शकर के बृन्द भारतीय विचार की ओरी उड़ान को सूचित करते हैं। पृथ्वीर भारत के कम्बुज, चम्पा, श्रीविजय (जावा-मुमारा) के राज्यों में भारतीय संस्कृति को बड़ी उत्तरति हुई। इसी समय बोरोपुद्र (बीजाती), अंकोर बाट (बीजाती शती) के अगल-प्रसिद्ध मन्दिर बने, किन्तु पूर्व समय युग के उत्तरार्द्ध में सभी जीवों में उत्तरति के प्रवाह में सन्दर्भ आने लगे। उत्तर समय युग में इनके परिषाम स्थापित हुए दृष्टिगोचर होने लगते हैं। भारतीय उपनिषदों का अपने ही जाता है, जात-जीत के बध्यम बटोर होने लगते हैं। इसीन में यजा और स्वतन्त्र विचार बढ़ते हो जाते हैं। प्रकाश परिषद भी युराने प्रथों को टोकाओं और भाष्यों में ही आनी प्रतिभा का उत्पादन करने लगते हैं। जात-विज्ञान के चमो क्षेत्रों में नई उत्तरति बढ़ते हो जाती है।

मुसल-मराठा युग (१५२६-१७६१ ई.)—इस युग में १५२६ ई. से १७२० ई. तक युगल भारत की धरान राजनीतिक शक्ति वे और इसके बाद उसका स्वाम-मराठा ने ले लिया। इस समय इस्लाम और हिन्दू-धर्म का पारस्परिक सम्पर्क हुआ, जिस पर बहु देस बाजे और जाति-भेद का व्यापन करने वाले बनोक धर्म-सुधारक सन्न हुए। मुस्लिम प्रभाव से जास्तु, चित्र, संगीत यादि कलाएँ दृष्टि समृद्ध हुई। प्रान्तीय भाषाओं को उत्तरति तथा उत्तरति इसी युग में हुई। यदि मुसलमान बंगाल की विजय न करते तो बंगला इनी शीघ्र साहित्यक भाषा नहीं बनती। राज-दरबार में संस्कृत का ही बोलनामा रहता। युर और तुलसी, रहीम और सम्बान में इस काल में हिन्दौ-नाहियक की व्योपदि की। यशोर में पद्म के भूतिरिक्त विचारों के बाल से दायर-कार्य के लिए गण का लिकाय दृष्टि। मुराला ने युरोपीय रणनीति, बाहर, बन्दूक और तोपों का प्रयोग तुको में सोला और उसका भारत में प्रयोग किया, जो भारत में कामज़ बनाने की कला सामें। युद्ध-चित्र, सैनिक-व्यवस्था और किसेवनी की इस समय विसेष उत्तरति हुई। उत्तर भारत की वेण-भूषा, रहन-महन, जान-नाम वर पर्याप्त मुस्लिम प्रभाव पड़ा। हिन्दी, बंगला, मराठों ने अकड़ों पारसी, परसी, तुकों सभी की वृद्धि हुई।

इस युग में भारतीय विज्ञानों ने अपनी युरानी विज्ञानिकमात् योग्यता बनाये रखी, “मूरला के कानीमरों द्वारा त्रिपाठ जहाज युरोपियन बनोद्देखे, भीर कामिय के कारखाने में बतो बन्दूके यंत्रों का बन्दूकों से यंत्रिक उत्तम थे”, किन्तु सास्कृतिक दृष्टि से इस समय की सभ्यते बही विद्योपता विज्ञान तथा बायूति का अभाव था। भारतीय विज्ञानी जहाँ तक यहीं तक थे, उससे प्राप्त बहने की उच्छव उनमें नहीं रही। समर-कला में युरोपियन उत्तरति कर रहे थे, किन्तु उस समय विज्ञानों भारतीय ने उसमें इस विज्ञान की सोलाने की उत्कृष्टा या अभियाचि नहीं दिलाई। १३-१८वीं शतों का दुनियालय महाराष्ट्र, पंजाब और बुन्देलखण्ड में केवल राजनीतिक देश में हुआ।

सांस्कृतिक लेख में हम गहरी सोहनिशा में पढ़ गए, हमारे जाननेवाले हो गए, हम पाल मुंदकार तुरामी भीक पर बलते रहे। चारों प्रोटो की दुनिया और उसकी उप्रक्रिया को थोर ने बिलकुल यत्कां नहीं रखे। भारत के प्रयोजनों के प्रारंभ होने का एक बड़ा कारण हमारे सांस्कृतिक जीवन की मन्दता थी।

विटिया युग—१८वीं शती के उत्तरार्द्ध से भारत में विटिया सत्ता की स्थापना हुई और १८५० तक भारत प्रयोजनों के अधीन रहा। राजनीतिक दृष्टि से उत्तरार्द्ध होने से हुए भी सांस्कृतिक दृष्टि ने इस काल का असाधारण महसूस है। विटिया सम्पर्क से भारत का गहरी दुनिया किसेपतः परिवर्ती जमत् के साथ सम्बन्ध स्थापित हुआ, सभूत देश में एक शारन-यादति, तथा भासन याक्षान्यामी प्रवर्तित होने से ताल्हों-पत्ता के एकता की भावना उत्पन्न हुई, परिवर्ती विचार-शारण और जान से परिवर्तित होने पर अमेर गवान-मुपाट और देसोदार के आन्दोलन प्रवर्त हुए। इस समय भारत ने कई दर्शियों की कुम्भकामी सोहनिशा का परिव्याप्त किया। लालिक, राजनीतिक, नामाजिक, यात्रियिक, बौद्धिक, वैज्ञानिक और प्राचिक धर्मों में यात्राधारण जारी रहे और उत्तरति हुई। जारे भारत में एक नई भावना और नई जीवन का उत्पन्न हुआ, भारत में सभ्य युग से आधुनिक युग से प्रवेश किया। १८५० में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से हमारे देश में आधुनिक युग के परिवर्तन धर्मिक लोक गति के साथ होने लगे हैं।

अगले सत्यायों में जाल-कम से विभिन्न युगों के सांस्कृतिक इतिहास की विवेचना की जाएगी।

प्रार्गेतिहासिक युग

(क) संस्कृतियों का संगम

प्रार्गेतिहासिक युग में भारतीय संस्कृति का सूखपात्र हुआ और उत्तर-गणितमी भारत में एक उभयत सम्प्रता का विद्यालय हुआ, जिसके भवनमें अधिक स्थवरेष मौजूदे हैं- जोकहो और हड्डपा ये भित्ते हैं। भारतीय संस्कृति का शोगरोर्मा भावेतर और यात्रा जातियों के पारस्परिक सम्प्रतान और साम्नवरण से हुआ। आज जिसे भारतीय संस्कृति कहा जाता है उसके निर्माण में यथापि यात्रों का प्रयात्र भाग है, किन्तु यात्रेतर जातियों ने उसके निर्माण में जो भाग लिया है, उह भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। इन दोनों के गुच्छद सम्प्रकार से प्रार्गेतिहासिक युग में भारतीय संस्कृति की वह धारा प्राप्त हुई, जिसमें देविहासिक युग में यथा याराएँ भित्ती रही। इन यथायां में पहले विद्यालय संस्कृतियों के संगम का और बाद में तिन्हुनारहनी का बर्णन लिया जाएगा।

विद्या प्रकार यमोंबों से निष्ठानने वाली जागीरियों पहाड़ों में जाहूली भन्न-फिनी, भल्लानन्दा आदि धनोक नायियों के जल से परिषुट होकर संगा नदी बहलाती है और सैदान में यमुना, गोमती, गंडक और दोन यादि से भित्तकर भी संगा ही रहती है, उसी प्रकार प्रार्गेतिहासिक काल में नेहिटो, यानेप, इतिह और आदि यादि धनोक जातियों की विद्यालय सास्कृतिक भारतीयों से समृद्ध होने वाली और ऐतिहासिक युग में बबन, शत, हृष, शुक्र, मुगल तथा विद्या सम्प्रकार में प्रोत्पृष्ठ पाने वाली संस्कृति भी भारतीय ही रही है। इनने धनोक धारान्मुक्त युग में विभिन्न जातियों सा सम्प्रकार से धनोक तर्तु प्राप्त किये हैं, इन्हें भली-भार्ति धनोकों के लिए भारत की प्रधान वस्त्रों का परिचय भावप्रदक है।

भारत की नस्ते—पहले यह समझा जाता था कि इस्त्र इन देश के मूल निवासी से और यार्म लोग बाहर से आए। नई वैज्ञानिक विद्यालयों के द्वारा भारत में बनने वाली उभो जातियों मूलतः बाहर से आई हैं। भारत की बत्तेमान जनता की नृव्याध-दासियों ने मूढ़म निरीक्षण के बाद ये प्रधान नस्तों में बोटा है—(१) नेहिटो, (२) धानेप (निपाद), (३) मगोल (किरात), (४) नमध्य शामरीय (प्रविड), (५) पस्तियो (पोल सिर वाले), और (६) नोहिल (यायें)।

(१) नेहिटो (Negrito)—नीप्रो-वंश को वह जाता है जिसका कप बहुत नाढ़ा होता है। इसको विद्याप्रताएँ हैं महरा काला और बहुत छोटा बद, मोटे होंठ

तथा ऊरी जाति । वह भारत में बसने वाली प्राचीनतम जाति है और यह इसके बहु-सेव नष्टप्राप्त है । यह अथान भृप से दार्शनिक दाष्ठु में वाली हुई है और इसके कुछ इष्य भारत के दक्षिणी भाग—कर्नाटक और द्रावतलांगूर के पर्वतों की ओर यह यात्रियों में, प्राचीन के ब्रह्मणों नामों में तथा राजवरहन (बिहार) की प्राचीनियों में बसने वाली जातियों में पाये जाते हैं । इसे इसके बावजूद प्राचीन जातियों ने, विदेश-कर यात्रनेप जाति ने तष्ट कर दिया ।

(२) धार्मेय (Austria)—ऐसिद्धि नस्त के बाब्य यह जाति भी पश्चिम से भारत में पाई जाती है । इसे धार्मेय कहने का कारण यह है कि इस सम्बद्ध यह जाति प्रथम रूप से संगार के दक्षिण-पूर्व (धार्मेय) क्षेत्र में पाई जाती है । भारत ने इस जाति से सम्बद्ध विभिन्न जातियों द्वारा वाली जातियों सञ्चाल, मूला, गवर भारि प्रधान रूप से उड़ीसा के पास भारतवर्ष में खाती है । इन्हें कोई भी कहा जाता है । भारत में इनको संक्षेप बहुत कम है, किन्तु इस देश से बाहर इस नस्त के लोग दूरों, हिन्दू-वीर, मतामा, धूर्वी द्वीप-समूह (मुख्य-द्वीप) तक प्रवालत महासागर के ठाप्सों में कहा दूर तक फैले हैं । ऐसा समझा जाता है कि प्रार्थितिहासिक युग में इनको जी जाता भारत में आई वह इस समय विदेशन धार्मेय जाति का पूर्व रूप था, यत्तएव वसे धारामेयाम (Proto Australoid) का नाम दिया गया है । भारत में ही इसे जातिय विदेशतार्द्द प्राप्त हुई है और यही से इसकी एक वाला दक्षिण-पूर्व (धार्मेय) कोण भी घोट बची गई । याद धार्मेय जाति (Proto Australoid) को शाल-मूरत के सम्बन्ध में बोक जान गही है, ऐसा प्रतीत होता है कि ये भी जाति जहाँ और जहाँ नाक वाले थे । धार्य भी भारत के अधिकार्य भाग में निम्न जातियों के रूप में विदेशन है । प्राचीन काल में जातिद नियाद इन्होंने का नाम दिया ।

(३) भूमध्य-सामरीय (इविड) —यहसे जिस जाति को इनिह कहा जाता था, घब उसे भूमध्य-सामरीय (Mediterranean) का नाम दिया गया है । इसमे तीन उपमेद माले जाते हैं : (१) तुरा भूमध्य-सामरीय—जाति रंग और वैभवता कह इनकी विदेशतार्द्द है । वे प्राचीन काल से जलवालम, तामिल जाता कलक्षु-भाषी प्रदेशों में हैं । (२) यशली भूमध्य-सामरीय—वे पुरात-भूमध्य-सामरीयों की प्रोत्ता धर्मिक उम्मी और नाक रूप के हैं । पंजाब और गंगा की उपहाली धारी में जिलते हैं । धारी से पहले उत्तर भारत में यही जाति जलती थी, ऐसा समझा जाता है । (३) प्राचा भूमध्य-सामरीय—इसमें नाक जमी और रंग अधिक गोरा होता है, यह पंजाब, मिथ, राजपूताना और विश्वमो उत्तर प्रदेश में पाई जाती है । वे जाति जातियों मध्ये सिर लामी है ।

(४) विश्वमो यह क्षत्रिय जाति—जन्म एशियापरे वर्षेर-कालांतरों में मूल रूप में विकसित इस नस्त के प्राचीनान्तरों, दोनारी और धार्मोनियन नामक नील भेद भारत में पाए जाते हैं । यहसा भेद गुजरात में, दूसरा बंगाल, उडीसा, कालिपालड़—

उल्लङ्घन और तामिल प्रदेशों में तथा गीगड़ा प्रदान वर्ष से खंडवे के पारसियों में विचरण है।

(५) नोर्डिक (पार्थ) — पार्थ भाषा-भाषी जाति (Nordic) जाति के बाबा चिह्न हैं—गोदा या गेहुंदा रंग ऊँका कद, उमरा हृषा भाषा, सम्बो नुकोले, नाक और भरपुर दस्ती-मुँह। इसके नमूने, उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त, विशेषतः मिथुन नदी की डारखती पार्थी तथा स्वात, पंजाबी, कुनार, विचाल नदीयों की जातियों और हिन्दुकुश पर्वत के दक्षिण में मिलते हैं। पश्चात, राजपूताना और भगा की उपरती पाटी में भी यह व्याख्या जातियों के साथ सम्भित वर्ष में पाई जाती है। भद्राराष्ट्र के लिंगपातन ब्राह्मणों में भी इसके वर्ष मिलते हैं। प्राचीन पार्थिय ने वह जाति होना है कि पार्थ सुमाले बालों तथा नीली धौलों वाले हैं, किन्तु भारतीय जलवायन के प्रभाव से उनके इस वर्ष में परिवर्तन पा सका है। भारतीय संस्कृति की निर्माण में जापी का बहुत महत्वपूर्ण भाग है। इन्होंने भारत की जे केवल जापी जापान प्रदान की परिवृत्ति विभिन्न संस्कृतियों का समन्वय करके मही भारतीय संस्कृति की भागार-जिता भी रखी।

(६) मंगोल (हिरात) — इस सहज की मुख्य परिचाल है—जोतवर्ष, गोदा वेहरा, गालों की लुहिदामी उमरी हुई, दाढ़ी-मूँह नहीं के बराबर तथा नाक की वह हुक्क बढ़ती। भारत में इसके दो भेद—जन्मे तिर वाले पुरा किरात और गोत चिर वाले तिव्वत—किरात—पार्थ जाते हैं। जन्मे तिर वाले सबसे पुराने किरात हैं, वे आत्म में तथा भारत और बमी के सोमा-त्रिवेदी में रहते हैं। सोन भिर वाले इनमें विकासित समझे जाते हैं। ये छटगोल की पार्थियों तथा बमी के निवासी हैं। तिव्वत—किरात वर्ष में इस जाति के नेतृत्व चिह्न संधिक सार्व वर्ष में मिलते हैं। ये विनिकम और भूतान के निवासी हैं और तिव्वत से जापी आधुनिक संवय में जहरत भागते हैं।

भारतीय जनता ग्रामन रूप से इन वर्ष नदीों के सम्मध्यण से बनी है। इन सभी ने भारतीय संस्कृति को मधुमद बनाने में सहयोग दिया है। प्रारंभितामिक काल में नेपिटो, शास्त्रेय, इविक और जापी जातियों ने इस सोस्कृतिक महापर्व में अपनी प्रारूपियों दी थीं और इन सभी के जनिकता पूर्ण प्रभाव से एक भारतीय संस्कृति का निर्माण हुआ था। इसमें विभिन्न जातियों से जापी, धूण-पल-मिलकर इस प्रवाहर एक ही गण है कि उनका पूर्ण तथा निर्जित रूप से विश्लेषण करना सर्वथा जापान संवय है। भाषा-भास्त्र तथा पुरामाल यादि को सहायता से इस गण जो भरपुर प्रकाश पक्ष है वह इस इष्ट से बहुत महत्वपूर्ण और मनोरंजन है कि भारतीय संस्कृति के निर्माण में किन-किन जातियों ने ज्या-ज्या जहरतों दिया है। यही प्रारंभितामिक युग में भारतीय संस्कृति के सूक्ष्मता में जाता जातियों द्वारा प्रदत्त धूणों का ही काल-क्रम से बदलन किया जाएगा।

नेपिटो नदी को सोस्कृतिक देत—नेपिटो भारत-भूमि पर प्रदार्पण करने वाली प्रथम नदी ही; किन्तु वह भारत की परसर्वी संस्कृति पर विशेष स्वामी ब्रह्मान न

बाल सको, जीर्णों के वह समस्ता को प्रारंभ धरम्या-युद्धपीढ़ी इत्या में थी। इसे बाद में अपने बाली अधिक दग्धत जातियों ने विनाश और निर्भाव कर दिया। नेपिटो-पट्ट्यर और हड्डी के ब्रतगढ़ त्रिभिरारों का तथा तीरन्माल का प्रयोग करते थे। जंगलों में फल-भूज के सबसे और ग्रामवारी तथा व्यालियों के लियार से अपना निर्भाव करते थे। लेटी, मिट्टी के लतें बनाने और भकान-निर्माण की कलाओं से ऐ अनुभिति थी। अण्डमान के आरंभिक लियासों द्वाव तक बनाव भड़ो उपजा सकते। झोपडियों और मकान बनाने को कला से अपरिचित होने के कारण नेपिटों गुराघों में रहते थे। नेपिटों खफोका से बरस होने हुए भारत में जाए और यहाँ से मनावा, हिन्दौ-प्रभु-मग्नु होने हुए त्रिभिरारों तक चले गए। इस समय भारत में इनकी सबसे बड़ी जाति अण्डमान टापू में थी थी। यमता की आदित इत्या में होने पर भी इनमें अद्भुत साहस या और उसी के भरोसे ते अपनी लोटो-छाटी लियिलमो द्वारा खफोका से शृंगी लकड़ियां बाए गई। भारतीय जातियों में नेपिटो-पट्ट्यर बहुत समय तक बना रहा। गुरु विष-कला पर, विषेषतः प्रजन्ता के भित्ति-विषों में, इसका कुछ व्रतों गाना जाता है। गन्तान-प्राणि के लिए तथा शृंतों को सद्यगति के लिए बट-पृथ की पूजा दिनू अमे को इस जाति की एक विषेष देन है।

आम्नेय जाति की देव—नेपिटों के बाद बाने बाली आम्नेय जाति की भारतीय जनता का पश्चात मूल धर्म माना जाता है। ये अपने साथ नवाप्तमकालों में संकृति को लाये। इन्होंने पट्ट्यरों को छिसकर उससे भारदार जीवार और हृषिपार बनाये, कुशसे जमीन को बोदकार बेती शुक को, कुम्हार का चाक भी उन्हीं के समय से भारत में चलना शुरू हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हीं भारत के सभूते विशाल मैदान में ये बसे हुए थे, व्योमिं नवाप्तमकालीन धर्योग उत्तरी मैदान की आग सभी नदियों की धाटियों ने पाए नए हैं। बाद में बाने बाली जातियों द्वारा ये लोग हिमालय के दुर्गम प्रदेशों और विष्व वर्द्धमाला के गहन बनों में रखेह दिए गए। जातीन जाती की बुश्याली में, मध्य हिमालय की कलोरी में तथा नीपाल की दुर्गम धाटियों में उनकी बीली के कुछ घवनेष भितते हैं। किन्तु इन समय आम्नेय भाषा-भाषी तन्याल मुण्डा, भुमिज विरहोर, असूर, अगर, कोरका-मादि-जातियों विष्व पर्वत के पूर्वी भाग में रावमहल की पाहाड़ियों में बसी हुई हैं तथा भवत भारत के कुरुक्षु, उदीगा के ऊपरी, लज्जर तथा गदव भी आम्नेय धोलियों का प्रयोग करते हैं। पहले वह कहा जा सका है कि यह जाति भारत से निकलकर समूने दक्षिणपूर्वी एशिया, पूर्वी ड्राप-कम्फू तथा प्रशालन सहामानर के द्वीपों में फैली थी। ऐसा प्रतीत होता है कि कई बार ये जातियों इन प्रदेशों से लौटकर भारत में बसी हैं और अपने नाथ उन-उन प्रदेशों में फैली नहीं थाएं तथा उन प्रदेशों की अम्य विषेषताएँ इस देश में जारी हैं। उदाहरणार्थ भारत में नारियल के प्रबोल का अप्र प्रशालन महामानर के टागुप्रों से आने वाली इसी जाति की एक वास्तविकों को दिया जाता है। जीतिक और धानिक द्वे भूमि आम्नेय जाति ने घोनक देनों से हमारो समूद्र भित्ति को समृद्ध किया है।

भौतिक शोल में इसकी प्रथान देख न केवल कुदाल डारा बेती करना ही है भिन्न भाषा-निजाम के भाषाएँ पर यह भी जहाँ वा सकता है कि भाषा की लेती, नेता (कर्ली), नारियल बैगन, यात (ताम्बूल), तोरी, सोय, जामून, कपास के उत्पादन का नेत्र भी इन्हीं को है। इन्होंने सम्भवतः नज़रें पहले सूती कपड़ा कुत्ता वा, हाथी (गज) को पालतू बनाया। सच्चान् भाषा को भाष, लकड़ (लाडि), लालन्ति (सिंधुल) कुकवारु (युरी), भारतग, यज आदि यह द्रवान किए। गर्मे से बोढ़ बनाना भी इन्हीं का आविष्कार माना जाता है। पान-मुग्गारा का अवलोकन, विवाह आदि सहकारों में 'सिन्हूर' और हन्दी का प्रयोग भी इनमें सहृदय किया जाता है।

वास्तिक शोल में पुनर्जन्म का विचार कुदाल तथा सूख्दयुत्पत्ति-सम्बन्धी प्रमेक इन्त-कमारी, बज्जूप भवतार की कल्पना, पापाण-शब्द में देवता की भावना, नाम, मन्त्र और बन्दर आदि विभिन्न प्राणियों को पूजा, संक्षयाभृष्टम्, सूख्यास्त्वरूपम् तथा तब्बन (Taboo) का विचार, तुरी सज्जर को 'विलावर' डारा बचाना आदि प्रमेक वास्त-आमेय प्रभाव का परिचय है। चन्द्रमा की बना के घनुमार विवियों की मणिना तथा इनके घनुमार वास्तिक पवी का भनाना भी मन्त्रबतः निषादों में लिया गया है। संस्कृत में पुणिमा और चमावस्या के लिए 'रक्त' और 'कुटु' शब्द प्रशंसन्त महामार्गर की आमेय भाषा के शब्द हैं। मताईस नक्कों में मातृक (कृतिका) का मूल भी इसी प्रकार का बठाया जाता है। महाभारत और पुराणों में पाताल-लोक के आधिपति वासुदेव प्रादि नामों और भण्डे से सृष्टि की उत्पाति, मत्स्यानन्दा और मार्गेय आदि के सन्दर्भ में जी अस्तन्त मनोरजक कथाएँ हैं, उनका-प्रादि शोत भी इस जाति का पुराण है। गगा हिन्दुओं की मज़बत परिव नहीं है। उसमें अवता किसी अन्य नदी में मृत आकिं जी की परिव भावधारक वासिक कर्त्तव्य नममा जाता है। किन्तु विद्वाओं का मत है कि भावियों की मृता और ओं पूर्विकानें ये दोनों विचार संबंधी भावित जातियों ने लिये थे हैं। दामोदर नदी में प्रस्त्र ठाले विन भूम्यानों की यति नहीं हीठी। तीरों वा सहृद और नदियों को पूजा वैदिक चाहिय में जो कहीं नित्यी नहीं। राष्ट्रतः वे आवेदन जातियों से चहूण की गई हैं।

इविह जाति की देन—आमेय जाति के नाद हमारे देश में इविह जाति का आगमन हुआ। इविह अपने पूर्ववतियों की धरोहर कहीं अधिक सुनस्कृत और भागर सम्पत्ता से सम्बन्ध में है। इस समय इविह-भाषा-नामों के बोल इधिण भारत में वामे

१. सिन्हूर का न कोई वैदिक नाम है और न ही सिन्हूर-दान का कोई वैदिक नाम। विवाह में सिन्हूर-सारों की लिपि में जो भाव "यो लिंगोरुच्छामेष फालन्ते" (सूक्ष्म. ४०, ५६, २३) एह जाति के लाले में सिन्हूर शब्द से बोलत अनितान है। सिन्हूर के नाम नामनाम, नामनामव भावित और शब्द भी जागी का बन्दू सिंह करता है। तुल विद्वाओं का पाता दाक करना है (वा गगा शब्द भा सम्बन्ध आमेय भाषा का है, इनका मृत फां की-भाषा वा। छिल्लनी का नेत्र (सीलें) इविही जीवों का कांप (पंगोंकर्ण) आदि शब्द इस कल्पना को पुष्ट करते हैं।

जाते हैं, किन्तु प्राचीन काल में उत्तरी भारत में भी इसी रूपा होमे के वक्ते प्रभाव प्रियते हैं। याजकल वह मात्रा जाता है कि इविह भूमध्य भाग के प्रदेश में भारत में आए। लेहु एतिया की एक प्राचीन इन्द्रधनुषीय भूमध्य सागरीय लिमियन जाति वर्णों को लिमियनों कहती थी। हिरांडोटस के कामनामुसार वह वही कोट टायु से थाई थी। कोट में युनानियों से पहुँच के नियामियों की तमिलाई कहा जाता था। वह यज्ञ तमिल, तमिल या इविह से सम्बन्धित जाता है। अतः वह समस्या जाता है कि इविह मूलतः कोट से आए थीर वे अपने साथ इस प्रदेश के धार्मिक विचार थीर विद्यास भी लाए। भारतीय संस्कृति पर इनका गहरा प्रभाव पहुँचे।

धार्मिक शेष में इविह-प्रभाव का परिणाम नए हीर की उपासना-भृत्य का श्रीगणेश तथा नए देवताओं का प्राप्तमन था। वैदिक चर्चे महाप्रधान था। उसमें इन्द्रायि देवताओं के उद्देश से संबोध्यारणा पूर्वीक थी, दूसरा धार्दि की आत्मता थी जाती थी। देवताओं की उपासना वही द्वारा होती थी। इविह-प्रभाव से देवताओं की पूजा अर्थात् यज्ञवर की मूर्ति या किसी प्रकार के देवता के प्रतीक पर पूजन-पूज्य धार्दि बड़ाना, उसे रिन्दूर, चन्दन लगाना, उसके सम्मुख पूज-वीर्य लगाना, घटा-विद्युत लगाना, संगीत-नृत्य का धारोजन करना, भीम लगाना, प्रसाद लेना प्रचलित हुआ। ऐसे सब प्रयुक्तियां सर्वेदिक हैं। दूजा छाव्य भी सम्बन्धित इविह मूल का है। विसका अर्थ है पूजा कर्म अर्थात् पूज बड़ाना (पू=पूजा, ज=करना)।

ग केवल इस अवैदिक पूजा-विद्यि का ही प्रचलन हुआ रहियु इसके साथ-साथ शिव, उमा, विष्णु, शौकुण्ड, कुमार, द्वन्द्वाम, भरीष, शीतला धार्दि नवीन देवता पूजे जाने लगे। इन्होंने इन्द्र, अर्णि, बहूण, पूरा धार्दि वैदिक देवताओं का स्वाम ले लिया। देव के यज्ञ में यित्र नहीं बुलाए गए, इसलिए वह यज्ञ यित्र के मूर्त-प्रत धार्दि गणों के द्वारा व्यक्त हो गया। इस पौराणिक आद्यायन से शपथ है कि यित्र बहुत समय तक याथों द्वारा पूजे जाने वाले देवताओं की वक्ति में सम्मिलित नहीं हुए थे। वे आद्यतर वायर मादियों द्वारा पूजे जाते थे। यित्र की लिंग रूप में पूजा की पद्धति के अवैदिक होने का यही प्रभाव पर्याप्त है कि प्रायः सभी पूराणों में इस बात का वर्णन है कि अूपियों ने अपनी प्रतिकूलियों के हठ में विश्व होकर इसे स्वीकार किया। वे गृहिणी-नहियां प्रायः धार्द्यतर कुत्सोल्यन्त होमे के कारण अपने गित्तुकुल के प्राचार को छोड़ने में असमर्पय थीं। मातृ-नवित की पूजा भी इविहों की देन है। उसके मूल स्थाने दीवियन वायर के टायुओं में, पूजान थीर नहु एतिया में 'मा' नामक मातृ-देवता की पूजा बहुत धृष्टिक प्रचलित थी। 'उमा' का इसी 'मा' से सम्बन्ध बढ़ावाया जाता है। उमी के दूसरे नाम 'तुमी' को तुलना लिमियन जाति की ब्रह्म देवी से की गई है। विष्णु प्राचिक स्थ से वैदिक है, जैकिन उसका बर्तमान स्वरूप प्रवैदिक है। लिप्तावान् वैदिक भृगु ने विष्णु के ब्रह्मस्थल पर चरणाल्पात किया था। जैकिन इस प्रकार लाज्जित होकर भी विष्णु हमारे देश में पूजित हुए। वो भी असत् वैदिक

है। किन्तु उसके गवर्नर्सी भावित कर सर्वेषा पर्वेशिक है। कुलप येए में इन्ड्रविरोधी है। लेकिन ऐसे तात्पर्य के इस द्रविड़ देवता (वाणिम) को विष्णु के नाथ एक कर दिया गया। कुमार (स्कन्द), गणेश, हनुमान, सर्वेषा पर्वेशिक देवता है। हिन्दू-धर्म का शाखार नियम धोर धारण भाने जाते हैं। भागमों में तात्त्विक मत और मोग का प्रोत्साहन है। तो दोनों बाहर से गोरे-सीरे वैदिक मत के पास या लाडे हुए, गर्व-जर्व-इन्होंने वैदिक मत का कपास्तर कर लाता।

भारतीय संस्कृति पर भौमों (किरातों) का भविक प्रभाव नहीं यहा नमोकि उनके जागमन तक भारतीय संस्कृति का स्वरूप बहुत कुछ निश्चित ही नहा या। स्वरूप ये आतिथी बहुत गिरजड़ी हुई थीं और इनका विस्तार भी भारत की उत्तरी ओर उत्तर-शूर्वी सीमायों पर ही रहा। फिर भी हिमालय-प्रदेश की बोलियों तथा गोरक्षातों, बंगला, असामी, भोजाप्रांतों के जिकाय में इसका कुछ प्रभाव पड़ा है। तेरहवीं सदी में शासाम जीवने वाले अहोम गोरे-सीरे हिन्दुओं में घुसन्मिल गए। केवल उसके बूजन, बचप्पा भावित नाम ही विदेशी प्रभाव के गुणक हैं।

धार्म व धार्येतर संस्कृतियों का संगम—प्रार्थितिहासिक दुग में इस प्रकार जो धार्म तथा धार्येतर संस्कृतियों का संगम हुआ वही हमारी भारतीय संस्कृति का सुरुह धारापार है। संभवतः भागमों और इन्हों के जनेकम और विरोध से यादों को सफलता मिली। उनकी भाषा देव के अधिकार भाषा में प्रतिष्ठित हुई। जागा की दृष्टि से आज भारत में ३६.४% धार्म भाषा-भाषी, २०.५% द्रविड़ भाषा-भाषी और ३% धार्मिय भाषा-भाषी है। किन्तु वार्षिक और भाषाविक दृष्टि से आदी की जातिहृतापूर्वी उदार वृत्ति से वैदिक और सर्वेशिक, धार्म और धार्येतर का जो-जो विभिन्न गमन्य और साम हुआ उसमें कुछ विद्वानों के सत्तानुसार यह अनुपात विद्युत उठाए गया। वे अत्यन्त भारतीय संस्कृति में २५% अंक की ही वैदिक मानते हैं और 'रसये में बाहु भाना' इसका मूल धार्येतर मानते हैं। भारतीय धर्म, धारन-धारन, जागा, सामाजिक रोति-रिकाज भावित सभी यातों में पर्वेशिक धर्म बहुत प्रचलत है, धर्म के सम्बन्ध में पर्वेशिक उस्कों का पहले उल्लेख जिया जा जाता है। महीं इतना कहना ही पर्याप्त है कि भक्तिसिद्धान्त की उत्पत्ति पुराणों के अनुसार द्रविड़ देश में हुई।^३ मूलसों, बह, पीपल, बैल भावित वृद्धों की पूजा और पवित्रता का विवार भाषी ने धार्येतर जातियों से यहां किया क्षेत्रिक ये सब वृक्ष धार्येतर देवताओं से सम्बद्ध हैं।

वैदिक भाषी का प्रधान भोजन जो और नक्कल या, आज भारतीय भोजन में जावत, नहीं, धात, यी और तेज धावि की प्रमुखता है। वैदिक भागों के ऊनी वस्त्रों

^३ उपनिषद् देवते यात्र वर्णोंटे पूर्वमन्ता।

जिता किन्तुमाराप्ते धूरे गीर्वति जा।।

(“पूर्व दुर्गा” उत्तर-वाचा ५०५।)

का स्पान सूती वस्त्रों में भी लिया है। भाषावाचित्यों के सरानुसार जल्दीज भारतीय भाषाएँ भाषाओं की भाषाओं द्वारा अवश्यकता पद्धति वैदिक या हिन्दू गूरुपीय परिवार की भाषा भाषाओं की भाषाओं द्वारा इन्हीं भाषाओं में अधिक मिलती है। इन भाषाओं में सौ के सम्में भाषानेत्र और भाषा के सम्में इन्हीं भाषाओं में सम्में इन्हीं भाषाओं का विवार, सार्वजनिक घटनाओं पर नारियों का प्रयोग, वैदिक विद्याओं में उच्च, स्वर्णिक, दोहत, सोने वर्णों, हल्दी और सिन्धुर का व्यापार भी सर्वेदिक है।

किन्तु आज तथा भाषेतर तस्वीरे के सुन्दर सम्में और सम्मिथण से बो संस्कृति उत्पन्न हुई वह विशुद्ध रूप से भारतीय भी और न ही वैदिक और भाषें भी और न ही भाषाओं और भाषाओं। वह सबकी साभी संस्कृति भी। भारतीय संस्कृति के उपानाम में हृषि इस सम्में ने उन भाषाओं, भाषानामों और विद्यार्थी को जन्म दिया जो उपानाम से कोई वर्णों के सभी भाषाओं को उपानाम का से अनुवादित और प्रेरित करते थे रहे हैं। इनमें संधिपूर्ण, सम्में, कर्मवाद, पुक्खेन्म, घट्टय सत्ता में विद्याम, इष्टमान जगत् की विविधता के गिरि भौतिक एकत्र का दर्शन, वृहिमा, कर्मा और दुर्गमुर्ति जगत् से गृह्ण होने भी इष्टमा प्रभुत्व है और वे भी भारतीय संस्कृति के मूलाभार हैं। इनका जन्म और विकास शनै-शनै हुआ है। अगले भाषाओं में इनका यथा स्पान अतिपादन किया जाएगा।

(ख) हृष्ट्या तथा शोहेजोदहो की सम्भवता

शोहेजोदहो को खोल और महस्त—आज से जातीम साल पहले भारत में प्रार्थितिहासिक गुग के घटनों वहाँ कम मिलते थे। उस सम्में वैदिक समाजों की बहुत पुराना भासा जाता था, किन्तु पाठ्यालय विद्यार्थी डारों उपानाम काल धर्मिक-अधिक ५०० है। पूर्व से छहराया जाता था। १९२२ है में सिन्ध्य में लखनामा से २५ मील दक्षिण शोहेजोदहो (मृतकों की डोरी) में दूसरों-तीसरों शतों दिनों के एक शोहेजोदहो की लुदाई करते हुए वो राजालदास बनर्जी ने इस स्थान के प्रार्थितिहासिक महस्त की ओर पुरातत्वव्यवों का ध्यान प्राकृष्ट किया। इससे पहले हृष्ट्या (पिला भिष्टमुमरी, पश्चिमी पंजाब) से तुड़ प्रार्थितिहासिक मुहरे मिल जुकी थी। १९२३ है तक भारत-नरकार की ओर से कहीं शुद्धाई होती रही। इसी दोनों में मिल और विजोचित्याम में ऐसे ध्येक दीनों ओर वस्तियों का यता जग जहाँ हृष्ट्या और शोहेजोदहो से भिन्नती-जुलती, इनमें दूर्वक्तों ओर परवक्तों काल की वस्तुएँ पाई गई हैं। इन स्थानों की ओर भारतीय इतिहास में युभान्तर करने वाली थी। पहले भारतीय सम्भवता का प्रारम्भ वैकुंहन्द्र वर्ष ईस्ती पूर्व सम्में जाता था। पिला का प्रार्थीनतम एनिहासिक अवधार ५०० है० पूर्व का सामा जाता था किन्तु इन शुद्धायों से भाज से ५,००० वर्षे पुरानी अत्यन्त दम्भ, समृद्ध एवं सम्में नारियों की सम्भवता का जान हुआ। यह न केवल मिल और मेसोपोटामिया की विवर में प्रार्थीनतम

समझी जाने वाली संस्कृतियों के समकालीन थी, किन्तु नगरों की नफाई, मिथित प्रणाली व्यवस्था, निवित्त घोड़ियों के अनुसार शहरों को बसाने आदि कई धर्मों में वापरी समकालीन सम्पत्तियों से भी बहुत बड़ी-बड़ी थी। इसके अवधेष्ट सर्वप्रथम हठपा में पाये गए थे, यह इसे हठपा-नाम्यता कहा जाता है। तिन्हुं नदी की घाटी में छलने-भूजने से इसे चिन्ह-नाम्यता का भी नाम दिया गया है।

चिन्ह-नाम्यता का विस्तार और साजाज्य—जिन वस्तियों से इस सम्पत्ति के अवधेष्ट मिले हैं, उसमें यह मात्र होता है कि वे पश्चिम में सकरात, दक्षिण में कालियावाड़ी और उत्तर में हिमालय की विशालक पर्वत-माला तक एक चिन्हाकार क्षेत्र में पौरी हुई है। इस चिन्हज की भूक्ताएँ ६५०, ३०० तक ५५० मील हैं। इन वस्तियों के लगातार आगोंन काल के एक विस्तृत और मुस्तिष्ठित साजाज्य के सूचक हैं। इसके विविध भागों से पाई गई गुहरों, हटों, बांदों तथा अन्य सामग्री में इनी गहरी एकत्रिया और साकृत्य है जो मुख्य नेत्रोंय वास्तव के बिना सम्भव नहीं प्रतीत होता। यिन बैकलोंन और झीलों-नें से शक्तिशाली राज्यों की भाँति इस प्राचीन साजाज्य की हठपा और मोहेंजोदहो—उत्तरी और दक्षिणी दो राजधानियों अंतर्गत हीं हैं, ठोक बैकल ही जैसे प्रत्यक्ती गुग में कुशायों के खेतावर और मधुरा में वो बासमन्नेन्द्र थे। उत्तरी भाग में हठपा के प्रतिरिक्ष १७ अग्न्य छोटे कस्बों से हठपा-संस्कृति की वस्तुएँ प्राप्त हो जाती हैं, पूर्व में बनासर (बिहार) और पटना से तथा गालीपुर और बनारस जितों से चिन्ह-नाम्यता जैसे चित्तेश्वर और गुरियों मिलती है। हठपा से २०० मील गूढ़ में रोहत के पास तालुक नदी पर कोटला निहंग खान में भी ऐसे अवधेष्ट पाए गए हैं। मोहेंजोदहो के दक्षिणी भाग में इन शहर के प्रतिरिक्ष १३ अन्य वस्तियों ने इसके प्रयोग मिले हैं। इनमें चन्द्रघटहो (मोहेंजोदहो से ८० मील दूर दूर) तथा अमरी महान्तगुण है। इनके प्रतिरिक्ष सिन्ध नदी के पश्चिमी किनारे पर नीहून-जोदहो, अलीमुराद और भकर, भंगर और गांवीशाह, उत्तरी बिलोचिस्तान में दबाकोठ, ताल, नुरतगत, राता गन्दाई और दक्षिणी चिलोचिस्तान में कुल्ली, मोही और बाही टम्म भी इसी सम्पत्ति से सम्बद्ध हैं। इस प्रकार मोहेंजोदहो की सम्पत्ति और साजाज्य का अंत्र अन्यथा चिलोचिस्तान, चिथं और वंजाव तथा भंगा की घाटी का कुछ भाग था। यह प्राचीन एशिया का एक बहुतम साजाज्य था।

चिन्ह-सम्पत्ति के लगात और अवधेष्ट—मोहेंजोदहो-तथा हठपा में विकसित होने वाली शाही सम्पत्ति की विशेषताएँ इनकी गुदाई से भली-भाँति प्रकट हुई हैं। पहले शहर के अवधेष्ट एक बड़ी भौत में पाये गए हैं। यह शहर पहले से ही सोन-चिन्हारात्र एक निश्चित भौतिकों के अनुसार बसाया गया था। यह सहजे बिलकुल सीधी बगाई गई है। मोहेंजोदहो में हथा दक्षिण और पश्चिम से उत्तर तथा पूर्व की ओर बहती है। यह सहजे का भी यही स्वर रखा गया है। सबसे बड़ी सड़क की लौगाई ३३ फीट है। ने सहजे एक दूसरे को तमकोण घर काटती है और शहर को बगाई-र तथा धार्मिकार खण्डों में बोट बेती है। छोटी गुलियों इन खण्डों को चिनकत

करती है, प्रत्येक गली में कुआँ है, मकानों से मन्दा पानी निकालने के लिए नालियाँ भी बहीं मुन्दर व्यवस्था है। हालांकि, मोहेजोदरों से भी बड़ा शहर है। योनों घहरे में रक्षा के लिए बनाये गए परकोटे के अवशेष भी मिले हैं।

मोहेजोदरों की उल्लेखनीय इमारतें विशाल स्नानागार, बड़ा हाँड़, संपोष अवन और राजमहल हैं। पहली इमारत की लम्बाई-बीड़ाई 160×100 फीट है। इसमें तहाने का तालात 36 फीट लम्बा 23 फीट ऊँचा और 6 फीट गहरा है, इसमें उत्तरने जड़ने के लिए नीढ़ियाँ हैं। इसका सारा फल बड़ी ईंटों का है तथा रक्षा विभागर इकट्ठी नमी नीचे जाने से रोकी गई है। कहा जाता है—कि यह मुन्दर स्नानागार समुद्र-तटवर्ती किसी भी आधुनिक होटल के लिए सब का काम हो सकता है। मोहेजोदरों में इसका उपर्योग संभवतः धार्मिक कार्य के लिए होता था। उसके दक्षिण-पश्चिम में एक अम्ब इमारत में पानी को गर्म करके तहाने की व्यवस्था भी थी। स्नूप वाले टीले के दक्षिण में एक धोक में 25 फीट लम्बा और इसमें ही बौद्ध एक विशाल हॉल पाया गया है। इसकी छत ईंटों से कमे 20 मापताकार लम्बीं पर टिकी हुई थी। इन हॉल के ऊपरों के सम्बन्ध में व्यापक जाल का यह भूत या कि यह बोडों के नेतृत्व से निर्माण हुए, इतना व्यवहार धार्मिक कार्य के लिए होता था। व्या मेंको का यह किलार है कि यह उस समय की बड़ी बड़ी भी और गहरी विशिष्ट वस्तुओं की त्वायी दुकानें थीं। स्नूप वाले टीले के पश्चिम में 230 फीट \times 15 फीट की एक बड़ी इमारत है। इसकी विभिन्नी द्वारा पश्चिमी दीवारें थीने थात कीट-मीठे हैं। यह किसी कमे राजकमंचारी का अवश्य पुरोहित वर्ग का निलाल-स्नान संस्थान बनता जाता है। राजमहल कहा जाते वाला एक अम्ब भवन 220 फीट लम्बा 115 फीट ऊँचा है। इसकी दीवारें कई स्नानों पर धोक फीट भोटी हैं। इसमें भी विशाल ध्रोगत, नीकरों के पर तथा सामान रखने के कमरे हैं।

हालांकि सबसे प्रतिष्ठ इमारत विशाल धर्मागार है। यह 16 फीट लम्बा 143 फीट ऊँचा है। इसके पास ही स्नान धोसे का कर्च तथा मजदूरों के रहने के बहुताये सकान गए नए हैं। इन दोनों घाहरों में मकान बहुत मुश्किलपूर्ण है। उन गवर्मेंट इंसेन, कुंभा, स्नान-ए-हैदर नालियाँ बड़ी ऊँची थीं। धार्मिक प्राप्ति पानी होता था और उसके चारी ओर गोदाम, कुंभा, रसोई तथा स्नानागार होते थे। स्नानागार प्राप्ति साइक की धोक, वक्से-तथा चालदार पद्धि का बना होता था। इसका भवन पानी एक धमकी नालों से बाहर की ओर साइक की नाली में मिला दिया जाता था। धर्मों के दरवाजे आजकल की भाँति प्राप्ति दीवार के बीच में न होकर निरे पर होते थे। बाहर की ओर विविध नहीं होती थीं। मकान प्राप्ति दुर्भिजे होते थे और उसके पास गहरेयार की व्यवस्था होती थी।

प्रणाली-व्यवस्था—मोहेजोदरों में गन्दा पानी निकालने के लिए प्रणाली (Drainage) की बड़ी मुन्दर व्यवस्था थी। प्रत्येक गली और राजक में एक कूट

के दो कुट तक गहरी, दूंच से है कुट तक जीवी नालियाँ होती थीं। इनमें मकानों का पानी आता था। उपरसी गलियों के पानी के निकाम के लिए मिट्टी के बन्धे मकानों की दीवारों में खरांगे जाते थे। नालियाँ प्रायः इंद्रों से दूसी होती थीं, जहाँ पर शिविक जीवी होती थीं तबही इन्हें परवरों द्वारा जाता था और वे नालियों का पानी महाक की नाली में से जाते के पहले पक गए में भरता रहता था। तीन जीवाई भरने पर ही यह पानी महाक की नाली में पड़ता था। इस व्यवस्था का यह नाम था कि पानी बाली उनसे बाहर नहीं बहता था। यही नालियों में जीवी दूर पर इंद्रों के महाके बहवर्णे बने रहते थे, इनमें सीधे उत्तरने के लिए मीडियों होती थीं, तो यामान्य करने से नाली के तलों से दूके रहते थे। ऐसा प्रतीक होता है कि लिंगांगत रूप से इनका समाई होती थी, क्योंकि इनके पास रेत के ऊपर पाए गए हैं। जहाँ एक नाली लंबाई ने दूसरी नाली में मिलती थी वहाँ इंद्र का छोटा गड़ा पानी वो बाहर नहीं से रोकते के लिए बनाया जाता था और इसके लिए यज्ञराकार इंद्र उमाई जाती थी। ऐसा प्रतीक होता है कि यही इमारतें बनाने के प्रोत्स्था प्रणाली-तिमांग की ओर अधिक ध्यान दिया जाता था। इउ दृष्टि से जोहे प्राचीन सूभ्यता इनका मुकाबला नहीं कर सकती।

इस प्रकार की प्रणाली-आवश्यक लकड़ी जीवनामुर्बंक तमर-निमांत इस वाल को सूचित करते हैं कि वहाँ का नगर-प्रयाग बहुत मुख्यविधित थी उद्घाटन था। कुछ बास बातें भी इसका प्रोत्स्थ करती हैं। जोहेजोही में एक नुसरे के ऊपर सात सात धारे गए हैं। इनकी निचली वहाँ में कहीं भी मकान बाजी ने सहक का जावेजलिक हिस्सा नहीं बनाया, लंबियों के बाम्बे वह सूचित करते हैं कि वहाँ राम और प्रोटर से सहजों पर दोशनी की आवश्यक थी। सर्वांति वर्णितम काल में नगर-प्रयाग में कुछ चिपितता या गई थी, किन्तु कहीं धरियों तक वह पूर्ण शमता से कार्य करता रहा। वहाँ वह भाना जाता था कि वह व्रजात्मकीय अवसर याकिमु यथ द्वारे मुहूर संज्ञन का परिणाम समझा जाता है।

चौं—यही लक चिन्ह धारों की नृसाई में जोहे मन्दिर या पूर्वाम्बायन मही मिला, अतः इस सूभ्यता के धार्मिक लीकन का एक-मात्र लेत वहाँ याइ गई मिट्टी और यत्पर की मूर्तियों का मुहर है। इनसे वह जाग होता है कि यही मातृदेवी की, गद्यानि शिव तथा उसके लिए की पूजा और पीपल, नीम वादि पेहों एवं सामादि लीक-जन्मदेवों की उपासना प्रचलित थी।

पात्सुकेवी—जोहेजोही लकड़ा हड्डिया में जहाँ हड्डे शार्देमन्न-माठी की बहुत मृद्गम्ब-मूर्तियों मिलते हैं। इनके भरोर पर छोटा-सा लहरा है, जिसे लॉट-प्रदेश पर मेलला से बोधा गया है, गले में हार पकड़ा हुआ है तथा भरतक पर लेने के याकार की लिखित शिरोनूपा है। इसके होतों ओर प्यास जीसा गदाएँ हैं जिसमें लगे पुरे के निकाल में यह जात होता है कि इनमें भक्तों द्वारा देवी को प्रसन्न करने के लिए तेक

या शूष्ट बलाया जाता था। इन प्रकार की मूर्तियों देखिया में भी मिलते हैं। ये उस समय की मातृदेवी की उपासना की आपकला सुचित करती है, जाह मी भारत की सापारण जनता में देवी की उपासना बहुत प्रचलित है। इन मूर्तियों बहुत अधिक सलाम में पाये जाने में यह कल्पना की मई है कि वर्तमान कुल-देवताओं की भाँति प्रतीक घर में इनकी प्रतिष्ठा और पूजा की जाती थी।

पशुपति — पशुपति देवताओं में पशुपति प्रथाम प्रतीत होता है। एक मुहर में तीन मुहर वाला एक जल व्यक्ति पर पश्चात्यन नगाहर बैठा है। इसके चारों ओर हाथों, लपा बैल है, जोकी के नीचे हिरण है, इसके चिर पर जोग और विचित्र तिरोभूपा है। इसने हाथों में चट्टियाँ धोए गले में हार पहन रखा है। यह मूर्ति विष के पशुपति का को नमनी जाती है। पश्चात्यन में आत्मावस्थित मूर्ति में इसकी नामांग दृष्टि विज्ञ के बोगीवर-मा महामोरो रूप को मूर्चित करती है। तीन अन्य मुहरे पशुपति के इन रूप पर प्रकाश जाती है। इनके विज्ञामों ने मोहेजोदहो को घति प्रसिद्ध यात्रामार्गो मूर्ति का भी धोग में नमन्त्रण जोड़ा है। यह तथा वेतन के आकार के घनेक पत्थरों से यह जात होता है कि उस समय विष को मूर्ति-पूजा के अतिरिक्त लिङ्ग-पूजा भी प्रचलित थी।

मुहरों गर उल्कीरुं विभिन्न प्रकार के पैदों को तथा पशुओं की प्राहृति में यह जात होता है कि उस समय पीपल और लोम को पूजा जाता था। पशुओं में हाथी, बैल, बाघ, भेड़, गोड़ और प्रदिव्यात के चित्र अधिक मिलते हैं। आपकल इसमें से अनेक पशु देवताओं के बाहुल रूप में युक्तिरहे हैं। यह कहना कठिन है कि उस समय इनकी वाहनों के रूप में प्रतिष्ठा थी या स्वतन्त्र रूप में। सांपों को पूजा यिताने तथा पूजा करने का विचार भी इस समय में था। और पशुओं की पूजा करने का विचार भी समवतः प्रचलित था। दो बायों के साथ लड़ते हुए एक पुरुष की मूर्ति के प्रथम और वित्तगमेश के साथ तुलना की मई है। सूर्य पूजा तथा स्वस्तिका के भी कुल चिह्न यहाँ नापे गए हैं।

उपर्युक्त उपासन देवताओं के अतिरिक्त इनकी पूजा-विधि के सम्बन्ध में भी कुछ बनोरन्जक कल्पनाएँ की गई हैं। भिट्ठी के एक तावीज पर एक व्यक्ति को दोम बीट्टा हृष्ट तथा दूसरे व्यक्ति को नाम्भा हुआ दिखाया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान काल की भाँति उस समय संगीत और नृत्य पूजा के भग्न में। मोहेजोदहो की मत्तें की प्रसिद्ध कौत्सुक-मूर्ति सभावतः उस समय देवता के सम्मुख नाचने वाली किसी देवदामी की प्रतिमा है।

सात-पात—मोहेजोदहो से गेहूँ और जी के दुड़ नमूने मिलते हैं। दुड़णा में मट्टर और तिल भी पाए गए हैं। इनके साथ ही बाहुर भी उस समय का नियम लाल्या था। पत्न के अतिरिक्त बैल, भेड़, मूँझ, प्रदिव्यात तथा कहुए का साथ और

महतियों भी उनके भोजन का प्रयोग प्रतीत होती है, क्योंकि इन जातियों को हात्या और गतियों में प्रचुरता से मिली है।

जाना जाने के लिए संभवतः नीचे प्राचन पर बैठा जाता था, किन्तु विदेश सभसदों पर उनीं सोग कुर्सी-नेव का उपयोग करते थे। जाने-योगे के बरतन, मिट्टी के लकड़ी के ढोने के कारण नष्ट हो जाते हैं। शैल (Shell) का बना एक चम्मच अवश्य मिला है। उन्हें जाता प्रकार के स्वादु अवश्य और भोजन जाने का धोका था, क्योंकि सभासे जिसने के बहुत-बहुत सही पाणी गए हैं। छोटे-छोटे बैलन और जोटी बनाने के घनेक भावि जाना इकार के स्वादिष्ट भोजनों की सत्ता सूचित करते हैं। अति मात्रा में इनके रेखन से जो पानी-विकार और दुष्प्रियता होते होंगे उनको सामान्य चिकित्सा तो अनुमती दूढ़ और सुहिणियाँ स्वयमेव कर सेती होंगी, किन्तु जिनेप रोटी में कुरकुर और जिलाजीत का प्रयोग होता था। ये दोनों क्रमसे कापनोर और हिमालय से मिलते जाते हैं। आवकत भी प्रानुरोद में जिलाजीत अपने विकर तथा जिली की बीमारियों में दिया जाता है।

ग्रामोद-प्रसोद—गिरधु-पाटी के बालक जिलों के बड़े शोकीन हैं। गुदाई में वह बहुत बड़ी संख्या में प्राप्त होते हैं और मिट्टी, शैल (Shell) तथा हाथी-दौत के बड़े हुए हैं। बच्चों का सबसे प्रिय जिलोना मिट्टी की बैलगाड़ी भी। मिट्टी के भून-भूने पौर पक्की (संभवतः बुन्दुन) भी मिलते हैं। अगम जिलों में बौंस पर चढ़ने वाला जानवर, रसी से जिर हिताने वाला बैल, रसी पर लार नीचे लड़ने वाली आहतियाँ तथा गड़ी के गालार की सोटियाँ उल्लेखनीय हैं। गुरुओं के प्रधान ग्रामोद-प्रसोद नांसे से बैल जाने वाले जुधा ग्राफि बैल, संगीत, जिकार और पक्की लड़ाना था। पाये अमालार तथा जांडे दोनों प्रकार के मिलते हैं। चपटे पाये हाथी दौत के बड़े हुए हैं। इनके सब पायों पर विभिन्न रसायन अकिल है। यह निर्दिष्ट कप से पता नहीं जाता कि पासे किनका अपने पाप में भी कोई लेता था। यह सम्भव है कि इसमें शोपक-जैने धन्य लेन सेसे जाते हैं, क्योंकि एक ईंट पर जिसात के नियान पाये जाते हैं। इसमें १२ घर बने हुए हैं, ऐसा समझा जाता है कि किसी बड़े घर के नीकरों में समय काटने के लिये यह के कर्त्ता पर ही जिसात के नियान बना दिये थे और यह ईंट जैसी का एक भूमि है। एक बल्ब ईंट पर कफडियों या दानों से खेले जाने वाले खेल के नियान बने हुए हैं। मूँग के साथ ढोन का पहले उल्लेख ही जुका है। डफ और बल्बताल भी उस समय जैगीत के प्रधान वाद प्रतीत होते हैं। मासाहारी होने से इन लोगों में भगवा का अवगत होना स्वाभाविक था। मूँग मुहरों पर लीर-कमान से जमतों बढ़ाती और हिरण के जिकार का दृश्य दिखाया गया है। बड़ी संख्या में पाये गए माइली के कटि जाहीरीयी का व्यक्ति सूचित करते हैं। सम्भवतः तीतर लड़ते को भी उहू धोका था।

पत्र धोर वेश-भूषा—दिल्ली में कापास की बेती संभवतः सबसे पहले भारत में हुई। गूर्जी वहओं का व्यापक प्रयोग मोहौजोदड़ों की विवेषता है, पिल और नेसोपीटामिया में इनका व्यवहार नहीं था। चाल में पर्फूम हजार वर्ष पहले हड्डपा के घास-पास पंजाब में घारकल बोई जाने वाली कापास की बेती होती थी। लगभग इनकी खुनाई के उपचरण लकड़ी के बने होने से नहीं मिले, किन्तु कालां के लिए अपवहार में धाने वाली चकितियाँ (Spindle whorls) प्रधार मात्रा में मिली हैं। इनके लिंगों में लकड़ी या जानु की सीक डालकर इन पर गूत करता और लपेटा जाता है। ये चकितियाँ पकाई मिट्टी, लकड़ी और कफान्सा की बनी हुई हैं, ऐसा बान पड़ता है कि पहली तकनिया निर्देशों की होमी धोर वाली यनियों की। धमीर-नरीद सभी घरों में चिक्की गूत की कठाई में व्यस्त रहती होती। मोहौजोदड़ों की अविकाश मूर्तियाँ कोपीन या छोटा लहंगा धारण किए हैं। खुलाये की वेश-भूषा एवं घास-भूषा में योगी की धात्त-धारास्थी मूर्ति से सुनहर प्रकाश पड़ता है। उस समय कठाई किने हुए शाल को छोड़ने का रिवाज या धोर इसे दाढ़ मुक्का के भीते से बांधे करने के लिए राक बाला जाता था। एक अन्य मूर्ति में यह शाल पुटन तक दिखाया गया है। हड्डपा के एक ठीकरे पर बिरचित पहने असला जूब कमाकर खींची पहने एक अविकाशित है। स्थिरों की प्रसिकांश मूर्तियों में कमर तक कोई वस्त्र नहीं दिखाया गया। कटि-प्रदेश में करघनी से बैंधा पुटनों तक एक छोटा लहंगा होता था। कुछ मूर्तियों में पुरी आस्तीन का घंगरला है, परन्तु इनमें वेश-शल अनावृत है। कुछ वस्त्र सिंह होते थे, परन्तु विज्ञा मिले वस्त्रों का रिवाज अधिक था।

केश-विन्यास—पुरुष नम्बे धाल रखते थे, माँग बीच में निकाली जाती थी। वालों को एक फीते से बौधकर रखा जाता था अथवा बालों का जूब बनाया जाता था। गुरुम छोटी या छेदवाई हुई बाढ़ी रखते थे। दिवानी प्राप्ति ये थीं बांधती थीं और यह ये थीं रिवाज या जैवा कि नर्तकी की मूर्ति से स्पष्ट होता है।

वहओं के बम होने पर भी मोहौजोदड़ों में धनो-निर्देश, धनो-गुण उभी को घाश्याओं का बहा सीक या धोर झुंगार में बड़ी अविकाश थी। स्थिरों की लिरो-भूषा गम्भीर के धाकार की थी और ये सिर पर बोने, चादी, तांबे, खोने के लकड़-धाकार के लेपर पहनती थीं। मांडे पर एक चोटी-बन्ध या फीता होता था। कानों की बालियाँ और नर्तकों का बाली रिवाज था। जूडाई में बछड़हारों के कई मुन्दर नमूने मिलते हैं। ये लालचर्द, स्फीक, मोमेद, संगमुदेसामी, फिरोड़ा, गलव, लार्विनिक इत्यादि की मणियों की गुरियों की लड़ियों के बने होते हैं। मोहौजोदड़ों में लुकियाँ और कंगन बहुत प्रधिक प्रसन्न किये जाने वाले राम्युपल में। त केवल नर्तकियों की किन्तु देवताओं की भाँड़ भी लुकियों से बड़ी होती थी। स्थिरों की दो सणि-जटिय करणनियों भी मिली हैं। पुरुष हार, घंगर और धगुठियों पहनते हैं और बाल घैंसने के लिए चोने-चादी के पत्तें तारों का व्यवहार करते हैं।

सिवयों की अद्भुत-प्रियता खुदाई में पाये गए लिंगाश्वानों से सूचित होती है। वे हाथी-दात, आतु और मिट्ठी के बने हुए हैं। परमकोली मिट्ठी के प्रसंक छोटे-छोटे सिंगारश्वानों, इन तथा विविध-प्रकार की छोटी दिव्यियों में जगे सिन्दुर, भजावर, कालन आदि के अंदों से पह जात होता है कि पौल हजार वर्ष पूर्व उत्तर-पश्चिमी भारत की तसवियों अपनी रूप-सत्त्वा व्यापुलिक हित्यों की भाँति लिया करती थी, यथापि उत्तर-गंगाय-वर्तमानवाल के शीर्षे के दर्पण नहीं थे और उन्हें गृह विश कर चमकाये हुए कमि के आँखों से सत्तोष करना पड़ता था। श्री-पूरुष दोनों भालों की सफाई के लिए कसि के छोटे उत्तरों का प्रयोग करते थे, कसोकि ये खुदाई में बहुत घण्टिक गहरा में पाये गए हैं।

कला-कौशल—सिन्धु-भाष्यता की प्रधान कलाएँ मिट्ठी के बर्तन, प्रस्तर-पूर्णिया मुहरें तथा बेवर बनाना है। मिट्ठी के बर्तन जाक पर बनाये जाते थे और उन्हें शावे के बताय भरती पर काँचों के ऊपर इधर डालकर पकाया जाता था। पकाने से पहले हारभुज (हिरण भी थारी) से याने वाले मेल के इन पर एक जात खज्जो ढेकर उस पर काले येष्ट से जाना प्रकार की आकृतियों लगाई जाती थी। परस्त नाटने वाले युतों के तिकाइ (तरह या भाँचा) इस भाष्यता की विशेषता है, जो अभ्यव कही नहीं मिलते। इसके अतिरिक्त तिकृज आदि प्रसंक ज्ञानियक स्पष्ट भी मिलते हैं। पेड़ों तथा पशु-नियिनों के रूप को भी चिकित लिया जाता था। मोहेंजोदहो के अधिकार बर्तन बिनकूल तादे हैं। जो चिकित है, वे प्रायः एक ही रंग के हैं। प्रसंक रंगों से चिवचिव के बहुत कम उदाहरण मिलते हैं। बहुतरीव मृत्याज मोहेंजोदहो से ८० मील दक्षिण अमरी तथा १३० मील उत्तर-पश्चिम में याये गए ही प्रोट वे हड्डिया-ममाता के गुराने चिह्न समझे जाते हैं। मिट्ठी के बर्तनों पर चमकाता लेप (Glaze) लगाने की भी विवाह था, विलोर को फीस कर तका तस्मै ऐप्रेक इन्व जोड़कर मिट्ठी के बहुत गुदर विकने वाले भी बनाये जाते थे।

कला की दृष्टि से हृष्णों की दो प्रस्तर-पूर्णिया विशेष स्पष्ट से उल्लेखनोम है। इन्होंने प्रारम्भिक भारतीय कला-भाष्यताई चिकारी में जागित तापन्न की है। भार्षीर की इनके नियालेन पर हुए गमय तक यह सम्बेह लगा रहा कि ये प्रायेतिहासिक नहीं हो सकती। इनमें एक तो जात पत्तवह का यह है और इससे डाई टॉप डठाये एक नर्तक की प्रति है, जो समवतः नटराज चित्र है। दोनों मूर्तियों की सरलता, सर्वीयता और अधार्यता दूसानी-कला के व्याविभाव से पहले अन्यत नहीं मिलती।

मुहरों पर चिन्ह-कला लगाने गर्वेत्कृष्ट रूप में प्रकट हुई है। ये प्रायः सेलवडी के पत्तवह की बनी हैं। इन पर अकिल धैर, बाध, भैन आदि जानवरों के चित्र बड़े सबोत और असामें हैं। इन पर हुए लिपिनियल भी बने हुए हैं, किन्तु ये अभी तक पह नहीं जा सके। भीट तथा द्राघ में पाया जाने वाला स्वास्तिक चिह्न भी इन पर बना हुआ है। इससे यह अनुमान होता है कि ये मुहरे धारिक भृत्य रखती हैं। यह

कल्पना भी भी गई है कि इन्हें मोहेन्जोदहो-सम्बता की प्रगति भारत करते थे। नाम सकार की मणियों तथा सोने-चाँदों से बताये जाने वाले आधिकारों की वर्चा पहले की जा चुकी है। कर्यर और हाथी-दौत की कारोगरी भी उस समय कामी दृष्ट थी।

उद्योग-सम्बन्ध तथा व्यापार—सिन्धु-सम्बता का बड़ा उद्योग कृषि था। हड्डियों के विशाल ग्रन्थागार से स्पष्ट है कि पौध जूनार वर्षे पूर्व भी बड़ा गेहू के उत्पादन का बहुत बड़ा केन्द्र था। इस ग्रन्थागार के साथ ही आठा प्राचीन सामग्री की जल्लमुमा लकड़ियाँ और निवासन-एह मिलते हैं। इनमा में संखित उद्योग का पहला प्राचीनतम उदाहरण है। कलाई-बुनाई भी वहाँ का एक लोकप्रिय उद्योग था, किन्तु यहाँ का सबसे बड़ा अन्यथा व्यापार था। यही इसकी समुद्दिश का प्रधान कारण था। मोहेन्जोदहो में पाई गई वस्तुओं में पहले ही भारत के विभिन्न प्राचीन सूधा विदेशी में योनक प्रधान की वस्तुएँ मिलते थे। यकानों को छाते से हिमालय के ऊंचे तालों पर उगने वाले देवदारों के टेहों की लकड़ियाँ पड़ती थीं। इवाइयों के लिये कालमीर से कुरंग झुङ्ग तथा हिमालय के प्रदेशों से चिनाईत मैंवाया जाता था, वहाँ का तोया, ऐक तथा जामनी स्टैटिक लिहार से आता था, जेलाइट का खोत बर्मी और लीन कहे जाते हैं। अलबर और जप्पुर का ताला, अजमेर का भीमा, राजधानी की सेतुबांध घीट हरसोठ मोहेन्जोदहो में काफी बस्ता जाता था। सोना और चालमाइट मैंसूर तथा दक्षिण भारत के साथ व्यापारिक सम्बन्ध का गुरुक है। मोहेन्जोदहो में चाल जम्मात, पाक तथा मनार की लाडियों से लावे जाते थे। अतः मोहेन्जोदहो के व्यापारी उत्तर में हिमालय और दक्षिण में रामेश्वरम् तक स्वयं पहुँचते थे अथवा अन्य मध्यवर्ती व्यापारियों से इन प्रदेशों का आमान मिलते थे।

दैत्याधिकारी और उसे उस समय व्यापारिक माल की बुलाई के प्रधान साधन थे, इनके भी कुछ चिह्न मिले हैं। लोकाधी का प्रयोग होता था। मोहेन्जोदहो का विदेशी व्यापार प्रधान कप से यकानामिस्तान, ईरान और मध्य एशिया के साथ होता था। व्यापार-की उत्तरि बहुत अधिक संख्या में गोदे मणि बाटों तथा बदलारों से लिलित होती है। इसनी अर्थात् संख्या में बाट अब तक किसी दूसरे स्थान से नहीं मिलते। इन बाटों में एक निश्चित ग्रनुपात है। जे चर्ट (Chart) नामक संस्कृत लल्लर से कही सोल्पानी ते बनाये गए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये राम्याधिकारियों के कड़े निरीक्षण में बनते थे।

सिन्धु-सम्बता का काल—मोहेन्जोदहो से पाई गई वस्तुओं का मेलोपोटामिया (ईरान) के प्राचीन उत्तर भारि शहरों के उत्तरनन्द से निकले सुमेरी-सम्बता के पदार्थों के साथ महत्त्व सापृच्छ पाया गया है। कुछ भारतीय युहरे भी वहाँ पाई गई हैं। अतः मोहेन्जोदहो की सम्बता का काल-निर्धारण सुमेरी-सम्बता के आधार पर किया गया है। वहसे इस सम्बता की सबसे उपरली वस्ती का काल २३५० ई० ई० समय

जाता था। मोहेजोदरो में प्रस्तुतियों के सत्र स्तर मिलते हैं। द्राघी शादि ने ऐसे प्रत्येक स्तर को १०० वर्षों का समय दिया जाता है। मोहेजोदरो में बाड़ शादि के कारण भई वस्तियों वस्तों बसते रही हैं। अतः वहाँ के सात स्तरों के विकासित होने का समय ५०० वर्ष ही भाला भया है, अतः पहले इरोड़े सात स्तरों का काल २२५०—२१५० ई० पू० भाला जाता था, किन्तु बाद में नेतोंगोटामिया के लिखितक्रम में परिवर्तन होने गया सुमेर, एज्म व चिल के विकास मृत्युओं की समानता के बाबार पर इस सम्पत्ति का व्याविकाल लभभग २५०० ई० पू० समझा जाय। इस सम्बन्ध में मोहेजोदरो की कुछ विवेचनाएँ समर्पित हैं। यहाँ की सबसे निचली तह के बाद पानी निकल जाने से इस सम्पत्ति की धाराभिक दशा का कुछ परिवर्तन नहीं मिलता। सातों तहों के बाहरी में इतना अधिक साम्य है कि ऐसा प्रतीत होता है कि विरकाल तक दक्षिणी भ्रमरीका की सम्पत्ति की भाँति यह भी एक ही अवस्था में सर्वथा अपरिवर्तित रही रही। यह सम्पत्ति इसमें उन्नत रहा में है कि इसके विकासित होने में काफ़ी समय लगा होगा। सौभाग्यपूर्ण कुछ धन्य रूपों से मोहेजोदरो से पहली और पिछली सम्पत्तियों का पता लगा है। अमरी (सिन्ध) की युद्धानी सम्पत्ति १००० हजार ई० पू० की है। इसके बाद मोहेजोदरो तथा हड्डपार की सम्पत्तियों का विकास हुआ और इनके बाद भूकर और नंगर सम्पत्तियों की आवृत्ति।

सिंधु-सम्पत्ति के निर्माण—मोहेजोदरो तथा हड्डपार में सूत भानेपाम, भूमध्यसागरीय, भालाइनी और भगोल नामक जार नस्लों के प्रस्तु-पञ्चवर पर्यंग मए हैं, किन्तु इसमें प्राचानता भूमध्यसागरीय नस्ल भी है। यह स्पष्ट है कि इस सम्पत्ति में काफ़ी प्रत्येकियन था। महान् आपानारिक केन्द्र होने से इन बहरों में विभिन्न देशों और जातियों के ज्यातारी भरति रहे। इस सम्पत्ति के निर्माणार्थों के द्रविड़, धार्मिक, सुभैरियन, परिण, प्रसुर, डार्क, पात, नाय अवधार थार्ये होने की अनेक कल्पनाएँ की गई हैं। इन समय इन्हे द्रविड़ मानने वालों का बहुमत है, किन्तु इसमें कई दोष हैं। यानी की प्रत्येकिन्द्र-जड़ति में बहुत बड़ा अनार है। यह भी बहु भाक्तवंशी की बात है कि द्रविड़ों की सम्पत्ति हीते हुए भी वर्तमान द्रविड़-वर्षान दक्षिणी भारत में इसके कोई अवशेष नहीं मिले, अतः इस सम्पत्ति के द्रविड़ों द्वारा निर्माण होने से पर्याप्त सम्भव है। इस विषय में निर्दिष्ट कथा से कुछ नहीं कहा जा सकता।

सिंधु-सम्पत्ति एक उल्का तारे की तरह प्रतीत होता है जो सहस्रों वर्षों से प्रकाश होकर कुछ समय के लिए गूब चमकता है। इसका उदगम ग्रानिशिवत है और धन्य के सम्बन्ध में भी यही कल्पना है कि बाड़ और भाक्तवंश इसके भाक्तिक्रम सम्बन्ध के प्रधान कारण रहे। यह निर्दिष्ट नहीं कि ये भाक्तवंशकारी थार्ये ये या धन्य कोई जाति। वैदिक धार्यों से इनका कथा सम्बन्ध नहीं यह भी बहु जटिल प्रश्न है। मोहेजोदरो को लिखि पढ़े जाने के बाद ही इन सम्पत्तियों का समाप्ति होगा।

अभी तक मोहेजोदहो की सम्पत्ति के काल १५०० ई० पू० से छठी शती ई० पू० सक के काल को भारतीय पुरातत्व का अन्य युग कहा जाता था। वर्षोंकि इस काल पर अन्धकार का बढ़ो पड़ा हुआ था। पिछले १२ वर्षों में भारत के पुरातत्त्व विभाग ने ऐसे स्थानों की खुदाई विदेश-क्षेत्र से कराई है, जो इन अन्य-युग पर प्रकाश डाल सकें। ऐसी खुदाई हस्तिनाकुर (विनो नेठू), परिकमेत् (परिकमेरो के निकट), चित्ताननगढ़ (उडीना), कुमारखाट (प्राचीन पांडिपूर), कौशाम्बी (विनो उत्ताहावाद के निकट कौशम्बी), तामलुक (विनो मिदनाकुर), राजगिर (विहार), चोड़ (विनो अन्धाना), नेवारा (अहमदनगर), मोहब्बर, उज्ज्वल, बातिहैडर (जो काहुलम्-आनप्रस्त्रेश), रंगुर (विनो खालावाड) तथा लोधन (विनो अहमदवाद) में हुई है। उनमें अन्तिम स्थान की खुदाई मोहेजोदहो सम्पत्ति की दृष्टि से अत्यधिक महत्व रखती है। यह यही उक्ता संक्षिप्त परिचय दिया जाना आवश्यक प्रतीत होता है।

लोधन की खुदाई—यह स्थान युवराज राज्य के अहमदवाद क्षेत्र में सम्भाल की जाई के निकट है, दो मील के घेरे में फैला हुआ है तथा समीक्षकर्त्ता मैदान से १८ फुट ऊंचा उठा हुआ दीखता है। पिछले कई वर्षों से यहाँ युवराजीय खुदाई हो रही है। भारत-विभाजन के पश्चात् सिन्धु-सम्पत्ति के प्रधान स्थान मोहेजोदहो तथा हुक्का पांडिस्तान में बदल गये। इस पर भारतीय पुरातत्त्वकर्त्तों ने इस सम्पत्ति के अन्य ऐसे स्थानों की लोक आरम्भ की, जो सिन्धु-सम्पत्ति के उद्यम-विकास थीर हास की समस्याओं पर प्रकाश डाल सकें। १६५४ से १६५६ तक पुरातत्त्वीय सम्बोधन द्वारा कच्छ तथा गुजरात में ऐसे भाठ स्थानों का पता लगा। इनमें सबसे पहले पुरातत्त्वीय स्थान लोधन है। यहाँ से लेकर तक १३००० पुरातत्त्वीय सम्बूद्ध तथा धूखेप मिल जुके हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में मोहेजोदहो के सामुद्रिक अवासाधियों को लोधन में कई बारणों से आकृष्ट किया। यह एक नदी के मुहाने पर बड़ा सुरक्षित बन्दरगाह है, यहाँ से नदी के मार्ग द्वारा प्रभुर मात्रा में कपास तथा गेहूँ उत्पान करने वाले युवराज के वास्थाप्यामल मैदान में सुम्पत्ति से बहुत जा रहकता है। उत्पान में यह प्रतीत होता है कि इस बन्दरगाह को बनाने वालों में तथा इसे संषट करने वाली नदी की बाड़ में विरलतर संरचना बनता रहा। कम में कम चार बार भीतर बाड़ के इस नगर को विवरण किया था। दीसरी बार की बाड़ से नगरवासी गम्भीर तपता को भारी जति उठाकर यहाँ से हटना पड़ा। बाड़ से नगर की रक्खा के लिये बनाये गये कई बड़े बहुतरे (Platform) खुदाई ये मिले हैं। यहाँ २८ फुट की महाराई तक पीछे बार इसके बनाने के प्रसार मिले हैं। किन्तु संस्कृति की दृष्टि से इन पीछे लोतियों को दो भागों में बांटा जाता है—पहली अवस्था लोधन ए (Lothal A) बहताती है, यह २५६० ई० पू० से १५०० ई० पू० तक रहने वाली बासिनिक एवं परिषेष हड्डियां संस्कृति बासी देश हैं। दूसरी लोधन बी (Lothal B) १५०० ई० पू०

में १००० डॉ पूर्व तक रही है, यह हड्डियां संस्कृति की हुआसकालीन रखा है। ग्रन्थि
सोसायल हड्डियां ये १००० मील की दूरी पर बसा हुआ है, किन्तु यहाँ की पहली
प्रवर्त्ता हड्डियां की संस्कृति से गहरी समानता रखती है।

अपने समृद्धिकाल में जोखन मोहिंजोदहो तथा हड्डिया की भौति मूलियोजित
(Well Planned) नमर था, पूर्व मोखना के अनुचार उँचामताकार तालों में
बसाया था या इतिहारी भाग के तीन मण्ड प्राचिक छान्डाई पर बसे हुए थे। बस्ती के
उत्तरपूर्व में लक्षितात्त्व तथा पूर्व में किंवितयों और जहाजों के ठहरने का स्थान—
पश्चिम या बन्दरगाह (Dockyard) था। चार सड़कों प्रौढ़ होठे पर लुदाई द्वारा
प्रकाश में था लूके हैं। एक भूषक के उत्तर में मीठी परिसर में बने हुए १२ मकान
मिलते हैं, इन सब में स्नानागार हैं और इनका सम्बन्ध एक सार्वजनिक नाली
(Public Drain) के साथ है। यहाँ की प्रणाली अवध्या (Drainage System)
हड्डिया मोहिंजोदहो के लहरों जैसी है। नालियाँ लूनी और हकी कुही दोनों प्रकार
की हैं। नालियों को साक करने तथा गृहानकारी बालने के लिए दूरियाँ तथा जोखना
गहे (Soulk-pits) बने हुए हैं। यहाँ की फर्शबन्धी हॉटेंसे से की गई है। इससे यह प्रतीत होता है कि
इस हिस्से में सामाजिक दृष्टि से महान्यातुर समझ जाने वाले अवित रहते थे। 'निवासी
वस्ती' के केन्द्र में बाजार है। बाजार में दोनों ओर दुकानें हैं। इनमें मिले घबरेयों
के कारब एक ठंडे तथा चूड़ी वाले की दुकानें पहचानी गई हैं। एक आपारी के पर
से सेमलाई (Steatite) की मुद्रे, तांबे की चूड़ी, भी स्वर्णामुण्ड (Gold
pendants) तथा हड्डिया संस्कृति के समान विनियन प्रकार के मूलपात्र मिलते हैं।
निवासी बस्ती के परिवर्ती लण्ठ में गुरियों (Beads) बनाने का कारबाना
मिलता है।

नगर के पूर्व में जहाजों तथा किंवितयों के ठहरने के लिए एक विशाल
नौपरान (Dockyard) बना हुआ है। हड्डिया संस्कृति बासों द्वारा ईंटों द्वारा बनाई
हुई यह सबसे बड़ी रुखना (३२० फीट × १२० फीट) है। सोखल के निकाट योग्य
का बन्दरगाह है, यहाँ प्राच तक अवार के समय किंवितयों को ठहराने के लिए कल्पी
रिही के बीच से बना हुआ नौपरान है। निन्तु सोखल का नौपरान अधिक अच्छा था,
इनमें बीच बनाने के लिए भट्टे में पकाई हुई ईंटों का प्रयोग किया गया था। समुद्र
के पास स्थित के भीतर बासे बासा ३२ फीट लौहा बलमार्ग खोला गया था। पूर्व
की ओर बगाए गये बीच में इतना ही लौहा रास्ता लगा गया और ज्वार के समय
समुद्र में गासों बड़ने पर इस गास से नीकाये इस पत्तन में भा जाती थी। बाटे के
समय में भी वस्तन में गासी बनाये रखने के लिए एक छोटी दीवार बनाई गई थी। इतिहारी दिला में बने बीच में प्राचरणकाला से अधिक पानी को निकासन के लिए एक
प्रणाली (Spill channel) बनी हुई थी। इस पर भी हुए लकड़ी के दरवाजों से
पानी के स्तर को भी नियन्त्रित किया जाता था। परिवर्ती बीच के गास ८०० कुट

नव्या जेटलर्समें किंवितों और जहाँवों का भाल इतारने तथा बढ़ाने के लिये बना हुआ था। वही राहर के कुछ लगत उक्त मस्तुक वाली तोका की एक मृण्युति भी मिली है। इसके प्रतिरिक्ष बन्दरगाह के सामने कच्ची ईटों से बने १२ फीट ऊंचे, ३३५ फीट ओरे तथा १४५ फीट लम्बे जेटलर्समें पर कच्ची ईटों से बने १२ फीट लगाकार लड (Solid cubical Blocks) मिले हैं। वहाँ से गिर्या सम्बता के लेखावाली ०१, मुहरें और गश्त मूरियों मिली हैं। इन से यह कल्पना की गयी है कि यहाँ मिट्टी की बनी हुई छोटी मूरियों तथा बस्तुओं को पकाया जाता था।

इस स्थान की लूटाई से हालात संस्कृति के यांत्रिक विश्वासों पर भी सुन्दर प्रकाश पड़ा है। वही लूटाई परों में कच्ची ईटों के घासताकार या भौतिकार देखे भिसे हैं, इनमें राख, ढंगतियों के निशानों से अंकित गोलियों, पकाई भिट्ठों के लियोंने दृढ़ते पाते रहे हैं। सम्भवतः में हवन कुण्ड पर और वहाँ के चिकासी आन्दियां, घनिहोष भादि करते थे। दो परों में कर्मकाण्ड में प्रबुक्त होने वाले चिकित थड़े भी मिले हैं। एक देर में दैत जी तूरानों जली हुई हड्डी, राख, मिट्टी के टीकारे, स्वार्गानिकरण यादे यादे हैं। इन बस्तुओं से यह परिणाम मिकाला मजबा है कि सामद यहाँ पशुमेष की वरिपट्टी वर्तित ही। तीन बाईं में दो बरीतों के घबरोष पाए यादे हैं। यदि जावी वैज्ञानिक भूत्यन्वान से यह सिद्ध हो जाता है कि जे नर-नारी के घबरोष हैं, तो यह मानवा पांचा कि हड्डाया संस्कृति में पति की मृत्यु पर वलों के सर्ती होने की पहचानि प्रधानित ही।

परिचयमी भारत के तट पर एक प्रवान बन्दरगाह होते के कारण लोकत का विवेदों के साथ सम्बन्ध था। वहाँ से भिसे हए कुछ भूताव भैसोगालामिया में उर नामक स्थान के अलउद्देश और उसके स्तरों (Levels) में के भिसे मृत्यावीं से कुछ आदम्य रखते हैं, एक मृण्युति की तोकी जाक सुमेलियन मूरियों का स्मरण करती है। १५०० ई० ८० के लगभग नदी की भीषण बाहु से सबरमती नदी की धारों की जल संस्कृति का धनत हो रहा। जोकल में प्राप्त बस्तुओं के मृदम प्रयगन से गिर्या-सम्बता की बठिन समस्याओं पर विषय में नया याताश पड़ोन की आवा है।

वैदिक साहित्य और संस्कृति

वेदों का भूत्त्व—भारतीय संस्कृति का मूल वेद है। वे हमारे सबसे पुराने धर्म-वन्धु हैं औ वह इन्हीं वार्ताएँ का मुख्य आधार हैं। इसीलिए हमारे यहीं जी-कुल वेद-विहित हैं, वह धर्म समझ जाता है और उसके प्रतिकृत स्मृतियों और गुराओं में प्रतिपादन होने पर भी अपर्म है। न केवल धार्मिक किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से भी वेदों का प्राचीनावाला महत्व है। वैदिक युग के आदर्यों की संस्कृति और सम्पत्ति जानने का एक-मात्र साधन नहीं है। विष्णु ने शास्त्रमें इससे प्राचीनतम् योद्धा युस्तक नहीं है। मात्रव जाति और विशेषता आदर्य जाति ने अपने शैशव में अपें और सुमात्र का किस प्राचार विकास किया, इसका जात वेदों से ही मिलता है। आदर्य भाषाओं का मूल स्वरूप निर्धारित करने में वैदिक भाषा बहुत विविध सहायक रिश्ता है।

वैदिक साहित्य—उमारी संस्कृति के प्राचीनतम् स्वरूप पर प्रकाश डालते याता वैदिक साहित्य निम्न भाषाओं में देखा है— (१) संहिता, (२) प्राद्युम्न और आरत्मा, (३) उपनिषद्, (४) वेदान्, (५) सूष्मनासंहित्य।

संहिता—संहिता का अर्थ है संयह। संहिताओं में देखताओं के स्तुतिपरक मतों का संकलन है। संहिताएँ चार हैं— (१) ऋक्, (२) यजु, (३) साम, (४) अथर्व। इन संहिताओं के संकलन का श्रेय महाभारत के रचयिता भगवान् कुलांगोपति वेदव्यास को दिया जाता है। वेदव्यास का यास्य है—वेद का लिंगोकरण करने वाला। वेद का अर्थ है ज्ञान। वेदव्यास ने याते यमव के सम्पूर्ण ज्ञान का यात्युनिक विवर-काण्ड-निर्भासियों की भाँति लिंगोकरण किया। यह स्मरण रखना चाहिए, वह इस ज्ञान का संतान है, लिंगोत्ता नहीं। प्राचीन यस्यरा के अनुसार वेद नित्य और अप्रौढ़त्य है। उनकी कभी यनुष्य ज्ञान उच्छ्वास नहीं तुई। शुद्धिके धारम्य में परमात्मा ने इनका प्रकाश धर्मि, धार्य, धारिय और धर्मिय नामक अधियों को दिया। प्रत्येक वैदिक मन्त्र का देवता और अधिग्रहीता है। मन्त्र में जिसकी स्तुति की जाय वह उम मन् का देवता है औह जिसने मन्त्र के शब्दों का सर्वप्रथम इर्द्दन किया हो वह उसका अधिग्रहीता है। पादवाय विद्वान् अधियों को ही वेदमन्त्रों का रखयिता मानते हैं। वैदिक साहित्य को युति भी कहा जाता है, वर्तोंके गुराने अधियों ने इस साहित्य को अवग-परम्यरा से यात्रा किया था। बाद में इस ज्ञान को स्मरण करके जी नए धर्म सिखे गए, वे स्मृति कहलाएँ। अृति के दीपं-स्थान पर उपर्युक्त चार संहिताएँ हैं।

ऋग्वेद—ऋग्वेद में १०,५०० ग्रन्थ प्रीत १,०२८ गुणत है, ये उस मन्त्रों में विभक्त हैं। गुणों में देवताओं की स्तुतियाँ हैं, वे कहीं भव्य उदासा और कालामयी हैं। इसमें कल्पता की नवीनता, यसेंन की औरता प्रीत विभिन्न कालान गिरावटी है। 'उषा' प्राचे कही देवताओं के वरान्त वह हृदयप्राण है। पारशरात्र विद्वान् ऋग्वेद परीक्षिता की भवसे प्राचीन मानते हैं, उनका विचार है कि इनके व्याख्याते गुणों की रचना वंजाव में हुई। उस समय यार्य एकानिस्तान से गंगा-यमुना तक के प्रदेश में फैले हुए थे। उनके मत ने ऋग्वेद में कुमा (काकुल), गुडात्तु (ताता), लम्ब (कुरम), गोमती (गोमल), सिन्धु, गंगा, यमुना, सरस्वती तथा वंजाव की गोपनीयियों जलद (सतलुज), विषाज (वास्तव), वल्मी (वल्मी), अभिग्नी (चनाव), और वितसा (भेलम) का उल्लेख है। इन मन्त्रों ने सिद्धित प्रदेश भारत में यार्य-भवता का जन्म-स्थान माना जाता है।

यजुर्वेद—इसमें वज्र के मन्त्रों का संघ्रह है, उनका प्रारंभ वज्र के समय सम्भूत नामक पुरोहित किया जाता था। यजुर्वेद में ४० व्याख्याएँ हैं। पारशरात्र विद्वान् इन ऋग्वेद से काली समय वाद का मानते हैं। ऋग्वेद में साथी का वार्य-वेष वज्राव है, इसमें कूर्म-प्राचान। कूर्म भृतज्ञुज यमुना का सञ्चलित भू-नाम (वर्तमान भूमियां विद्वान्) है और वार्यवाल यमा-यमुना का वीराव। यही समय से गंगा-यमुना का प्रदेश यार्य सम्भवता का केन्द्र हो गया। ऋग्वेद का वज्र उत्तमना-व्याख्या था, किन्तु यजुर्वेद का वज्र-व्याख्या न था। यसों का प्राचान्य हीन से वाट्टालों का भृतज्ञ बहने लगा। यजुर्वेद के दो नेत्र हैं—कृष्ण यजु, और तुमल यजु। योनों के स्वरूप म वज्रा भवत्तर है, पहले में केवल भृत्यों का संघ्रह है और दूसरे में वाट्टालों मन्त्रों के साथ सम्भवमक भाग भी है।

सामवेद—इसमें येद मन्त्रों का संघ्रह है। वज्र के अधस्त्र यर विस देवता के लिए होम किया जाता था उसे कुलाने के लिए उद्दिष्ट नवर में उम देवता का स्तुति-मन्त्र माना था। इस साधन को 'साम' कहते हैं। प्रायः ऋजाएँ ही यार्य जाती थीं। भृत लभत्त सामवेद में लगताएँ ही हैं। इसकी संख्या १,५४६ है। इनमें से केवल ३५ ही नई हैं, जाकी तब ऋग्वेद से भी नई हैं। नार्तीय संसीत का मुख सामवेद में उपलब्ध होता है।

अथर्ववेद—इसका यसों से बहुत कम सम्बन्ध है। इसमें वार्य-सम्भवती यामी व्याख्या है। इसका प्रतिवाद विषय विभिन्न वकार की घोषणाएँ, त्वर, शीलिया, सांकेति, विष के प्रभाव को दूर करने के मन्त्र, मूर्य की स्वास्थ्यशालित, रोगोंत्वादक कोटारण्यों तथा विभिन्न शीमारियों को नष्ट करने के उपाय हैं। पारशरात्र विद्वान् इसे वार्य टाने और धन्व-विद्याम का भवावर मानते हैं। वे हास्य-यार्य और वज्रार्य व्याख्यिक विवारों का सम्भवण देते हैं, किन्तु वस्तुतः इसमें यज्ञनीति तथा समाज-वास्तव के प्रतेक ऊर्जे सिद्धान्त हैं। इसमें २० काण्ड, ३४ प्राचाक, ३३ अनुवाक,

५३१ मूलत तथा १,८३६ मरक है। इसमें १,२०० के लगभग मन्त्र अध्येत्र से निए गए हैं।

शास्त्रार्थ—प्राचीन भारत में वेदों को रक्षा मुद्दिष्ट-प्रत्यरुद्धा हारा होती थी। इसका लिखित ग्रंथ निश्चित स्वरूप न होने से वेदों के साक्षर में कुछ भेद भावे लगा पौर इनकी शास्त्रार्थों का विकास हुआ। अध्येत्र जी योन शास्त्रार्थ थे:—शाकाल, वाणकल, यात्रवलायन, शास्त्रायन व माण्डुकेय। इसमें धृषि पहली यात्रा ही उपतप्त्य होती है। युज्ञ यजुर्वेद को यो प्रथान शास्त्रार्थ है—मान्यदिन और काष्ठ। पहली उत्तरी भारत में मिलती है पौर द्वितीय महाराष्ट्र में। इसमें धृषिक भेद नहीं है। कृष्ण यजुर्वेद की शाकाल चार शास्त्रार्थ मिलती है—तेस्तिरीय मैत्रायणी, काढक, कठ तथा कापिष्ठत गहिता। इसमें द्वितीयत्वात्तरी वहस्ती में मिलती है, जल में ही योद्धा धन्तर है, जीधी नहिता याधी ही मिलती है। सामवेद की शास्त्रार्थ थे:—कौमुद और नाण्यापर्नीय। इसमें कीपुर वा केवल सातवी प्रपाठक मिलता है। अध्येत्र की दो शास्त्रार्थ उपलब्ध हैं—रेणुलाल और शैनक।

शास्त्रार्थ धन्य—इतिहासों के बाद शास्त्रार्थ-धन्यों का निर्माण हुआ। इसमें यहों के कर्म-कार्य का विस्तृत वर्णन है, साथ ही वावों की अनुत्तिगाँ तथा प्राचीन राजायों और धृषियों जी कथाएँ तथा सूटिट-सम्बन्धी विचार हैं। प्रथम वेद के धर्मने जात्युग हैं। अध्येत्र के दो शास्त्रार्थ हैं—(१) ऐतरेय और (२) कौशीतकी। ऐतरेय में ४० धन्याय और आठ पर्विकार्य हैं, इसमें अन्तिमोम, मवामयन, द्वादशाह आदि शोपायासों, अग्निहोत्र तथा शूद्रवानिषेक का विस्तृत वर्णन है। कौशीतकी (शास्त्रायन) में ३० धन्याय हैं परन्तु विषय ऐतरेय शास्त्रार्थ लेना ही है। इसमें तत्कालीन इतिहास पर काफी व्यापाय पड़ता है। ऐतरेय में शुभ-शेष की प्रसिद्ध कथा है। कौशीतकी से प्रसीद होता है कि उत्तर भारत में भाषा के सम्बन्ध व्याप्त्यन पर बहुत बहुत दिया जाता था। युज्ञ यजुर्वेद का शास्त्रार्थ अत्यधिक के नाम से प्रसिद्ध है, किंतु इसमें १०० धन्याय हैं। यजुर्वेद के बाद प्राचीन इतिहास की यवत्से धृषिक वालकारी इसी से मिलती है। इसमें यहों के विस्तृत वर्णन के साथ धर्मक प्राचीन आध्यात्मी, अनुष्ठितियों तथा सामाजिक बातों का वर्णन है। इसके समय में कुछ नाचाल धार्म संस्कृति का केन्द्र था, इसमें पुरुषा और उपर्योगी की प्रणय-गाधा, ज्वरन ज्वरि वृष्ण महाप्रस्त्र वा आध्यात्म, सम्मेवन, शकुत्तता और भरत का उल्लेख है। सामवेद के योनें शास्त्रार्थों में से वर्तविय या ताप्त्य ही महत्वपूर्ण है। अध्येत्र का शास्त्रार्थ 'गोपन' के नाम से प्रसिद्ध है।

प्राचीनक—शास्त्रार्थों के भल्ल में कुछ ऐसे सच्चाय भी मिलते हैं जो गावों मा नपरों ने नहीं पढ़े जाते थे। उनका धर्मयन-धर्मायन गावों से दूर धरण्यों (वनों) में होता था। अतः इन्हें प्राचीनक कहते हैं। पृष्ठस्वाक्षर में तत्त्वजिग्मि का निर्देश करते के लिए शास्त्रार्थ-धन्य उपयोगों के और उपर्योग वा बाद बालप्रस्त्र वाध्यन में बनवासी धार्य

मन के रहस्यों और दार्शनिक लक्षणों का विवेचन करने वाले धारणाओं का अध्ययन करते हैं। उपनिषदों का इसी धारणाको से विकास हुआ।

उपनिषद्—उपनिषदों में मामक-लीकन और विश्व के दूसरे प्रकारों की सुलभता का प्रत्यय विषय-इत्याविषय का अतिपात्र है। वैदिक साहित्य में इनका स्पान सबसे प्रत में होते से के 'जेदात्त' भी कहताएं हैं। इनमें जीव और ब्रह्म की एकता के प्रतिपादन द्वारा ऊर्ध्वोन्नी-कंचो वार्णनिक उठान सी गई है। भारतीय जगतियों ने भौतिक-तम चिन्तन से विन धारावासिमक तरखों का लाभालकार किया, उपनिषद् उनका अमूल्य कोष है। इनमें अनेक शब्दों को तत्त्व-चिन्ता का परिणाम है। सुक्षितकोर्पिताद् में जारों विदों से सम्बद्ध १०२ उपनिषद् गिनावे गए हैं, किन्तु ११ उपनिषद् ही धर्मिक प्रसिद्ध हैः—ईम, केन, कठ, प्रसन, मुष्टक, माणकृष्ण, तैतिरीय, ऐतरेय, धान्दोप्य, बृहदारण्यक और इवेतात्पत्तर। इनमें छात्वारोम और बृहदारण्यक धर्मिक धारों और महत्वपूर्ण माने जाते हैं।

सूक्ष्म-नाशित्य—वैदिक साहित्य के विशाल एवं बड़िय होने पर कर्मकाण्ड से सम्बद्ध विद्वानों को एक नवान रूप दिया गया। कर्म-सेवनम् यद्यों में धर्मिक-सेविक धर्म-प्रतिपादन करने वाले शोट-शोट वाक्यों में सब महत्वपूर्ण विधिविधान प्रकट किये जाते जाते। इन तार गमित वाक्यों को सूक्ष्म कहा जाता था। कर्मकाण्ड-सम्बन्धी सूक्ष्म-नाशित्य को जार भागों में बोटा गया—(१) श्रोत सूक्ष्म, (२) गुरु सूक्ष्म, (३) धर्मसूक्ष्म, और (४) गृहसूक्ष्म। पहले में वैदिक यज्ञ-मस्तकी कर्मकाण्ड का वर्णन है, दूसरे में गृहसूक्ष्म के वैदिक सर्वों का, तीसरे में शास्त्रात्मक विवरों का और चौथे में यज्ञ-वैदिकों के निर्माण का। श्रीत का यह है अृति (अृष्ट) से सम्बद्ध गृह-पात्र। यातः श्रीत गृहों में सीन प्रकार की धगियों के धाराम, धनिरोध, ऊंगीरुगाम, ऊंगुरुसील्यादि साधारण यज्ञोऽप्याय वस्त्रियोंम भावि सोमगांगों का वर्णन है। ये भारत की प्राचीन यज्ञ-प्रदत्ति पर बहुत प्रकाश दातते हैं। अृमेव के दो धोति सूक्ष्म हैं—गांकायन और भारत्यायन। सुक्ष्म यजुर्वेद का एक—कात्यायनम्, कृष्ण यजुर्वेद के त्रैसूक्ष्म हैः—धायपस्तम्य, हिरण्यकेशी, बौद्धायन, भारद्वाज, मातव, वैलालस। गामवेद के लक्ष्मायन, द्रष्टव्यायन और धार्मेय नामक तीन सूक्ष्म हैं। धर्मवेद का एक ही वैशाल सूक्ष्म है।

गृह सूक्ष्म—इसमें उन धाराओं तथा वर्ग से भरत गयेन्त विने वाले संसारों का वर्णन है जिनका अनुछान ग्रन्थिक हिन्दू-नृत्यस के लिए धारणाक समझा जाता था। उपनिषद् और विवाह-संस्कार का विस्तार से वर्णन है। इन धारों के धर्मयन से प्राचीन भारतीय समाज के बर्दू धारावान-विवाह का तथा विविध प्रान्तों के रीति-विवाह का परिचय तृणों लान से हो जाता है। जग्नेव के गृह सूक्ष्म धारणाम् और धार्मव्यायन हैं। सुक्ष्म यजुर्वेद का धारस्त्र, हुण्यम् यजुर्वेद के धायपस्तम्य, हिरण्य-

वेदी, बौद्धायन, मानव, शाठल, वैद्यनाथ, सामवेद के गोमित्र तथा खादिर और अथर्ववेद का गोमित्र । इनमें गोमित्र ग्रामोन्नतम है ।

यमं सूक्ष्म— यमं सूक्ष्म में सामाजिक गोत्रों के नियमों का विस्तार से प्रतिपादन है । वर्णविभाग-पर्यं की विवेचना करते हुए, कहाँचारी, गृहस्थ व राजा के कर्तव्यों, कियाह के भेरों, दाय गो व्यवसाया, निषिद्ध ज्ञानम्, शुद्धि, प्रायशित्य प्रादि का विवेचन होता है । इन्हीं यमं सूक्ष्म से आमे चलकर स्मृतियों की उत्पत्ति हुई, जिनकी व्यवस्थाएँ हिन्दू-समाज में आज तक आत्मनोंपर समझो जाती है । वेद से सम्बद्ध किंवद्ध तीन यमं सूक्ष्म ही प्राप्त उपलब्ध हो सके हैं—ग्रामस्तम्य, हिरण्यक्षेत्री व बौद्धायन । ये यजुर्वेद की सैसिनीय शाखा से सम्बद्ध हैं । यमं सूक्ष्म में गोत्रम् और वलिष्ठ उल्लेखनीय है ।

शुल्क संप्र— इनका सम्बन्ध घोत गोत्री से है । शुल्क का पर्यं है मापने का द्वारा । घोरने नाम के विनुसार शुल्क सूक्ष्म में वज्र-वेदियों को नापना, उनके लिए स्वाम का चुनना तथा उनके नियमों खादि विषयों का विस्तृत वर्णन है । मैं भारतीय व्यामिति के प्राचीनतम् वृत्थ हूँ ।

वेदांग— काही समय गोत्रों के बाद वैदिक साहित्य अटिन एवं अठिन प्रतीत होने लगा । इस समय वेद के वर्षे तथा विषयों का स्पष्टीकरण लाने के लिए अनेक ग्रन्थ-संग्रह जैसे जाने लगे । इनलिए इन्हें वेदांग कहा गया । वेदांग का है—विज्ञा, धन्त, व्याकरण, निष्कर्ष, कल्प तथा व्याप्तिष्ठ । यहाँ जार वेद मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण और वर्षे समाजसें के लिए तथा धन्तिम-दीप्तामिक कर्मकाण्ड तोर गोत्रों का समग्र जानने के लिए उपलब्धक है । व्याकरण को वेद का गुल कहा जाता है; अपोतिष्ठ को मेष, निष्कर्ष को धोष, कल्प को हुण, विज्ञा को तात्त्विक तथा संन्द को दोर्मा पैर ।

विज्ञा— इन वर्षों को विज्ञा कहते हैं, जिनको साहायता से वेदों के उच्चारण का शुद्ध भान प्राप्त होता था । वेद-याठ में वर्षों का विवेचन महत्व था । इनकी विज्ञा के लिए दृष्टक वेदांग जाना पड़ा गया । इसमें वर्षों के उच्चारण के अनेक नियम विवर हैं । गंधार में उच्चारणव्याकरण की वैशामिक विवेचना करने वाले पहले सम्पूर्ण गही हैं । वे वेदों की विविध गोत्राओं से सम्बन्ध रखते हैं और प्रातिशालक कहलाते हैं । अत्यंत, अपवैष्ण, नावसनेयी व वित्तीरीय संहिता जै प्रातिशालक मिलते हैं । बाद में इनके पाल्याद् पर विष्णु-पुण्य विलेपन है । इनमें शुक्ल यजुर्वेद की पात्रवाच्य-विज्ञा, सामवेद की नारद-विज्ञा और वाणिजि की वाणिजी-विज्ञा मुख्य हैं ।

धन्त— वैदिक भृत्य उम्दोवश है । उम्दों का दोक जान धार्त किये विज्ञा, वेद-मन्त्रों का जान-उच्चारण जर्जी हो सकता । यहाँ उम्दों की विस्तृत विवेचना आत्मसंकर समझी गई । शौलक गुण के अक्षराविज्ञान में, योगायन गोत्रसूत्र में तथा सामवेद में सम्बद्ध विद्याम् गूण में इस धारण का व्यवस्थित वर्णन है । किन्तु इस वेदांग का

एक-मात्र स्वतन्त्र पंथ विमलाचार्य-प्रणीत छन्दमूल है। इसमें वैदिक और लोकिक दोनों प्रकार के लम्बी का बल्न है।

व्याकरण—इस वेदोग का उद्देश्य सभिः, शब्द-कल, वाकु-काण तथा इनसी निर्मल-रूपता का ज्ञान करना था। इस समय व्याकरण का सबसे प्रसिद्ध चंचल पाणिनि की अष्टाघ्यायी है; किन्तु व्याकरण का विवार वाङ्मय-पन्नों के समग्र से बहुत ही स्पष्ट था। पाणिनि से पहले माघ्य, स्फोटायन, वाकठायन, भारद्वाज आदि व्याकरण के अनेक महान् ग्राहाओं ही चुके थे। इन सबके बाब्य अब तुल हो चुके हैं।

निरूपता—इसमें वैदिक लम्बों की खुल्पति दिलाई जाती थी, प्राचीन काल में ऐर के बाटिन लम्बों की कमबहुत तात्त्विका और कोश निषंदृ कहलाते हैं और इनकी व्याख्या निरूपता में होती थी। व्याकरण के बाल वास्ताचार्य का निरूपता ही उपलब्ध होता है। इसका समग्र ००० द० पू० के जम्मग्र है।

व्योतिष्ठ—वैदिक गुण में यह वारला भी कि वेदों का उद्देश्य लम्बों का अतिपादन करना है। यह उचित काल और मुहूर्त में किये जाने से ही फलदायक होते हैं। अतः काल-ज्ञान के लिए व्योतिष्ठ का विकास हुआ, यह विद का अंग समझा जाना चाहिए। इसका प्राचीनतम ग्रन्थ लम्ब लम्ब मुनिराजवत वेदोगव्योतिष्ठ है।

श्रीत, शूक्र-पञ्च एवं सूर्यों को ही कला मूल कहते हैं इनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

वैदिक साहित्य का काल—इस विषय में विद्वानों में विवाद है कि लम्बों की रचना कब हुई और उसमें कित्त जाति की सम्भवता का वर्णन मिलता है। भारतीय लेखों को भ्रष्टीलंब्य (किसी पूर्ण द्वारा संबोधित हुआ) भासते हैं यस नियम कीने से उनके काल-निपत्रण का प्रस्त हो सही उक्ता। किन्तु परिवर्मी विद्वान् इन्हे अद्विद्या की रचना भासते हैं और इसके काल के सम्बन्ध में ढंगीने धनेक कल्पनाएँ ही हैं। इनमें पहली कल्पना मेवतमूलर^१ को है उन्होंने वैदिक साहित्य की चार भागों में जोड़ा है—छन्द, ग्रन्थ, वाङ्मय और सूत्र साहित्य। सूत्र साहित्य का काल ६०० द० पू०-२०० द० पू० है, वाङ्मयों का २००-५०० द० पू०, मन्त्र सम्बन्ध इत्येवं के विपरीत हिंदुओं का १०००-२०० द० पू० है, वाङ्मयों का २००-५०० द० पू०, मन्त्र सम्बन्ध अद्विद्य की प्राचीनतम अवालों का १२००-१००० द० पू०। लोगोवद्दोहि (टॉडी) में से उपलब्ध १५०० द० पू० के कुछ प्राचीन लेखों में वैदिक देवताओं का स्पष्ट नामेष मिलते से परिवर्मी विद्वानों को वेतनमूलक का नहीं अप्राप्य प्रतीत हुआ। वेदों को वैदिक तुलना समझने चाहे। वर्मन विद्वान् विष्टर निष्टुत^२ ने वैदिक साहित्य के शास्त्रम् होने का काल २५००-२००० द० पू० तक माना। तिनक और पाणीवी^३ ने वैदिक साहित्य में अंतिम

१. वेतनमूलक का काल २०० द० पू०-२०० द० पू०।

२. विष्टर निष्टुत का काल २५०० द० पू०।

३. विनक और पाणीवी २५०० द० पू०।

नक्षत्रों की स्थिति के साथार पर इस माहिल का आरंभ करने ४५०० ई. पूर्व माना। भी यजिनाशब्द दाय तथा यात्री ने अम्बेद में विजित भूमध्य-विषयक साधी द्वारा अम्बेद की रही नाम वर्ष दुर्व का उठाया। यद्यु तक इस प्रश्न का प्रामाणिक स्वर से समिति निर्णय नहीं हो सका। वैदिक माहिल तो अप्राप्यन करने से उसमें यो काल-विषय साधा विट्ठिमोक्षर होते हैं:—(१) माध्यीन वैदिक गुणः इस अम्बेद का पुण भी कहते हैं। इस काल की सम्भूति के ज्ञान का मुख्य प्रायार अम्बेद है। (२) उत्तरवैदिक गुण। यहाँ इन कालों की वैदिक संस्कृति का संवित्र प्रतिपादन किया जायगा।

वैदिक संस्कृति

थर्म—वैदिकगुणोन् व्याख्यिक विकास के दोन रूपों पर प्रतीत होते हैं। प्राचीनतम वैदिक थर्म उपासना-प्रथान एवं सरल वा, साहृष्ट-भूमियों के समय सह कर्मकाण्ड-प्राप्तान एवं अटिल हो गया और सन्त में उत्पन्निदों के समय ज्ञान पर वेद दिया जाने लगा। प्राचीनतम वैदिक थर्म उत्तरवैदिकसुविकास, परिवृक्ष और सरक है। पिछली जाती में युग्म नूरोंगान विद्वानों ने यह मत प्रकट किया था कि यह अत्यन्त प्रारंभिक और जयती भूमि है। ज्ञान वेदों से उत्पन्न होते थे। वर्षा, विष्णु, या, सूर्य वापि सामान्यकालों से भवभीत होकर उनकी स्तुति के लिए मन्त्र यहाँ है, किम्बु वेद के मध्यीन उत्तरवैदिक से भीत्र ही उन्हें ज्ञान हो सका कि यह वहा मुसान्कृत, कलतामक, परिवृक्ष और बोड थमे हैं।

वैदिक देवता—अम्बेद में विभिन्न देवों की स्तुतियाँ हैं, देव या थर्म है औतनशील या वीणितम्। एक ही इन्द्र वा रुप प्रवृत्ति की विभिन्न वाकियों से उत्पन्न रहा है। यार्य इन देवों की समूह पूजा करते हैं। उनके प्रधान देवता निम्नलिखित हैं:—

वैदिक—प्रत्यन्त प्राचीन काल में यह उत्तरवैदिक थर्म उदासानम देवता था। वाद में इसका स्थान इन्द्र ने ले लिया। यह थर्म का अधिपति है, तत्य (तत्त्व) पृथ्य और भूमार्द का देवता है। इनका प्रधान कार्य यसे की रक्षा करना है। अन्यनेत्र के लोक सूक्ष्मों में वहे भवय शब्दों में इसकी स्तुति है। वस्त्र सर्वेन्द्र और सर्वेसाधी है, समुद्रों का नस्य, वर्तन यक्षा देवों रहते हैं, राक्ष ते नर्वेन्द्र अन्यकार या जाते पर भी वे जागते रहते हैं, सर्वेन्द्र उनके द्वारा फिरते रहते हैं, समुद्रों का मुत्त-से-गुप्त सरवाया ग्रीष्म पात उन्हें यात द्वारा रखता है, जो यादमी एकान्त में बैठकर जो भव्याया करते हैं उसे वह जान लेते हैं, जे प्रहृति के घटन नियमों को रक्षा करते जाते हैं, यात्रियों को यात में ब्रावहर दण्ड देते हैं। यनके सूक्ष्मों में भक्तों ने इससे उसी प्रकार ज्ञान की सम्भावना की है जैसे वाद में विष्णु यादि देवतायों से कोई जाती थी। भक्ति-सम्प्रदाय का वैदिक मूल यही है। वस्त्र की उपासना ज्ञान एशिया (त्रिप्ति) के वित्तनी रक्षा भी करते हैं।

इन्द्र—यह वैदिक पुग का सबसे महत्वपूर्ण देवता है। इसकी प्रथमता इस बात से निपट है कि समूर्धं ऋग्वेद के लोके हिस्ते ते अधिक २५० श्लोकों में इसकी स्तुति है। यह देवों का अधिकों सभा प्रणारिमित विभिन्नताओं की है। इसके बात से युनोक और भूलोक कीपते हैं। उसके हाथ में विभिन्नताओं का वज्र है। उसने गीष्ठों का छुकाना, वृक्ष का बच, वर्षतों का भेदन, दासों का दमन आदि अनेक बीरतापूर्ण काम किये हैं। विन्यु उनका प्रधाम वार्ष्य पुर का सहार है। इन्द्र को सामाज्य कल्याण से वृद्धि देवता का प्रतीक माना जाता है। वह यात्रे मिलती होकी वज्र से घनावृद्धि के दैत्य—वृक्ष का सहार करता है। इन्द्र पुर का देवता है। वज्र से अन्यथों का दमन करता है। मनुष्य यूज में विषय पाने के लिए इन्द्र का मालूम करते हैं।

शर्मिन—ऋग्वेद में इन्द्र के बाद अस्मि वी ही सबसे अधिक स्तुति है। वो सो ऐ शर्मिक दूक्त इनका प्रतिपादन करते हैं। ऋग्वेद के पहले दूक्त का यही देवता है। इसकी लघुटे “गभुद्र की तरह कैंची उडती है, इसके अवलम्बन से चड़चड़ की कंची आचार होती है। आकाश में इसके सुखिलिङ्ग उडते हैं और पर्यावरण में भवभीत होकर जागते हैं”। शर्मिन के प्रसारारण महसूब का यह आश्रम या कि यह मनुष्यों की हवि देवताओं तक बहुत करता था, प्रतिदिन यह अलिहोद के लिए प्रसारित किया जाता था।

सूर्य—सूर्य से सम्बन्ध स्थाने वाले पाँच देवताओं की स्तुति की जाती थी—सविता, सूर्य, मित्र, पूरा, विष्णु। सविता सूर्य के ब्रेक और प्रातःकालिन सूर्य का नाम था। सूर्य इस गाँधों में प्रधान, युनोक और अदिति का पुत्र माना जाता था, उसकी एत्ती कल्पा थी। वह सात घोड़ों के रख पर प्रतिदिन आकाश की यात्रा करता था। मित्र को वस्त्र का साथी और सूर्य के उपकारक कल का प्रतिनिधि समझा जाता था। ‘पूरा’ पञ्च-गांधों का देवता था। विष्णु उन समय सबसे कम महत्व उठाता था, किन्तु बाद में बहुत अधिक पूजा जाने लगा। वेद में विष्णु के तीन घर्मों का धार-सार मुकेत है। एक ग्रामीण आचार्य घौमेयोगम में इन तीन घर्मों को उपर हीते थोड़े, मध्याह्न में उच्चतम विश्वर पर पहुँचने वाले तथा अम्ल होने वाले सूर्य के तीन रूपों का सूचक माना है। इन्हीं घर्मों से बाद में तामन और ननि की रक्षा की विकास हुआ।

उत्था—प्रगात वेत्ता की मनोरम छटा को देखी का रूप देना सम्मन आपो की सुखरतम छलना है। विश्व के समूचे गामिक साहित्य में इस वेत्तों कोई ननीहोरिणी रखता नहीं है। ऋग्वेद में उत्था का अध्यन्त गरस वर्णन है। इसके अतिरिक्त, इसमें अश्विनी, वातु, वात सोम, सरस्वती, पर्वत्य (वात्स), धाय (वस) आदि अमेक देवताओं की स्तुतियाँ पाई जाती हैं। इन देवताओं की पूजा वज्र से याहुति देकर की जाती थी।

ईश्वर-नमन्यो दिव्याद— यह वेद में देवताओं भी स्मृतियों का विशेष ढंग है। इसे सांकेतिक योगाद (Henotheism) कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि भक्त विस देवता से प्रार्थना करता है, उसे सबसे बड़ा बताता है। इन्हें को प्रार्थना करते हुए उसकी सबोच्च कहता है पौर धर्मिन की स्मृति में यमि को। यह वेद में नाता देवताओं की स्मृतियों है, इससे प्राचः यह कल्पना की जाती है कि उस समय वहूदेवताद प्रचलित था। जिन्हुं जैसा उपर बताया जा चुका है कि प्रार्थना की सब वाकियों को एक ही भक्ता के विभिन्न स्वरूप भानते थे। उन्होंने सात शब्दों में एकेश्वरवाद की सोषणा करते हुए कहा था:—‘एक ही सत्ता की विद्वान् अनेक नामों से जाते हैं।’ इस सत्ता को वे प्रदिति, हिरण्यगर्भ, पुराण प्रादि नामों से सूचित करते थे। वह प्राप्ति हीमे से प्रदिति था, यह मात्र विश्व उस तेजस्वी (हिरण्य) ईश्वर के मने से निकलता है। यतः वह हिरण्यगर्भ कहलाता था। वही एक नाता इस समूची प्राणाणामुदी जे फैली हुई है, यतः वह पुराण कहलाता था। हिरण्यगर्भ सूक्त एकेश्वरवाद का सुनार प्रतिपादन है।

वैदिक और वर्तमान हिन्दू धर्म में भेद— वैदिक धर्म वर्तमान पौराणिक धर्म से निम्न जाति में सौनिक रूप से भिन्न था। (१) वैदिक धर्म में सूक्तिनुवा का प्रचलन नहीं था। यह वेद में केवल एक ही स्थान पर इन्हें की सूति का उल्लेख है। देवताओं की धारणाना भाव इत्तरा आवृति देवत की जाति थी, वह यज्ञ-प्रथान धर्म था। धारणकल की भवित-प्रथान यज्ञानां उत्तर समय वहूत व्यापिक प्रचलित नहीं थी।

(२) वैदिक देवताओं तथा वर्तमान हिन्दू देवताओं में कई प्रकार का भेद है। वैदिक लात का प्रयोग वैष्णव इन्होंने है। वाद में बहारा, विष्णु, मोहन तो प्रमुख। प्राप्त हुए। वैदिक लात का महात्व चुन्न हो गया। वर्तमानकाल में प्राप्तात्म याते वामी शिरूरि में से देव में केवल विष्णु और रघु का उल्लेख है। किन्तु ये उस समय मीण देवता थे। अनेक वैदिक देवताओं उपर, पर्वत, भूम, अर्द्धमा का वाद में लोक ही नाम। अनेक पौराणिक देवी-देवताओं—नारेंद्री, कुवेर, दत्तात्रेय आदि का वेदों में कोई उल्लेख नहीं है।

(३) वर्तमान हिन्दू धर्म में बहारा, विष्णु, मोहन के साथ मरम्बती, सर्वी, नारेंद्री का नृपत नहीं होता है। यामी देवताओं की वाकियाँ दर्शी स्वर में शून्यी जाती हैं। वैदिक दुर्ग के अधिकार वैष्णव पुराण है। नारी उत्त्व की वर्तमान प्रथानां नहीं मिलती थी।

(४) वैदिक धर्म में आणाकाशी और प्रोत्सवो है। उसमें वारसीकिक जीवन के प्रति वह विस्तरा नहीं को वर्तमान हिन्दू धर्म में है। वैदिक यादि सुसार से भावना नहीं लाभता, उसका पूरा भोग करता जाता है। यादि उत्तापक धर्मने देवताओं से प्रधान कर में इस लोक की वस्तुएँ प्रज्ञा, पशु, प्राण, तेज और आपावर्षेश्वर मानता था। उसकी प्रधाने वाली प्राचेना मही होनी थी।—मेरे बच्चों का वल्ल भरो। उसका

जीवन लहू और जोड़े का, जीज़ और विचार का, विषय और स्वतन्त्रता का, कलिङ्गा और कल्पना का, जीज़ और मस्ती का का, उसका अम् भी उसके प्रतुषप था ।

उत्तर वैदिक युग का धर्म

(क) नये देवता—उत्तर वैदिक युग तक पहुँचते हुए वैदिक धर्म में जाती प्रत्यार प्रा गया था । यथापि प्रारब्धवेद में इनके कई गुण बुक्त हैं । किन्तु इसकी महिमा पटने लगी थी । एकेश्वरवादी प्रवृत्ति पूष्ट हो रही थी । जाहूण युग में प्रवापिति की महिमा बढ़ने लगी । और-बीर उसने इन्द्र का स्थान में लिया । प्रजापति-दाया वराह स्तु में पृथ्वी-शारण की सथा कुम्भ बनने की कथाएँ इसी युग में जाती, जो बाद में अन्तरामे का मूल बनी । इस युग में एक अन्य देवता—हइ—की भी महिमा बढ़ लगी । वहसे यह शिव था, अब महादेव और पशुनिति हो गया । पाण्डाल्य विद्वानों की यह कल्पना है कि यह अनाम्य देवता था । विश्व के तीन पर्यों की कल्पना का विकास भी इसी बात में हुआ ।

(ख) कर्मकाण्ड की बहिलता—जाहूण युग के धर्म की दूसरी विशेषता यातिक कर्मकाण्ड की बहिलता का बना था । जाहूण-नव्यों में इस यज्ञों की विस्तृत विधियाँ दी गई हैं । इससे आत होता है कि यज्ञों का आहान्वद बहुत बहु जाता था । यहै-तब यज्ञ राजाओं तथा धनाद्यो द्वारा होते थे । राजाओं के यज्ञों में राजमूल, बाजेहंस और प्रपत्तमेघ प्रधान । यज्ञों में यम-विति की प्रथा बहु रही थी ।

(ग) पशु-विति के विशद भांडोलन—उत्तर वैदिक युग में पशु-विति देवों के विशद एक लहर चली । ऐसी धनुष्यति है कि गता चयु वैद्यो परिचर के समय इस विषय पर बड़ा विचार उठा । अग्रि निरे धन नीं याहूति देना चाहते थे, वेषता बकरे की लांगों से । वसु से फैलता मीला थमा, उसने देवताओं के यज्ञ में फैलता दिया, यज्ञोंक वही पद्धति पुरानी थी । किन्तु वह मुखार का प्रधानती था, उसने भाने एक शस्त्रमेघ से मुनियों के कथनानुसार सज की जाहूतियाँ दी । वसु द्वारा प्रवतित वह लहर कर्मकाण्ड और तप के बनाम भवित दर लग देती थी । वह भान्डोलन हमारे चाहूँभय में 'एकान्तिक' कहलाता है, यज्ञोंक दृग्में एकामात्र हरि की एकाप्रता से भवित करने का जाक मुख्य था । भाती भक्ति-वान्दोलन का एक बीज यह भी था ।

यज्ञ-विदेशी भांडोलन—यह उपनिषदों के समय मुक्त हुआ । इसने आचार पर बह देते हुए जान मार्म की अन्यता का प्रतिनादन करके यज्ञों का विदोष किया । कामदेश्य उपनिषद (३। १३। ४। ६) में देवतों-पूज्य इष्ट की ओर आंगरम ने मत की एक सरल वैति बताई । इस यज्ञ की विजिता थी—उत्तरार्द्ध, द्राव, याजेव, प्रहिता और सम्ब । मुख्य उपनिषद (१। १०। ९) ने योदगा की विजय कृति नाम की जरह है । कर्मकाण्ड-विदेशीयोंने यज्ञ द्वारा पूजा-विधि के स्थान पर सौ मार्म का विरोध किया । हुत्यस्ति से विराम, इन्द्रियों का वर्णकरण, मत के संकलन की दृता, युक्तियाँ, वाणी और मन का संसर्व, तान, बहु वर्ष, अद्वा, शान्ति, सत्य, सम्पद सात और

विज्ञान—इन शब्द उपरांगों से समाहित होने, आत्मा या जड़ में ज्ञान लगाने से और उसकी भक्तिपूर्वक उपासना करने से मनुष्य परम पवि को प्राप्त होता है। उपनिषदों के समय में प्रमुखत्व-प्राप्ति, मुक्ति, कामेशाद और पुनर्जन्म के विज्ञान, जो उन समय हिन्दू धर्म की प्रधान विषेषज्ञ है, स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। प्राचीन वैदिक युग के लोगों में अपने ज्ञानवद्वय जोपन में भूकृत की विज्ञा नहीं थी। वायुधर्म-प्रणाली ने वहाँ द्वारा स्वर्ण का विज्ञान दिलाया, किन्तु उपनिषदों के समय का यार्थ ऐसी विज्ञा के स्तर से मनुष्य नहीं ही सकता जो प्रमुखत्व न प्राप्त करता। ऐसेयों के प्रभार शब्द 'किमहु तेन कुर्याम् येताह तामृता स्याम्' इस पुण्य की भावना पर सुन्दर प्रकाश छातते हैं। भारतीय दर्शन में लोकार का दुःखमय होता, आत्मा की अमरता, भूकृत की बलपूर्ण प्राकौशका का प्राप्तान्वय इसी दृग् से दृपा।

सामाजिक जीवन

पूर्व वैदिक युग

विवाह-पृष्ठति—वैदिक समाज का आधार कूटदम्ब था। उस समय विवाह-संस्कार तो लगभग जैसा ही होता या जैसा यात्रकाल होता है, किन्तु साधियों के बृहाव, विवाह-नम्बरणी प्रादृशी और विवाहों की स्थिति में बहुत अन्तर था। वैदिक काल में शुक्र-पुरुषियों के विवाह परिपक्व अस्तु में होते थे। वाल-विवाह की दृष्टिपृष्ठति का तत्कालीन नाहिल में कोई चिह्न दृष्टिगोचर नहीं होता। शुक्र-पुरुषियों को प्रणाली वीवन-संगी लगाने की वाकी स्वतन्त्रता थी। विवाह पृष्ठति और स्वामी सम्बन्ध गिरा जाता था। एक-पत्नीवत उस समय का साधारण लियम था, किन्तु राज-कुलों में बहुवलीत भी प्रत्यक्षित था। किर भी उसे शक्ता नहीं भमाना जाता था। परवत्ती शुगों को भागि उस समय विवाहों के लिए यती हो जाने का विमान नहीं था, उसे पुनर्विवाह का अधिकार था और पुनर्विवाह प्राप्त देवर से दिया जाता था। देवर की प्रथा भी थी और इस लेकर जड़की देने की थी। इस पुण्य में नववर्ष की परिपाठी भी प्रचलित थी।

स्त्रियों को स्थिति—वैदिक समाज में स्त्रियों की स्थिति जितनी दूरी थी उतनी जाद में नहीं रही। अग्नजातियों के इतिहास में हम जितना पीछे की ओर बढ़ते हैं, स्त्रियों की स्थिति उतनी ही गिरी हुई दिखाई देती है। नह वही विवरण बात है कि भास्तु में वस्तु-स्थिति नवर्या विवरीत है। वैदिक युग में स्त्रियों भी गुरुओं को तरह ही उन्होंने यिका प्राप्त करती थी। कुछ महिलाओं ने माहित्य और ज्ञान के द्वारा में अस्तव अस्तिष्ठा प्राप्त की थी। योंथा, विश्ववारा और लोकामृश को कृष्णद के कुछ गुरुओं का कृपि होने का गौरव प्राप्त है। परिवार में स्त्रियों की वही प्रतिष्ठा थी। विवाह के समय वधु को आर्योन्द दिया जाता था कि तुम न ये घर की दहमाली बनो। किन्तु उच्चा धार्मिक कामों में यति और पल्ली का दर्जा वरावर का था। कोई यज्ञ पल्ली के बिना दूर्घे नहीं हो सकता था। धार्मिक कार्यों परित्यन्ती

गिरकर ही पुरा करते हैं। स्थिरों सामाजिक वीजन में पुरा भाग नहीं थी। उस समय पर्दे की ओर स्थिरों को सामाजिक समानंहीं से दूर रखने की प्रवृत्ति नहीं थी। किन्तु स्थिरों की इसी ओरी स्थिति होने हुए भी उस संघर्ष के मुग्ध में तुष्टियों की अपेक्षा पुरों की अधिक कामना की जाती थी।

जाति-भेद — उस समय वर्तमान काल का सा जाति-भेद प्रचलित नहीं था। जाति-भेद की बड़ी विशेषताएँ—प्रमाणी जाति में ही विचाह करना तथा भोजन करना, ऊन-नीच और अस्मृत्या की भावनाएँ हैं। वैदिक मुग्ध के आदी में न तो विचाह और भोजन-सम्बन्धी वर्णन है और न ही ऊन-नीच के भाव। वर्ण भेद यामे पौर याम का था। वास्तव यामे भीर यामार्थ थी थी थे। वाल्मीकि, अधिक और वैष्णव की सत्ता अपश्य थी, किन्तु वह विभिन्न योजे कामों की व्येणियाँ-भाव थीं। सामाजिक जनता विभाजित नहीं थी। योद्धा और रथी अस्त्रिय कहलाते थे और दुराहित वाहाण। योद्धे यम का किया-कालार्थ बहुत बहु यामे से बाहुण व्येणी का बहु विकास हुआ। किन्तु इन सब व्येणियों में परस्पर सान-नान और वैवाहिक सम्बन्ध होता था। अनेक घारुणिक यमान-वास्त्री वह मानते हैं कि जाति-भेद के मूल तत्त्व यामों में यानायों से प्रहृण किये।

याम-याम, वेश-भूषा तथा भनोदिनों—यामों का याम-याम बहुत मादा था। उसका प्रत्यान भोजन भी, दूध, चापल (दीहि) और जी थे। वैदिक साहित्य में मूल, ददद आदि शर्मेक दालों का वर्णन है। किन्तु नमक का वर्णन नहीं मिलता। यामों में सोमरस के पान की परिपाठी थी। यामों का वेश भी बहुत नादा था। यारी के अररी भाग के लिये एक छतरीम और गिरले भाग के लिये एक यामोवस्त्र पहनने का रिकाज था। उपर्युक्त या प्रमही भी बहुत घर्मी जाती थीं। कपड़े लंगी या घर्मो के रेते (लुम) के बने हुए होते थे। बहुचारी कुला मृग की लाल रहनत में। पुरुष और कीरी दोनों सोमे के हार, कमच, कुपल, बोपुर, ककुण, नुकुर आदि घाभूषण घारण करते थे। तरी का याम किसे हुए और रंग-बिरंगे वस्त्र भी यारण किए जाते थे। यामों का लंगी और मुग्धित तेलों से शुक्रार किया जाता था। निष्ठायों प्राप्त वेशों (मूर) घारण करती थीं। कुछ पुरुष चूहा बींधते थे। प्राप्त यादी-रसी जाती थी, लेकिन इतनामत का भी खोड़ा-बहुत प्रबलत था।

यामों का सबसे अधिक प्रिय भनोरज्जन, पुलवीह और रसों की दीड़ था। जुँ की तुराई भी प्रचलित थी। जुँग बोड़े के यामों में येला जाता था। अन्येद के एक मूलत (१०१३४) में कुपारी की दुर्दिवा का बहुत सुन्दर वर्णन है। तीसरा भनोदिन तुल्य था। दर्ढी-मूरग दोनों इसमें भाग लेते थे। संगीत की भी काकी उपति हो जाती थी। यामान, कुंक और तार से बजने वाले दुन्दुमी, शुक्र, पण्ड, तृष्ण और वीणा आदि वाद होते थे। दुन्दुमी का प्रतीग तुरमनों का दिल बहलाने के लिए होता था। वह यामों का मारू बाजा था।

उत्तर वैदिक युग

उत्तर वैदिक युग का महत्त्व—इन युग में वर्णधर्म-ध्ययनश्च का विचार शरितवत् हुआ। 'वास्तव में भारतीय-सम्झौति और सम्मति की मूल इच्छाना इसी काल में होती है।' भारतीय-जाति में, उसकी संस्थापना में, विचार और अवस्थाएँ-नढ़ति के द्वारा दृष्टिकोण में जो विशिष्ट भारतीयता है, वह इसी काल में प्रकट होती है। यो तो भारतीय सम्झौति का मूल प्रार्थनिक और वैदिक नातों में है। तेजिन उन खुमों से वह यथोचित तरल द्रव के रूप में दीखती है। इन युग में ही उसकी ठोक तुग्गियाद वहाँ है। उसका अवितत्व मूल रूप धारण करता है। भगवान् गीतम् बृह के सम्पर्लक हम भारतीय जाति के जीवन में धनेक प्रवापो, सम्बापो, अवस्थापो, पद्धतियों और वरिधारियों को स्वापित और बदलून हुआ पाते हैं। ऐन सबसे भारीवर्म-नढ़ति व्यवान है।

वैदिक-ध्ययनश्च—वैदिक युग में जो ही बहुत दे—धार्य और दास। यासी से भूता होना स्वाभाविक था। उनसे वैवाहिक सम्बन्ध बुरे समझे जाते थे। यह पहले उल्लेख हो चुका है कि धार्यों में भी काम और वेदों की दृष्टि से वही अधिकारी बन रही थी। आहुण, धार्यिय, वैदेय इसी प्रकार के तर्गे थे। प्रत्येक घर में कुछ जंघ-भीज भी थी। आमक ज्ञानिय (ज्ञानीय), योद्धायों और रथियों से ऊंचे से ऊंचे रुपों पदाति संसिद्धियों से। वे हीमी वैद्यों ने ज्ञान थे। यहों का विकास होने से जो पुरोहित थण्डी दर्ता, वह आज ज्ञान, उपस्था और लाग के कारण धन्य धेणियों से ऊंची समझी मही। याम शूद्र वर्ग में जाल दिये गए। उत्तर वैदिक युग के वास्तवकारों ने पहली बार चारों धर्मों के कर्त्तव्यों का स्पष्ट कर्य से उल्लेख निया और उनके लिए पृथक्-पृथक् नियम बनाए। यह याद रखना चाहिए कि उस समय आहुण, धार्यिय, वैद्यों में लान-पान और शादी-ब्याह के बन्धन कठोर नहीं हुए थे। धर्मी-धर्मनी धर्णी तथा वर्ग में शोही-बेटी का सम्बन्ध हो गयी प्रवृत्ति तो स्वाभाविक होती ही है, यह उस समय भी रही होगी। जेहान उस समय के बहुत धारकस वी तरह जातनात के तर्ग दायरे में न बंगे थे। धीरे-धीरे इन बन्धनों में कठोरता आई। कुछ विद्यार्थी का यह कथन है कि शार्वेतर जातियों (विशेषकर प्रामाण्यविह और भ्रान्तेष) में इस तरह के लान-पान और शादी-ब्याह के धनेक प्रतिक्रिया थे। उनके सम्मके में आज फर धारों में उनके वे प्रतिक्रिया पहले से ही विभिन्न धेणियों पर लागू कर दिए।

जंघ-भीज तथा अस्पृश्यता का विकास—इसी युग में विभिन्न धर्णी के ऊंचे-नीचे हीने तथा विद्युतों को दूरों के समक्ष भालने वी कुप्रथा का वीमनोद्ध दृष्टा। आहुणों ने अपने ऊंचे हीने का धारा किया। पहले यह दत्ताया जा चुका है कि अपने ज्ञान लाग और तपस्या के कारण वे कुछ धर्णों में दृग्के धरिकारी भी थे। धिन्न-कारी को नीचे समझने की प्रवृत्ति का आरम्भ यही थे होता है, एक प्रभाव ज्ञान लज्जों में बहुत हुआ पवित्रता का भाव तथा सम्बन्ध; धनायी द्वारा धिल्पी का प्रहण किया जाता था। एक आहुण-वर्म में स्पृश्यति (स्पृह) का स्वर्ग यज्ञ की अपवित्र करने

बाला कहा गया है। शूद्रों को भी यज्ञों के सम्बोधन सम्मानकर उच्छ्वस्य माना जाने लगा। प्रग्नि देवता को दी जाने वालों कृष्ण को तृतीय शूद्र के स्थान से धर्मविवर समझी जाने लगी। किन्तु किर भी मन्मही तथा परवत्सों युग्मों की जाति शूद्र को अप्रतिष्ठित महोद्देशी थी। उसकी समृद्धि के लिए प्रायस्ताएँ की जाती थीं।

वानप्रस्थ-व्यवस्था—इस काल में सामाजिक मनुष्य के जीवन को बद्धाचरण, शहस्रन्, वानप्रस्थ और सम्बास के बार आवश्यकों में बद्दित गया था। भारतीय विचारकों का यह मत था कि प्रत्येक व्यक्ति बार प्रकार के अध्य निकर पैदा होता है—मनुष्यों, देवताओं, ऋग्वियों और पितरों का। मनुष्यों का अृज्ञ अपने पहोचियों की सका और आनिष्ट से बुक जाता है, देवताओं का अृज्ञ अपने द्वारा उत्तारा जा सकता है। गिरावं का अृज्ञ मन्मानोत्पादन और ऋग्वियों के जीवन का अृज्ञ व्यवस्थन और व्यवासन से उत्पन्न है। प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह अपने अृज्ञ उतारे। इसीलिए आवश्यकों की व्यवस्था की गई है। पहले आवश्यक मनुष्य व्यवस्थारी रहते हुए उपनी शारीरिक तथा चोढ़िक गतियों का पूर्ण विकास करता था। दूसरे में शहस्र होकर पितरों और मनुष्यों का अृज्ञ उतारता था। वानप्रस्थ और सम्बास में वह ऋग्वियों के अृज्ञों से मुक्त होता था। बानप्रस्थों के आवश्यक परिपालक अनुबव, न्याय, निर्भीक और विवारों के लेनदेने हीति थे। इन वानप्रस्थियों और सम्बासियों में राष्ट्र-नीय परिमित लाभ पहुँचता था। जिसी अन्त देश में इस प्रकार के प्रादर्श तथा उपरोक्ती सामाजिक संगठन का विकास नहीं हुआ।

स्त्रियों की स्थिति—पूर्व वैदिक युग से इस काल की स्त्रियों की स्थिति में अन्तर आगे लगा था। इस युग के अन्त तक उत्तरी व्यवस्था काफी जिर लुकी थी। इसका बहा कारण स्त्रियों का शूद्रों के तुलन सम्भव जाना था। इस युग में पर्व-काण्ड की विदितता बढ़ने के कारण यद्य स्त्रियों परिवर्त्यों के साथ वैदिक चानूनी यज्ञ-क्रिया नहीं कर सकती थीं। उनकी कुछ क्रियाएँ पुरोहित करने लगे। परिवर्ता के विचार से भी कुछ कहुरपनी अनुधर्म के कारण उन्हीं प्राप्तिक भाग्य से लगे थे। इस समय में आपे आपायं स्त्रियों से काफी विचाह करने लगे थे, आपायं तिक्तीयज्ञ-कार्य को ठीक तरह सम्पादित नहीं हुए लगती थीं। शास्त्रकारों ने उन्हें यज्ञ अंतिकार छीनने के लिए उन्हें शूद्र के नमान लेनी का सलाहिकारों बताया। इसमें स्त्रियों का वैदिक व्यवस्थन बदल हो गया और व्यवस्थन के प्रभाव में उनका आप-विचाह भी होने लगा। इस युग में हम सर्वप्रथम घोतम घम-सूज में यह विचार पाते हैं कि स्त्री का विचाह उसके बचपन से ही (प्राचीति अनुसत्ति द्वारा ये पहले ही) कर देना चाहिए (प्रदानं प्राचुरोऽस्ति)। युक्तियों का जन्म इस समय से एक सुभोवत सम्भव जाने लगा। स्त्रियों से दाय का अधिकार भी हीन लिया गया। किर भी ये व्यवस्थाएँ घमा-व्यवस्था नहीं हुई थीं। मैत्रेयी, गामी-जैमी कुछ स्त्रियों इस युग में भी जैयी विचाह प्राप्त करती थीं और बड़े-से-बड़े विद्वानों के साथ विचाह करने की शोभ्यता रखती थीं।

मनोविजेत—इस युग में कई नये मनोविजेतों का विकास हुआ। शैलधीरों (सहो) ने अभिनव प्राच्यम दिये। ग्रीष्मांगारों वर्णक वालों के साथ भाषण मा भी बदल आये। इस उपर्युक्त के वालों में सो भारतवर्ण (वर्त-वर्तन्) एक वाल का भी उल्लेख है। इस उपर्युक्त का साधारणी ने बाद में महाकाश्वरों का स्वप्न भारण किया है।

राजनीतिक जीवन

पूर्व वैदिक युग

नियन्त्रित राजसत्ता वरण—वैदिक धार्य वाहि वाई जन-समूहों में बंटी हुई थी। इन 'बनों' का मुख्यता वाला वालक 'राजा' होता था। राजा प्रधायः वशकमानत होता था। किन्तु उच्च सीमावालार करने का सिरकुड़ा प्रधिकार नहीं था। वह कुछ अतीत से नियन्त्रित होता था, प्रजा राजा का वरण करती थी। वरण का अर्थ यह है कि उत्तराधिकारी के प्रसाद में वह तथा धर्मिकारी चुनती थीं और उत्तराधिकारी को राजा होने की स्वीकृति देती थीं। उस स्वीकृति से ही राजा का अभियेक होता था और वह राज-पर का धर्मिकारी समझा जाता था। वरण इतर प्रजा के ताता राजा का एक प्रकार थी प्रतिज्ञा या ठारोव हो जाता था। अभियेक से समय राजा से वह आपा रखी जाती थी कि वह इस प्रतिज्ञा को पूरा करेगा। यदि वह इस प्रतिज्ञा को लोडता था तो प्रजा उसे परम्परा और निर्वाचित कर देती थी।

समिति—प्रजा (विदः) प्रपते धर्मिकारों का प्रयोग समिति द्वारा करती थी। समिति समूखी प्रजा को संसदा होती थीं और राज्य की वागदोर उसके तात्पर में थी। उसका एक गति या ईशान होता था। राजा भी समिति में जाता था। राजा का चूलाल, पदचूलि, पुनर्वैरण आदि राजकीय प्रस्तोतों का विवार और निर्णय उसके प्रधान काम होते थे। उसके नाईस्तों के समझमें पूर्ण एवं नियन्त्रित रूप से कुछ कठिन कठिन है। किन्तु इसमें बन्देह नहीं कि इसमें यामणी, यूत, रथकार और कमांड (लोहे तथा ताँबे के हुमिकार बनाने वाले) यावद्य सम्मिलित होते थे। इस प्रकार वह एक प्रतिनिधि संसदा प्रतीत होती है।

समा—समिति के भलाका एक अन्य संसदा समा होती थी। वह समिति से छोड़ी थी तथा चट्टु के प्रधान ग्रामाधिक का काम देती थी। प्रत्येक जाम की धर्मी समा होती थी। इसमें यावद्यक कामों के बाद विनोद की बातें भी होती थीं और तब वह भोजी था काम देती थी।

धर्मिकारी तथा राजो—राज्य के प्रमुख धर्मिकारी पुरोहित, सेनापति और यामणी (धार्म का नेता) थे। यामणीगोक के समय में तथा यूत, रथकार, कमांड राजा को राज्य का सांकेतिक चिन्ह प्रलास-दूत की बाल—पर्से (मणि) या रत्न देते थे। यावद्य इन्हें 'रत्नी' कहते थे। राजा प्रभियेक से पूर्व इनकी घूला करता था। प्रजा की रक्षा शक्तियों से लड़ता, यान्ति के समय यह आदि करना राजा के

मुक्त करन्ना चाहिए थे । राजा परने कर्तव्यों का पालन करते हुए पक्षा में वित या भाग (कर) लेने का अधिकारी था ।

गण-सम्म—कुछ राज्यों में राजा भी होता था, समिति ही देश का शासन करती थी । इस प्रकार के राज्य वराज्ञ कहलाते थे । यादों का वैत्तहार्य या वौतिहार्य इसी प्रकार का राज्य था ।

उत्तर वैदिक युग

राजाओं की शक्ति में वृद्धि—इस युग में पूराने राजा नये-नये प्रदेशों की विजय से अपना राज्य-विस्तार कर रहे थे तथा प्रपनी शक्ति बढ़ा रहे थे । इस समय राजाओं में सांबभीम होने वायथा समृद्ध-पर्यंत पृथ्वी के एक राष्ट्र होने की होड़ समझी थी । सभी 'पारमेष्ठ्य, माहाराज्य वालिपद्य' के लिए जालायित थे । धारा में समय, विदेह, कलिंग के राजा समाट की पदवी पारण करते थे । इसी युग में राजा राजसूय, प्रस्तुत्योग और वाजपेय धार्मि पक्ष करने लगे थे ।

राजा का नियन्त्रण—फिर्तु शक्ति वह जाने पर भी राजा पूर्ण रूप से नियंत्रण नहीं हो पाये थे । राज्याभिंश के समय उन्हें गढ़ी से उत्तरकर ब्राह्मणों की प्रसाद करना पड़ता था तथा उनके राज्य की अतिता करनी पड़ती थी । उनके आधीनत्य अधिकारी सूत भीर शामणी इनके अधिक महत्वपूर्ण में कि उन्हें राजा को बनाने वाला (राजकूत) कहा जाता था । राजा के निपमन के लिए जभा और समिति नामक सूत्पाणे इस युग में भी थी । राजा की जमूद्दि के लिए राजा और समिति का बामंकस्म (एकता) प्रतिष्ठान समझा जाता था । अत्याधिकारी राजाओं को जनता के कोण का विकार होना पड़ता था ।'

शासन-प्रणाली—इस युग में शासन-प्रणाली भी बामादिक मंत्रालयों की भाँति स्पष्ट प्राकार पारण कर रही थी । इस समय राजा समेत १२ राजा वा राज्य-प्रिकारी होते थे—१. बैनानी, २. पुरोहित, ३. राजा, ४. महिली-(पटरानी), ५. सूत (राजा का बृत्यान्त रखने वाला), ६. शामणी (माँव का, राज्याली का या राज्य के माँवों का नेता), ७. खटा (राजकीय कुदुम का निरीषक), ८. सपहीता (कोपाध्यय), ९. मागदुप (कर एकत्र करने वाला मुख्य अधिकारी), १०. घोषणाप (हिंदा करने वाला मुख्य अधिकारी), ११. गोविकर्ता (बंगलात का निरीषक), और १२. पात्तागल (संवेदहर) । इसी समय से नियमित बामन-तन्त्र शुरू हुआ । सी गाँवों का प्रक्षुर पति भीर सीमान्त का बासक स्पष्टि कहलाता था ।

पुणिम के अधिकारियों को इस समय उप या अधिकार बनाते थे । राजा का कार्य पूर्वकृत विदेशी वास्तुओं से रक्षा करना, शाशन और न्याय का प्रबन्ध करना था । न्याय कार्य 'अध्यक्ष' तथा पूर्ण वैदिक काल की सभाएँ करती थीं । गाँवों के छोटे सामनों का फैसला गाँव की सभा और 'बाम्बवादी' (गाँव का बंद) करता था ।

गणनात्मक—इस मुग में पश्चिम के सौराष्ट्र, काठियावाह (कच्छ) और सौदीर (धार्मिक स्थल) तथा हिमालय के उत्तर भूखंडों में गणनात्मक भावस्था प्रचलित थी। पर्यावरण की व्यवस्था का नाम स्वराज्य था। उत्तर प्रदेश में वैशाख (राजा-बिहीन राज्य) गणनात्मकी थी।

आर्थिक जीवन

पूर्व वेदिक पुरुष

आपों की प्रथान आजीविका पशु-नालन थी। पशुओं में गो-पालन पर सबसे अधिक बल था। वेदिक प्रार्थनाओं में सौधन का सबसे अधिक मौजा था। गौओं की दिन में तीन बार दुहा जाता था। बैल जेती और गाड़ी जीवन में प्रबुद्ध होती थी। गौहे लदाई तथा रक्षा की दौड़ के लिए याते थे। अगम पालन गम्भीर था, बालों और कुत्ते थे। कुत्ते पशुओं की रक्षाकाली और चिकार के लिए रखे जाते थे। विलों को उग समय तक नहीं पाला गया था।

दूसरी प्रथान आजीविका कृषि थी। कृषि के बल वर्षा पर निर्भर नहीं थी, नहीं (हुत्याओं) द्वारा भी निचाई होती थी। प्रथान रूप से सब की फलस्तं और जाती थी। मृगया तथा दूसरी आजीविका थी। शीर-स्मान, पाश से और मड़े सोडकर चिकार किया जाता था। देर और हिरण का घोलेट प्राप्त होता था।

शिल्प—इस दुम में विना की पर्याप्त उत्थान हुई। प्रथान शिल्प रथकार या बद्धि का था। वह युद्ध के लिए रुप और वस्त्रि के लिए हल और गाढ़ियों बनाता था। दूसरा काम पातु का काम करने वाले कर्मार (तुहार) का था। वह अपने के बरात्रि बनाता था। अपने को कुछ विद्वान् तीव्र वर्मनों ही और कुछ लोहा या कोया। इसके अतिरिक्त बमड़ा कमाने का शिल्प भी प्रचलित था। शिवाय चटाई को बनाइ या तथा कठाई का काम करती थी। यह बात अपान देने वोग है कि पिछले काल में शिल्प करने वालों को जैवा नोच समझा गया, जैसी स्थिति वेदिक पुरुष में नहीं थी। सब ऐसे समाज्य समझे जाते थे और मह नहीं बतलाया था। यहाँ है कि रथ-कार और कर्मार राजा के अधिकारियों में गिरे जाते थे।

सम्पत्ति तथा वित्तिमय—आपों की अचल सम्पत्ति मूर्मि और चल सम्पत्ति प्रथान रूप से पशु थे। जमीन खरीदने-देने की प्रथा नहीं थी, उसको प्रावधान की नहीं थी, कर्त्ताक जगत् साक दरके नहीं जमीन बनाई जा लीकी थी, नेतृत्व, अचल सम्पत्ति का जैन-देव नापी था। मुद्रा का प्रबलन नहीं के बराबर था, वस्त्र-वित्तिमय ही बनता था, भावनात् में काष्ठी हुजवत् होती थी, वित्तिमय में गाय लिंग का काम होती थी। मिठ्ठा नाम इसे मोने का चिह्न बनता था, पहले वह आश्रम-माह था। उस समय भी व्यक्ति जैन-देवे का चिह्न था। तुरं में हारना प्राप्त व्यक्ति का वार्ष होता था। व्यक्ति न जूकाने से दात बनना पक्ता था।

भाषापार—वैदिक प्राचीन गीतों में रहते हैं। उनमें भाषापार का विशेष विकास नहीं हुआ था। परन्तु नामक भाषापारी जाति का उल्लेख धरवण्य मिलता है, लेकिन वे अमार्यं या असुर होते हैं। तदियों वार करते के लिए नीकाएँ गूर घलती थीं, लेकिन समुद्र में आने-जाने वाली नीकाएँ भी या नहीं। इस बारे में विद्वानों में बहु मतमेह है। लेकिन मैं सिन्धु और समुद्र गान्ड का प्रयोग है, लेकिन वेदों में पतवार, पाल, लगार और मम्मत का वर्णन न होने से कृष्ण विद्वान् विद्वु का यर्थ वही नहीं जारी है। इसी प्रीत अन्य विवारतानों की यह पारणा है कि भारतीय भाषारियों की नीकाएँ उठ के ताव साथ दृश्यता भी जाती थीं। दूसरे मत में वैदिक भवाई भाषाम पहली है।

उत्तर वैदिक युग

इस समय कृष्ण प्रथान भाषातीतिका बन गयी थी। एक हजार में ३५ वेळ तक ओह बाने लगे हैं। याद का एक प्रयोग होने लगा था। किन्तु भाषातीतिक विपरितियों में उभित भी रहते हैं। उड्डो-बन द्वारा वर्णित एक ऐसे ही व्याकान का संकेत उभितपर्दी में है। भाषापार वह रहा था। वातप्रथ लादण की बल-प्रलव्य की कला के भाषापार पर कुछ विद्वानों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि उन दिनों भारत और वेदोंतितिया का सम्बन्ध था। निष्ठ के अतिरिक्त वातमान और कुण्ठन के सिवके भी व्याकान-लगे हे व्यापारियों ने गोंदों के काम में धर्मने संगठन बनाने दुरु कर दिये हैं। उद्योग-व्याकानों में अम-विभागन वह रहा था। घोटक नये घन्ये निकल रहे हैं। धूप-देव में विभिन्न गोंदों की विनियन गणना है। इसी तरफ से नाई और घोतियों के पेंडे गुड़ लोडे हैं। निकान व्याकों की रंगाई और कढाई के द्वारा भाषिक बोकन में मार रही थी।

वैदिक संस्कृति की विशेषताएँ—भारतीय संस्कृति के निर्माण में वैदिक भाष्यों ने महसूस प्रदिष्ट भाग लिया, अतः यहाँ हमें स्पष्ट कर से यह जान सेना चाहिए कि हमने उनकी विशेष देने लगा थी। इनकी निम्न विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं—
 (१) सहिष्णुता और सामजिक या भाव, (२) प्रोत्स्थिति, (३) वात-विज्ञान का विकास, (४) तपोवन-धर्मति, (५) वात्सिम-व्यवस्था, और (६) नारियों की प्रतिष्ठा। यानितम दो पर पहले प्रकाश वाला जा सकता है। अतः मही गहनी वार का विविधादन किया जायगा।

सहिष्णुता का भाव—प्राचीन इच्छा के विवेता है। उन्होंने भास्तुतिया, उत्तरो तथा मध्य प्रमाणीका के कुर्सोंपरियन भावावलों को तथा पूरामो जातियों का उल्लेख नहीं किया किन्तु इन्होंने पर हमसा करने वाले एन्हो वेक्षन जोगों को भावित के पहाँ की मूल जातियों से धूमिल गए। दोनों के अर्थ में एक गुनार सम्मिलण है। वासों ने व्यवसि यन्तामें देवता और पूजा-पढ़तियों लक्षीकार की, किन्तु उनका नारियादार कर दिया। वात्सिम-व्यवस्था में जो जटिस इमेकापड़ है, कोव प्रभूति पूरोंपरियन विद्यान् उसका मूल नीक-प्रधानित-विधिविभाग समझते हैं। उपाहृतामें—धारों के

मूल धर्म में पशु-वर्ति की कहां प्रथा नहीं थी, यहां में इसे स्वीकार किया गया। चिन्ह राजस आदि वानामों डारा पूजा जाने वाला देवता हिन्दू धर्म में भगवन् माना जाता। वानों को हिन्दू धर्म में डेवा स्पान इसी चट्टिशाही से मिला। जंगली जातियों पहलवों को पूजती थी, वे वालियाम और लिलिय बों। प्रारंभिक सार्व सूति वसाना या देवता के निम्न प्रतीक घर कल, इत्येवं चन्द्रन, मिन्दूर इत्पादि चक्राना, गत-मूल आदि के नैवेष्य अथवा वृति किये पशुओं का रक्त अर्पण करता नहीं जानते थे। वामों ने वानों चट्टिशाही और उदाहरण से उन सभी लोक प्रचलित विद्वानों द्वारा पूजा-प्रतिष्ठियों को प्राप्त करके उन्हें परिमाणित किया, उनके नमरेन के लिए नवे कथानक और वालंकारिक व्याख्याएँ गईं।

प्रगतिशीलता—समूचा वैदिक साहित्य प्रगतिशीलता के शोधस्त्री विचारों में शोत्र-प्रोत है। उसने पौराण, चीर्ण, पराक्रम और प्रवत वाचावाद के लक्षिताधार कित्तारों का प्राधान्य है। वाक्यों का इमन तथा वाकामों का पद-दलन करते हुए, जीवन में सदैव विजय पाना वामों का प्रभान लक्ष्य था। उनके जीवन का मूल भन्न यह—'बड़े चलो, बड़े चलो' (चर्वेति, चर्वेति)। ऐतरेय आहार में इन्द्र ने रोहित को इसका उपरेक्षा करते हुए जो सर्वेष दिया है, विश्व के वाह-सम में उससे अधिक अवस्थात भवेष कही नहीं मिलता। जो परिक्रम से वक्तव्य चक्रनाचुर नहीं होता, उसे सद्भी नहीं मिलती' (नानाभान्नाय श्वेरस्ति)। भाष्य के भरोसे बैठने का कोई लाभ नहीं। 'जो बैठा रहता है, उसका भाष्य भी बैठ जाता है, जो उठ जाता होता है, उसका भाष्य भी उठ जाता होता है। जो अपमर होता है, उसका भाष्य भी भागि बैठता है।' इसानिएँ 'जाने लहो, धामे लहो।' प्राप्ती निकियता या असकलता के लिए कलियुग की दोष देना अच्छे है क्योंकि 'नो रहने को ही कलियुग कहते हैं' और निरन्तर अप्रसर होने को सत्यदुग्ध। भगवान् यांगे बहुने बाले जा सक देते हैं। अपे बहुने वे अपु और स्वपु बन मिलता है। तुम्हें की भ्रेष्टला और प्रतिष्ठा इसीलिए है कि उह चलने में वालस्य नहीं करता। इतः 'जाने लहो, धामे लहो।' प्रगतिशीलता की यह भावना वामों के शमूने जीवन में शोत्र-प्रोत थी। इसी से उनका तथा उनकी संस्कृति का भारत में और भारत से बाहर के देशों में प्रसार हुआ और उन्होंने भारत-विज्ञान के प्रतीक लंबे में विस्तृत उन्मठि की।

वाल-विज्ञान—वामों भी तो सरी विशेषता जान के प्रत्येक लंबे में प्रनोत्प, विवेचन और उसे अवस्थित तो अम्बद लंबे देने की पद्धति थी। वालस्त्रित जान ही विज्ञान कहलाता है। उन्होंने कुनिया में कार्य प्रतम उच्चारण, भाषा और व्याकरण वालन के नियमों का विवेचन किया। सूत्र शैली में विभिन्न विज्ञानों को उन्होंने बड़ी अवस्था में परिपादित किया। इसका सर्वोत्तम उच्चारण पाणिनि की अष्टाव्यामी है। दर्शन, आगुर्वेद, राजनीति, छन्द, व्योतिष आदि सभी वामों पर उन्होंने इस प्रकार के दब्ब लिये।

तपोवन-गहति—उत्तर वैदिक युग में इस पहलति का विशेष रूप में विचारण हुआ; रामायण, महाभारत में इसका काली बर्दन पाया जाता है। भास्त्रीय संस्कृत के प्रभार तथा ज्ञान-विज्ञान के विकास में इसने बड़ा योग लिया। तुरार्णी में अधिगुणियों के ब्रह्मलोगों में जागर तपस्या करने वाला प्रतीक कहल पाने की अनेक कथाएँ हैं। याजकल तपस्या का अर्थ प्राप्त्यभीड़ या वार्षीयिक यात्रा भवत्वा जाता है। किन्तु आनीन काल में लिखेगकारी उल्लीभनों और गुलों को तिनांबति देखत लिखी जाने वाली या उद्देश्य के लिए अनन्य निषाठ और एकाधता के साथ उच्च परिवर्तम लगाना ही तपस्या कहलाती थी। भर्गीरत्न ने यसका की आठ नियन्त्रित करने के लिए तीन उत्तमक और उच्च परिवर्तम किया, वह आज तक प्रयुक्त है। प्राचीन अधिगुणों के जगत्तों में याजकर तपस्या करने का अर्थ वही प्रतीत थींता है कि वे उन ब्रह्मलोगों में ज्ञान के केन्द्र इष्टापित करके भगवान्मध्यकार का नाम करे, जंगली ब्रातिष्ठों को सम्मता कर यात्रा गुराएँ, उन्हें उच्चतर नैतिकता और घर्म लो दीखा दे। यात्रों के यात्रायन में वहाँ यात्रा विधिय भारत यात्रा यादि प्रयामं जातियों से प्राप्तास्ति था। प्रहृष्ट अनन्य सबसे यहसे उस प्रदेश में गढ़ और उन्होंने वहाँ तपोवन स्थापित तरकीजात का मालोक कैलाना युक्त किया। उनके अविलिङ्ग वहाँ सुरोद्ध, शरनं यादि के यात्रायम भी यात्रों पड़ीत की जंगली ब्रातिष्ठों को सम्म बना रहे थे।

यात्रियों का दूसरा कार्य ज्ञान का विकास, प्रचार और उन्नति थी। अधिगुणियों के सुरम्य एकाधत में यार्लीकिक और प्राप्त्यालिङ्ग समस्याओं पर विचार किया करते थे। अद्भातु-विज्ञान दूर-दूर से उनके चरणों से बैठकर ज्ञान प्राप्त करने याते थे। उस समय के सबसे बड़े विद्वविद्यालय यही थे। इन्हीं में प्राच्यक दम्भी जा तथा उपनिषदों का निर्माण हुआ। दार्शनिक विचार की जैवी-मैत्री छाने भी था। इन्हों में भावार-यात्रा और इमं जी गहन प्रनियतों सुनन्मार्द था। तपोवन आनीन हिन्दू संस्कृति का एक प्रधान मूल थींत थे। हुमारे बाह्य के एक बड़े ज्ञान का निर्माण इन्हीं में हुआ; रामायण, महाभारत, भर्मसुत्र, समुत्तियों इन्हीं के ज्ञान वातावरण में लिखी थई।

रामायण और महाभारत तथा तत्कालीन भारत

रामायण और महाभारत दोपारे जातीय महाकाव्य हैं। इनमें जातीय वर्म, आशार-व्यवहार के निषेध, संस्कार, धर्मसंसार और प्रधारण द्वारा दीत जाने पर भाव भी हमें प्रेरणा दे रही है। और हमारी जाति के जीवन के नियोग में वे प्रमुख भाव ले रही हैं। भारतीय जीवन की वास्तविक पाठ्यान्यिता यही है। रामायण की रचना महार्णु बालभौद्धि में जोगी को भानव-जीवन के सर्वोच्च प्रारंभ बताने के लिए की थी। रामायण और महाभारत का राजमहल में जेकर कुटिग तक गर्वन प्रसार है। हमारी जगी से भारतीयों के गीष्मनार्थ और भर-नार में प्रतिदिन इनकी जग्या होती रही था रही है। इनमें भारतीय की आशार-बृद्ध-विनियोगता नहीं नहीं पाया, परिषु शिळा भी रहण की है। वह प्रदेह हृदय में ही नहीं रखती परिषु शिरोधार्य भी करती है। वे उसके लिए आशा भी नहीं, वर्म शास्त्र भी नहीं। वे हमारे वर्म का प्रवान दूत लोग, सामाजिक भानव का संस्करण और संस्कृत के पाण हैं। यहीं पहले दोनों के काल तक भृत्य का उत्तोक करके अन्त में इनमें गूचित होने वालों तत्कालीन संस्कृत पर विचार किया जायेगा।

रामायण का रचनाकाल—रामायण का रचनाकाल ५०० ई० पू० से यहसे वा है। रामायण की घटना निःसन्देह बहुत पूरानी है। किन्तु उसके बहुमान क्षय का अधिकांश भाव छठी शती ३००-४०० में लिया जाया प्रतीत होता है। क्योंकि इस शती में भगवान् बुद्ध के प्राद्वामीव के समय हम पहली बार आवस्थी, पाटिलिगुण और उत्तरी विहार में देवताओं राज्य का उत्तेज पाते हैं। बुद्ध के उत्तम रामायण की अग्रोध्या का स्थान आवस्थी से खूबी और जनकगुरी मिलिता के महस्व का भी घना हो जाता था। इसी प्रकार रामायण पर बौद्ध वर्म का भी कोई क्रमाव नहीं है। किन्तु, बौद्ध जातिको में रामायण की कला है। प्रतः इसमें कोई सन्देह नहीं रहता कि उसकी रचना बौद्ध-साहित्य से पहले हुई है। किन्तु इसमें पीछे तक काफी प्रलेप होते रहे और ऐसा प्रतीत होता है कि इसकी पहली शती तक इसका नत्तेमान वर्त पूरा हो चुका था।

महाभारत का रचनाकाल—महाभारत के विकास में रामायण से भी प्रभिका समय लगा। उसकी पूर्ण जग्या तो आठवें-नव्यव्यों के समय (१०००-५०० पू०) में आवश्य प्रचलित थी, क्योंकि इसमें कुशलांग, परीक्षित, भरत और खृतशास्त्र का दास्ताव है।

वस्तके बाद अनेक शासियों तक महाभारत की कथा 'मूर्ति' (चारपाई) की रसना पर फलती-फलती रही। उसमें अनेक परिवर्षन होते रहे। ५०० ई० तक (हुक जिड्डानी की सम्मति में ४०० ई० तक) इसका वर्तमान बहुत्कम्प पूरा हो चुका था। इसका अन्तिम सम्भालम २०० ई० यु० में सातवाहन युग में हुया। यादें महाभारत में इसके अधिक विकास का स्पष्ट उल्लेख है। "वास ने तीस वर्ष तक लगातार विश्वम फरके इसकी रसना की, उन्होंने इसे अपने शिष्य वेदामान को सुमारा। वेदामान ने अबूस के प्रतीक जन्मायद की तरा तीसरी बार भीमर्हण के युज भीति ने यह कथा शौकन धार्दि उचितियों को सुमारा। व्यास के प्रनव का नाम 'वृत्त' था। इसके इतोकों को संख्या ८,८०० थी, विश्वामान ने इसे बढ़ाकर २४,००० इतोकों का 'भारत' बनाया और भीति ने भारत में और भी वाल्यान, उपाल्यान जौहकर, 'हरिलक्ष्म' मामक परिविष्ट के साथ उसे एक लाल इतोकों का 'महाभारत' बना लाता।

रामायण का महत्त्व—भारतीय संस्कृति में रामायण का विलेप महत्त्व इस बात में है कि उसने बोधन के प्रत्येक लक्ष के, विद्योपत्ति: सुहस्त्र घर्म के, वित्तने इन्द्रवत्त और विविध प्रकार के आदर्श तोकनिय और मनोरंजक ठंग से प्रसन्नुत किये हैं, उन्हें अन्य किसी ब्रह्म ने तहीं किये। यह इसका विशाल चंडार है। आदर्श पिता, आदर्श माता, आदर्श पति, आदर्श पत्नी, आदर्श राजा, आदर्श प्रजा, आदर्श वर्षांता—सारांश वह कि गव प्रकार के आदर्श इसमें है। सदियों से वे आदर्श हमारे वैयक्तिक और राष्ट्रीय लक्षित का निर्माण करते रहे हैं। हमारे देश की सास्कृतिक गृहना का एक बड़ा कारण यही आदर्श हैं। यात्मीक का उद्देश्य ही सर्वदा पुरुषोत्तम राम का विवरण करना है। रामायण के अन्य लक्षित तो प्रधान का से एक भवतील का विवर करते हैं, किन्तु राम अनेक आदर्शों का गुञ्ज है। वे गिरा की आजा शिरोधारा वारके बन जाने वाले आदर्श युवा, भाई के लिए गही छोड़ने वाले आदर्श भाई, भीता का रामण से उदार करने वाले सारदों पति और अपनी प्राणालिका विमलता का गोकानुरक्षण के लिए प्रतिलिप्त कर देने वाले आदर्श सुवा हैं। राम-युवा आदर्श का आदर्श राम भासा जाता है। भीता भारतीय नारील की भासात् अविनिष्ठि है। भार्व लक्षाएँ हजारों बर्षों से उनके उदात्त उदाहरण का अनुसरण करती आ रही है। कोशल्या-जैती माता और भरत और लक्ष्मण-वैसे भाई यदेव हिन्दू सभाज में प्रमुक रणीय भासे जाते रहे हैं।

महाभारत की महिमा—महाभारत के ब्रह्म लौटनगायद्वाओं के संघर्ष की कथा ही नहीं, किन्तु भारतीय संस्कृति और हिन्दू धर्म के सबोंग्रौण विकास का प्रदर्शक एक विशाल विद्वन्कोष है। इसमें उम्म समय के भासिक, नैतिक, दार्शनिक और ऐतिहासिक आदर्शों का अभूत्प्रभ और अक्षम गंगह है। महाभारत की इस उक्ति में लेख-भासा संवेद नहीं ही बहु संवेदप्रधान काव्य, सब दर्शनों का भास, भूति, इतिहास और वरित-विषय की भास तथा एकलम लेद है। भानव-वीचन का कोई ऐसा पहलू या गमरवा नहीं विस-पर इसमें विस्तार से विवार न किया गया हो। शान्ति यवं और मनुष्यानन यवं

ती इसी दृष्टि से लिखे गए हैं। इन्हीलिए महाभारत का यह दावा सर्वोच्च मरण है कि 'वर्ष, वर्ष, काम और सोज के विषय में जो इसमें कहा गया है वही अम्भूत है, जो इसमें सही है वह कही नहीं है' (विश्वास्ति तत्त्वग्रन्थ यमोहास्ति म तत्त्वाचित्)। अम्भूत के बारे यह मंसूत गाहित्र वा भवेत् देवीप्यमान रुत है। विनाशक में जोई काला इसकी लगता नहीं कर सकता। युग्मानियों का इतिहास और प्रोत्तेवी मिलाकर इसका प्राठड़ी हिस्सा है। इसका सांस्कृतिक महत्व इसी तथ्य से स्पष्ट है कि हिन्दू धर्म का यज्ञमें प्रतिष्ठ यथा 'भृशकद्वीपात्' इसी का अंग है। भारत या भारत से बाहर जहाँ कहीं भी हिन्दू संस्कृति का प्रसार हुआ, वही रामायण के सामन्ताव महाभारत का भी प्रसार हुआ। युधिष्ठीर की दृष्टि है—पूर्व में यूनानी राजवृत्त इसके उपरेक्षा की उम्हात करते हैं और यही भृती है—में तुद्र राजवीदिव्यों के मन्दिरों में इनका गाँठ होने लगता है। गात्री भृती से मंगोलिया के लुक्क प्रासानी भारा में हिंदिम्बा-वय भादि उपास्यानों का धारनन्द-सेवन लगते हैं, दसरी भृती से जाता की लोक-भारा में इसका प्रमुखाद ही लगता है।

दोनों महाकार्यों का काल एक-से हीने पर भी ये प्रथान कला में प्राचुर्य-कालीन संस्कृति के ऊपर काल पर प्रकाश दानते हैं जब हिन्दू धर्म और समाज का अपना आपी सुनिष्ठर हो गुण था। इसमें भारतीय संस्कृति के सब प्रथान विचार लगाविष्म-व्यवसंहार, जन्मालात्माद, भारत की प्रसरता, कर्मचार, उपारता और सहिष्यनुता मिलते हैं। यथापि रामायण अंगेश्वारु पहले काल की देवा का दिव्यदर्शन करती है तथापि दोनों सोहे तीर से उत्तर वैदिक युग के विनिमय भारत की भारतीय संस्कृति के गरिमागत है।

प्राचीनक वृत्ता

नये वृत्ता—वैदिक युग से यहुकालन-युग के बर्म में वहा बन्दर था गया था। वहाँ युग की प्राकृतिक याकितयों के सूचन: इन्द्र, अक्षर, उमा भादि देवताओं का स्थान प्रद लक्ष्य, विश्वास और वैद्यवत-त्रैन देवता लेने लगे। वहाँ, विश्वा, महेश की विसृति का उल्लङ्घन हुआ। वैदिक काल में प्राकृतिक याकितयों देवता बनती थी; यह और युरेष इस प्रकार यामे लगे। धौरायम रामायण के सूचन धर्म में यमुन्ध है, किन्तु वायु के धर्मों में विश्वा का अवस्थार कर लाते हैं। इस समय याकालारों ने नये देवी-देवता बहन करने का एक मुद्दादर उपाय लोज निकाला था। यिह उर्ह वैदिक युग में जब विवाह एक भगवान की विभिन्न विवितताओं के सूचक थे, उमी वकार ने अब भगवान की तीन सूचक उपादक, सातक और सहुआक याकालों का प्रारोक बहा, विश्वा, भृंश के विविष्ण बन जाते। विभिन्न समवशायों की प्राचीन वृत्ता, विश्वा, काल ही इसी उपाय से विद्या-गथा। इस युग में विश्वा के भक्त भागवतों द्वा प्रकारान्ती रामा विव के उपासक प्रमुखों का प्राप्तान्वय था। तुर्व का उपासक सौर-समवशाय भी प्रवल ही रहा था। इसके पार-परिक विवाय से वार्व जाति की वृत्ता के विवरण की सम्भालता थी। इस एकट के विवारण के लिए, यह कल्पना की गई कि भागवतों के उपास्य देवता

विषय ही पाण्डुपतों के व्याराघ देव लिख है (म० भा० ३।३३।१६।२०) । महाभारत के एक ही पर्व में विष और विषय की सहज नामों से स्मृति है ।

भक्ति की प्रवालता—इस युग की दूसरी विशेषता भक्ति की प्रवालता है । वैदिक युग में कर्मकाण्ड पर धर्मिक बल था, उपनिषदों ने ज्ञान को प्रधान बतलाया, किन्तु यह भक्ति को भौतिक बहुत लगी । भक्ति द्वारा भगवान् भी अस्तापना करके उसे प्रसन्न किया जा सकता था । इस बान्दोलन के नेता वीकृष्ण थे । पहले यह बतलाया जा चुका है कि और शारीरिक सेवा की विषय नहीं थी प्रकार के यज्ञ का उपाय दिया था । महाभारत के समय वहाँपतों को देवता बनाने की जी प्रधृति भी उसीने किया की भगवान् बना दिया । बाद में उन्हीं की भक्ति पर बल दिया जाने लगा ।

शास्त्र-यज्ञ—पश्चु-पञ्च के स्थान पर महाभारत में मूलिक पाने के लिए शास्त्र-यज्ञ, ग्राम-संवय और बरिष-बुद्धि पर बल दिया गया है । रामायण के समय तक यज्ञ की काची महता थी । महाभारत के समय भी वे नईधा कुप्त नहीं हुए थे । किरणी विष्वारकों ने स्पष्ट रूप से यह कहना शुरू किया कि उन कूरतापूर्ण यज्ञों को करने का काम नाम, जिसे उन्हें वार्दि शाश्विक फल प्राप्त होते हैं । सच्चा यज्ञ तो सत्य, शारिसा, वृष्णा, कोष का गरित्याग, संयम, वैराघ्य और स्याम है । इनकी सापेक्षा करने वाला वह फल प्राप्त करता है जो हजारों यज्ञों से भी भी भग्न हो सकता । आनार-बुद्धि सबसे बड़ा थम है ।

शीता का माय-माप्त—इस युग में भारतीय लम्बे तो सर्वोक्तुष्ट काम हमें अग्रवद्धीता में भिजता है । यह इतना महान् है कि इसने सब धर्मस्थानी, सब धर्मों, सब वर्णों और जातियों को याने-पापने विश्वामों के धमुकार लोक पाने को स्वल्पनक्ता है । शीता में पूर्व कर्मकाण्डी यज्ञों पर बल दे रहे थे, तपस्त्रो तप को सहस्रवृणी समझते थे । विद्युत वर्ण के मत में दुनिया में मूर्खित नष्ट तप नहीं ही यसकी थी वह तक कि दुनिया से भागकर योगाभ्यास न किया जाय । किन्तु वीकृष्ण ने तप्त यात्री का उपदेश दिया । योग की जिहि न तो कृष्ण तप से और न ही भोग-विजाप्ति से होती है—‘जिसका प्राप्तार-विहार, चेष्टाएँ, निशा और जागरण नूरियालित है उसी का योग दुर्लभ दूर करने वाला है’ (१।१७) । वीकृष्ण धन्वं योगियों की तरह दृढ़देशी के व्यापार और काम कृति के रमन पर धर्मविहित तप नहीं देते थे । उनका तो कहना ही यही था कि मैं ‘धर्मविहिती काम हूँ’ । वे योग के लिए निर्जिय संतासियों ना-सा जीवन नहीं समन्वय करते थे । उनका समन्वय तो यह था कि प्रत्येक भक्ति की यात्रा करनेया का पूरा यात्रन करना चाहिए । इसीसे उसे मूलिक और बहुआनंदी भी भागित होती । महाभारत में कर्तृ उद्धारकी द्वारा इस सिद्धान्त की मूर्खित भी की गई है । वनार्थ में माय बेचने वाले व्यापक ने बाहुप्राण को उत्तर-शान दिया है (सम्बाद २०८-२२८) । इसी प्रकार शान्ति-पर्व में जावति नामक वनियों ने लगनी वाहार को चढ़ बतलाया कि उसने कली बही नहीं भारी, इसीलिए उसे बहु-जान मिला है ।

(४० २६०-२५५)। यीता की प्रयत्न मिथा कल को भागा लोकर, निष्ठाम दुष्टि से धरना कर्तव्य-प्राप्ति कारन की है।

सांख्योग धर्म—यीता ने न वेवन मध्यम-प्राप्ति पर वह दिया थिए हैं उसके साथ ही उसने भोक्ता का द्वार तारे समाज के लिए लोत दिया। यीता ने पहले मुनियों के दो भी प्राप्ति को—पूजा और ज्ञान। दोनों का वेदों में प्रतिकारण होने वे उत्तम अविकार के लक्ष्य थाप्तुण, अधिष्ठ, विद्य की ही था। (वै० श० १३।३४३३)। यीता ने पहली बार लियों तथा नीच जातियों को भी उत्तम गति प्राप्ति का अविकार दिया (१३२)। भगवद्यीता द्वारा श्वी, वैद्य, शूद्र-शीर आदि व्यादि निष्ठामाणी, नीच वस्त्रों में उत्तम सभी भोक्ता के अविकारी समझे गए। श्रीकृष्ण ने इस दोष में शान्ति-युक्त, शार्प-प्रत्यार्थी सभी प्रकार का भ्रष्ट मिटा दिया। यीता में इसी नावदोत्त प्राप्ति सबसे अधिक ज्ञान कहा गया है। इसके साथ ही श्रीकृष्ण ने पूजाविधियों की विविधता भी भी स्तोत्रार किया। यह भ्रवस्तक नहीं कि किसी एक तितिजत छात में ही भगवान् की उपादान की जाता। वो सोम वौलुण की उपादान करते हैं वे तो सोम के अविकारी होते ही हैं किन्तु श्रीकृष्ण के भलानुभार जो किसी भी घम्य देवता का अवागम्बक स्मरण करते हैं, वे भी भगवान् की ही भक्ति करते हैं (गो० ६।२५)। ते पश्च-युक्त जो कुछ भी जाते हैं भ्रवान् उसे स्तोत्रार करते हैं। इन प्रकार यीता के सांख्योग धर्म में किसी प्रकार के देवता मा पूजा-प्रदत्ति का विषय नहीं। वह जाति, देश और सम्प्रदाय के सभी प्रकार के बगतों से ऊपर उठा हुआ है। श्रीकृष्ण ही सम्भवतः संसार में सांख्योग धर्म के पहले प्रकार है।

धर्म का प्राप्ति—यीता तथा महाभारत ने इस बात पर वह दिया कि मनुष्य का मुख्य उत्तम भर्म का प्राप्ति है। धर्म का तात्पर्य किसी विद्येष देवता की प्राप्ति ही नहीं, बल्कि ईमानदारी से और नैतिकता पूर्वक जीवन-प्राप्ति करना चाहा जाता। भास्त्रीय दुष्टि से आनार-दुष्टि और भर्म प्राप्ति है। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि धर्म का प्राप्ति किसी विदेश जाति के उद्देश्य से मही होना चाहिए। उसका पालन धर्म के लिए ही होना चाहिए। पुरिपिठर ने बतियों की भावना में धर्म-प्राप्ति करने वालों की शीर निराकारी है। धर्म के गांत पर जाते हुए वहे कष्ट उठाने पड़ते हैं। रामायण और महाभारत में सभ्य-विधिक कष्ट वर्मायासो—श्रीराम और पुरिपिठर—को उठाने पड़ते हैं। किसी भी वे प्राप्ति भाग में विचलित नहीं हुए। दोनों महाकालों की एक प्रकार विजय यह है कि कठोर-से-कठोर सकट और विकारि में भी हमें दर्शने वर्म और कर्तव्य का लाभ नहीं करना चाहिए।

द्वांग—इस समय तक छहों भारतीय द्वांगों के मूल विचारों का विकास हो चुका था, किन्तु अभी उसमें कमवद्वारा और मूलिकता नहीं थाही थी। इस समय तक वे निर्माणावस्था में थे, उन्होंने पूलक् सम्प्रदायों का रूप बारन नहीं किया था। इस बात में उसी सीमोत्तक वे कि वे वैदिक विधियों का प्राप्ति करते थे। सांख्य गोग वह

भवद्विनीता में स्पष्ट लिखा है। उस शेरों को गुप्तक वर्तमाने वालों को 'बाल' नहीं तासलक कहा गया है। न्याय सब प्रकार के अध्ययन और विचार के लिए प्रावधान का समझा जाता था। वेणुगोप का इहाँ भी महाभारत में स्पष्ट लिखित है।

सामाजिक विवरण

सामाजिक संरचना—इस जल्द में गर्व-व्यवस्था तो भी, किन् जाति-वैधि नहीं थी। तलों का विचार गुण-क्रमानुसार माना जाता था। अस्तव्यवस्था में शोहणा ने भी स्वप्न दाखों में कहा है कि "मैंने चाहुँवर्ष और अवस्था गुण, जमे के आधार पर थी है।" यह समस्त तक यह जन्म के आधार पर नहीं थी। उस गव्व में यह उद्धा गया है कि वही नाकिन वाहुग्रा है जिसने काम-बोध को वह में किया है, इन्द्रियों पर विजय पाई है। जो अध्ययन-प्रधान और यज्ञ-कर्ते वर्तमान वाला अद्वितीय तत्त्व अध्यार जल्द है। उस समय तक सामाजिक विनाय प्रवर्ती गुणों को तत्त्व सूत्त्वर नहीं हुए थे। वाहुग्रा-नाकिनों का काम करते हैं और शशि वाहुग्रों का। शोणवार्ष विष द्वारा हुए भी घटुकें के मध्ये वहे यातायां वे और भीष्म-विजामह तरवें वहे अपिय एवं हुए भी तत्त्व-जाति के उपरोक्ता हैं। महाभारत में एक स्थान पर तो यह भी वहा गया है कि वहों का जाई भद्र है और नहीं (साम्नि-प० १८८॥१०७)।

सिद्धियों की स्थिति और विवाह-पद्धति—तत्कालीन समाज में सिद्धियों को प्रतिष्ठित पद प्राप्त था और जहाँ समाज में पर्याप्त स्वतन्त्रता थी। विन् उत्तर वैदिक गुण ते विद्यों की स्थिति में जो लाल होता प्राप्तम् हुआ था, वह उस मुम में भी बहा रहा है। नारी-विदीपी-उपर्युक्तियों के तत्त्व को बहा भासता था (१११२६॥११)। उसी मारी वृषाद्यों का मुख्य समझता था (१५३८॥१)। किन्तु दूसरी ओर ऐसे विचारकों को भी नहीं थी जिनकी यह भासता थी कि विद्यों की प्रतिष्ठा से देवता प्रवाल रहते हैं। विद्यों को ऊर्ध्वा विद्या मिलती थी। उसी याता पर्यं मुम में भी स्वतन्त्रता थी। महाभारत के समय में आठ प्रकार के विवाह—वाहु, दैव, धार्म, प्राक्कालत, गान्धर्व, भासुर, राक्षस और रैवाज—पञ्चसित्र में। इनमें गहने जारी रखकर समझे जाते हैं। गान्धर्व, राक्षस और भासुर विवाहों का भी कामी रिवाज था। गुप्तसन् और अकृत्यात्मा में गोप्यर्थ वार्ता-प्रथम-विवाह हुआ था। राक्षस का जर्ब या कन्या के बलवृक्ष के हरन द्वारा किया जाने जाता विवाह। बुरुन का सुभद्रा-हरण, श्रीकृष्ण का लक्ष्मी-हरण श्रीर दुष्पीष्ण का कर्तिमराज-कन्या-हरण इनके उपाहरण हैं। भासुर-विवाह में कन्या का पिता वरप्रभ में घृत मेता था। मात्री का विवाह ऐसा ही था। नियोग रीत व्रता भी इस समय वास्तव सम्मत थी। कुन्ती ने गुणिष्ठ व्याधि पर्वि पापद्वय नियोग में उत्पत्ति किये थे। बहु-विवाह-प्रथा धनियों और रुपेन्द्रियों में काफी प्रचलित थी। भारतीय साहित्य में वही के उत्ताहरण इसी समय से मिलने गारुद्म होते हैं। मात्रों गारुद के साथ सहो ही मरी थी। यात्रविवाह की प्रथा भी युक्त ही गई थी।

प्राप्त यह समझा जाता है कि पर्व-प्रथा मुसलमानों के प्रागमन से प्रारम्भ हुई, किन्तु यह दीक मही है। यमायग और महामारुत दीनों में इस बात का स्पष्ट संकेत है कि चिह्नों वालाएँ कह सकते रहते थे कि यम रहती थी और वह सामाजिक साधने मही पाती थी। लोकाम ने जब सद्मण को यमिन-यरोक्षा के लिए लोता को सबके सामने लाने को कहा तो वह प्राचीर्व-वकित ही था। तब राम को यह कहता पड़ा कि सकूट, यह और चिनाह के समय में लोती का वर्णन आपसितज्ञन नहीं है। दुर्योगन को चिह्नों को मध्यमारुतकार ने प्रमुख्यमान (शम्भ पर्व २६।७४) कहा है। किर मी महामारुत में इस बात की पर्याप्त साक्षी है कि चिह्नों के मध्य-काल भी-भी प्रदत्तव्यता और और पद्म-त्रया नहीं थी। लक्ष्यवर शादि में वे सबके सामने आती थीं। कुछ चिह्नों ने पर्व का कारण ईशानी या युनानी प्रभाव को बतलाया है। मात्रकल दिग्नू-समाज में चिह्नों पर्ति का नाम नहीं दिया, किन्तु रामायण और महामारुत के समय में ईशानी, सीता, दमदनी और ताकियी शादि-पर्ति का नाम दिक्कर दुर्योग में संकोच नहीं करती थी।

पुरुष-बीच में पत्नी का स्थान वैदिक काल की भाँति पर्ति के बहावर समझ दाता था। वे पुरुष को घासांडिनी और मुलो का लोत शमभी जाती थीं। वे परिवर्तन के अंत्र आदर्श का पालन करती थीं। सीता, साकिंचि और दमदनी प्रत्यक्षसे शाब्द तक भारतीय चिह्नों के लिए अनुकरणीय उदाहरण हैं।

जीवन के प्रति इच्छिकोण—वैदिक युग की भाँति इस समय भी जीवन का दृष्टिकोण भावालादी था। नाम भी मात्रा गोप्य यह विविध बल दिया जाता था। महामारुत में वार्त-वार इस प्रम्भ पर विचार है कि जान्य झूँत है या पूर्णार्थ ; और प्राप्त इह वार ये पुरुषार्थ की व्येक्ति का प्रतिशोधन किया गया है। महत्वाकाला, सत्ता परिवर्याप और मातृत्व प्रयत्न समाजिक सूच माने गए हैं। 'महत्वाकाली' ही महान घनता है और यमनक भूल का भोग करता है। वेषता भी प्राप्ति कर्म के कारण मात्राम इन हैं। जीवनित भावना पर भरोसा रखतार काम नहीं करता यह तपु सक पर्ति याती-स्त्री की तरह यह इसी रहस्य है।' इस युग के धन्त में ही भारतीय घनोवसि में कुछ घनता थीं तो नहीं था। वन पर्व में जल के धन्तों के उत्तर में एक खोंच में निर्मितता और भाष्य की वज्रों जताया गया है।

ज्ञा-समय भारतीयों ने वैदिक और प्राचीन की बहुत महस्ता दी। महामारुत के एक उपायप्रयत्न में बहतराय दिया है कि जब प्रज्ञाद ने इन्द्र का भगवता भील दिया तो समाजिक भी उनके पास तो जाते रही। जब प्रज्ञाद ने उससे जाने का कारण युद्ध तो उत्तर दिया—'नश्मो वहीं रहती है जहाँ भीत, वहमें और मरम उहते हैं।' राम का निवन्याजन और नुभिंद्र का साप-त्रैम प्रसिद्ध ही है। नेगस्वर्गीव प्रभृति विदेशियों ने भी भारतीयों की नारिलिक उभयता और सम्प्रियता को स्वीकार किया है।

ग्राहिक दशा

कुषि—इस पुग में शावीचिकापी (वृत्तियों) के शास्त्र का सामान्य नाम 'वास्त्री' था। इसके तीन घण्टे में—कुषि, पशु-प्राणीन और शिल्प। शाकाशी का यह कर्तव्य समझा जाता था कि वे तीसों वृत्तियों को उमरति के लिए याप्त पुरुष निष्पृष्ठ करें। कुषि काफी उद्धरण थी, चिचाई का राज्य की ओर से प्रदीप्त किया जाता था। उद्यान-कला (वागवानी) का विकास इसी पुग से शारम्भ होता है। अनों लोगों को पर्व वर्ष में फल देने वाले आम के बर्गोंमें लगाने का बहुत शोक था।

पशु इस पुग में भी सम्पत्ति का प्रधान घण्टा थे। कुषि के लिए दैत और दुर्दों के लिए खोड़े यथा हाथी अभिवाद्य थे। इसकी विचिकित्सा भी और शिक्षा के लिए सामग्र्य व्यक्ति नियत किये जाते थे। ग्रनात वास के समय सहदेव ने विराट के महां गो-विद्योग्य और नकुल ने ग्रन्थ-विद्योग्य के रूप में भीकरा की थी। उन दिनों पशुओं के शिक्षण और चिकित्सा पर हस्ति-सूत्र और ग्रन्थ-सूत्र आदि कई सम्पर्क में थे। आजकल इनमें से नकुल का ग्रन्थ-विद्या-ग्रन्थयक 'चालि-होल' तथा 'हस्तिमुद्र' ही उपलब्ध होते हैं।

शिल्प—शिल्पों में वस्त्र-व्यवसाय विद्येष उद्घाटित पर था। उत्तर वैदिक पुग ने भारतीय साहित्य में कपास का उल्लेख निलंता है। मोहन्जोदहो में भी सूती कपड़े के विकास निलंते हैं। दुनिया को कपास का परिचय कराने वाला भारत ही था। यूनानी इस बात पर ग्राहक्य करते थे कि भारत में ज्ञ ऐडों पर लगती है। दूर्दों सूती तक भारत का वस्त्र-व्यवसाय चढ़त उद्घाट था और वह दुनिया को डाक की मलमल-जैसा महीन कपड़ा देता रहा। महाभारत के समय में भश्च और ज्ञान देशों में बहिया सूती कपड़ा बनता था, ज्ञानी कपड़ों के लिए व्यावकल की तरह ही कामीर और कम्बोज (पामीर और बदख्श) प्रसिद्ध थे। रेशमी बहरों का भी व्यावकल था। सोना, चांदी, सोहा, सीसा और रोम से अनेक पदार्थ उत्पाद किये जाते थे। सनुइ के ज्ञानी और दक्षिण को जानी से अनेक मणियां निकाली जाती थीं। इनमें वैदूर्य सहस्रे मूल्यवान थीं। विभिन्न शिल्पों के प्रोत्साहन के लिए राज्य की ओर से सहायता दी जाती थी। ग्रामस्तरिक और वैदेशिक व्यापार प्रधान रूप से वैदेशों के हाथ में था। अनी लोग अपने सामान के यातायात के लिए गोमियों (चलारों) को रखते थे। साल की दूसरी पशुओं तथा वैसे गाड़ियों से होती थी। विदेशों के साथ अभी व्यापार बहुत उद्घाट नहीं था।

राजनीतिक जीवन

इस समय अधिकांश भारत में राजतान्त्रिक वास्तव-व्यवाली प्रचलित थी। यज्ञा नुल-कमागत थे। उनका मुख्य कार्य प्रकृति-रजन समझा जाता था। उनकी वास्तव तथा अधिकार सर्वथा निरकुप हो यह बात नहीं है। यज्ञा राजकीय कार्य 'कला' की सहायता से करता था, इसे हम वैदिक पुग में भी देख सके हैं। इसमें न-

जी) राज्य के सब शिविय मोदा होते थे (११२२०), या यह एक प्रकार की युद्ध परिषद् होती थी। इसमें राज्य-परिषदार के प्रधान सेनापति तथा धम्म मंत्रिय अधिकारी (११५०१२०) सम्मिलित होते थे। कई बार परमाणु-वातावरों में पुरोहित और जनता के बिन्दु वाले के प्रतिनिधि भी सम्मिलित किये जाते थे (शा० ग० १३४५१६३)। राजा के बाद या मध्यस्थी कहे पर उसके प्रधानमंत्रियादाता उसकी भल्लना बरसे में महोदय मही करते थे। राजा को ड्राहुलों और जनता की इच्छा का सावर करना पड़ता था। यह माना जाता था कि राजा और प्रजा में एक प्रकार का सम्बन्ध है। राजा प्रजा का प्रतुरक्त तथा रक्षण करता है और उसके बदले में वह प्रजा दे कर जिता है। आखीन बाल में राजा पूरा ने राज्यादी पर बैठते रामय अधिकारों के वस्तुता व्यष्ट भी थी कि 'मैं जब तक जीवित रहूँगा, वे कामें भर्मोनुकूल होंगा वही करूँगा।' वह प्रतिज्ञा सभी राजाओं पर लातु यसकी जाती थी। अत्याचारी राजा के विषय विद्युत लक्षण उसे पट-चूत कर दिया जाता था। 'जब राजन्देश-जात, राजा देने ने प्रजा पर अत्याचार किये तब व्यापारों ने उसे गढ़ी दे उत्तर दिया।'

राजा के कर्तव्य—महाभारत में राजा के लिए अनेक उच्च आदर्श और कर्तव्य बताए गए हैं। उसे निर्वतों पर अत्याचार नहीं करना चाहिए। भन, बचन और शारीर सेनापति करना हुए 'अपने पुत्र का भी अपनायक जना नहीं करना चाहिए।' राजा का धर्म है कि जहाँ एक और वह साधारण प्रजा को मुक्ति दे, वहाँ उसे दुष्करी घोर 'अन्तर्मुख, अनात और तुकों के भी धोम् गोङ्गना' दिचित है। विद्वानों से उपर्युक्त सुनकर उसे उनका पालन करना चाहिए, जो ऐसा करते हुए 'विद्वानाद्य तदी बनता 'प्रजा तदी के बक्ष में रहती है।' उसका कर्तव्य धर्मी सेवा, कोप और व्यापार को बढ़ाना तथा प्रजा के कष्ट-मिळारण करना है। येहार, निर्वत और अपाहिजों का पालन-पोषण भी उस राजा का काम है। आजनास इसके लिए दरिद्र-प्रोत्ता के नियम (Poor laws) बनाये जाते हैं। उस समय मी धनाय, युद्ध, निष्पाप्य तथा विभक्तयों को राजा तथा उसकी आत्मीयिका का प्रबन्ध राजा का कर्तव्य माना जाता था।

कर-नियति—राज्य की धाय के प्रधान सोत मुमि की जाज, बायांर, लाठी, समुद्री तथा तांडी की ऊपरति पर लगाये गए कर थे। कर-नियति के लिए बायी बटिन अपवस्था थी : एक, दो, तीस, सौ और हजार यामों के प्रकार जाग्ने लोंग का कर जग्न ताके लगाए पहुँचायेंगे। कर का उद्देश्य प्रजा की सूख-समिति और रक्षा ही समझा जाता था। कर लगाते हुए इस बाल पर शुरा ध्यान रखा जाता था कि निर्वत दें बत्ती-तक्क सेंधी-पर कर का भार उचित अनुपात में हो, कोई भी उसके बचित न रह जाए। लोम में गुड़कर राजा को कहुत कर बढ़ाकर अपने घोर रफ़्त के अपसामय पर कुछारपात नहीं करना चाहिए। "कर बहुत बड़ा देने वाले राजा से प्रबादेष करती है। ज्ञ ब्राह्मनों को गुड़ राजा जाने का भण बना रहता है।" राणुकों

वज्रहाँ समझकर ही प्रकार पर तर लगाना चाहिए। गो को धर्मिक युद्ध मेंने मे वज्रहा भी बाम का नहीं रहता। इसी प्रकार प्रकार पर धर्मयजिक कर लगा देने से राष्ट्र की धार्म-बहुत कम हो जाती है। राजा को चाहिए कि वह प्रत्येक नामरिक, राष्ट्रमाती, उपनिवेश तथा चार्धीन देवतानिवास से अनुकम्पापूर्वक धर्माधिकृत यज्ञ उचित कर्ता को प्राप्त कर से (शा० द७१५७१२४)।¹⁷ उस समय भी राजकर्मचारी रिक्षतोर और सूटों वाले होते हैं। राजा का यह कर्तव्य बताया मर्या है कि इस प्रकार के व्यक्तियों कि वह प्रजा को रखा करे।

संग्रह-प्रबन्ध—निवेशी आकमणों से रका शश युद्ध के लिए राजा विशाल सेनाएँ रखते हैं। यह समयी और स्वयंसेवक दोनों प्रकार की होती थी। सेना के पास युद्ध होते हैं—एवाति, शश, हाथी और रथ। उत्तर वैदिक युग तक हाथीयों का नजाई में प्रयोग नहीं था, वह समयतः इसी युग में शुरू हुआ। भारतीयों ने इसका प्रयोग धूमानियों, ईरामियों और तुकों से सीखा। सेना के चार यजूँ के अतिरिक्त वैदिक वैदेशक और गांधारक विभाग भी हैं—इनमें गतायाम, नौसेना और युद्धवर्ष विभाग हैं। पदाधिकारियों के मुख्य अधिकार तत्त्वावार और डाग होते हैं। गदा का प्रयोग इन्द्र-नुव तथा हाथियों की नजाई में होता था। घरवर्षीयी तत्त्वावार और भाला रहते हैं। रथ पर बैठकर लड़ते वालों के प्रभान बहुत अनुष्ठान होते हैं। कवम का प्रयोग सब करते हैं। महाभारत में परिष तोमर, भिंदिपाल रिण्टि, दात्यभी, भगुणी यादि द्वन्द्वा प्रकार के घट्टों का वर्णन भाता है, जिनका धर्मार्थ स्वरूप यज्ञ तक आत नहीं हो सका। उस समय मन्त्र-वाचित से आनेप, बायम्ब, बाला यादि घनेक प्रकार के विविध लाल छोड़ जाते हैं; सेना के सूचों, मकार, चक्रादि अमेक युद्ध बनाये जाते हैं।

इस काल की एक विशेषता यह थी कि अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध-विषयों की भौति कुछ उल्लेखनीय भवत्वाएँ भी। गोरक्ष-यात्रियों से युद्ध से पहले ही नियम बना लिये थे कि निःशासन, निष्पावच और युद्ध से पीछे दिलाने वाले गर यज्ञार नहीं किया जायेगा, 'यज्ञार करने से पहले उमरी गूचना है तो जागेगी, विद्वास दिलाकर तथा यज्ञराहट में बालकर-यज्ञार करना एक दूसरे की हमना ठीक नहीं।' उस समय के याती के बोधन का प्रयाम इन्हें घर्म का यातन करता था, अतः युद्ध में भी वे उल्लंघन को अनुचित समझते हैं। उस समय 'युद्ध और प्रयाम में सब-हृष्ट ठीक होता है' का चिह्नाना प्रादर्श नहीं बना था।

वैज्ञानिक वज्रति—इस युग में अधोलिय, चिकित्सा-यास्त्र, पद्म-विद्या, रथ-वाला, अनुरेव और स्वापत्र्य की वान्डी उपलिख हुई थी। अधोलिय में घट्टों की गति तथा विधि के बारे में उल्लेख पर्याप्त ज्ञान था। चिकित्सा धीर्घियों तथा मध्यों द्वारा की जाती थी। गहरें-गहरे बाल भरने का यात्यर्थवत्तक प्रयाम रखने वालों 'पिस्तलकरणी' धीर्घियों का शुभ प्रयोग होता था। गोद्धों, योड्डों, हाथियों की नस्त उच्चत करने तथा बीमारियों का द्रुत करने के लिए घनेक यास्त्र बने हुए थे। वैज्ञानिक कला तथा अनुरेव की उपलिख

उपर निश्चिट आवधों में मिलती है। स्थापन्य का सर्वोत्तम उदाहरण भगवन् द्वारा निर्मित प्राप्तव्यों का राज-प्राप्ताद या जितमें जल में स्वतं का और स्वतं में जल का धोका होता था। उस समय तक भारतीय भूक्षों में जीव की सत्ता को जात कर चुके थे। (जानित ७० छ० १८४)।

उपसंहार—यह युग भारतीय इतिहास के स्वर्ण युगों में से है। रामायण उपर महाभारत हिन्दू धार्मक-विचार की आज तक धाराएँ बने हुए हैं। ने दोनों उपसंहारतम क्षय में हमारे साथने उन पार्मिक, दार्शनिक और नीतिक धाराओं को रखते हैं जिनके अनुसार हमें अपना जीवन बिताना चाहिये। इनमें किसी सम्बद्धता और जाति का बंधन नहीं है। धार्मा की धर्मसत्ता, कर्मवाद, पुनर्जन्म और भगवत् इसके मूल तत्त्व हैं। पार्मिक और दार्शनिक विचार के खंड में भगवद्गीता में जो ऊँची वज्ञान ली गई है वह विश्व-इतिहास में अनुप्रम है। भौतिक खंड में युद्ध-नीति, धर्मवास्तव, प्राकृतिक विज्ञान, शिल्प, वाणिज्य और अवसाय की वृष्टि से भारत ने बहुत उप्रति की थी, किन्तु सामाजिक धार्माद इस समय काफी व्यवनत था। युधिष्ठिर-बैसे धर्मवाच यूत-बैसे दुर्ब्युगलों का शिकार होते थे। भरी सभा में द्वौपदी का अपमान मह सूचित करता है कि नारी की स्थिति भी समाज में गिरने लगी थी।

जैन और बौद्ध धर्म

पार्मिक परान्ति—हठी दा० ६० प० मे॒ भारत मे॑ एक प्रवल धार्मिक लान्ति हुई। इनके प्रधान नेता वर्धमान महाशीर और गोलम दुड़ थे। इस कान्ति के मुख ठहर थे—दालिक कर्मकाण्ड की निरर्खेकाला, वेदों की प्रामाणिकता का तथा यात्यार्थों की प्रभुता का विशेष, नैतिकता और सत्यस्या का महत्व। वेद, यात्यार्थ और द्विवर मे॒ विवाह त रखने से इन्हे नान्तिक धर्मान्वयोत्तम कहा जाता है। इन्होंने सूक्ष्म भारत के किन्॒ समाज के इतिहास पर कही शांतियों तक गहरा प्रभाव लाता। वाल्लक मे॑ वह कही तात्पर्य पहले प्रारम्भ हुई प्रचलितों के मूलते रूप थे। इनकी जड़ उपनिषदों के समय मे॑ भी चम लूकी थी, अनेक बोधियन्द और तीर्थंदुर इसे अपने बोधनों से संबंध लूके थे। बौद्धनान्दों से ज्ञात होता है कि हठी दा० ६० प० मे॑ स्वतन्त्र धार्मिक और दार्यनिक विचार बापों विकल्प हो चुके थे। बृहद्यात्म गृहों के घटुमार उस समय ६३ वर्षाण बग्न थे। इनके विकास का प्रधान कारण नहीं प्रतीत होता है कि उस समय की दो प्रधान विचारभारती-वाट्टुन-प्रयोगों का यातिक कर्मकाण्ड और उपनिषदों का आन्तर्मान सांख्यरूप जनता की धारवद्यता को पूरी नहीं कर सकी थी। यहों के विकल्प उपनिषदों ने बहुदस्त यात्यार्थ उठाई थी और मह योग्यता की थी कि संसार-समग्र की पार करने के लिए यज्ञ कुटी नाव थी भावित है। किन्तु इनके विकल्प मे॑ उद्देश्ये 'जिस ज्ञान और ब्रह्मविद्या' पर वल दिया था, वह केवल बुद्धियोंको वर्ष की ही प्रभावित कर सकती थी। यात्यार्थ जनता के लिए यात्यार्थरूपी यज्ञ और रहस्यवाद से दोलन-बोल उपनिषद् समान रूप से जटिन-प्रबंधुरूपोंमे॑, कह गरत, यात्यार्थ एवं अवित-प्रधान वर्षों के लिए जरूर रही थी। इनमे॑ पहचानी गो प्रावद्यतावादी बीज वैन वर्षों ने पूरी तो और तीसरी भक्ति-ब्रह्मात् भीरायिक वर्षोंने। एष धर्माण्ड मे॑ जैन और बौद्धन्धमे॑ का वर्णन किया जायगा और अन्ते मे॑ तिन्हु वर्षों का।

जैन वर्ष का यातिकर्मिक महात्मा पारवे—जैन वर्षों के संव्यापक धारा॒ वर्धमान महाशीर माने जाते हैं, किन्तु जैन घटुमति के घटुमार वे यातिक और बोधीयों तीर्थंदुर मे॑। उनमे॑ पहले २३ जैन-वर्ष-घटुमारक हो चुके थे। जैन-वर्षों मे॑ इनके अन्ते यातिक घटुमतियों वर्णन है कि प्रावद्यताविद्या इनमे॑ से केवल २३वें तीर्थंदुर महात्मा पारवे को ही यातिकर्मिक यातिक तीर्थार करते हैं। महात्मा महाशीर के

२५० वर्ष पहले ८वीं से १० ई० पू० में उन्होंने वाराणसी में अवधिपति राजा को वास्तव नामक राजी में जन्म लिया। तीस वर्ष की आयु में वैदिक चरणम होने पर राजन्याट का परिवार्ता किया। ८३ दिन की ओर तपस्या के बाद उन्हें जान प्राप्त हुआ। उन्होंने उसका प्रचार करना शुरू किया। ७० वर्ष तक भर्त-प्रभार करके उन्होंने गायबंत और पवित्र एवं प्राप्त किया। पाठ्वं की मुरुग विद्याएं गौहिता, सत्य, घस्तेय और व्यापारियाँ ब्रह्म का यातन थीं। वे नातुर्यांग रहलाती हैं। इनमें कोई संदेह नहीं कि पाठ्वं की इन विद्याओं में कोई नवीनता नहीं थी। वैदिक यज्ञों की पशु-हिता के विरुद्ध 'मा हित्यात् भवंभूताति' की लहर बही प्राचीन थी। किन्तु पाठ्वं ने पूर्णत यादों को मानते हुए तीन तर्ह बातें की—(१) उन्होंने धर्म का प्रचार प्रारम्भ किया। उनसे पहले धर्म-नाम का सिरकाट करके तपस्या करने वाले अमण भवदृष्ट थे, पर वे समाज में उसका उदादेश नहीं देते थे। उपनिषदों में हम शिष्यों को धार्थमों में गुहायों के पास जाता हुआ देखते हैं, किन्तु पूर्ण अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए अमण नहीं करते थे, पाठ्वं ने प्रचार की परिपाटी को प्रारम्भ किया। (२) पुराने धर्मण धर्मिता-धर्म का पालन तपस्या के एक ग्रंथ के रूप में करते थे, वे इसे नवंसाधारण के लिए धारक्षयक नहीं समझते थे। पाठ्वं ने धर्मिता तथा धर्म यामी को धर्मिता-मुनियों के आवश्यक तक ही भीमित न रखा, किन्तु साधारण जनता को भी इन्हें अपने जीवन में छापने का उपकेश दिया। (३) महाराजा पाठ्वं ने पाने नवान धर्म के प्रचार के लिए संघ बनाया। दुर्द के समय के सब संघों में जैन-साधु-साधिवयों का संघ सबसे बड़ा था।

महाराजा वर्षभान महावीर—महाराजा वर्षभान के २५० वर्ष बाद जीवीस्वर्व सीवंकूर वर्षभान ने ४३६ ई० पू० में कृष्णधाम वैषाली (धारपुनिक वसाह जि० मुज़फ़फ़रपुर) के जातक नामक शिविय-कुल में जन्म लिया। उनके पिता विद्यार्थ धीर माता विशाला थी। उनकी प्रत्युति सांसारिक जीवन की ओर न थी, तीस वर्षों की अवधिया में, (५०६ ई० पू०) प्राणे गिता की मृत्यु पर, प्राणे भाई के राजगढ़ी पर बैठने पर उन्होंने गृह-परिष्पाण करके कठोर तपस्या प्रारम्भ की। १२ वर्ष के उम तप के बाद उन्हें १३वे वर्ष पूर्ण मत्त जान की उपलब्धि हुई। उन्होंने अपने जान का प्रचार शुरू किया, (५१० ई० पू०)। धर्मयापियों ने उन्हें महावीर देवा जिन (जिजेता) की उपाधि दी, जोमो ने उनके सम्प्रदाय को निर्देश (वर्णन-भुक्त) कहा। अपने शिद्धान्तों का प्रचार करते हुए ७२ वर्ष की आयु में उन्होंने राजानुयोग में विवाणपद धारा, (५६७ ई० पू०)। उनकी धरान विद्यार्थ पाठ्वं की ही थी, किन्तु उन्होंने इनमें कुछ बातें बद्दी की। महाराजा पाठ्वं वारुप्याम (गौहिता, सत्य, घस्तेय, व्यपरिच्छ) पर वक्त देते थे, उन्होंने इनके साथ बहुतचर्चे को भी धारक्षयक लत लगा दिया। व्यपरिच्छ पर वक्त देते हुए उन्होंने दिग्मवर रहने का बादेश दिया। मगर वादि देशों में उनकी विद्यालयों का बहुत बहुत प्रचार ही थमा, कलिंग भी उनका धर्मयापी बना, उनके विद्यालय के दो-एक शर्ती के भोतर ही पश्चिम भारत में भी जैन-धर्म की तुलियाद वर्ष-

गई। मलेक उत्तार-चक्रविंशि के बाद भारत में आज तक उनके प्रनुयायियों की एक पहचान मिली है।

महात्मा बुद्ध ५६७-५८५ ई० पू०—बीड़-वर्म के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध महावीर के समकालीन थे। कपिलवस्तु के राजा शूद्रोदन को परम्परागतीयन (कृष्णनदीह) में उनका वन्न हुआ। वे कथगत से गम्भीर एवं चिन्मनवीत प्रकृति के थे। विदा ने १० वर्ष की आयु में उनका विदाह कर दिया। किन्तु इसमें उनकी प्रवृत्ति नहीं बदली। छोटी-छोटी घटनाएँ उन पर गहरा प्रभाव डालती थी। ऐसा प्रतिक्रिया है कि यह में से करने हुए थे, बीमार और मृत व्यक्ति को देखकर उनका मानसिक असन्तोष बढ़ा, यससे प्रसरणमुख उन्नवासी देखकर उन्हें उनके हृत का मार्ग नूम्हा। २८ वर्ष की आयु में अपना पुत्र होने पर, वे गृहस्थ और राजन्याट के युद्ध पुर्णों को लात नाटकर पर में निकल पड़े। यही उनका 'महानिनियकमध' कहलाता है। पहले कुछ समय तक उन्होंने राज शृङ् के दो वरान वार्षिकीयों प्रातार-कालाम और रामपुक्ष से शिशा प्राप्त की; किन्तु इसमें उनकी शान-प्रियासा शान्त नहीं हुई। कर्म-मार्ग से छोड़कर वे ज्ञान-मार्ग की ओर चरे, किन्तु यहीं उन्हें गूली दिमानी करत रही दिलाई दी। इसके बाद, उन्होंने तपस्या का मार्ग पकड़ा। पांच सालियों के साथ यहाँ के गारा उरुविल्प में उन्होंने ६ वर्ष तक घोर तपस्या की, पर फिर भी आनंद नहीं मिली। कहते हैं एक बार नाचने गए वाली दिवसी उस जंगल में से गुजरी; उनके गीत की अनिंगीतम के कान में पड़ी, वे या रुदा यी 'यामी बोणा के सार को धारिक हीसा भ करो, नहीं तो वह बैंगन नहीं, वसे इतना धारिक करो भी नहीं कि वह द्रुट जाय।' इसमें भीतम को मह ज्ञान हुआ कि वह अपने जीवन के तार एकदम करत वा रहे हैं, इस तरह करने से उनके दृढ़ने की समझावना है। उन्होंने तपस्या का मार्ग छोड़ दिया। उनके सालियों ने समझा कि वे तपस्या से हर मार्ग है। वे उग्हे शोहकर बनारस चले गए। यह धीरे-धीरे स्वास्थ्य-लाभ करते हुए उग्हे एक दिन एक वीणा के पेड़ के नीचे बैठे हुए बोध (ज्ञान) प्राप्त हुआ। उग्होंने भिलग किया कि उनका को मह ज्ञान देकर उसके हृत दूर किये जाएँ। मध्यसे पहले सारमाण (बनारस) में उग्होंने सभी पांच सालियों को उपरोक्त देकर 'पर्म-वक्त-प्रवर्त्तन' किया। सब लोगों को प्रवर्त्या देकर भिलु बनाना शूल किया तभी उग्हे सभी अपने उपरोक्तों का प्रवार करने की शिक्षा दी। ४५ वर्ष तक वे स्वयं धर्म सिद्धान्तों का विदार करते रहे और यससे ८० वर्ष की आयु में उनका कुशीगगर (वर्तमान कुशीगगर विं देवरिया) में महापरिनिर्वाण हुआ (४८० ई० पू०)।

महात्मा बुद्ध की शिक्षाएँ—महात्मा बुद्ध ने जिस वर्म का उपरोक्त किया, वह प्रधान भूमि से धारावार-प्रधान था। उनकी प्रधान शिक्षाएँ विन्म थी—(१) मध्यम भाग—उग्होंने इस भाग पर काम दिया कि मनुष्य को न तो भौगवितास की घर्ति में

फैलना चाहिए, और न कठोर तपश्चात्रों की शक्ति का महत्वमुद्देश करना चाहिए। दोनों शक्तियों को छोड़कर मध्यमामं दर बलना चाहिए।

(२) चार भाष्य सत्य—इस दुनिया में चार महान् सत्य हैं—(क) संसार कुलभव्य है, (ख) दुन का कारण तृष्णा है, (ग) तृष्णा के निरोध से दुन का निरोध होता है, और (घ) इसका उपाय अष्टोग्र मार्ग है।

(३) अष्टोग्र मार्ग—यह निम्न प्राठ वार्ताओं का पालन करना है—सत्य दृष्टि, सत्य भाव, सत्य भाषण, सत्य व्यवहार, सत्य निर्वाह, सत्य प्रयत्न, सत्य विचार और सत्य व्याप।

बुद्ध की विद्यायों को ज्ञान पूर्वक देखने से प्रतीत होगा कि बुद्ध ने इस समय के प्रथम आधिक नियमित्याओं में अमहान्ति प्रकट करते हुए, प्रसन्ना नवा मत वलाला और मह जानी भवावहारिकता और क्रियात्मकता के कारण प्रधिक सफल हुआ। महात्मा बुद्ध यज्ञादि के विरोधी वे और उन तपश्चात्रों के भी। समुक्त निकाय में उन्होंने एक कर्मचार्यों प्राप्तियां भी कहा है—“हे ज्ञात्यर्थ तुम यह मत समझो कि परिवर्तन वस्ति में समिधा वालने से होती है, यह तो बाह्य यात है, इसे छोड़कर मैं तो वस्ति भीतर अभिन्न जलाता हूँ, पान्तरिक यज्ञ में जुना (धी वालने का चरमव) वाणी है और हृदय ती यज्ञ-वेदी है।” प्राचीन बौद्ध-प्रथाओं से यह स्पष्ट है कि वे यहों का बड़ी, किन्तु यहों की तस्वीरिसा का विरोध करते थे। जैन धर्म से उनका गौलिक मत देख था। जैनों के पश्च महात्मा निर्विवासक थे, वे कठोर तपश्चात्र में विद्यात् रसाते थे, उन्होंने अहिंसा को बहुत अधिक महत्व दिया था। बुद्ध यज्ञाता, अस्त्रेय, वद्यन्यं यादि का ‘ज्ञायक ब्रोड’ में ही प्रत्यर्थी करते थे। उनके लिए अहिंसा कोई एकान्तिक धर्म नहीं था, जैनों में अहिंसा का विचार जिस पराकाराता वह पहुँचा उनका बोलो नहीं था। जैनों के भटानुमार मात्र अभद्र वा किन्तु बुद्ध कुछ अवस्थाओं में इस विद्या के लिए भी भठन समझते थे। बुद्ध का समूचा दृष्टिकोण धर्मात्म व्यावहारिक था। यहौं-वारण्य है कि बौद्ध धर्म को व्याधिक सफलता मिली। जैन धर्म को प्रचार विवेकता कर्तृत्व थी, उन्होंने यहां धर्म को २० लाख वर्ष के योगी-नानी में भी नुरालित रखा है, उनका ग्राहर भारत में ही हुआ, किन्तु कितना हृदय वह ठोक कर में रहा रहा। बौद्ध-धर्म में वही परिवर्तनशीलता और उदारता थी। इससे उन भारत और विदेशी में वही अंकुरता मिली; किन्तु धर्म में इस देश में उसके अनुपायी हिन्दू धर्म से ही जिती ही गये।

बौद्ध धर्म का विचार—५०० ई० पूर्व में महात्मा बुद्ध के मिर्चील के बाद सभ में बुद्ध की विद्यायों पर विचार उत्पन्न हो गया, उन्होंने धर्मा और उत्तराधिकारी निपत नहीं किया था, लेकि उनके नवमे तुमने विष्णु काश्यप ने बुद्ध के वचनों का प्रामाणिक संप्रह करने के लिए राजदूह में पहुँची तभी बुद्धांग और इसमें बुद्ध की विद्यायों (प्रिष्टिक) का पाठ किया गया। इन्हें विष्टिक (तीन दोकरियों) कहने

का यह कारण था कि बुद्ध के उपदेश तीन भागों में बटि गये थे। (१) लिपि-प्रिट—इसमें बोद्ध भिष्मीयों सभा संघ के लियमों का वर्णितादेन था। (२) सुच-प्रिट—इसमें बुद्ध के चारोंके उपदेशों का संक्षेप था। (३) अनिक्षण-प्रिट—इसमें भर्त-सम्बन्धी आत्मात्मिक प्रश्नों का विवेचन था। यहली महासभा के ही बारे बाद कुछ भिष्मी-नियमों के सम्बन्ध में पुनः विवाद उपन्त हुआ, इसके तिराये के लिए दैदृष्टि १० रु० में दूसरी बोद्ध महासभा बुलाई गई। नियम अब जारी बाले भिष्मीयों को संघ से बाहर निकाल दिया गया। इन्होंने 'महासाधिक' नाम से उपन्त नया समुदाय स्थापित किया। उनसे भिन्न बाकी बोद्ध 'विश्ववादी' कहलाये। बोद्ध भर्त का विशेष उल्कार्थ प्रश्नोक (२७२-२३० ई० रु०) के समय में हुआ। विशेष-विजय के बाद वह बोद्ध बना और उसने बोद्ध धर्म के प्रचार के लिए पूरा अध्यात्म विद्या, भास्तु विभिन्न भागों, विषयों परिचय, भिन्न, दूरी दूरी, तकों के राजायों के असुख-प्रचार के लिए दूर भेजे। सका जाने वाले तो उसके पुर और पुत्रों सहूद्ध और सम्प्रिया थे। बोद्ध धर्म को विश्व धर्म बनाने का खेत इसी को है। उसी के दार्शनिकाल में दौसरी बोद्ध महासभा हुई (२५५ ई० रु०)। बोद्ध प्रचारकों के लाल 'विपिटक' जाका गहुआ और यहली ३० ई० रु० में उसे विश्ववाद किया गया, और साधारण के बाद भारत पर युग्मानियों, शकों, कुशाणों के धारकमण्ड हुए। इनमें से अनेक राजायों ने बोद्धधर्म को स्वीकार किया। और उसके प्रचार का प्रबल लिया। इनमें यथन राजा भिमाश्वर और कुशाण शृणुति कनिष्ठ (१८२-१६० ई०) विद्येष धर्म से उत्तेजित हुए। कनिष्ठ के समय बोद्ध-धर्म में अनेक प्रचारकों निवाश उपन्त हो गए, इनका भर्त करने के लिए बोद्धों महासभा बुलाई गई। इसमें विपिटक धर्म प्रामाणिक भाष्य लिखा गया और इसीके आधार पर बाहु में भवायन का विकास हुआ।

महायान का आत्मविद्या—बोद्ध-नाम का सागरन ग्रन्थात्मक होमे से, उसमें कोई केन्द्रीय नियामक सूता नहीं थी, सत्; उसमें बुद्ध भी मतनेद हीने पर नये सम्प्रदाय स्थापित हो जाते थे। बोद्ध-धर्मों में १८ सम्प्रदायों का लिकायो तो उल्लेख है। इनमें हीनमाल और महायान प्रथान हैं। बुद्ध की मूल विशालों को मूर्चित रखने वाला और उस पर आचरण करने वाला सम्प्रदाय हीनमाल है, इसमें नई विद्येषतायों और परिवर्तनों से महायान की चपति हुई। पहले का प्रचार नमौ, लका और लाम में है तथा दूसरे का नैपाल, तिब्बत, चीन, जापान और मगोलिया में। हीनमाल और महायान के नाम का खेत महायान के बन्मदाला नामाङ्कन को है। बोद्धों में बुद्धव्याप्ति के दो प्रकार भाग हैं—(१) प्रत्येक बुद्धयान, (२) सम्प्रदाय सम्बुद्ध यान। यहले का अर्थ 'ऐसे बोद्ध-भिष्मीयों से है जिन्होंने बैलव इनमें विशेष बोध होता है' और दूसरे का अर्थ 'ऐसे बोद्ध-भिष्मीयों से है जिन्होंने सभको देने के लिए बोध होता है', यो सभके निवाश का बल करते हैं। इसमें दूसरे भाग को खेत छहसाहर उसे महायान कहा गया। महायानी बोधिसत्त्व बनने पर बस देते थे। बोधिसत्त्व में अपतित है जो बुद्ध बनने का

प्रयत्न कर रहे हैं। बोधिसत्त्व जनना बड़ा कठिन था, परं भगवान् ने धर्मो-किलोवर पादि बोधिसत्त्वों में विश्वाम तथा उनकी मूर्तियों की पूजा से मुक्ति मारी। इसी ने बाद में मन्त्रयान और वाच्यान का विकास हुआ। भगवानियों ने बोक-लिङ्गता की दृष्टि से पाति को छोड़कर संस्कृत का वाच्य लिया। परं हीनवानियों से इनके प्रयाम नेद निम्न थे—(१) बोधिसत्त्वों में विश्वाम, (२) बोधिसत्त्वों की मूर्ति-पूजा और भक्ति, (३) संस्कृत का रथोग। इनके सत्रिकित दोनों यात्रों में आच्यात्रिमक एवं दार्शनिक प्रश्नों तथा कुद्र के वास्तविक स्वरूप पर मोलिक भत्तेद थे। विदेशों में, विशेषतः मध्य एशिया तथा चीन में, बोद्धधर्म के प्रचार का अध्य महायानों बोद्ध-भिन्नताओं को ही है।

बोद्ध धर्म प्राचीन लाल में धर्मने प्रचार-कार्य में यहाँ सफल हुआ, इस समय मानव जाति का तृतीयांश बोद्धधर्म का उपासक है। परं इसको लोकप्रियता और सकलता के कारणों पर प्रकाश लाना भावशक्त जान पड़ता है।

बोद्ध धर्म के आकर्षण

(१) बोद्धधर्म की लोकप्रियता के कारण—बोद्ध धर्म ने कई विशेषताओं से जनता को अपनी ओर प्राकृष्ट किया था। भगवान् कुद्र के जादेश उस समय की लोक-भाषा (पाति) में थे, उनकी विज्ञान उपनिषदों के उपदेशों की भावित मूरूम और पातिक कर्मकाण्ड की भावित जटिल न होकर धर्मन्त समझ थी। कुद्र प्रायः अपने उपदेशों में सुन्दर वृष्टान्तों का प्रयोग करते थे, इससे ये बहुत गुबोंध हो जाते थे। कुद्र द्वारा प्रतिपादित प्राचार-प्रचान धर्म के द्वारा मन्त्रे स्थैर हुए थे, उसमें वाह्यण, शूद्र, स्त्री-पुरुष सब द्वारा अवश्यक हैं, किसी प्रकार का वर्ग-नेद, क्षेत्रनीच या जात-पौत्र नहीं था।

(२) प्रचारकों की सन्देशक लगत—भगवान् कुद्र स्वयमेव आदर्श प्रचारक है। उत्थान और अप्रमाद उनके जीवन का मुख मन्त्र था। ४५ वर्ष तक ये स्वयं आने विद्वान्तों का प्रचार करते रहे तथा धर्मने विषयों को 'बहुवन हिताय, बहुवन मुच्याय' का संदेश सुनाने की विरणा करते रहे। उनका यह सौलाघ्य था कि उन्हें अत्यन्त उत्साही अनुयायी मिले। विद्य के इतिहास में जिती भी सहायुक्त के प्रमुखामियों ने अपने गृह के बाइंदा का पालन करते ही इनका उत्साह, इसी सत्यपर्याप्ती और इनका धर्म प्रदर्शित नहीं किया, जितना गैतम-कुद्र के दिखाने ने।

(३) राज्याध्यक्ष—बोद्ध धर्म का विश्व-व्यापी प्रसार समाह योग्य के प्रमलों से हुआ तथा मिनापार, कनिक तथा पात्तवर्णी राजाध्यों के संरक्षण तक समर्पित हो इसे बहुत बहुत मिला।

(४) संघ-व्यवस्था—गौतम कुद्र ने प्रब्रातन्य की प्रतिष्ठा पर अपने संघ की संघटन किया था, ये संघ महस्ती महियों नहीं थे, अपनी योग्यता से इनमें कोई भी

व्यक्ति उच्चतम पद पा सकता था। संघ ने बौद्ध धर्म की उन्नति और विकास में बड़ा नाम लिया। इसे नागार्जुन, यस्तग, वसुकर्ण, यायेदेव-जैसे धूरत्थर विदान, शीषि धर्म, शीपंकर शीजान-जैसे प्रचारक, धर्मकीति धीर दिल्ली-जैसे बाई-विवाद-महारथी, विमुतवस्त्र, कमलयोज-जैसे सेवक, कुमारबीज, जिनमित्र-जैसे धनुवादक उत्तम करने का थेय है। इनसे एविया के बड़े भाग को प्रकाशित करने वाले बौद्ध ज्ञान का व्यापक प्रादुर्भृत एवं प्रसारित हुआ।

भारतीय संस्कृति पर बौद्ध धर्म का प्रभाव

(१) कलाओं की उन्नति—बौद्ध धर्म ने हमारी संस्कृति पर प्रभाव का से निम्न प्रभाव डाले—बौद्ध धर्म के प्रभाव से प्राचीन भारत में मूर्ति, विज, स्थापत्य आदि कलाओं का उच्चतम विकास हुआ। पुराने जमाने में कला धर्म की बेटी थी। वैदिक युग में इसका अधिक विकास सम्भव न था। उस समय के धर्म का प्रभाव तत्त्व यज्ञ थे। यज्ञ करने के लिए विशाल एवं भव्य मण्डप बनाये जाते थे। पूरे याते जाते थे, किन्तु इनकी धारु यज्ञ की समाप्ति तक ही होती थी। उस समय कला के विकास का कोई स्थायी आधार न होने से उसको विदेष उन्नति नहीं हुई। बौद्धों के स्तुप और विहार स्थायी थे, यतः उनके धार्थ्य से सभी कलाएँ बहुत उन्नत हुईं। प्राचीन मूर्तिकला की अनेक सुन्दर प्रतिमाएँ भगवान् बुद्ध से सम्बन्ध रखती हैं, अत्यन्ता की चित्रकला का उद्देश्य बौद्ध विहारों को सतंकृत करना था, काले आदि की बौद्ध गुफाएँ हिन्दू मन्दिरों से पुराने स्थापत्य की उन्नति सूचित करती हैं। बौद्ध मतावलम्बियों द्वारा बनवाये गये सौची, भारहृत, अमरावती के स्मृत-तथा पर्याप्त के लिलास्तम्भ भारतीय कला के सबौत्तम समूहों में से हैं। बौद्धों का अनुसरण करने वैनी ने कला-कोशल की उन्नति की तरफ बढ़ में जैवों और वैण्णवों ने भी इनका अनुकरण किया।

(२) सरल धीर सोक्षिष्य धर्म—बौद्ध धर्म भारत का पहला सरल धीर सोक्षिष्य धर्म था। इससे पहले का वैदिक धर्म कर्म-काश्च के कारण बहा जटिल था, उपके अधिकारी केवल ब्राह्मण, अविष्य धीर वैद्य थे। इसके विपरीत यह सरल तथा नीतिक प्राचरण पर बह देने लाला था धीर इसका द्वारा सबके लिए लुका था। इसने पहली बार धर्म में व्यक्तित्व को प्रधानता दी। वैदिक धर्म में प्राकृतिक वाचित्यों के इतीक देवता प्रधान उपास्य थे, उपनिषदों में निरुण बहु के भीत भाग्य गये थे। ये दोनों साधारण जनता के लिए दुर्कड़ हैं। बौद्ध धर्म में भगवान् बुद्ध का अप्स्तित्व बहुत प्राकृत का, वे शीघ्र ही जनता की पूजा के पात्र बन गए, मृतियों द्वारा उनकी उपासना होने लगी। इसने हिन्दू धर्म के विकास पर गहरा प्रभाव डाला, उसमें अक्षित उत्तर को प्रधानता मिली।

(३) मूर्ति-पूजा का प्रसार—यह मम्भव है कि भारत में मूर्ति-पूजा का स्थापक प्रसार बौद्ध धर्म के द्वारा हुआ। पहले-पहल बौद्धों ने अपने धर्म-प्रसरणक की

मूलियों बताइ, इसका धनुसरक करके हिन्दुओं ने भी अवसाधी की- प्रांतमार्ण वसाकर उन्हें गवना दिए कर दिया।

(४) संघ-व्यवस्था—भिन्न-सर्वो द्वारा वर्ष-प्रसार बीड़ पर्म की एक बड़ी विधेयता है। यद्यपि संघ पद्धति का दीयगेश करने वाले महात्मा पाल्व थे, किन्तु प्रजातन्त्र-प्रणाली के द्वारा वर इसका पुराण विकास महात्मा बुढ़ने ही किया। इनसे पहले हिन्दु पर्म म तातोवनों म तास्या करने वाले गृहियों तथा तात्त्व का प्रसार करने वाले गृहियों का ज्ञानका तो भिन्नता है किन्तु उनमें यथना वंशज चनाकर कार्य करने की अलिङ्गटी नहीं थी। हिन्दुओं के बत्तेमान संग्रामो-सम्प्रदायम्, चलाउं थीर और सर्वों की एक बड़ी विधेयता यह थी हि हमारे देश में संघातित कर में विधा-प्रसार का पहला प्रयास इस्तोत्र ही किया। इस प्रकार पहला व्यवस्थित विधा-केन्द्र तात्त्वका बीड़-निहार था।

(४) बीड़िक स्वतन्त्रता—वासु विज्ञान के अंत में दीदों को एक बड़ी विवेषता बीड़िक को स्वतन्त्रता है। हिन्दू विचारण-वेद को परम प्रमाण मानते हैं तो यह दीदों से उसे प्राप्तमिक नहीं मानता। महामाता द्वय सदैव ज्ञातव्रत विचार को प्राप्तमाहित करते हैं, उन्होंने बार-बार यहाँ लिखा है कि यह उपर्युक्त दिया कि मेरे मालों को मुख-वचन सामनकर भूत स्वीकार करो, उनको आपनी बुद्धि वे कल्पीती पर दें से ही करो, जैसे स्वसुनकार सोने को करता है। जिवाण से पहले, उन्होंने लिखा है कि यही उपर्युक्त दिया था कि वे 'आत्मदोष' हों, अपनी वास्त्व को आपना मार्ग-दर्शक दीपक बनायें। यही बारज था कि बीड़ि दायंमिकों ने मिवधि होकर दस्त की सभी सम-स्थायी पर स्वतन्त्रता-पूर्वीक विचार लिया, इस लोक में उनके विचार मारतीय दस्तन के उपर्युक्त विकास को सूचित करते हैं। नामाचूर्ज, प्रसग, वसुवरगु, अमेकीति विश्वके दार्शनिकों की पहली पक्षित में थाए हैं। इसका स्पष्ट प्रभाव है।

(६) उच्च नेतिका आदर्श—बोड घर्म ने सदाचार, लोकनेता और यात्रा के दूसरे आदर्शों पर वर्ण दिया। इसमें पोइं संदेश नहीं कि उनसे पहले भी उपनिषदों में यथा महाभारत में इस पहले पर वर्ण दिया गया था किन्तु किरभी उनसे याप्ति-रण जनता के सदाचार का स्वर बहुत ऊँचा नहीं उठा था। महायानियों ने बोधिसत्त्व के रूप में लोक-सेवा का उदात्त प्रादर्श जनता के सामने रखा। बोधिसत्त्व अपनी मुमिलते की वरचाहन करके तिरन्तर प्राप्ति-भाव का दुःख दूर करने के लिए बहु-संवद्ध भावन-यात्रा करने को उच्चत रहता था। उसको यह आकांक्षा थी कि मैं महायान का सहायक, भट्टी का मार्ग-दर्शक और दीन-दुखियों का सेवक बनूँ। इस प्रादर्श ने जहाँ बोड घर्म के प्रसार में जहाँ सहायता दी, वहाँ दूसरी प्रोट हिन्दू घर्म पर भी यहाँ प्रभाव डाला। भागवत पुराण में रमेश्वर (६२३१२) पौर ग्रन्थ की उल्लिखियों इसके सुन्दर उदाहरण हैं।

(३) लोक-साहित्य का विकास—बोड धर्म से बोल-चाल की भाषा में विस्तृत साहित्य की उत्पत्ति हुई, पाति का समूचा साहित्य बोड धर्म के प्रभुदय का फल था। किन्तु इस दोनों में बोडों की प्रापेश्वर जैनों ने अधिक कार्य किया। उसका आगे उल्लेख किया जायगा।

(४) भारतीय संस्कृति का प्रसार—विदेशों में भारतीय संस्कृति के प्रसार में बोडों ने प्रमुख भाग लिया। भाष्य एशिया, चीन, कोरिया, मंचुरिया, लमो, ल्याम, मलाया, चाक, मुसाका तथा लंका में हमारी संस्कृति प्रशान्त कर से बोड-प्रचारकों द्वारा पहुँची। यहातर भारत के निर्माण में उन्होंने सबसे अधिक महायशा दी।

भारतीय संस्कृति में जैनों की देव—बोडों की भाँति जैनों ने भी भारतीय संस्कृति के विकास में बहुत बड़ा भाग लिया। धार्मिक धोव में उनको सबसे बड़ी देव अर्हिसा का चिदानन्त है। ग्राम: अर्हिसा को परम धर्म वर्म बनाने का विषय बोडों को दिया जाता है, किन्तु यह लोक-प्रचलित धारणा देतिहासिक दृष्टि से भान्त है। उसके बास्तविक जन्मदाता जैन ही है। जैनों के 'ज्ञानेकता' और 'स्पादुआद' के सिद्धान्त यह गिरजा देते हैं कि प्रत्येक काम में व्यापिक सत्य है, सम्पूर्ण सत्य के लिए सभी विभिन्न दृष्टिकोणों का अध्ययन आवश्यक है। इससे भारत में पहुँचे से विद्यमान साहित्याकार और उच्चाला की प्रवृत्ति गुट हुई। जैनों की कला और भाषा-सम्बन्धी देव विदेश कर से उत्तेजितीय है। बोडों की भाँति इन्होंने भी अपने शीर्षकरों की समृद्धि में उत्तम, प्रस्तर-वेदिकाएं, असंकृत तोरण स्थापित किये। अबज बेलगोला में गोमतेश्वर-स्तम्भ में गूर में करकल के ताम से प्रसिद्ध वाह्यती की प्रतिमाये संसार की सात्त्विक-जलक सूतियों में से है। देववाडा का जैन-मन्दिर कला-मर्मजों की सम्मति में ताजमहल का प्रतिस्पर्शी है। देव के भाषा-विषयक विकास में जैनों का कार्य अद्वितीय है। हिन्दुओं से अम-प्राप्ती की भाषा का माझम सदैव संस्कृत रक्षा। बोडों ने मुक्त में पाति भवान रक्षा; किन्तु बाद में संस्कृत को ध्याना लिया, किन्तु जैनों ने अम-प्रचार तथा उच्च-सिद्धि के लिए विभिन्न प्रदेशों तथा विभिन्न कालों में प्रचलित लोक-भाषाओं का उपयोग किया। इस प्रकार उन्होंने 'प्राकृत' भाषाओं के विकास पर बहुत प्रभाव डाला। कई लोक-भाषाओं को गर्वप्रदम साहित्यिक रूप देने वाले जैन ही थे। कलाह का प्राचीनतम साहित्य जैनों को हुआ है, प्रारंभिक लाभिल साहित्य के नियोग में इन्हीं का बड़ा भाग है। संस्कृत, प्राकृत तथा आधुनिक हिन्दी, मराठी और गुजराती के मध्यवर्ती रूप भारती में अलेक जैन-रचनाएँ मिलती हैं। जैनों ने संस्कृत में व्याकरण, कोस, दर्शन आदि विषयों पर महत्त्वपूर्ण मान्य लिखे।

भक्ति-प्रधान पौराणिक धर्म का उदय और विकास

पौराणिक हिन्दू-धर्म के विकास के दो युग—वरेमान हिन्दू धर्म तोक-प्रचलित पारणा के प्रमुख सत्ताओं काल से चला जाने वाला समझा जाता है। किन्तु ऐसी-हासिक दृष्टि ने यह विचार डीक नहीं। वरेमान काल से हिन्दू धर्म में पूजे जाने वाले प्रधान देवताओं—विष्णु, शिव, सूर्य, दुर्गा, यामपति प्रभूति का तथा इनकी भक्ति-प्रधान दपातना का विकास मने जाने अनेक वित्तीयों में जाकर पूरा हुआ है। प्रापुनिक हिन्दू धर्म को यह कप मुक्त सुग में प्राप्त हुआ। इसके उद्भव और विकास को दो मुख्य युगों में ब्रह्म वा मक्ता है—(१) उद्भव काल १०० ई० पू० से ३०० ई० तक का यार्थात् ६०० वर्ष का यह काल भक्ति-प्रधान समवायों के बीजक्षण, धर्मशिल और प्रबलित होने का युग वा, किन्तु इन सारे समय में बौद्ध तथा जैन धर्म की प्रवक्ष्या के कारण इसका पूरा विकास नहीं हो पाया। ३०० ई० की मध्यांता धर्मियों के धरण पर नियत की गई है। इस काल के १५०० से धर्मिक विवर मिलते हैं, इनमें धर्म से भी जग जेता दीव, बैलव भवता हिन्दू धर्म के मन्त्र समवायों से मामन्त्र रखते हैं, तो यह सब बौद्ध और जैन धर्मों का उत्तरवाक्य है। (२) उत्तर्यं काल (३०० ई०-२२०० ई०) जौधी याती ई० से भारत के धार्मिक इतिहास में पासा पलटने लगता है। इस समय में हिन्दू धर्म का निरन्तर उत्कर्ष और बौद्ध तथा जैन धर्मों का व्यापक होने लगता है। यही पहले इन धर्मों कालों की मामन्त्र विशेषताओं का वर्णन किया जाता है और वापसे दीव और बैलव धर्मों के विकास को संक्षिप्त रूपरेखा दी जाती है।

उद्भव काल

यही ३० ई० पू० में भारत में एक प्रबल धार्मिक जाग्रिति हुई थी। पिछले सप्त्याव में हम यह देख सकते हैं कि इससे जैन तथा बौद्ध भास्त्रियों ले जिस संरह विकासित हुए, भक्ति-प्रधान धार्मिक प्रान्तीयों भी इनकी भागि पूरा से धर्म के विरुद्ध धर्मन्त्रों से उत्तर दूष। उपनिषदों ने धार्मवर-प्रधान विद्वत् कर्मकाण्ड का और यज्ञों का विरोध करके निर्गुण वाप, कर्मवाद, युक्ति वादि निदानों का प्रतिपादन किया। किन्तु ये आधारत्म सत्त्वों की धार्मिक धाराकाशायों को पूरा नहीं कर सकी। उपनिषदों का इन्द्रियातीत, धर्मान्वय इन्हीं इन्हीं इन्हीं पूर्व धर्म सूक्ष्म वा कि केवल

तुदिजीवी उसका आन प्राप्त कर सकते थे। स्पूत-तुदि नामान्य मनुष्य के लिए वह भटीव दुर्भाग था। उपनिषदों की दूसरी अप्युरांता पह भी कि उन्होंने मुक्तिप्राप्ति के लिए कर्मकाण्ड-प्रधान यज्ञों का तो ऋचन हिता; किन्तु उसके स्थान पर इह साक्षात्कार के अवण, मनन, निदिष्यासन तथा समाधि के जो साधन बताये उनका यातन भी साक्षात्कार जनता के लिए सम्भव नहीं था। सभी व्यक्तियों से वर-बाद छोड़कर परिवारक बनकर इह-प्राप्ति की वासा करना दुरासान-भाव है।

प्राचीक धार्मिक कान्ति के मूल विचार—उपनिषदों ने यज्ञों का वाप्तन तो किया, किन्तु उसके स्थान पर कोई नई नीतिप्रिय पद्धति नहीं रखी। अतः साक्षात्कार की वामिक प्राप्ताशा और प्राप्तदेवता को पूरा करने के लिए ये नेता शौर पर्म उत्तम हैं। इन्होंने उपनिषदों की मूल विचारधारा को सुरक्षित रखते हुए पुराने धर्म और परम्पराओं के विकल्प कान्ति की, ये वामिक सम्प्रदाय स्वाप्ति किये। इनमें जार विचार प्रधान है—

(१) वाह्यग-पर्वतों द्वारा प्रतिपादित यज्ञों का विरोध।

(२) पशु-वृति का विरोध शौर अहिंसा की महत्ता।

(३) आत्मा, परमात्मा-सम्बन्धी तुद प्रश्नों की उपेक्षा। यस, दम इन्द्रियनिश्चह पर वत, धार्यात्मिक दृष्टिकोण की उपेक्षा व्यावहारिक दृष्टिकोण की प्रधानता, प्राप्ताशन्तुदि की महत्ता।

(४) अन्यवत ऐं निर्गुण इह के अवण, मनन द्वारा साक्षात्कार के स्थान पर भक्तिपूर्वक सगुण ईश्वर की उपासना का विश्वास।

आस्तिक आन्दोलनों का जन्म

(क) भागवत धर्म—आस्तिक आन्दोलनों ने पहले तीन एहत्यों पर वत दिया, किन्तु आस्तिक आन्दोलनों में चौथी बात पर भी पूरा वत दिया नया। नास्तिक आन्दोलनों में चौदू शौर जैन प्रधान से तथा आस्तिकों में भागवत और लैव। हमें निरीश्वरवादी सम्प्रवायों के उद्भव तथा इनके प्रवर्तकों का इतिहास काफी धर्मी तरह जात है किन्तु आस्तिक धर्मों के धाराभिक इतिहास पर धर्मकार का पढ़ी पड़ा हुया है। उपनिषदों ने हमें इनके उद्भव की कुछ अस्पष्ट भलक मिलती है। भागवत सम्प्रदाय के जन्मदाता देवकी-पुन कुण्ठ और धार्मिकस के शिष्य हैं। आन्दोलक उपनिषद् के अनुसार मूर ने शिष्य को एक नये आत्मयज्ञ की विकारी भी (३।१०।४-६), उसकी विकारा तपस्यार्थी, दान, छठु भाव, अहिंसा तथा सत्य वचन था। इसी धर्म के एक धन्य प्रतिष्ठापक राजा वसु ने यज्ञों में पशु-वृति का विरोध करके, हरि की उपासना पर वत दिया था। वह हरि निर्गुण इह नहीं किन्तु भक्त द्वारा उपास्य देवतिक ईश्वर था। यह यज्ञ और तपस्या करने वालों द्वारा प्राप्त नहीं था, केवल भक्त को ही अपने दर्शन देता था। यज्ञों और उप की निरधंकता, यज्ञों में पशु-

हिंगा की नियन्त्रणा भवित्वन्तर को प्रधानता द्वारा भागवत मन्त्रप्रदायी ने पुराणे विश्वासी और परम्पराधी के विषय कान्ति को, किन्तु ईश्वर की सत्ता मानसे के कारण वह कान्ति बोधशीर्खेनों को कान्ति को तरह उत्तमास्तक और दूरसामी नहीं थी।

(३) अंथ यमे—भागवतों के अतिरिक्त उपनिषदों से लेखों के ईश्वरवादी भक्ति सम्प्रदायी का स्पष्ट रूप से जान होता है। वेताश्वस्त्र उपनिषद् में (३। २। ४। १६-१७) इसका प्रतीकादम है। उपनिषदों के नियुति वहाँ में सन्तुष्टों द्वारा समझे, प्रीति तथा उत्तमता किंवद्दने योग्य वैचक्तिक ईश्वर की वास्तवा का विकास संबंधी स्वाभाविक दर्तीत होता है। उपनिषद् में यित्र का इसी काय में वर्णित किया गया है। किन्तु यह पहले दृष्टा है कि यित्र की ही इस काय में कल्पना क्यों ती नहीं। श्री रामकृष्ण भजारकर इस विषय पर, यहाँ स्वीकृत करने के बाद इस परिचायम ग्रन्थ गुरु गुरु है कि यित्र अन्युपं देवता न्या। अमादेवाद्वायी-में इसकी तथा इसके लिये की पुजा व्यापक रूप से प्रखलित थी। मोहनजोद्धरों की शुद्धाइयों में वह काल पूर्ण हो गई है। अतः आपनों ने पूजा के लिए सबै प्रथम इसी देवता को चुना। इस प्रकार उपनिषदों के स्वयंकर वद्य के सिद्धान्त के साथ वैचक्तिक ईश्वर की अक्षित-प्रधान पूजा का शीघ्राण्ड दृष्टा हुआ।

धार्मिक कान्ति की विशेषताएँ—इठी अ० ई० प० की उपनिषद् धार्मिक कान्ति के सम्बन्ध में लिखा वालों कियुप्रथम से उल्लेखनीय है।

पहली तो पह कि यहें सभी सुधार-प्राणीजनों का उद्भव भास्तुर्य संस्कार के केन्द्रस्थित कुम-नाशात से द्वारा समराज्ञों के स्वतन्त्र व्यापारवरण में हुआ। गोतम गुढ़ शास्त्रों के तथा वर्षमास भवाद्वारा विभिन्नियों के द्वारा शोकल सालतों के प्रवर्तनमें हुए थे।

दूसरा महसूपुण्य काय है कि इस कान्ति से स्वतन्त्र विचार और भावेषय योग्य प्रवृत्ति को बत मिला। वीचती इठी अ० ई० प० में भारत में हमें असाधारण वौद्धिक कियाधीजनता दिलाई देती है, जागी ने पुरानी विचार-प्रणालियों से बाहर निकलकर स्वतन्त्र कर से सोमना शुरू किया। इसका परिचायम नहीं नहीं विचार-धाराएँ और सम्प्रदायम थे। तीव्र वाचों के ६३ अमादेवाद्वायों का पहले उल्लेख हो चुका है। इसमें अच्छे-दुरे सभी प्रकार के विचारक थे। एक और वहीं इस स्वतन्त्र विचार-धारा में बोड, ऐन सम्प्रदाय वैदा किये, दूसरी ओर जागीओं को भी वर्णया। भारतीय दर्शन के प्रधिकार्य विजारों का प्रादुर्भाव इनी काल में हुआ।

तीसरा काय है कि इस कान्ति में पहले बोडों और जैनों की राज्याध्य द्वारा भागवत या भौत धर्म की प्रवेश व्यक्तिक सफलता मिली। भौत राजा गहले वो धर्मों के रक्षक मे। अन्द्रभूषण और सम्प्रति ने बैतूं धर्म की तथा धर्मों के बौद्ध धर्म की संरक्षण किया। इसके द्वारों धर्मों का उत्कर्ष हुआ। पहले पह क्याया जा चुका है कि राज-सरकार के प्रतिरिक्ष वैदेश स्वाभाविक भावयों के कारण भी ये धर्म शोकप्रिय हुए थे।

बीड़ जैन धर्म का हिन्दू धर्म पर प्रभाव — बीड़ एवं जैन धर्म की सफलता का हिन्दू धर्म पर प्रभाव पहला स्वाधारित था। विरोधियों के प्रबल होने पर धार्मिकों तथा कहरप्रियों ने धर्माचार छीक करना शुरू किया। इन धर्मों के धार्मियों तथा नूनीतियों का उत्तर देने के लिए अपने सिद्धांतों पर मन्त्रज्ञों को शत्रुघ्नावद एवं तांकनागत कर दिया। विरोधियों के धार्मियों से रक्षा के लिए उन्होंने धर्म एवं दर्शन-सम्बन्धी विचारों को सूतियों, रामायण, महाभारत तथा विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों में अवस्थित कर से उत्तिवद्ध किया तथा बीड़ और जैन धर्म किन तत्त्वों के कारण लोकाधिक हो रहे थे, उन्हें अपने धर्म में समाविष्ट करके उन्होंने हिन्दू धर्म को सुदृढ़ किया।

४००-२०० ई० पू० तक भीरु पुग में घात-प्रतिधात और किया-प्रतिक्रिया की यह प्रवृत्ति प्रबल रही और इसके परिणाम २०० ई० पू० के बाद हमें स्पष्ट कथ से दृष्टिगोचर होने लगते हैं। उग्रू कर २०० वर्षों में ही महत्वपूर्ण पटनाएँ हुईं।

(१) दांतों का निर्माण—दांतों के मुत्तमूत विचार तो बहुत प्राचीन थे किन्तु उन्हें सूक्ष्मवद्ध करके बास्तव कथ इसी पुग में दिया गया। प्रथम: कपिल, कपाद यादि की धर्मों का वर्णन समझा जाता है। पिल्ल वे प्रधान स्थ से पुराने विचारों की गुरुत्वावद्ध एवं मुख्यत्वात्पत्ति कथ से उपस्थित करने वाले हैं। इनका विशेष वर्णन अगले पर्वाय में होगा।

(२) हिन्दू धर्म का नया कथ—इस समय समृद्ध हिन्दू धर्म को पुराने यज्ञ-प्रधान कथ के स्थान पर नया भक्ति-नवात औराणिक कथ दिया गया। यशस्वि मुख्यमित्र यादि राजाधीने अस्वसेव प्रादि धर्मों को पुनरुज्जीवित किया। किन्तु यह स्पष्ट या कि वैदिक धर्म वैदिक समाज के साथ था, न वह समाज वापस या सकला था और न वह धर्म याने पुराने रूप में जीट सकता था—बीड़ धर्म ने बनता के विचारों में जो परिवर्तन किया, उसे मिटाया नहीं जा सकता था। तृष्ण ने जन-साधारण को नये धर्म की ओर दिखाई दी, जहाँचार और सम्बक्ष बीबन ही यास्तकिक धर्म है, यह विचार दिया था। इससे जनता में जो जागृति हुई थी, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। भले इस पुग का सुधार-यान्दोलन बीड़ मुख्यार की सब मुक्त प्रवृत्तियों की अपसारि हुए थे। बीड़ धर्म यदि जनता के लिए था तो हिन्दू धर्म का नया कथ उससे बड़ार जनता को बस्तु बना। उस समय हिन्दू धर्म को निम्नलिखित दो उपायों से लोकप्रिय बनाया गया।

(३) लोक-प्रवृत्ति देवताओं को वैदिक देवता बनाना—धार्मों के निम्नसे दर्जी धीर अनायं जातियों में काई प्रकार के देवताओं, यज्ञों, मूरत-प्रतीतों, जह पदार्थों तथा उन्होंको पूजार्थ प्रचलित थीं। बीड़ धर्म ने यहाँ को मुठ का उपायक बनाकर उनकी पूजा चलती रहने दी थी। यह हिन्दुओं ने भी उनका अनुकरण किया। लोक-प्रवृत्ति देवताओं को मध्यपूर्व रखते हुए उन्होंने उस पर वैदिक धर्म की हृन्ती-सी छाप

भ्रकित करके उन्हें पहुण बन लिया ; मधुरा में वासुदेव (शीकृष्ण) की पूजा प्रचलित थी, उसको अब वैदिक देवता विष्णु से मिलाकर उसकी उपासना वेदानुयायी कन्तुर-पवित्रों के लिए प्राप्त बना दी गई। वैष्णवों को भी जया का दिया गया। 'वैदिक धर्म' के पुमराहण की नहर ने उस समय पूजे जाने वाले प्रत्येक जड़ और मनुष्य देवता में किसी-न-किसी वैदिक देवता की जात्या कुक दी।' वत्तवरों के भगवर देवी-देवता काली और लकड़ के लक बन गए। समुद्र भारतवर्ष के देवता विष्णु, सूर्य, स्कन्द पाण्डि विष्णु यक्षितरों के सूखक बने। वहाँ किसी पुराने पुरस्का की पूजा होती थी, उसके अन्दर भी भगवान् का 'अवतार' किया गया। वह एक भारी रामन्दय को लहर थी, जिसने जहाँ कही पूज्यभाव या दिव्यभाव जिसी भी रूप में पाया, उसमें किसी-न-किसी देवता का 'संकेत' रख दिया। प्रत्येक पूज्य पदार्थ की किसी-न-किसी देवतावित का प्रतीक बना दाला। 'देव ज्योति' को मानो उसने उन स्थग्न से और वैदिक कवियों के कल्पना-बगत से उत्तरकर भारतवर्ष के कोनेकोने में पहुँचा दिया; जिसमें जन-नाथारण की सब पूजाएँ घायल्याण हो उठी और उनके जड़ देवता भी वैदिक देवताओं की भावमय भारतवर्षों से अनुप्राप्ति हो उठे।'

(ब) सोकप्रिय धर्म-धर्मों का निर्माण—बौद्धों की सोकप्रियता का एक बड़ा कारण जातक और अवदान साहित्य था। इनमें बुद्ध के पहले जन्मों तथा लोपितात्मों की कहीं रोचक कथाएँ होती थीं, किनमें उनके दया, दान आत्मत्याग आदि गुणों पर बड़े सुन्दर डंग से प्रकाश दाला जाता था। महात्मा बुद्ध सुन्दर कथाओं और दृष्टान्तों द्वारा धर्म के गुड़ मर्म जनता को समझाते थे। उनके शिष्यों ने इस कला को उपर्युक्त जातक तथा भवदान साहित्य में प्रदानात्मा तक पहुँचा दिया। प्राचीन वैदिक साहित्य में इस प्रकार का सोकप्रिय साहित्य नाम-नाम था। सूत पुराण और इतिहास की गायाएँ धर्म नाते थे। किन्तु उनका प्रधान उद्देश्य प्राचीन बौद्ध पुराणों के शूरतापूर्ण कारणामों का ही बलान था, धर्म-प्रचार नहीं। ये गायाएँ बड़ी सोकप्रिय थीं। अब इस युग में इनके द्वारा धर्म-प्रचार का कार्य लिया जाने लगा। रामायण और महाभारत के नवीन संस्करण तीयार किये गए। महाभारत का तो प्रधान उद्देश्य प्राचीनों द्वारा नये धर्म की विजाप्ति का प्रतिपादन था। इसमें शीकृष्ण को देवता और विष्णु का धर्म बना दाला, विष्णु और शिव की महिमा के गोत नाएँ, भगवद्गीता द्वारा भागवत समें का प्रचार किया। ५०० ई० पूर्व से २०० ई० तक की भारत की समस्य सभी धार्मिक और दार्शनिक विचार-पारामों का इसमें तमाखें है। यह अन्य हमारे धार्मिक विकास का सुन्दर उदाहरण है। वहसे यह 'मृतों' तथा 'चारणों' द्वारा जाया जाने वाला और रस-पूरण कार्य हो या, इसकी सोकप्रियता के कारण इसमें सभी धार्मिक समस्पादों के स्वयं में समावेश करके इसे हिन्दु धर्म का न केवल विशाल विद्व-कोष, किन्तु प्रचार का भी प्रबल साधन बनाया गया। यही हाल रामायण का हुमा। इसको मुख कथा में राम एक धार्दर्शी और पुरुष था, वह दूसरे से छठे काष्ठ तक इसी रूप में चिह्नित है; किन्तु इस मुख में कम-से-कम दूलरी-

श० ई० पू० तक उसमें पहला और सातवाँ काष्ठ तुड़ा, राम को भी देवता बना दिया गया। इन दोनों महाकालों ने नव्हैन इवरखादी, भास्ति-प्रधान धर्म वैष्णव धर्मों को लोकप्रिय बनाने तथा साधारण जनता में प्रचलित धर्म को नया कल देने में मुख्य भाग लिया। यत्तेमान हिन्दू धर्म की धाराएँ-जिन्होंने राजायण, महाभारत और पुराण ही हैं। इनमें से पहले दो धर्मों को यत्तेमान रूप इस सुग में मिला और पुराणों को गृह्णा युग में।

धर्म में हमें ६०० ई० पू०-३०० ई० तक के काल में नास्तिक-धास्तिक धर्मान्दोलनों के विकास, पारस्परिक संघर्ष और ऐतिहासिक उत्तार-भूद्वार पर भी संक्षिप्त दृष्टिपात्र कर देना चाहिये। पहले ३०० वर्ष तक तो जिसी धर्म का विदेश उत्कर्ष नहीं हुआ। नन्द राजाओं तथा चन्द्रमूर्ति भौपूर्व (३२१-२८६ ई० पू०) के संरक्षण से जैन धर्म सर्वप्रथम सारे भारत में फैला, औढ़ धर्म को समाज अपोक्त (३७२ ई० पू०-२३० ई० पू०) का राज्यालय प्राप्त हुआ और इसका भारत में तथा भारत से बाहर भी वर्षों, लंबा और लोतन (मध्य एशिया) में प्रसार हुआ। पहली श० तक यह भीन पहुँचा और भीन से कोरिया होते हुए जापान में पहुँचा। २०० ई० पू० से १०० ई० तक भारत पर धारकमण्ड करने वाले धर्म और कुपाण राजाओं ने इसे स्वीकार किया।

वैदिक धर्म के पुनरुद्धार की लहर—जिसु भौपूर्वों के पतन के साथ भारत में औढ़ धर्म के पतन तथा वैदिक धर्म के पुनरुद्धार की लहर का आरम्भ हुआ। भौपूर्व राजा औढ़ और जैन धर्मों के संरक्षण से, वे यहनों के धारकमण्डों से देश की रक्षा नहीं कर सके। जनता इसका प्रधान कारण उनकी धर्म-विजय और यहिमा की नीति को समझती थी, यत् ए धर्म कम-से-कम उस समय उनकी दृष्टि से गिर गए। पुष्यमित्र शुक्र ने वैदिक धर्म की 'ुनः प्रतिष्ठा' का यत्न किया, अव्यवेष यज्ञ किया तथा उसे वैदिक धर्म को राज्यपर्व बनाया किसु औद्यों का दमन भी किया। इसी समय उसी मनुस्मृति में जहाँ जुआरियों को राष्ट्र से नियाननेवा विभान है, वहाँ औद्यों और जैनों (पालवर्षस्यों) के निवासिन का भी उपदेश है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि १८७, ६० पू० में वैदिक भूत का सीधा विरोध करने वाले औढ़, जैन आदि नास्तिक सम्प्रदायों के विद्युत-स्पष्ट प्रतिक्रिया उत्पन्न हो गई थी। किर मी औढ़ धर्म मिनान्दर, कनिष्ठ शार्दूल विदेशी राजाओं को लुप्त-जाया में कलता-टूलता रहा। तीसरी श० ६० में कुपाणों की सत्ता का उच्छ्रेद करने वाले विवर के उपासक भारशिव राजाओं ने हिन्दू धर्म को राजमत बनाया, पुष्यमित्र के समान एक नहीं उस अव्यवेष यज्ञ किए। उनसे तथा उनके बाद के मुख्य राजाओं से संरक्षण आकर हिन्दू धर्म का उत्कर्ष होने लगा और औढ़ धर्म में धीर्घता आई।

हिन्दू धर्म का उत्कर्ष-युग—पौराणिक काल

[३०० ई०—१२०० ई०]

वीरों द्वारा ३० ई० से भारत में बीड़ तथा जैन धर्मों की सुलभा में हिन्दू धर्म को प्रभान्तर मिलने लगी। १२वीं शती के अन्त तक उसके दोनों प्रतिद्वंद्वी समाप्त ही गए। बीड़ धर्म का भारत में कोई नाम लेवा यानी देवा तक न बचा और जैन धर्म का प्रभाव नमूण्य हो गया। इस युग में धर्मिकांश पुराणों की रचना हुई, रामायण और महाभारत की भौति इन्होंने हिन्दू धर्म को लोकधिद बनाया और उसे बहुमान एवं प्रदान किया। इसीलिए पात्रिक दृष्टि से इसे पौराणिक युग भी कहते हैं। इस युग की प्रभाव विशेषताएँ मिलते हैं—(१) देवताओं की प्रतिमाओं की पूजा के लिए बृहत्त धर्मकार्य का विकास तथा मन्दिरों का निर्माण, (२) वाममार्गी तात्त्विक सम्प्रदायों का उत्पाद, और (३) हिन्दू धर्म को अधिक राज्याध्यय मिलना।

(१) कर्मकार्य की अटिलता—मोर्य सातवाहन युग से वैदिक देवताओं और ग्रन्थों के स्थान पर नई मूर्तियों द्वारा अवतारों का मन्दिरों में पूजन धर्मस्थ धूम हो गया था, किन्तु उस काल ने जै मन्दिर, उनकी प्रतिमाएँ और पूजा-मूर्ति बहुत सारी थीं। मूर्तिर्थ दिव्य-सामिलयों का केवल प्रतीक या संकेत थी, जिनके प्राङ्गाम से वह प्रतिमाओं में जान पड़ जाती थी। ‘यज्ञों के बड़े आठम्बहू में देवे हुए उत्तर वैदिक युग के भारिक जीवन में और पूर्व वैदिक युग के भारीभक्त सरल वैदिक धर्म में जितना अन्तर था, मध्यकालीन विशाल मन्दिरों के सिर्फ़ासनों पर बैठने वाले स्वर्ण-रामों से अन्तर्कृत देवताओं के येचीदा किया-कलाओं और छतों, उपचासों तथा जपों के भीरकाधनों में लिपटी हुई मध्य-युग की पौराणिक पूजा में और सातवाहन युग के प्रारंभिक सरल पौराणिक धर्म में उतना ही अन्तर था।’ इस युग में देवताओं के मुनहसी तथा भज्य मन्दिर बनते रहे, उनका साज-भृङ्गार और पूजा एक बहु प्राप्त बन गई।

वाममार्गी पन्थों का जन्म—बीड़ धर्म को अवनति होने पर छठी द्वारा ३० ई० में उसके भारायान सम्प्रदाय से भन्तकार्य द्वारा वायाम का जन्म हुआ। वायामी लुड़ों को वायामुक अवतार धर्मीकिक सिद्धि सम्प्रद देवता समझते थे। इन सिद्धियों के गाने के लिए अनेक गुहायामार्थ करनी पड़ती थी। देव मत में पाशुपत, कापालिक (पश्चोरी), वैष्णव मत में गोपी-लीला, तन्त्र-सम्प्रदाय में आमन्द भैरवी की पूजा आदि, और भृशोंल पन्थ चल पड़े। सब पन्थों का उद्देश्य मन्त्रों तथा इन्य साधनों द्वारा ‘तिज्जि’ प्राप्त करना था।

राज्याध्यय—इस काल की एक प्रधान विशेषता हिन्दू धर्म को धर्मिक राज्याध्यय मिलना था। युक्त सज्जाद् भागवत धर्म के अनुयायी और पश्चोपक थे, उन्होंके वापिसियाली समर्थन से वैष्णव धर्म का विशेष उत्कर्ष हुआ। युक्तों के बाद पिलने गुल, प्रतिहार, चन्देल, मोसरी, कलचुरी, बहरी और कामकृप के बमेन् राजा वैष्णव

या भी है। पाल धर्ममें बोद्धसंघी थे, किन्तु सेन शैव और वैश्यव थे। इसलिए 'पहले चालुक्य' जैनों के प्रोत्तर थे, किन्तु बाद में राजा हिन्दू धर्म के उपराग बने। राजु-जूटों में कुछ जैन थे, किन्तु अधिकांश हिन्दू थे। पल्लवों और होमसल्लों के पहले राजा जैनों के समर्थक थे, किन्तु बाद के पल्लव शैव थे और होमसल्ल वैष्णव। यह स्पष्ट है कि इस सारे राजा में बोद्धों शौद्ध जैनों को राजाओं का पर्यावरण समर्थन नहीं मिला और यह उनके हास्त का एक प्रधान कारण था।

पीराणिक युग की प्रधान पटनाये पुराणों का विकास, समग्रव्यापक हिन्दू-धर्म का जन्म, बोद्ध धर्म का पतन, जैन धर्म का हास्त और शैव, वैष्णव, शाक्त तथा अन्य धर्मों छोटे सम्बद्धायों का जन्म है।

पुराणों का विकास—पुराण भी रामायण और महाभारत को जीति समग्रव्यापक धारोंने काल से जैन धर्म थे, प्राचीन वर्णों का वर्णन इतका एक प्रधान धर्म था। यह, राज्याभिषेक धार्दि के भवसर पर चारण-माट इसका खीर्तन किया करते थे। इनमें कमयः बुद्धि होती रहती थी। महाभारत-बुद्ध के बाद महाप्रितेव्यास ने प्राचीन वज्र-वृत्तों का संग्रह करके पुराण रचे थे। इनमें समय-समय पर नई पटनाएं बुझती चली गईं। इनका बत्तमान का व्यापारतः गुप्त युग का है। कुल पुराणों की संख्या १८ है, इनमें ३ः बहादुर, ४ः विष्णु और ११ः विष्णु का वर्णन करते हैं। यहाँ से यह बताया जा सकता है कि रामायण, महाभारत और पुराण हिन्दू धर्म की प्राचारन-विधान हैं। जातकों ने जिस प्रकार कृपार्थी द्वारा बोद्ध धर्म का प्रसार किया जैसे ही पुराणों ने हिन्दू धर्म का। वैद और वर्णनिषद् के अधिकारी केवल चाहूल, अधिष्ठ, वैद्य थे, किन्तु रामायण, महाभारत और पुराण गुनने का प्रकाशकर लिख्यो और शूद्रों को भी था। इसमें कोई सत्युक्ति नहीं कि पुराण हिन्दू-धर्म के प्राण है।

समग्रव्यापक हिन्दू धर्म—इस युग की दूसरी पटना समग्रव्यापक हिन्दू धर्म का विकास है। सातवाहन युग की समग्रव्यापकी लहर ने भारत की बनेवर और अनाये जातियों के मध्य देवताओं में वैदिक देवताओं की ग्राण-प्रतिष्ठानों की थी। पुराणों ने यहाँ, विष्णु, महेश तीन ही देवता प्रधान बनाए। विश्वसि के विचार द्वारा इन्हें एक ही परमात्मा की उत्पादक, प्रातःक और संहारक शक्तियों का रूप माना। जब ये एक ही शक्ति के रूप हैं तो इनमें विरोध की कल्पना कैसे हो सकती है। हिन्दू धर्म में ऐसे बनेक समग्रव्यापकी पूजा हुए, जिसमें न केवल पुराणा साम्प्रदायिक विरोध छोड़कर नभी देवताओं की पूजा प्रारम्भ की; किन्तु पुराणे वैदिक अनुष्ठानों के साथ इसका कोई विरोध नहीं समझा। समातं सम्प्रदाय याले वैदिक विभिन्नों के साथ विष्णु, विष्णु, दुर्गा, गणेश की भी पूजा करते थे। समुच्चेदव्यापी इस बात पर बल देते थे कि बहादुरानित के इच्छुक मुमुक्षु की वैदिक समुक्तान और तेवामत जौनों का जाम होता जाता है। गुप्त युग में सज्जाटों ने सम्बोद्ध धार्दि वैदिक यज्ञों के साथ वैद्यव धर्म के पालन में कोई विरोध नहीं समझा। विभिन्न सम्प्रदायों को मिलाने के लिए

देवताओं में धर्मेव और तादात्म्य स्वीकार किया गया। निमुक्ति के विचार से तीनों दृष्टव्य शक्तियों के द्वारा ये, जिन्हे तादात्म्यवाचिकों के गत से विषय, और विवरणित हैं। हस्तिहर की मृति इसी विचार का गुरुत्व नहीं देता।

बोढ़ धर्म का स्तोष और जीव धर्म का हास—बोढ़ धर्म की शीणाता और सोम आत्मरिक एवं बाहु दीर्घों कारणों से हुए। आत्मरिक कारणों में भिजपो की विवाहिता, आत्मस्व, नैतिक व्यवसाय, वासमान और सम्प्रदाय-बेतवां हैं। बाहु कारणों में राज्यव्यवस्थ का अभाव, हिन्दू धर्म द्वारा उसकी सभी विवेष्टिताओं का प्राप्ति किया जाना और मूलिकतम् खाकरण है। उनीं दीर्घों जीवों ने महायान बोढ़ धर्म से नव और योग समाधि के लक्ष्य प्राप्त किये, वैज्ञानी ने भवित और रथन्याचा, मूर्ति-नूचा भावित के लक्ष्य प्राप्त किये। बोढ़ धर्मों का स्वाम हिन्दू देवताओं ने से किया, वृद्ध को हिन्दूओं ने प्राचीन भवतार भाव लिया और इन प्रकार यसें यसने बहुते बोढ़ धर्म को हजार कर डाला। दोनों में कोई प्रभाव नहीं रहा। इन्होंने जीवी

धर्म में तुकों ने जब बोढ़ मठों पर हुमला किया तो यह भिन्न विवरण भाग मण, उसके भवत तिन्हूं बन गए, और उसके उजड़े मठों में जीव साचु जम गए। हुमलगों का मन्दिर प्रारम्भ में बोढ़ भा, बाह में गिरि सम्प्रदाय के शीरों में उस पर व्यापिकार कर लिया।

जैन धर्म में बोढ़ धर्म की विवेका तुरण-प्रियता, फहिन-प्रेम और कहुरता अधिक है। यह इसमें वासमान-वैसे सम्प्रदाय विकसित नहीं हुए; किन्तु यही कहुरता इसके हुआ का कारण हुई। इससे यह धर्मों में सम्प्रदाय-कुल परिवर्तन करने में अवश्यक रहा। वैष्णव, दीर्घ धर्म यहाँ अलग-कुल मिहालों के कारण अधिक लोक-प्रिय हुए, विविध के कुछ जीव राजाओं ने जैनी पर मत्वालार भी किये। कहा जाता है कि वैष्णव राजा मुख्य ने ८,००० जैनों को हाथी के देहों तके कुमलका दिमा भा। महुरा के महान् मन्दिर की दीवारों पर इन हृष्यों के चित्र भी ढाकीये हैं। इन यह वारणों से भैमुर, महाराष्ट्र में एक हवार वय तक प्रसान धर्म रहने के बाद इसको महुरा कम ही गई। इस जमय जैन धर्म के प्रधान केन्द्र परिचयी भारत में सुखरात्र और राजपूताना है।

बोढ़प्रामें के भोग और जैनधर्म के हुआ से भारत में स्वभावतः योराजिक हिन्दू धर्म और उसके विविध सम्प्रदाय प्रवल ही गए। इनमें वैष्णव और दीर्घ मुख्य हैं। इनके तथा अन्य शीर्ष सम्प्रदायों के ऐतिहासिक विकास की संक्षिप्त कथाएँ ही महीं दी जायगी।

वैष्णव धर्म

उद्यग—पहले यह बताया जा चुका है कि वैदिक युग में राजा चमु द्वारा यहाँ में पथ-वर्ति का विरोध करने तथा हरि की उपासना पर बत देने वाली लहर के क्षय में जीव धर्म का जन्म हुआ, यसीं का विरोध करने में तो यह बोढ़ों-वैसे ही

वे किन्तु उन्होंने ईश्वर और आहना को धर्म में मे कोई साजन न देकर अध्यात्म-भार्म के नैतिक शास्त्रण द्वारा मुक्ति मानी थी, बौद्धों का उनमें मुख्य भेद इन लात पर चा न के बैदिक ईश्वर को सज्जा में विवास इताते थे और उसकी भाष्टु में मुक्ति मानते थे। भागवत धर्म का उद्भव उपनिषदों से प्रारम्भ होने वाली उसे लिचाह-भारा से हुआ, जिसने बीड़ और बैन धर्म पैदा किये थे। भारतमा में यह धर्म यांत्र तथा तपस्या के तुलने सामनी ही बोला भवित पूर्ण ऊर की उपासना पर धर्म देता था। यहीं वो वह सीण-समन्वया वा घोर पशु-बैल का विशेष कहता था। इस तरह यज्ञ-प्रवान पुराने बैदिक धर्म के विशेष वह उत्तरों द्वारा कान्ति नहीं थी जिसनी वेद और ईश्वर में विवास न रखने वाले थीं और जैसों थीं।

कृष्ण और गीता—यामिना सुधार की ईस लहूर को शुल्क-बद्धी वापुट्य-वृक्ष और कृष्ण से बहुत प्रभिक बत मिला। उद्धोंने भगवद्गीता में नवीन यामिन सुधार के लिद्वान्तों का लाप्ट-चन्द्र से प्रतिपादन किया औट ईस सुधार-याम्बोलन को मुनिदिव्यत वा व्रदान किया। गीता के काल के सम्बन्ध में यामिना मतभेद है। कुछ विद्वान् तो इसे युप्त मुग्ध की कृति मानते हैं किन्तु इसमें सम्भेद नहीं। इसके लिचाह बहुत प्राचीन है। याम्बोल उपनिषद् में श्रीकृष्ण का स्पष्ट उल्लेख होते से वे कामी पुराने धर्म-संक्षेपक जान पड़ते हैं। भागवत धर्म के विवास की वृष्टि से गीता के श्री लिद्वान्त उल्लेखान्वय है, इसके धनुसार गीता के विवास तपस्या घोर वैदरम्य का माने आवश्यक नहीं, मनुष्य के लिए यह प्रथम नहीं, कि वह प्रथम काम-वन्दना और लुभार मुक्ति के लिए यन्त्रासी ही जाय, उसका आदय लो स्वाधर्म धर्म है, उसी में भरना अवश्यक है। दूसरा लिद्वान्त यह है कि मुक्ति युक्त नैतिक यामारण में नहीं किन्तु भवित में है और ईस भवितव्यमाने में जात्यानात और क्षीन-मूरुप वा ओही भेड़-नहीं। बैदिक धर्म की मुक्ति केवल उक्त वर्ण के युक्तों को प्राप्त ही ब्रह्मीक लेदावाहन और बैदिक घटुठानों का उन्हें ही प्रधिकार था। श्री कृष्ण की युक्ति सभी युद्ध तक सबके लिए थी।

भागवत धर्म का यामिनक प्रतार—श्री कृष्ण द्वारा प्रतिपादित यह धर्म पहले उसकी जाति में घोर फिर धर्म-शर्मी: भागवत के भ्रम्य हिस्सों में बहुत लोकप्रिय होने लगा। भक्तों ने वासुदेव श्रीकृष्ण को ही भगवान् बनाकर उसकी पूजा मुक्त कर दी। जातक, लिद्वेष घोर यामिन के सूतों में वासुदेव के भक्तों का उल्लेख है। यौवी स० ई० पू० में मेगस्यसीम ने मधुरा में श्रीकृष्ण की पूजा का वर्णन किया है। दूसरी स० ई० पू० में वैद्यन्त धर्म इतना प्रबल हो चुका था जिसी जातियाँ भी इससे आकर्षित हो रही थीं। पूनानी राजा अन्तिमिति (एष्टियालिकाइस) के राजवृत्त तथाचिता-गियासी द्वेषियोंद्वारा ने इस जाति में वेननगर (प्राचीन विदिशा) में एक महाइन्द्रव (एक स्तम्भ पर महुड़ की मूर्ति) स्थापित किया। यह देव-देव यामुदेव की प्रातःका में लड़ा कंपा सका था, इस पर उसकीण जिस में वह धर्मने की भगवत्,

शब्दवा वैष्णव धर्म का प्रनुभायी कहता है। गोरिया की एक अनुश्रुति के अनुसार दूसरी शताब्दी ई० पू० तक भारतीयनाम में धीकृष्ण को पूजा हीने लगी थी। इसी समय के दोस्री शताब्दी और भारतीयाओं में भागवत धर्म का स्पष्ट उल्लेख है।

वैदिक धर्म के साथ सम्बन्ध—भागवत धर्म को लहर यज्ञ-प्रथात् प्राचीन वैदिक धर्म के विशेष से बुर्ज हुई थी किन्तु इस काल में कठुरप्रभी वर्ग ने नवीन सम्प्रदाय के प्रथान देवता कृष्ण का वैदिक विषय और नारायण में घनेर स्पापित करके नवे धर्म को अपना लिया। हेतियोहोरस के गरुड़व्यज से यह जात होता है कि यह परिवर्तन दूसरी शताब्दी ई० पू० से पहली ही तुका था। यह दोनों के लिए सामन्वय था। बाह्याणों ने इस लोकधिय धर्म को भासनाकर बोढ़ धर्म के प्रति लोगों का आकर्षण कर दिया और भागवतों को इससे नई प्रतिष्ठा और गौरव मिले। विशुप्राजन में भारतीय भागवत धर्म के विशद लो विष-वर्मन किया है, उससे स्पष्ट है कि कुछ कठुर-भवियों को धीकृष्ण को देवता भासना यसन्द नहीं था, किन्तु अन्त में उन्हें भी यह परिवर्तन भासना पड़ा और वैष्णव सत में हिन्दू धर्म की विस्तृत भासा रख दे दिया।

वैष्णव धर्म के नये तत्व—दूसरी शती ई० पू० में शनैः-शनैः वैष्णव धर्म और कृष्ण-चरित्र में नए वर्तन तुके चुक हुए। इसमें धर्मतार-कल्पना, पांचरात्र-पद्धति, कृष्ण की बाल-नीपाल, गोपयों और राष्ट्र के साथ सौतायों की कहानियों प्रमाण है। धर्मतारों की कल्पना पुरानी थी जिसमें शूल पूर्ण में शनैः-शनैः इसका पूरा विकास हुआ। पांचवीं शती ई० पू० तक कृष्ण और राम मनुष्य हैं, दूसरी शताब्दी ई० पू० में वे देवता बने, और-धीर धर्मतारों की संकला बढ़ने लगी। पहले से भी, बाद में वे तुके इसमें जुड़े थे भी सम्मिलित कर लिया गया था और यस में जीवों के प्रथम तीव्र-कठुर यज्ञ-प्रथाएँ यादि नों समाविष्ट करके वह २५ तक पहुँच गई। पांचरात्र पद्धति में वामुदेव यों पूजा भारत क्षेत्रों में (नतुर्भूद्ध) के साथ होती थी। इसके विस्तृत प्रतिलापन के लिए १००-२०० ई० के बीच में अनुश्रुति के अनुसार १०० पांचरात्र सहिताएँ बनी। इनमें काफी तात्त्विक प्रभाव है और वे विष्णु की शक्ति पर अधिक बल देती हैं।

कृष्ण लोकाएँ—किन्तु वैष्णव धर्म में 'पांचरात्र' के साथ गर और-भवेदे धीकृष्ण की सौतायों को प्रभासना लिने लगी, सत्यसूक्त में लोकावध धर्म का प्रधान था यही बन गई। भारतीय में इन सौतायों का कोई वर्णन नहीं, किन्तु भगवतों की भासना के अनुसार पुराणाकार इन्हे कृष्ण-चरित्र में जोड़ने चले गए। सर्वप्रथम इसकी यहस्ती शतियों में पांचरात्री भासन के सामीर लोकधिय हुया और उसके बाद भोगिया पाए। सातवीं ते नवीं शती के भग्न में धीकृष्णों का वर्णन लोकधिय हुया और उसके बाद भोगिया पाए। सातवीं ते नवीं शती के भग्न में विरक्तिभासन भागवत पुराण में धीकृष्णों की इन सौतायों का भक्तिभासन प्रतिपादन है। किन्तु उस समय तक राष्ट्र की कल्पना का

विद्यम नहीं हुआ था, भागवत में उसका कोई उल्लेख नहीं है। किन्तु १८वीं शती के अन्त तक राधा-कृष्णनिति का धर्मिन्न धर्म बन गई। इस शती के अन्त में वयदेव ने राधा-कृष्ण की लोकियों का सरस लगात किया और निष्ठाके ने दार्शनिक और धार्मिक दृष्टि से राधा-कृष्ण की उपासना को उच्चतम स्थान दिया।

इतिहास भारत के वाचाय—मध्य युग में वैष्णव धर्म के विकास में दखिल भारत ने प्रधान भाग लिया। भागवत पुराण के धर्मान्वार भक्ति दृष्टि वैष्णव में देखा हुई थी। पौराणी से बारहवीं शती के बीच में वही वैष्णव भक्ति-रस को मनदाकिनी बहाने वाले 'आलधार' नामक वैष्णव भक्त थए। इनके गीत आज तक वही वैष्णव-वेद समझे जाते हैं। भागवत पुराण भी इतिहास में निकाल मध्य मासा जाता है। पाठ्यवी-नवी शती में वैष्णव भक्ति-धार्मोत्तम की दो ओर से भवकर लक्षण वैद्य तुम्हा। एक और कुमारित भट्ठ ने वैष्णव कर्मकाण्ड को ही भूक्ति का मार्ग मानते हुए उसके पुनः प्रतिष्ठापन का आन्वोत्तम बताता; दूसरी ओर वैकुण्ठवादी ने वैद्यनवादी की स्थापना करके दार्शनिक दृष्टि से भक्ति निष्ठान के मूल पर ही कुठरापात लिया। भक्ति में भगवान् और भक्त की पृथक् सत्ता आवश्यक है, जब सभी कुछ बहा है तो भक्ति की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती। वैकुण्ठवादी के अनादि पाण्डित्य, असाधारण प्रतिभा अद्भुत पास्त्रार्थ-नामस्थये और विलक्षण व्यक्तित्व से वह निष्ठान लगान लक्ष्यमान ही जला, किन्तु वैष्णवों ने शीघ्र ही घरें भक्ति-निष्ठान को मुद्रङ् दार्शनिक धाराएँ पर स्थापित किया। यह वामे 'आचार्यों' ढारा हुआ। वहले आचार्ये मात्रमुनि वद्यम शती के अन्त में या भारहवीं शती के प्रारम्भ में हुए, इनका प्रयाग कामे न केवल श्रीवैष्णवों का संगठन, आचार्यों के गीतों का संग्रह तथा उन्हें इविह रमों में बढ़ करना। यीर भान्दों में उसका गायन करना या भूषित वैष्णव-निष्ठातों की दार्शनिक धाराएँ भी थीं। इनके उत्तरविकासियों में वामानानामे और रामानुजाचार्य (११०० ई०) थे। रामानुज ने भक्त के वैद्यनवाद के विरोध में विशिष्टाद्वैतवाद की स्थापना की। इसके धर्मान्वार धर्मिन सत्यगुणों के भक्तान एक इक्कर के दो और जगत् दो ध्रकार के विशेषण हैं। इक्कर के भर्त्रेत में बीच-द्वारा में धर्मिता होने के बारण भक्ति के लिए कोई स्थान न था, रामानुज की दार्शनिक पद्धति में उसे बद्ध का विशेषण मानते हुए भी उससे पृथक् माना जाया, जरूर: इसमें भक्ति सम्भव थी। किन्तु रामानुज की भक्ति उपरिषद्-प्रतिपादित ध्यान-और उपासना पर वह देसी थी, उसमें गोपाल कृष्ण की लीलायों का कोई स्थान न था।

रामानुज के भाई के आचार्यों में आनन्दीचंद्र ना मात्र (१३ ई०) और निष्ठाके उल्लेखनीय हैं। मात्र न वीर को द्वारा से विलक्षण भूमि माना और वह तक भासवतों की पूजा में आनुरूप के 'चतुर्भूमि' ही जो पूजा जली जाती थी, उसके स्थान पर विष्णु को ही उपास्य माना है। इस दृष्टि में यह 'वैष्णव धर्म' का मुख्य मन्त्रावलङ्क कहा जा सकता है। भारहवीं शती के अन्त में निष्ठाके ने उत्तर भारत में गोपियों और राधा

में तिरे धीक्षण को पूजा चलाई। उसमें बाह्यन होते हुए भी उन्होंने उन्द्रावस को अपने घर में प्रवास का केन्द्र बनाया। गोपियों पौर राष्ट्र पर पहले किसी आचार में न वाप नहीं दिया था। निम्बक का यह सत उत्तरी भारत में बड़ा लोकप्रिय हुआ, जैतगम प्रादि आचारों के प्रवास से इसे बड़ा सत मिला। और उत्तर भारत में अनेक भेदों के साथ यहाँ मान समय में विष्वव घर में का प्रधान स्पष्ट यही है।

३५८

उद्गम—ईयतितक ईरवर के काम में शिव का पहला स्पाइट उत्सन्न 'ब्रेटाइव-तर' उपग्राह में है, यदि मैं 'धर्मवीरशसु' उपग्राह में इसका प्रतिपादन किया माया। दूसरों भी ३०-३३ ई० में शिवाम्ब के प्रवर्गन की लृचता प्रत्यक्षिति के महाभाष्य से भिलती है। महाभारत के नारायणीय प्रकरण में उमापति शिव की इस सम्प्रदाय के अन्य प्रकार करने का थेष (धर्मवाय २३) दिया गया है, उस समय तक शिव मानव या, विकास नहीं किया या। कामु और लिङ्गपुराण (धर्मवाय २३) की कथाओं के प्रभुसार, जब लालूर श्रीकृष्ण ने जन्म लिया, उसी समय शामालपर्ण (करवन, वशीदा) में शिव ने चक्रशीश के रूप में जन्म लिया। दौर सम्प्रदाय का प्रारम्भिक नाम लालून, पाल्युपत या मालून्वर है। विश्वी जातियों भागवत यम की भाँति लैंड धर्म से भी भाक्षित हुई। कुलाण राजा विम कल्या (३०-३३ ई०) ने यह धर्म धर्मीकार किया। उसके दृढ़ शिखों के दस्ती तरक्क मन्त्री पर भूके विष्णुपत्रागो शिव की भूति है। अतोक वासुनिक विद्वान् इसे योद पर्ण के सन्तापक तत्त्वों की प्रतिमा मानते हैं। जिन्हें शीघ्र ही शिव की मानव-मृति के स्वाम पर विम की पूजा शह हो गई।

(क) पालुपत्र योंव सम्प्रदाय—इठो श० ह० के धन तक योंव भर्मे जा पर्याप्त विकास और विस्तार हो चुका था। योंव भारत के इतिहास पर तक पैले चुके हैं। अगले और कम्पोडिया का इतिहास भर्मे नहीं था। योंव सम्प्रदायों में बीचिन न होने पर भी योंवाक, योंवायेन-जैसे सम्प्रदाय, कालीदाम, भवभृति-यैसे कथि, मुख्य, वाणवट्ट-यैसे भष्म-स्त्रियों यिष के उत्पादक में। हमें इनके सम्प्रदाय बने। यातवी यत्ती हैं। में हमें पालुपत्र सम्प्रदाय सबसे प्राचीन प्रबन्ध था। युधाम स्वामी की इसके घनुमायी बलोवित्ताग सब कि थे, बनारस पालुपत्रों को यह था, यही १०० फीट से ऊँच कम ऊँचे भृंकर की ताज्ज-भूति थी। सर्वं गतिरोग में इसकी पूजा बड़ी गृणन्याम से होती थी। पालुपत्रों के सम्प्रदाय में तिक्खि और आम प्राचि के यिए सामुद्रों की चिन यत्ती का यातन भर्मा पहुँचा था, तबमें कुछ के थीं—(१) योंव एवं भृम समाज और भृम जे लोहना, (२) गोंड तथा गोंडों को भीड़ा करके 'हा हा' की घनि करना, और (३) सब लोगों द्वारा निर्मित छूटोंपे कार्य करना। ताकि साथक वर्त्तन्य-घटनात्य के विकेक में लाठ तज लाके।

(४) कल्याणिक और साततीक—इन दोनों गमनदारों के निदानत प्रामुख्यों से प्रधान दस्त है। इनकी विधान विवेचनाएँ निम्न दो—(१) नवयुद्ध या क्षण में

भोगन करता, (२) मृत व्यक्ति की जस्ती को बारीर पर रखना, (३) भूमभक्षण, (४) हाथ में विशुल दण्ड रखना, (५) मविरा का वाह पास रखना और (६) उस में संबंधित महेश्वर की पूजा करना।

(ग) शैव सम्प्रवाय—किन्तु 'ये' सम्प्रवाय के सिद्धान्त और धारार कापालिकों में अधिक लोम्प और तक्त-संस्करण है। यह प्रातः-नाम-सम्प्रवायमें विविध विवार के लियों की पूजा पर बहु देता था। नवीं, इसी शरीर में काश्मीर में शैव धर्म के सम्प्रवायों का उल्लङ्घन विकास हुआ। इनके आव्यातिक विचारों में मौतिकता और धार्मिक धारार-व्यवहार में उदारता भी। इनमें उपर्युक्त सम्प्रवायों की वासनाओं प्रतिलिपियों का कभी प्राचार्य नहीं हुए। काश्मीर के इसे उदार शैव धर्म का कारण शंकराचार्य का प्रभाव समझ जाता है।

शैव साहित्य

(क) धारण—वायु, तिग और कुम पूर्णों के गतिशील शैव उदयवाद का आगम नामक धर्मों में विलार से प्रतिपादन किया गया है। आगम घटुर्देश है, किन्तु अतिक के साथ अनेक उपायम दुहे हैं और इनकी कुल संख्या ११० है। मे शतवी ३०-४० से पहले बन चुके हैं। इनमें प्रतिपादित शैव धर्म 'धारण शैव धर्म' कहलाता है। यह द्वैतवादी है। याजो शरीर में बहकर ने अद्वैतवाद का प्रवाह किया और काश्मीर के शैवारमें न द्वैतवादी धारणों का स्थान घटैवाद की प्रदान किया।

(ख) तामिल साहित्य—पलत्र (कुटी ३०-५० से) तथा घोल वर्षाणों* (द्वयम ३०) के संरक्षण से इतिह देश में शैव धर्म का बहु उल्लङ्घन हुआ। संघर्षों के बाहर में शैवार्थ-सम्बन्धी विद्याल तामिल साहित्य वा निर्माण हुआ। वैलाणों के धारार मन्त्रों की भौति नामामार-नामक शब्द गंत हुए। पहली ही एक संघर्षों के उचित प्रसिद्ध सन्त 'सारं नम्बन्य' नामवान् शातवी शती में हुए। तामिल युद्धण विद्यापुराण सहित उपर्युक्त ११ संघर्ष तामिल शैव धर्म का धारार है। इनमें बहुत संघर्षों 'वेलार्ल' में चारार, चुन्दर और जात यम्बाय की रथमालों का सवाह है, इनकी प्रतिष्ठा वेदों के तुल्य है। इनकी राधानिक विकार-धारा प्रागमों से मिलती-जुलती है।

शैव विद्वान्त—नेश्वरी, चौपहरी शतियों में तामिल 'शैव धर्म' में सार्वत्र नाहित्य का विकास हुआ, इसे शैव सिद्धान्त कहते हैं। यह धारणों का स्थान १४ सिद्धान्त शास्त्रों में से लिया।

शैव शैव या विद्यायत सम्प्रवाय—शैवों वा एक महत्वाकृति सम्प्रवाय तोर जैव है। इसका संस्कारक ११५०-५० में कलम्बुरी राजा विजयन से राजमही धीमे जाला उसका प्रागम मन्त्रों वासन था। कल्पाटक और महाराष्ट्र से लौह और बेन धर्मों की समाप्त करने का धेन इसी को है। यह सम्प्रवाय धारणा-सम्बन्धी वैतिकाता और

परिवर्तन पर बहुत चल देता था। इसकी विशेषता कठूर हिन्दू धर्म के तिजारी का विदोष है। केवल की प्रामाणिकता और पुनर्जन्म में विश्वास मही रहते, बाल-विश्वाह-विदोष तथा विष्वाद-पुनर्विदाह का समर्थन करते हैं, ब्राह्मणों के अंति तीव्र पृथग रूपने हैं।

मध्य पुराण में महाराष्ट्र तथा दशिल में रामदूष्ट और चोल राजाओं के संग्रहण से वीव धर्म बड़ा लोकप्रिय हुआ। इसी समय इतीरा (विकल) के जगत्-प्रसिद्ध किलाय और तबौर के विशास वीव-मन्दिरों का निर्माण हुआ।

अन्य सम्प्रदाय

पैण्डिप और वीव धर्म के अतिरिक्त शक्ति, गणपति, स्कन्द-गा कात्तिकेप, क्रष्ण और सूर्य की पूजा भी हिन्दू धर्म में सातवाहन युग से चली। इनमें चालत सम्प्रदाय विशेष रूप से उपस्थितीय है। पहले यह एततामा जा चुका है कि वैदिक युग में रथ तत्त्व की उपासना नहीं थी; भीम धर्म के तेहसिके प्रधार्य में पहली बार दुर्गा की स्तुति मिलती है। युग युग में तिव की शक्ति को अधिक प्रधारनता मिलती है। शक्ति के विवाहों से शरीर में पटवक भाने, 'हिम, हुस, कट' आदि भन्नों से तथा पोग से अनौकिक सिद्धियों को आनि, यन्त्रों की शक्ति और 'मुद्रायें' में विश्वास किया, देवी को प्रसन्न करने के लिए पश्चु तथा नर-वित्तियों की पढ़ति प्रचलित हुई। युधान चांग को मातरों शती में एक बार बाकुओं ने कल्पीत के पास बैठ देने के लिए पकड़ लिया था। बीद धर्म की भाँति, मध्य पुराण में इनमें भी तानिंक क प्रभाव प्रचल हुआ।

मुख्यमानों के आने के बाद हिन्दू धर्म में भक्ति और सूधार की नई लहरें चली, उनका बलून बारहवें प्रधार्य में किया जायगा।

दृश्यन

दृश्यन सम्भवता भारतीय शंखुर्ति की समुच्च्वस्ततम है। भारतवर्षे विचार-प्रधान देश है। वैदिक मुग से ग्राम्यालिक और पारस्परीलिक प्रश्न भारतीयों को बेस्टम करते रहे हैं, और उनका हजारों वर्षों विचार-प्रधानविद्या वो सब वास्तवों में अप्पे माना जाता है। अतः इसके विकास में हजारों वर्षों से हमारे देश के सर्वोत्तम विचारक नहीं रहे हैं। यही वारण है कि तत्त्व-चिन्ता की ऊर्जी-जैवी दक्षता तथा विचारों की सुदृढता और बेमीरता में बहुत कम देश उसकी तुलना कर सकते हैं। अन्य देशों के दृश्यन की ग्राम्या भारतीय तत्त्व-ज्ञान की कई विदेशीयाएँ हैं। जीव के भौतिकिय किसी घन्य देश में वार्षिक विचार की तीन हजार वर्ष तकी और विचित्रज्ञ गरमता नहीं है। परिचम में यह विचल किसायकी घटात् विद्या का अनुराग-मात्र है, परिचलों के मनाविनोद या नुड्डि-विचास की वस्तु है। किन्तु भारत में इसका वीचन के साथ विचार सम्बन्ध है। इसका दृश्य ग्राम्यालिक, ग्राम्यजीविक, ग्राम्यजीविक लायों से संतुष्ट मानवता के जीवनों की नियुक्ति है। पूरोप में दृश्य और घमें पृथक-भग्न है। दृश्यन तुद्धि-का विषय है, उसका उद्देश्य सत्य की खोज है, घमें घड़ा और विचास की यन्त्र है। किन्तु हमारे देश में घमें और भौतिकता की ग्राम्यालिका दर्शन है। वह हमारे समूचे ग्राम्याल-ग्राम्यहार का परिचालक और मार्ग-पर्याकार है।

दृश्यनिक विकास के बारे पूछ—भारतीय दर्शन के विकास को तार फ्राम कालों में बोढ़ा जा सकता है—(१) ग्राम्यजीविकाल (५०० ई० पू० तक), (२) सूर्य काल (६०० ई० पू० से पहली ला० ई० तक), (३) भारतीय काल (पहली ले पाँचवीं शती तक) (४) नृत्य काल (उन्नीसवीं शती से चतुर्थमान तक)। पहले काल की हम भारतीय दर्शन का उपकाल कह सकते हैं। इस नमय में इसके प्राप्त सर्वी पुस्तक विचारों का उदय हुआ। बाद में मृक्ख रूप में विचित्र होने वाले छहों दर्शनों वा दीजारोगण इस काल की घटना है। विद्यु प्रकार एक ही घट-मूल विकायित होने वाले नाना शास्त्राल्लो-प्रकाशाल्लों में विभक्त हो जाता है, जिसे ही वेदों का वा उपनिषदों के विचारों से बाह नाना सम्प्रदाय विकसित हुए। भारतीय तत्त्व-चिन्तन तो अद्वेद से ही भारतम हो गया, उसमें दर्शनों के इन सनातन प्रमों के अस्तु उत्तर है कि पहले विद्व ने ये वा हुए, इसे येदा करने वाला कौन है, इसके येदा होने से पहले क्या

सा। नामदीय सूक्त (ऋू० १९/११६) में इसका स्पष्ट लल्लेख है। पूर्व वैदिक युग में तत्त्व-चिन्ता की प्रथमि गात्रिक कर्मकाण्ड के बोझ में इसी रही, किन्तु उत्तर वैदिक युग में यज्ञों के विशेष प्रतिक्रिया होने पर इसको लहर मृत् प्रवर्त हुई। मनुष्य क्या है? कहीं मे भावा? मर कर कहीं नारेगा? सूचित का क्या प्रयोगन है? इस प्रकार के प्रश्नों से याद्य विचारक अधिकारी हो गये। उपनिषदों से जात होता है कि अपेक्ष समृद्ध परिवारों के कुलीन मुकुल घर-बार छोड़कर विभिन्न आधि-मुनियों के बाख्यमों से जाकर इन प्रश्नों का उत्तर खोजा जाते थे। इनमें प्रधान क्षण से इसी प्रकार के सवाद और कारण हैं। गच्छिता, मैत्रेयी, मर्यादाम, जावान, पिण्डाद की कहानियाँ उत्त समय के तत्त्वान्वेषण पर सुन्दर प्रकाश ढालती हैं। उस समय तक नारनीय ज्ञान की मूलभूत मात्यतामों, पञ्चशृत, पञ्चगिर्याँ, आत्मा और शरीर की पूर्वकाता, अत्मा भी प्रमरणा, सर्वोच्च, सर्वध्यापक सत्ता या घट्ट, उसके स्वल्प, नूरित-विकास की प्रक्रिया, सत्त्व, रज, तम के तीन गुणों, कर्माद, पुरुजेन्म, संसार की जलाभ्युत्ता और नदवरता को निदानों का जग्म हो रहा था। किन्तु एथक दार्थनिक सम्प्रदायों का विकास नहीं हुआ था। उपनिषदों में गमी प्रकार के दार्थनिक विचारों की ज्ञानी-सेवनी उड़ाने हैं। कठोरपतिष्ठ एवं एक सार शास्य और वेदान्त का प्रतिरोद्ध है। तैतिरीय तमा ब्रह्मारम्भक उपनिषद् में वेदान्ती व्यष्टि का उल्लेख है किन्तु उसका कहीं भी क्रमबद्ध या व्यवस्थित विवेचन नहीं किया गया।

सूर्य काल (१०० ई० पू०—यहसी शती ई०)—सूर्य काल में दार्थनिक विचारों की वृद्धिनालेख लिया जाने लगा। उपनिषदों में तत्त्व-चिन्ताम की आरम्भिक उडाने हैं, इसमें से अवस्थित विवेचन। कमिल, कण्ठाद, गीतम भी लाल्य वैदेशिक, म्याद इत्यत का टचिया समझता हीन नहीं; उच्छोर्वेषण वहते से ज्ञान लाने विचारों को गुरुबद्ध लिया। यिन्होंने यथायम में इन्हें एसा नामा क्षय देने का कारण स्पष्ट लिया वा लिया है। शती श० १० ई० पू० में भारत में एक प्रमुख शार्मिक और गौदिक धारणा हुई थी। बीज, वैत और जातीक विचारों ने जब ग्रामीन विचारों तथा गौदियों पर जारी-जारी और सोनी-भीनी धोंडे को, उच्छुल्लमालेख दार्थनिक विचारों की याताताकाला धम्भुत्व हुई थी तब्दीनों में जन्म लिया। कौटिल्य के समय तक (जोनी श० १० ई० पू० का अन्तिम नाम) वेष्ट तीन दर्शन हैं—साराय, योग और जातीक। यिन्हें भौद्य युग का आरम्भिक शारवतान्म युग में पहसी श० १० तक यत्त्वान्म ई० में भिजने वाले वैदेशिक, शारीरिक, धूर्व गोमात्मा और उत्तर भीमात्मा (वेदान्त) गुणपद हुए।

भाष्य काल (यहसी श० १० से पन्द्रहवीं श० १० तक)—दार्थनिक विचार का गोपनीय युग भाष्य काल है। इसे यह दर्शन का उच्चानुगम कहा जाये तो अत्युत्तम होगी। इसी युग में नामाजुर्वन और शंकर-जैसे दार्थनिक पंडा द्वारा विभिन्न टक्कर के दार्थनिक तृतीय देशों ने जहुत कम पैदा किये हैं। इस काल में विभिन्न सम्प्रदायों के दार्थनिकों से गुरुपर दूसरे टक्कर का शास्त्र-प्रतिशास्त जलता रहा। इसने दर्शन के

विकास में वही सहायता ही। प्रत्येक दर्शन को विपक्षियों द्वारा उठाये जानेवालों का उत्तर तभा नहीं समस्याओं का समाधान करना पड़ता था। यह तामे भाष्यकारों ने किया। ये स्वतन्त्र सम्बन्ध लिखने के स्थान पर पुराने दर्शन की या भाष्य की टीका द्वारा इसे सकलतापूर्वक करते रहे। इसमें ये न केवल धारणों का समाधान करते थे किन्तु नवीन विचारों का प्रतिग्राहन भी करते थे। शंकर का घट्टृत इसी प्रकार का विचारान्त है। हम अपने दर्शनों के सच्चों को ऐतिहासिक दृष्टि से उनका अम-विकास देखे विना नहीं समझ सकते। उदाहरणार्थ न्याय दर्शन का विकास और दर्शन के साथ जुड़ा हुआ है। न्याय का सर्वप्रथम भाष्यकार वास्तव्यायन नारायण न्यायी, अनेक वार्ताभक्त और दार्शनिकों का साधान करता है, इसके उत्तर में दिह-ताम ने 'प्रमाण-समुच्चय' लिया। इसके बबाब में प्रसिद्ध नैतिक उद्घोषकर ने 'वात्त्वायन नाय' पर 'न्याय वास्तिक' की रचना की, इसका खब्दन और दार्शनिक धर्मकीति ने 'प्रमाण वास्तिक' में किया, अन्त में इसके उत्तर में वाचस्पति मित्र की 'उत्तर्य' द्वारा लिखी गई। भाष्य युग में इस प्रकार के प्रातः-प्रतिपात में भारतीय दार्शनिक तत्त्व-विनान की विन अंचाहे तक पहुँचे, भाषुनिक विचार-धारा उससे पाए नहीं बढ़ सकी। भाष्य युग के प्रचान भागी में देखा है—(क) यहाँ से आठवीं शती तक—इस वाल ने नारायण, वसुवन्धु, परमा, धर्मकीति और शंकर-जैसे विचार दार्शनिक ग्रेड किये। भारतीय दर्शन में भी जिक्र नहीं दर्शन करनी रही। (ख) किन्तु इसके बाद से गोलहृषी शती तक भाष्यकारों ने प्रधान तथा सेवदान की विभिन्न व्याख्याओं पर वक्त दिया, भीतिक विचार बहुत-कुछ समाप्त हो गया। जैपे वृत्ति युग में मूल्य लाल से भाष्यों का अच्छे सारण करने के लिए विभिन्न टोकाएँ लिखी जाती रहीं।

भारतीय दर्शन को प्रधान तथा से दो भागों में बांटा जाता है, (१) नास्तिक दर्शन, (२) धार्मिक दर्शन। नास्तिक दर्शन जैद की प्रामाणिकता और दैवत में विद्वास मही रखते। इनमें तीन प्रधान हैं—चार्वाक, जैन और औदृश। धार्मिक दर्शन के हैं—पूर्वीभारतीय, उत्तरभारतीय, सांख्य, योग, न्याय और वैत्तिक।

धार्मिक दर्शन

(१) चार्वाक—चार्वाक दर्शन विलकृत भौतिकवादी और प्रत्यक्ष में विद्याम परम वाला है। इसके मन में ईश्वर, परात्मा, धार्मा, मन, भक्त और कोई सत्ता नहीं। इसका अध्यात्म लिङ्गान्त है—'पात्रो, तिष्ठो, गौत्र वज्रास्तो,' 'जप तक तिष्ठो, मूल के तिष्ठो, जूत तिष्ठो भी भी तिष्ठो, कर्त्तव्य शरीर के भलम ही जाने पर चीड़ लौटकर नहीं आता', भव्यप्रत्याद तिरो छोमता है, जगत् में धर्मी ते दिलाहे देने वाले, भूमि, जल, वायु योर वायु चाह ही जल्द है, इसके तंत्रोत्तम से स्वर्गाववन वेतुना और वृद्धि को दर्शन होती है। जीवन का तत्त्व भी योर ईश्व-धार्मित है। मूल के बाद यह भीजो का अन्त ही जाता है। ऐतिक सुलक्षण पर जात देने के भारत इसका नाम चार्वाक (चार्व-याक—मुख्य वाकी) तथा सोकायत (सोक में विस्तीरण) है। इसके

मनवोंके वृत्तमयि नामक ज्ञान है। इसका मूल प्रमुख तो गुच्छ हो जूका है, किन्तु उसके पूर्व निष्ठने प्रणयों में उपर्युक्त होते हैं।

चारोंका दर्शन सम्मिलित धर्मिनीकाल के अन्त में बड़ों हुए प्रभानुष्ठान, उपस्थिति और पारामोक्षिकाना के विवर व्रतिचिन्मा थीं।

(२) जैन—जैन धर्म प्राचीन से प्राचीन था। बाद में उस में दार्शनिक मिदानों का विकास हुआ। उमास्वति और कुन्दकुन्दाचार्य (पहली शत. ई.) जैन दर्शन की मीठ बालने वाले हैं। छठी से नवम शताब्दी का काल जैन धर्म का सर्वांग हुए है। इस समय मिदानों विवाकार (पाँचवीं शत. ई.), समन्वयद (सातवीं शत. ई.), हरिभद्र (चालवीं शत.), भट्ट प्रकल्पक (पाँचवीं शत.), और विश्वानन्द (सातवीं शत. ई.) हुए। परवर्ती दार्शनिकों में हेमचन्द्र (१०८८-११५२ ई.), मल्लसेण सूरी (१२६२ ई.) और गुणरत्न (१४०८ ई.) उल्लेखनीय हैं।

जैन दर्शन प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द नामक तीन प्रभाव मानता है। इसका प्रभाव मिदान 'स्पादाद' है। इसके अनुसार प्रत्येक वस्तु अनन्त वर्षांस्त्रक है, इन सबका ज्ञान तो दर्शी-व्यक्ति को ही सकता है, विस्ते केवल (मुक्ति) आनंद कर दिया हो, साधारण व्यक्ति उसके अश-मात्र को ही ज्ञान सकते हैं। अतः हमारा ज्ञान सीमित और सापेक्ष है। इसे प्रकट करने के लिए प्रत्येक ज्ञान के साथ शब्द से स्पाद (सम्प्रत्यक्ष) शब्द जोड़ना चाहिए। इसी की स्पादाद से भ्रतोकालकाल कहते हैं। जैन धर्म अनेक इलों की सत्ता में विवाद रखने से बहुतकाली वास्तविकवाद (Pluralistic Realism) का पोषक है। जैन दर्शन में मोक्ष के लीन साधन हैं—
(१) सम्प्रकृत्यान् (भद्रा), (२) सम्प्रकृत्यान्, (३) सम्प्रकृत्यरिति। चरित की सुद्धि के लिए 'गोहस्ता' सार, अस्तेय, अप्युचर्य और अपरिचय का यातन प्राप्यधक है। जैनों के मुक्तोक्तादाता ईश्वर की सत्ता नहीं मानते।

(३) बौद्ध दर्शन—महावान् बुद्ध ने सामान्यतः दार्शनिक समस्याओं की उपेक्षा की थी; किन्तु बाद में उनके अनुयायियों ने दर्शन की बड़ी सूख्म विवेचना की। बुद्ध की विद्याओं के मूल प्रभावतः दो दार्शनिक मिदान हैं। (१) संघातवाद
(२) सन्तानवाद। पहले मिदान का ज्ञानात् यह था कि यात्मा की कोई अपनी सत्ता नहीं, वह परीर और मानविक प्रतिक्रियों का सम्बन्ध (संपर्क) जात है। संघातवाद का तात्पर्य है कि यात्मा सभा अनन्त प्रतिक्रिय है, नह प्रतिक्रिय बदलता रहता है। निः प्रकार नदी का प्रवाह प्रतिक्रिय बदलने पर भी वही प्रतीत होता है, दीपक की भी अरिक्रियता होते हुए भी उसी तरह ज्ञान पड़ती है, तेसे ही यात्मा और अनन्त दर्शन को न प्रवाह (संघात) कर से बने रहने के मार्ग स्थापी प्रतीत होते हैं।

बौद्ध दर्शन की धार सम्प्रवादों में बोटा जाता है—(१) वैभागिक, (२) नीति निक, (३) भोगाल्पार और (४) माध्यमिक। इनका प्रभाव मात्रमेव सत्ता के सम्बन्ध में है। वैभागिक के मत में बाह्य एवं भीतरी (मानस) जगत् से सम्बन्ध रखने वाले

सभी पदार्थ साहित्यिक हैं। इसका नाम 'सर्वास्तिवाद' भी है। सौमानिक याहा गदारों को अनुमान द्वारा ही साध्य स्वीकार करते हैं। मोगाचार विज्ञान यथा विज्ञान की ही एक मात्र सत्य मानता है, इसलिए विज्ञानवादी भी कहताता है। माध्यमिक के मत में जगत् के समस्त पदार्थ सूक्ष्म हैं, अतः इसका नाम सूक्ष्मवाद भी है।

बीजों के दार्शनिक सम्प्रदायों का विशाल साहित्य प्राप्त हो चुका है। अब इसका चीनी और तिब्बती अनुवादों से पुनरुत्थार हो रहा है। वैभाषिक सम्प्रदाय के गिडान्तों की जानकारी बसुबन्धु के 'धर्मियमं कोष' से मिलती है। बसुबन्धु की जूँड़ ऐतिहासिक समृद्धगुण (३२०-३७५ ई०) का तथा बालादिल्य का गुरु मानते हैं। अतः उसका समाध चौथी या पाँचवीं सदी है। वे पेशावरवासी बालादिल्य से, पहले वैभाषिक या सर्वास्तिवादी हैं, बाद में अपने बड़े भाई उत्तरंग के संग और उत्तरंग से विज्ञानवादी बने। विज्ञानवाद के संस्थापक 'धर्मियमयालकार' और 'मायान्त्र विभाग' के प्रयोगा यार्थ चैत्रेय (तीसरी श०) थे। जिस्तु इसका प्रसार असंग और बसुबन्धु ने किया। उत्तरंग ने 'बोधिसत्त्व भूमि' और 'महायात् मूलालकार' निलं तथा बसुबन्धु ने 'गाम्भान्सवह' और 'धर्मियमंकोष'। इस सम्प्रदाय के अन्य दो प्रसिद्ध धारायां दिङ्-नाम और धर्मकीर्ति हैं। दिङ्-नाम बसुबन्धु के विषय और 'प्रमाण-समुच्चय' के प्रयोगा थे। धर्मकीर्ति (पाँचवीं श०) ने 'प्रमाण वातिक' में विज्ञानवाद का प्रतिपादन तथा बौद्ध ध्याय पर अन्य नैदायिकों के आशेषों का निराकरण किया है। माध्यमिक नत के अवलोक नागार्जुन (दूसरी श० ई०) तथा अन्य प्रसिद्ध धारायां धार्मदेव (तीसरी श० ई०) स्वविरुद्धिप्राप्ति (पाँचवीं श०) चन्द्रकीर्ति (छठी श०) और शास्त्र-रचित (आठवीं श०) थे। नागार्जुन की कृतियां 'माध्यमिक-भूमि', 'धर्म-संग्रह' और 'सुहृत्तेन' हैं। धार्मदेव का लतु-शरक घटुतम दार्शनिक रचना है। धार्मदेव का सर्वोत्तम शब्द 'तत्त्व-सम्पूर्ण' है। इसमें बालादिल्य दार्शनिकों की विस्तृत धारोंका करते हुए बीज विज्ञानों का समर्थन किया गया है। माध्यमिक सम्प्रदाय के धारायां में केवल बीज किन्तु भारतीय दार्शनिक जगत् की सबसे बड़ी किसीतियों में हैं।

धार्मिक दर्शन

१. पूर्व मोगासा—अः यद्यनों में मोगासा अपने स्वस्त्र के कारण काफी पूर्यना बर्तीत होता है। इसका प्रथम उद्देश्य कर्मकांड सम्बन्धी वैदिक धारायों की समुकित ध्यायण के नियमों का प्रतिपादन है। भीमासा का विचार बहुत प्राचीन है। नाहितार्थी और बालादिल्य में इसका संकेत है। किन्तु मोगासा के पूर्वती गभी विज्ञानों को शुल्कावद करके धार्मदीय काप देने का अवधि वैभिन्नि की है। जैमिनीय रूपन के १६ धार्याय २०६ अधिकरण तथा २,८४४ शुल्क हैं। धार्मिक विज्ञान पहले १२ धर्यायों को ही प्राचीनिक मानते हैं। इनमें यज्ञ-विषयक धर्म का विस्तृत विचार है। उपर्युक्त नवरात्रि (दूसरी श० ई०) और धर्मस्वामी (२०० ई०)

में मीमांसा-गुरुओं पर वृत्तियाँ और भाष्य लिखे। इनमें शब्दरसायांकों के भाष्य की तुलना वहाँमूल के 'जाकर-भाष्य' तथा पाणिनीय धर्माचार्यों के 'पाठेभव भाष्य' से भी जाती है। बाद से 'जाकर भाष्य' के ठीकाकारों ने तीन सम्बद्धाय जलाए—भाद्र मत, युष्मत और मुखानी मत। भाद्र मत के प्रवर्तक कुमारित भट्ट थे (यात्री श० का यद्वीढ़) मीमांसा के विकास में कुमारित-युग (६००-६५० ई०) क्षमणीय था। कुमारित ने मीमांसा को बोडो के आधारों वे बचाया, सिद्धान्तों ने सुखोप व्याख्या करके इसे स्वीकृतिप्रद बनाया। इनके प्रवर्तन संबंध इत्योक्त, और तन्त्रवाचिक है। इनके शिष्य भक्तिनमित्र ने विष्णु-विवेक, तथा 'जाकरनाविवेक' भारद्वाज प्रथा लिखे। भाद्र मत के धर्म आचारों में शार्वेशार्थी (यात्री श०), माघवाचारीं (धोदहरी श०) और वामदेव (संवारहरी श०) उल्लेखनीय हैं। युष्मत के सम्बाधक कुमारित भट्ट के शिष्य प्रभाकर मित्र थे। तीसरा सम्बद्धाय मुरारि मित्र (यात्री श०) था है।

मीमांसा का मुक्त उद्देश्य तो पश्चादि वैदिक अनुष्ठानों का विवेचन करना था, किन्तु इनमें मीमांसकों ने धर्मकान्तीत मिद्दानों की उद्भावना की। वैदिक के स्वरूप और उसको नित्यानित्यता पर बड़ा सूक्ष्म विचार किया। विरोधी वाचाओं की सतति विडाने तथा बाल्याद धर्म के उद्धोतन जो मीलिक विद्वान्त निरिचत थिए, उनके समृति-प्रधानों के गर्भ-तिर्यक में भी बड़ी महायाता की जाती रही है। वैदिक कम्म कार्य का जान तो मीमांसा के बिना हो ही नहीं सकता।

२. उत्तर मीमांसा (वेदान्त)—वेदान्त मार्गीय दर्शन का मध्यमे चमकीला रहा है। वेदान्त सूक्तों के प्रसुता महापि वादरायण हैं। ये सम्भवतः महूर्वि वैमिनि के समकानीय हैं। इनका उद्देश्य उपनिषदों के आधार पर बहुत का प्रतिपादन, साक्ष, वैदेविक जैन, बोद्ध यादि मतों का वर्णन, बहु-प्राप्ति के वेदान्त-सम्भव साधनों का वर्णन था। वेदान्त दर्शन के मुख इतने ग्रलाघर हैं कि भाष्यों के दिना उनका धर्म जामना बहुत कठिन है। और भाष्यकारों ने इनसे अपना अभीष्ट सर्व विकालने में बड़ी सीखि-तन्त्र की है। यत् इन सूक्तों का वास्तविक धर्म और महूर्वि वादरायण का धर्म यह प्रता लगाना अत्यन्त लिलापृष्ठ काम है। किं जो इनका प्रवरद्य कहा जा सकता है कि वादरायण के धर्मका विद्वान्त शक्ति से निष्ठ है। इनके मूल विचार सम्भवतः ये हैं "विद्म बहु जी धर्मेष्टा पात्मा धर्मू है। जीव बैतत्वत्वा है। जान उपका विदेषप या युग है। बहु-वारा का वरावन और गिरिस दानों का राजा है। वादरायण और शक्ति में प्रधान भेद-यह है कि शुक्रकार मायावाद नहीं मानते थे। उनका मत था कि बहु ते पादुमूर्त होने पर भी जीव उससे पृथक् और वास्तविक बने रहते हैं। बहु से बनने वाला जगत् भी वास्तविक होता है। शक्ति के मत में यह प्रवास्तविक और मिथ्या है।"

वेदान्त सूक्त पर धर्मेष्टा आचार्यों ने अपनी-अपनी वृक्ष के भगुक्त आचार्यों लिखो हैं। इनमें जीव और ईश्वर के सम्बन्ध में ही अधिक मत-भेद है। शक्तराजार्थ

(७८८-८२० ई०) और और बहु में और भेद नहीं मानते। उनका भूल सिद्धान्त है—जाप सर्व जगन्मध्या, जीवो इहैन नापर । बहु ही तथा है, सर्व का जाग्रत् तीनों कालों में रहने वाली वस्तु है, सत्तार एवं न ऐसे से भिन्ना है। उनकी व्याख्या एवं विवरिक सत्ता है, किन्तु पारमात्मा वस्तु नहीं है। जीकराचार्य का दूसरा बड़ा सिद्धान्त यह था कि बहु के दो स्वरूप हैं—निरुण तथा सगुण। मात्रा सिद्धिषट् बहु समूह है, यही ईश्वर है। निरुण बहु मात्रा के सम्बन्ध से शिष्ट, सर्वधेष्ठ, प्रभुष्ठ, व्याख्या और सचिन्द्रानन्द स्वरूप है। जीकराचार्य जान के द्वारा मुक्ति था।

जीव जीकराचार्य के सिद्धान्त बाद के भक्ति-देवी वैष्णव धाराओं को प्रभाव नहीं था वे। वे जीव और बहु में भेद मानते थे, उनके मत में बहु ही ईश्वर था, जैसा जीव तथा जहु जगत् भिन्ना नहीं, जल्द थे। जीव प्रगत् तथा तुलया में अपना है, भक्ति ही सोबदायिका है। इन्होंने प्रगते सिद्धान्तों के सबर्थम् के लिए प्रपत्ती दृष्टि से विद्वान्त-मूर्छों का भाष्य लिया। इनमें रामानुज (११४० ई०), भट्ट (१२२८), निर्माक (१२५० ई०), और वल्लभ (१५०० ई०) उल्लेखनीय हैं। रामानुज का मत विषिष्टाद्वैत कहलाता है। इसके अनुसार जीव तथा जगत् समित्त भद्रमूर्छों के भव्याद् ईश्वर के दो प्रकार या विवेषण हैं। यह यह द्वैत न होकर विशेषान् वाचा (विशिष्ट) घृणते हैं। मध्य जीव और ईश्वर को सर्वत्रा पृथक् मानते हैं, साथ ही वे ईश्वर को इस जगत् का नियमित कारण ही मानते हैं, उपायान नहीं। यह उनका मत द्वैत मत कहलाता है। आचार्य निर्माके तीव्र और द्वैतव दो भव्याद् काल में भिन्न मानते हैं और वे संभिन्न। यह उनके मत को द्वैताद्वैत कहा जाता है। वालभाचार्य मात्रावाद को न मनुकर किंवदं द्वैत भवति सुन्दराद्वैत मानते हैं।

भास्त्रीय वाढ़ मध्य में सबसे मार्गिक साहित्य वेदान्त पर लिखा था है। अद्वैतवादी वेदान्त का प्रारम्भ शीघ्रपाद (१०० ई०) की 'भास्त्रीय कारिकारों' से होता है। तीव्र शक्ति के द्वारा में शक्ति ने प्रस्तावनापरी (वेदान्त सूत्र, उपनिषद् धीर गीता) पर प्रदितीय भाष्य लिया। 'यकर भाष्य' पर वाचस्पति (तीव्र श.) ते 'भास्त्री' नाम की एक सुन्दर टीका लियी। वेदान्त के अन्य धर्मों में भीहीं (आत्मवृण्डा श.) का 'वाचस्पति-वाचस्पति-भाष्य', वित्तुशालार्य (वित्तुशो श.) की 'सत्यवौपिता', 'विद्वाराय त्वामो (वौद्वही श.) की 'पवद्वही', भग्नाद्वैत सरस्वती (सोस्त्वही श.) की 'अद्वैतमिति', अप्यन दीक्षित (सवही श.) का 'सिद्धान्त नेत्र सप्तह' उल्लेखनीय है। वैष्णव शाश्वारों में रामानुज ने बहुमूर्छों पर तथा नीता पर भाष्य लिया। वेदान्ताद्विषयक (वौद्वही श.) में वीर वैष्णव मत सम्बन्धी पात्रित्यपूर्ण धर्मों की रचना की। मध्य तथा वल्लभ ने अपने मत के समर्थक पूर्णप्रब्रह्म तथा भग्नानाम लिये। समूचे भग्न-नुग में वेदान्त पर नवेन्ये भाष्य लिखने का काम जारी रहा।

३. सांख्य—सांख्य के मुख्यमूल विचार कालों जाती है और पह द्वैतवादी होने से वेदान्त का प्रवाल प्रतिवादी रहा है। वाढ़, दास्तोग्य, वैतात्त्वतर उपनिषदों में इसके बोक सिद्धान्त बीज कृप से भित्ति है। सांख्य का मूल धर्म है—वर्णक वर्णति ग

मनवों जाते। वह ईश्वरादी है इनके अनुसार प्रकृति और पुरुष ही मूल तत्त्व है, इनके परस्पर सम्बन्ध से बगत का याचिनीव होता है। मूल प्रकृति से सृष्टिपूर्ति की प्रक्रिया इनमें बड़े विस्तार से समझाई गई है। प्रकृति यज्ञ, रज, तम तामक तीन मुख्यों की साम्यान्वयनी है, इनमें वैदिक्य होने से सृष्टि का याचिनीव होता है। तीन मुख्यों का विचार सांख्य की भारतीय दर्शन की सबसे बड़ी देश है।

सांख्य दर्शन के प्रस्तोता नहीं करित भाने जाते हैं। वे उपनिषद्वालीन हैं, किन्तु इनके नाम से प्रसिद्धि 'सांख्य मूल' बहुत ही वर्णितीन है। इसका प्राचीन और प्रसिद्ध एवं द्वितीय दर्शन की 'सांख्यकारिका' है। इसका समय बहुत विवाद-प्रस्ता है, प्रायः इसे पहली शताब्दी ई० का माना जाता है। यह इतना प्रसिद्ध थम्य या कि छठी शताब्दी ई० में इसका चीजों में प्रमुखाद हुआ। इसकी व्याख्यायों में 'माठर वृत्ति' (दूसरी शताब्दी ई०), 'गीणाद माध्य' तथा 'वाचस्पति मित्र' (नवीं शताब्दी) की 'तत्त्व तौमुदी' उल्लेखनीय है। सोनक्की शताब्दी में लिखा गया तित्व तौमुदी पर 'सांख्य प्रवचन भाष्य' लिखकर सांख्य और वेदान्त का सामंजस्य किया।

५. योग—'योग दर्शन' सांख्य से सम्बद्ध है। योग का धर्म है विश्वसितीयों का निरोध। 'योग दर्शन' में इसकी विस्तार से विवेचना की गई है। योग के बाठ अन्त है—यम, नियम, धारान, प्राणायाम, प्रश्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। समाधि में इन्द्रा धर्म स्वकाम में प्रवर्णित होकर जीवत्व या मुक्ति प्राप्त करता है। योग से अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। 'योग दर्शन' के विभूतिगाय में इसका विस्तार से वर्णन है। सांख्य से सम्बन्ध होने हुए भी योग ने द्वितीय को माना है, भत, योग को संश्वर सांख्य भी कहा जाता है। वो पुरा तत्त्वाधिक जानी कठिन, कर्म-विचार (कर्म-कल) से मुक्त है, वही द्वितीय है। योग समाधि और यत के समय की विधियों पर ध्यानिक बहुत देता है।

भारत में योग का बहुत ध्यानिक भारतीय हीके हुए भी योग पर बहुत कम ध्यान दिये गए। वर्तमान समय में उपलब्ध योग-कृतियों के रचयिता पत्रिकाओं (दूसरी शताब्दी ई० यू०) यांते जाते हैं। इस पर व्यास का प्रसिद्ध भाष्य तीसरी शताब्दी ई० में लिखा गया। नवीं शताब्दी में वाचस्पति मित्र ने 'व्यासभाष्य' पर एक टीका लिखी। 'व्यास-भाष्य' के ऋतिरिक्त 'योग-सूत्रों' पर छत्तेक टीकाएँ जानी, इनमें राजा भोज-कृत 'राजमत्तेव या भोज वृत्ति' विशेष रूप से प्रसिद्ध है।

६. न्याय—भारतीय दर्शनों में साहित्य की दृष्टि से वेदान्त के बाद न्याय का स्थान बहुत ऊँचा है। सांख्यी शताब्दी ई० से न्याय पर भारत में विरस्तर विचार हो रहा है। न्याय के विकास को दो घाराएँ रही हैं। एहती तो सूक्षकार योगम से आद्युत होती है, उसे प्रमाण, प्रमेय, समय लादि सोलह पदार्थों के विवेचन पर बल देने से गदार्थ भीनांसाम्बन्धक धर्मवा याचीन न्याय की घारा कहते हैं और दूसरी प्रत्यक्ष, अनुमान, उपलब्ध तथा सब्द प्रमाण का सूक्ष्म विवेचन करने में प्रमाणभीमामात्रक या नव्य न्यायवाद कहलाती है। इसके प्रवर्तक नंगेन उपाध्याय (वररह्यी शताब्दी) में।

'न्याय दर्शन' का उद्देश्य प्रमाणान्वयि सौकृत्य पदार्थों का ज्ञान कराना है। मुक्ति ज्ञान से होती है, किन्तु शुद्ध ज्ञान-प्राप्ति के क्या साधन हैं? न्याय ने इनका विस्तार से प्रतिपादन किया है। भारतीय साहित्य को 'न्याय दर्शन' की सबसे अमूल्य रूप विवेचन किया तथा हेतुभासों (दृष्टित हेतुभूमि) का सूक्ष्म विवरण उपस्थित करके निरोप द्वंग से तक बासी की पद्धति का विवेचन किया। किन्तु 'न्याय दर्शन' का उच्च-ज्ञान उसको लक्ष्य-प्रतिनिर्वासा उत्पन्न नहीं है। उसमें ज्ञान को वास्तविक तथा प्रात्मा, परमाणु, मन, साक्षात्, काल, दिक् आदि अनेक पदार्थ मिल्य भाने हैं। उसको दृष्टि बहुत्संबंधित समार्थवाद की है। जगत् का समवायी कारण परमाणु तथा निमित्त कारण इधर है। न्याय परमाणुवाद में विवाद करता है। देवर को इच्छा हीने पर परमाणुओं में गति उत्पन्न होती है। एक परमाणु दूसरे से मिलकर द्वयरूप बनता है, तीन द्वयरूपों से त्रयरूप और इस प्रकार सूक्ष्म से शूल मुक्ति की उत्पत्ति होती है। न्याय के सनुसार मुक्ति में सूक्ष्म-दुर्ल का घन्त हो जाता है।

'न्याय दर्शन' की उत्पत्ति भीमोत्ता के विचार से हुई। वर्तमान न्याय भूमि के प्रणेता गोतम (छठी श० ३० पू०) माने जाते हैं। पहले सह बताया जा चुका है कि भूदों का उत्तर देने के लिए वास्तवायन (पहली या दूसरी श० ३०) ने न्याय जाग्रत्ता लिखा; इनके बाद उत्तोतकर (छठी श०), लाखस्तपति मिथ (नवीं शती), जगन्न भट्ट (नवीं श०) तथा उदयनाचार्य (दशम श०) ने क्रमशः 'न्याय वातिक' की, 'तात्पर्य टीका' 'न्याय मंडरी' तथा 'न्याय-कुमुखजिति' डारा इस कार्य को पूरा किया। तेजहवीं श० में 'नव्य न्याय' के प्रवर्तनक मिथिला के नवेद उपाध्याय ने 'तत्त्व-निन्दामणि' की रचना की। इसके बाद पाहित्य की कसीटी उदयन तथा गंगेश के गन्धों की व्याक्षया ही रह गई। पहले दो सौ वर्षों तक मिथिला के पाण्डित नव्य न्याय का विकास करते रहे। तेजहवीं शती में बगाल में भवद्वीप का विद्युतीष्ठ स्थापित हुआ और अगले दो सौ वर्षों तक यह 'नव्य न्याय' का प्रधान केन्द्र रहा। सोलहवीं, सप्तहवीं वातियाँ नव्य न्याय के इतिहास का मूलरूप नुग हैं। इसी समय बगाल के धुरुन्धर नेपालिक रहनाय शिरोमणि (सोलहवीं श०), मसुरानाय, जगदीश (सप्तहवीं श०) और गवाघर भट्टाचार्य (सप्तहवीं श०) हुए। उनकी टीकाएँ भारतीय पाण्डित, प्रकार प्रतिभा और सूक्ष्म विवेचन-शक्ति के उत्तम उदाहरण हैं। बाल की ज्ञान निकालने में कोई दूसरा दार्ढीनिक नव्य नैयायिकों को मात्र नहीं दे सकता।

६. वैदेशिक—वैदेशिक के प्रधान सिद्धान्त न्याय से मिलते हैं। जगत् के सम्बन्ध में उसका दृष्टिकोण बहुत्संबंधित वास्तवपथादी है। यह सात पदार्थ (इल्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव) और नौ द्रव्य (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, साक्षात्, काल, दिक् भारतमा और मन) भानता है। इसकी विशेषता 'विशेष' नामक पदार्थ की कल्पना है, इसीलिए यह वैदेशिक कहलाता है। पृथ्वी या जल का एक परमाणु दूसरे परमाणु से विस विशेषता के कारण विभिन्न है, वही विशेष है।

सम्भास्तः वैदेशिक ने ही संबंधवम् गृष्ण-पुरुषति की प्रक्रिया स्पष्ट पारने के लिए प्रशस्तपाद के सिद्धान्त का चिकास किया। न्याय ने इसे वैदेशिक ने यहां किया।

वैदेशिक दर्शन के सूचकार मार्गीव कलाद है। इसका समय तीसरी श० ई० पू० समाजा जाता है। वैदेशिक के सिद्धान्तों का स्वतन्त्र रूप से निष्पाण प्रशस्तपाद के 'पदार्थ-वर्म-सप्त' में है। इसका समय तृतीयी श० ई० है। प्रशस्तपाद के खंड पर श्रीमणिकाचार्य (शाठीयी श०), उदयतात्त्वार्य (इशाम श०), श्रीगणेशार्य (इशाम श०) और वालतनालार्य (वाराहीयी श०) ने दीक्षाएँ लियी। भारतम् में न्याय वैदेशिक पृष्ठ के, किन्तु इत्यम् शारी के बाद दीनों सम्बन्ध एक ही था।

भारतीय दर्शन की विशेषता—भारतीय दर्शन का प्रधान उद्देश्य जगत् को दृष्टिपात्र विविषणा में एकता का इन्हेत्वा है। न्याय-वैदेशिक, सोलहवीं श्वीर वेदान्त ने इसी को इङ्लैन का बत्त किया है। इन्हीं दृष्टि कमशः शुद्धमत्तर और शुद्धमत्तम् हीही गई है। दर्शन ना जरूर चिकास अद्वितीयाद में उपस्थित होता है, जिसके प्रनुतार शुद्धि के तभी क्षण एक ही ब्रह्म से विभासित हुए हैं, जगत् के दृष्टिपात्र बहुत और जामात्व में यान्तरिक एकता है। भारतीय दर्शन की रखरो यही भीज और देन यही है। याव-यदि संसार अनेकता के भीतर तात्त्विक एकता के सिद्धान्त को भली भाँति छुद्धयन्त्रम् कर से लो वह यथा-इर्षी, उद्देश्यवस्तों, तथा प्रत्यक्ष्युक्तों के भीपण जास दे द्याएवत् परिचाण गा जाकता है।

मौर्य-सातवाहन-कुशाण-युग

(३२२ ई० पू०-२०० ई० लगभग)

राजनीतिक स्थिति—३२२ ई० पू० में चन्द्रगुप्त मौर्य के पाटलिपुत्र में राजगिरामन पर बैठने के साथ भारतीय इनिहॉप्स में एक नया युग प्रारम्भ होता है। इस समय मध्यम में विरकान से आरम्भ हुई सातवाहनवाद की प्रवृत्ति शुरूता को प्राप्त करती है। हिन्दूकुण्ठ प्रबन्ध से बगाल की यात्रा तक पहुंचा एकमछुड़ गाँवभीम यासन स्थापित होता है। लगभग यीं वर्ष तक मौर्य भारत की सर्वोच्च शक्ति बते रहे। किन्तु इसके बाद अगले यीं वर्ष तक समूचे भारत को एक शासन-सूच में विरोध नाली कोई शक्ति न रही। मौर्यों के बाद मध्यम में यमरा शुरू, काष्ठ और खान्ड वर्षों का यासन रहा। उसने भारत यदव, लक, पहलव और कुशाल आदि विदेशी जातियों द्वारा शासनकान्त होता रहा। २१० ई० पू० के लगभग उत्तर में यदव, (युवानी) शौद्ध-पूर्व में शारदेव घीर विधिय में सातवाहनों के नये शक्ति उठ रहे हुए। १०० ई० पू० तक इसमें शीर रहा, कलिश के राजा शारदेव का उदय और भस्त चत्ता लारे जी भारत अल्पकालिक था, यदवों ने उत्तर-पश्चिमी भारत में कारिधी, गुप्तराजी, लक्ष्मिनाथी और याकत (स्पातकीट) में अपने राज्य स्थापित किये और यीं यीं वर्ष तक उसका इस प्रदेश में यासन रहा। सातवाहन बन की स्थापना २१० ई० पू० के लगभग सिसूक नामक वात्याप ने महाराष्ट्र में की थी। याद में यान्ध्र प्रदेश पर भवित्वार कर दिने में यह बढ़ यान्ध्रवंश भी कहनाया। फिरेंवी याकमचों से भारत की यात्रा करने का इसके भरमक गलन हिता। भलेक उत्तर-वाहारों में भी यह यव-वार सौ यज्ञास वर्ष तक बना रहा और इस काल में इन्हिया भारत का प्रधान राज्य रहा। उत्तर भारत में १०० ई० पू० से ५० ई० तक याकी की प्रधानता रखी रही। ५० ई० पू० से ३० ई० तक सातवाहनों का वरम उत्कर्ष दुष्पा, किन्तु इस वीच में उत्तर-पश्चिमी भारत में पहलवों (४५-३ ई० पू०) घीर द्वितीय कुशाणों की सत्ता स्थापित हो गई। इसकी मन् युक होने के साथ कुशाणों का साम्राज्य उत्तर भारत में फैलने लगा। इनका यासन परिवर्म के प्रतिक्षेप द्वारा यान्ध्राना का समकालीन था। इसके सबसे प्रतापी राजा कानिष्क (३८-१२० ई०) ने पाटलिपुत्र से मध्य एशिया में चीन की नीमा तक के प्रदेश को लोकप्र उत्तर अपने विद्याल साम्राज्य का भैंग बनाका

१८०-१८० तक उत्तर भारत में कुशाण तथा इशियों द्वारा भारत में साम्राज्य-साम्राज्य की प्रमुखता रही।

स्त्रीयं-मातृत्वाहरत्-कृद्वाणि-युग की विशेषताये

पहली विशेषता-धर्मविजय का अग्रणी है—राजनीतिक दृष्टि से यद्यपि इस गुण में भारत लिंगों कातियों के धारकमणों का शिकाह रहा, किन्तु बध्यता के इतिहास की दृष्टि से इस काल को सबसे बड़ी विशेषता विदेशों पर भारतीय संस्कृति का धारकमण था। जिस समय बबन, दाक, कुशाण जून की नविर्या वहाँ से हुए भारत की विजय कर रहे थे, उस समय भारतीय धर्म-दूत शान्ति पुरुष क उन देशों की धर्म-विजय कर रहे थे। धर्म-विजयों की परिपाठी इस गुण में शायोक ने शुल की थी। उसने न केवल लंका में अपने पुज और पुत्रों को भेजा, अपितु पश्चिमी एशिया, मुरोक्का और अफिका के दूर देशों में अपने धर्म-प्रचारक भेजे थे। इसा की पहली शरी में बीज अपने का सम्बेदन मध्य एशिया और चीन में पहुँचा।

दूसरी विदेशियों—भारतीय संस्कृति के प्रचार के साथ इस काल की दूसरी विदेशियों हारा भारतीय संस्कृति और धर्म का अपनाया जाना था। यद्यपि राजनीतिक दृष्टि से यवन, लक, पश्चिम और कुशाण भारत को जीतते थे परन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से भारत हारा जीत लिए जाते थे। यवन राजाओं में मिनान्दर (१६०-१४० ई० पू०) बीड़ धर्म का परम भक्त था। तत्त्वजिला के राजा अग्नतिष्ठित के राजदूत हेतिहोरस हारा दूनसी घटी ईस्टी पुर्व के भूमि में वेसनगर (विदिया) में स्थानित किया गया गहड़-कबूल उसके वैष्णव धर्म को अ-हीनकार करने का प्रमाण है। नाशिक और कार्ली की मृदाश्री में यूनानी लम्बेव, सिंहव्यज, धर्म का प्रमाण है। नाशिक और कार्ली की मृदाश्री में यूनानी लम्बेव, सिंहव्यज, धर्म की उप धारियों के फ्रेनक दान उनके बीड़-धर्मात्मकों होने की मुख्यता देते हैं। यवनों के बाद इस देश पर दाकों का आकर्षण हुआ। जिन्हें होकर भी वे भारतीय धर्म हारा विजित हुए। पश्चिमी भारत के भूहात्कप नहपान (नगमग ८२-३७ ई० पू०) का लगाई उपवासत पाठुर हिन्दू था। नाशिक के एक मुहात्तेला से जात होता है कि उसने तीन लाल गीर्वें तथा तीन हाँड़ वालाओं को दान किये थे। याठ भाइयण-कान्याओं के लियाह में उसने अप्य से कन्यादान किया था और साल-भर तक एक लाल बालूओं को भोजन कराया था। तत्त्वजिला के शक जासक पतिक के तथा मध्यरा के शक लकप रुद्रुन (नगमग ६०-५१ ई० पू०) की पटरानी के बीड़ संघाराम और स्तूपों के लिए दान के अधिनेत्र मिले हैं। सेलफरण के बेटे हरकरण ने, जो तत्त्वज-पहलव था—काल में नौ मठों से मुसाञ्जिल गुहा-मन्दिर बीड़-भिन्नधों को दान दिये। कुशाणों का पहला राजा विमलप बीड़ था, उसने २ ई० पू० में यपने द्वातों के हाथ बीड़ धर्म की एक गोती पहले-पहल लोन भेजी। उसका बेटा विमलप (दासनकाल ३०-३७ ई०) शायद धैर्य था। उसके सिवाओं पर नन्दी के सहारे लगे हुए धिक पाये गए हैं। उसके उत्तराधिकारी कनिष्ठ के सिवको पर यद्यपि यूनानी, ईरानी और भारतीय

देवता बनकिए हैं, तभापि वह बीड़ घर्म का परम भक्त और प्रबल योगी था। उसके उत्तराधिकारियों में वासुदेव प्रथम (लगभग १५०-१२० ई०) थीं था। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इस युग के सभी भाकान्ता भारतीय संस्कृति को ग्रहण करके भारतीय समाज में धूल-मिल गए। यद्यपि विदेशियों के हिन्दू-समाज में विलीन होने की प्रक्रिया गृह्ण युग तक चलती रही, किंतु भी मौर्य-नातवाहन-कुशाण युगों में विदेशी जातियों को वित्ती तक संक्षय में भारतीय समाज में पक्षा लिया गया वैसा दायर बाइ में कभी नहीं हुआ।

(तीसरी विदेशी—इस युग की एक अन्य विदेशी वैदिक घर्म का युनस्त्यान लेखा पौराणिक हिन्दू घर्म में और सहायान संप्रवाप्य का प्राचीर्भाव था। समाट-पशोक द्वारा बीड़ घर्म को राज्याभ्यास मिलने से भौमे युग में उनकी बड़ी उत्तराति हुई थी। किंतु जब पिछले मौर्य-समाट विदेशी आकमणों से देश की रक्षा नहीं कर सके तब उनके द्वारा संरक्षित घर्म के प्रति जानता में प्रतिक्रिया हुई। भौमे का स्थान लेने कामे युगों तक उनके यमकालीन सातवाहन वंश के ब्राह्मण राजाओं ने हिन्दू घर्म को प्रबल संरक्षण प्रदान किया। पुराना वैदिक घर्म अपने उसी वज्ञ-प्रधान रूप में तो नहीं लौट सकता था, हस्तियां उनने अनेक परिवर्तनों के साथ पौराणिक कथ्य भारण किया। वैदिक घर्मों का स्थान अब मन्दिरों में प्रतिष्ठित देवी-देवताओं ने ले लिया। देवता तो वैदिक घर्म में भी थे और अब भी रहे। किन्तु पहले उनकी उपासना घर्मों द्वारा होती थी, अब उनके मन्दिर बनने लगे और मूर्तियाँ पूजी जाने लगी। वैदिक देवताओं में इन्हें प्रधान था। अब विश्व और विष को प्रमुखता मिली। यह उस समय का भागवत-घर्म था। इसके साथ शैव-घर्म का भी विकास हुआ। ईरान से आगे आएँगों ने यह को पूजा जाना दी। इन सब परिवर्तनों का छठे अध्याय में विस्तृत वर्णन किया जा चुका है। पौराणिक घर्म का प्रभाव बीड़ घर्म पर भी पहा। उसमें बुद्ध एक ऐतिहासिक भहायुर्य के रूपान् पर प्रमुख देवता-बन गए। भद्ररा और गोधार में उनकी भूमियाँ बनी, यह समझा जाने लगा कि बुद्ध कई जन्मों से साक्षमा कर रहे थे, उस समय के बीचिस्तर्थ थे। अनेक बोगिसत्त्वों की मूर्तियाँ बनाकर उनकी पौराणिक रूप से पूजा की जाने लगी। बीड़ घर्म के इस भये कथ की उसके समर्थकों ने महायान बाधों के बड़ा मार्ग बताया और उनकी तुलना में पुराने बीड़ घर्म की हीनपाल कहा। नायाकुन (१५० ई०) महायान के प्रमुख धाराएँ थे। महायान ने अपना अब माहित्य असूल भागा में कर लिया। कलिष्ठ से महायान की प्रबल राज-संरक्षण मिला। उनमें जीवों बीड़ महासना बुनाई, 'प्रिनिदक' पर भाष्य लिखाया। उनका माध्यम अब एविया तक विस्तृत था, इसमें बीड़ घर्म के प्रसार में बड़ी सहायता मिली।

(चौथी विदेशी—भारतीयों द्वारा लियों में वित्तीय वसाया जाना और वहांर भारत का सूक्ष्म-प्रत उनकी जीवी विदेशी थी। यशोक के समय लोतन (जीनो तुक्सितान) में भारतीय उपनिषेद की जीव परी। भारतीयों ने वहाँ जीवियों

के बाने से पूर्व वर्तमान भारतवर्ष नदी को सीता नाम दिया था। १०० ई० प० में भारत वैरोचन ने बहौं के भग्नालकों को लिपना सिखाया। इस प्रदेश में भारतीय सभ्यता के इतने प्राचिक अवधेष्य मिलते हैं कि इसे 'उपरता हिन्द' कहा जाता है; सातापाङ्गों के उत्तरों के मध्य (५० ई० प०-५० ई०) में भारतीयों ने विश्वामुखी विशिष्टों के विविध प्रदेशों में लगता राज्य और अपनी संस्कृति स्वापित करके 'परमे हिन्द' का निर्माण किया। भारतीय व्यापारी इन प्रदेशों में छठी शती ५० प० ते ही आ रहे थे। इन्हीं सन के शुरू में वर्तमान वीतनाम (कांसीसी हिन्द नीन) में कोशार और पाण्डुरंग नाम के दो छोटे भारतीय राज्य थे। ये काग नदी के तट पर एक तीसरा बड़ा भारतीय राज्य था जिसकी स्थापना कौशिङ्ग नामक द्वादशा में की गई। भीनी इस राज्य को कृतान कहते थे। जाता, मुमाचा में भी याप्त दोषों ने भारतीय वस्तियों बढ़ाई। १६२ ई० में बम्बा (भनाम) में भारतीयों ने एक राज्य स्वापित किया, जो उस समय से भारत और चीन के बाइज्य का नया पथ बना और इससे चीन का रेशम विविधी देशों को इतनी अधिक भाषा में जाने लगा कि इब्न बार्ग का नाम ही 'रेशम का मार्ग' पह गया। हिन्दलास नामक मूमाची नामिक ने ५५ ई० में मामसून द्वारा की सहायता से परिवहनी वरब भागर की वैतालीन दिन में सीधा पार करने का भावित्कार करके रोम और भारत के रास्ते को बहुत मुश्यम बना दिया। इससे भारत और रोम व्यापार बढ़ा। भारतीय मलमल, ममाचो, घृष्णुस्त्र भणियों और मुखनिधन उद्योगों की दूसरे देशों में इतनी अधिक माँग थी कि विविधी व्यापार का पतला सदा हुआरी और भुका रहता था। दूसरे देश इनका बाम बूजाने के लिए हमें ब्रह्मा माता में सोमा-चार्दी भेजते थे। ऐसी शमी ५०८ (कृष्णाण-वाल में) दूसरे देशों का सोमा भारत की ओर बहने लगा था और यह प्रवाह भग्ने १०००० बरस भग्न-काल तक भारत की ओर ही बहता रहा। कनिष्ठ के समकालीन ज्ञानी तथा वैरोचनेश के समव बनिपर तक विविधों की इस दाता की दबो गिकाफा रही है कि यह देशों का मोमा भारत की ओर लिखा जाता जा रहा है। ग्रान्तान लाल में भारतवर्ष की समृद्धि का एक प्रधान कारण अनुकूल व्यापार द्वारा यहाँ विवेशी से आगे बाता जाना था और इसकी मुख्यता दुश्मान-युग में हुई।

पौरवी विशेषता—भारत का इस पूर्व में चीम और रोम से सम्बन्ध स्वापित होना तथा उसके साथ विवेशी व्यापार की अनुसन्धान उन्नति और अस्तिक समृद्धि इसकी पौरवी विशेषता है। जाह्नवियन की याका द्वारा १२० ई० प० में मम्बा प्रविष्ट के स्वस्त्रमार्ग की ओर से भारत और चीन के बाइज्य का नया पथ बना और इससे चीन का रेशम विविधी देशों को इतनी अधिक भाषा में जाने लगा कि इब्न बार्ग का नाम ही 'रेशम का मार्ग' पह गया। हिन्दलास नामक मूमाची नामिक ने ५५ ई० में मामसून द्वारा की सहायता से परिवहनी वरब भागर की वैतालीन दिन में सीधा पार करने का भावित्कार करके रोम और भारत के रास्ते को बहुत मुश्यम बना दिया। इससे भारत और रोम व्यापार बढ़ा। भारतीय मलमल, ममाचो, घृष्णुस्त्र भणियों और मुखनिधन उद्योगों की दूसरे देशों में इतनी अधिक माँग थी कि विविधी व्यापार का पतला सदा हुआरी और भुका रहता था। दूसरे देश इनका बाम बूजाने के लिए हमें ब्रह्मा माता में सोमा-चार्दी भेजते थे। ऐसी शमी ५०८ (कृष्णाण-वाल में) दूसरे देशों का सोमा भारत की ओर बहने लगा था और यह प्रवाह भग्ने १०००० बरस भग्न-काल तक भारत की ओर ही बहता रहा। कनिष्ठ के समकालीन ज्ञानी तथा वैरोचनेश के समव बनिपर तक विविधों की इस दाता की दबो गिकाफा रही है कि यह देशों का मोमा भारत की ओर लिखा जाता जा रहा है। ग्रान्तान लाल में भारतवर्ष की समृद्धि का एक प्रधान कारण अनुकूल व्यापार द्वारा यहाँ विवेशी से आगे बाता जाना था और इसकी मुख्यता दुश्मान-युग में हुई।

छठो, सातवीं आठवीं और नवीं विशेषता—इन सुग की छठी विशेषता मूर्ति, बास्तु भादि कलाओं की उन्मति थी। सुभ्राट घोड़ोक के स्तम्भ तथा उन पर वहीं मुन्दर पशु प्रतियों, भारहुत और मार्यों के स्तूप इसके मुन्दर उदाहरण हैं। पहली शब्दों द्वारा जगमग तुद की मानवीय मूर्ति पहली बार वहीं और गान्धार दीती का विकास हुआ। संस्कृत-साहित्य के काल्प और लाटकों का प्रारम्भ उद्या जर्तमान का में मिलते वाली मनुष्यमूर्ति, रामायण और महाभारत का निर्माण सातवीं विशेषता है। आठवीं विशेषता मूर्तियाँ लालाक्ष का विकास और नवीं भारतीय संस्कृति का गुनान, रोम भादि विदेशी प्रवर्षकों से समृद्ध होना है। इस सुग के प्रमें, कला, ग्रास्कृतिक प्रसार और शासन-प्रणाली पर यथा अधिकारों में प्रवाय आज समा है, प्रतः यहीं पर रामायिक, सास्कृतिक व वाचिक जोखन पर ही विचार किया जायगा।

सामाजिक स्थिति

यथाधिम पद्धति—हिन्दू नगार में वर्ण और साधन का विचार पिछों सैद्धिक गुग में उत्पन्न हो चुका था। सास्कृतकोंने समाज को बाह्यण, लिंग, वैद्य व चूद नामक चार वर्णों में बटाया। निम्न, यह बर्गों-मेद शास्त्रकारों का शास्त्री-नाम था और इसने वर्तमान जन्मभूतक जात-व्याप का कष्ट चारण नहीं किया था। यह बात उस काल के लिंगेशी गावियों के वर्गोंमें और तत्कालीन धर्मियों से सुचित होती है। भेगास्थनीय के कथनातुसार मौर्य सुग का भारतीय समाज निम्न सात वर्णों में विभक्त था :

(१) वार्षनिक—ये संख्या की दृष्टि से बहुत कम थे, लेकिन इन्हें बहुत मात्र दिया जाता था। इसका काम सांबंधिक और लैपचितक यज्ञ कराना होता था। ये नव व्रकार के कारों में मूकत थे। (२) कुपक—घणिकाय जमता सेती कर्तों और और युद्धों में कोई भाग न लेती थी। (३) पशु-नातक और विकारी। (४) वायापी, घिली और नाविक। (५) गोदा—ये जहाँद के वितरिकर कोइ इन काम संकरों थे और राज्य की दोहरे जानिकाल में नियमित बेतुन पाते थे। (६) गरुकारी मूर्त्यवर तथा (७) ग्राहा की परिषद् के वृद्धस्त्र। यह सफ्ट है कि देगास्थनीय का यह वर्षीकरण पेश की दृष्टि से अवृत्त-वर्ष-मूलक है, जन्म-मूलक नहीं। इसी व्रकार प्रयोग ने यसके धर्मियों में डाक्युण, भ्रमण, इन्द्र (पुरुषति), भृतक (मञ्जदूर) और दात नामक वर्गों का उत्तेजत किया है, जो पेश की दृष्टि से समाज के विभिन्न वर्ण थे। योग्य सुग के व्यक्ति में तथा सातवाहन सुग में यज्ञ, यज्ञ, पहुंच और कुलाच जातियों के भारत पर निरन्तर धारणण हो रहे थे, इनसे यमो-संकरता की गभावना थी। इन संकट-वात में जातीय द्वुद्वारा दो रक्षा के लिए कुछ अपरस्थारे आवश्यक समझी गई जिससे वात में जात-व्याप का नेत्र उत्पन्न हो गया। किन्तु इस समय तक इन नियमों में कठोरता नहीं थार्ही थी। अगर उस समय भी भरव की उच्छृंकठोरता होती हो विदेशी जातियों हिन्दू-समाज का वर्ग न बन पाएं। भणिक-से-वाचिक लेखन

इतना ही कहा जा सकता है कि समाज के विभिन्न वर्गों में प्रणने को जाति मानने का विचार यहाँ से अधिक जल्द रहा था।

जात-नात में पेशे, खान-गान और विवाह के विचार प्रथान हैं। इन दोनों से उस समय वर्तमान रूप में जात-नात की उत्पत्ति नहीं हुई थी। मनुस्मृति में चारों वर्गों के विभिन्न पेशे और कार्य बताये गए हैं, किन्तु इसी स्मृति से यह जात होता है कि ये ग्रामीण-माज थे। उस समय वृद्धि प्राप्तियों का प्रधान कार्य पहला-पहास्ता, यज्ञ करन्-करना था, तथापि ऐसे वाह्यवर्गों की भी कमी नहीं थी जो विकितसा, व्योतिष्ठ एवं युद्ध-विद्याल का कुत्ते और बाबू पालने (मनु ३।१६५) और मृदं ढाने (मनु ३।१६५) तक का काम करते थे। इन गत वाह्यवर्गों को मनु ने 'धर्माङ्गस्य' वर्णता वाला धार्दि में कुलाये जाने वाले वाह्यवर्गों की धक्कित ने न बैठने गोम बतलाया है। यह स्पष्ट है कि इस प्रकार के अवित पौत्र से बाहर होने पर यन्मःयनः प्रपनो वाह्यवर्ग जाति भी थी बैठते थे, क्योंकि कोई उच्च वाह्यवर्ग उन्हें प्रपनी लड़की देने को तैयार न होता था। रोटी या खान-गान के सम्बन्ध में भी इस तुग में जात-नात का कोई विकेन प्रभाव नहीं था। खाण्डाल धार्दि बहुत नीचों समझी जाने वाली जातियों के साथ खान-गान का परहेज तो महाजनपद तुग से ही बन पड़ा था। वह इस सूक्ष्म में भी बना रहा। वरतत्ति के नहामात्य से यह प्रतीत होता है कि कुछ सूक्ष्म जाति वालों के बर्तनों में वाह्यवर्ग भोजन नहीं करते थे, और न उन्हें प्रणने बर्तनों में लिलाते थे। इस प्रसंग में यह स्मरण रखना चाहिए कि शकों और मध्यनों की भिन्नता इन दोनों में नहीं थी। इस व्यवस्था से यह स्पष्ट है कि यायों में परस्पर एक दूसरे के हाथ का भोजन में करने की बात उस तुग में नहीं थी। यही लिखति प्रपनी जात में विवाह वाले के सम्बन्ध में भी थी। मनु तथा अन्य वास्तविकारों की यह प्रबल इच्छा थी कि विवाह प्राप्ते वर्गों में ही हो, किन्तु प्रसंग विवाह उस समय समाज में काफी ग्रचिनित थे। वाह्यवर्गों और दूदों में भी परस्पर वासी विवाह-सम्बन्ध होते थे। मनु को वाह्यवर्ग-जातियों का पूरायों के साथ विवाह बहुत नाप्रयन्त्र था (मनु ३।१४) अनुलोम (ज्ञेन वर्ण के पूर्ण का ऊंचे वर्णों की स्त्री के साथ) योर्नों प्रकार के विवाह प्रचलित थे, मध्यगि प्रतिस्तोम-विवाह अधिक दुरा समन्ता जाता था। याजावलय के समय तक जात के विचार में इस हृद तक परिवर्तना प्रा महि कि वह द्विजातियों को दूदों से विवाह का दिलकुल नियोज करता है (याज ० १।५६)। लेकिन यह उस का मत ही था। समाज में हृसरा यक्ष मानने वालों को कमी न थी।

यातवाहन तुग के अभिलेखों से भी यही जात होता है कि प्रवा उस समय अवधारों को दृष्टि से कई भागों में बैठी हुई थी। सबसे उच्च वर्णी में 'महास्त्री', 'महामातृ', 'महासेवामाति' धार्दि उपाधियों वारण करने वाले विलों के जातक सदरार थे। दूसरे वर्ण में राज्य के पदाधिकारों अमात्य, महामात्य, भाण्डागारिक (कोषा-

भवत) व थेल्डी (सेठ) सम्मिलित है। तीसरे बड़े मेसलक, वैद्य, उपास, मुखर्णीकार और गाधिक (मुग्निचित द्रव्यों के व्यापारी) हैं और चौथे बड़े में बड़दै, भाली, लुहार, मधुए आदि हैं।

भारत में इस समय अनेक विदेशी जातियाँ आ रही थीं। इन्हें चातुर्वर्ष्य में कहीं स्थान दिया जाय यह बहु महस्त्वपूर्ण प्रश्न था। मनु ने इसका बहा सुन्दर समाधान करते हुए कहा कि कम्बोज, धक, यवन और यहूलव आदि जातियाँ विधिवाली हीं। किन्तु वहमें कियात्यों के न करने और ब्राह्मणी का दर्शन न मिलने से पृथक (शूद्र) बन गई (मनु १०।४३-४४)। प्रसिद्ध सातवाहन राजा गोदमी पुक सातकर्णी (७६-४४ ई० पू०) भी भासा ने बड़े व्यानिमान से घपने पूक के लिए यह लिखा था कि वह “जाती, यवनों व पहुलवीं का अन्त करने वाला तथा चातुर्वर्ष्य के संकट को शोषणे वाला है।” किन्तु उनीं समान स्वयं सातवाहनों ने शक-कल्याणों से लिवाह करके संकरता उत्पन्न की। अस्तुतः उस समय वर्ण-व्यवस्था के नियम इतने कठोर नहीं थे। यह बात इसी से स्पष्ट है कि शुद्धों और सातवाहनों ने ब्राह्मण दोनों हुए भी क्षाप-व्यवस्था का वालन किया।

वधों की भाँति चार आश्रमों के विचार पर भी शास्त्रकारों ने बत दिया। शुद्धानी लेखकों ने फल-मूल पर निर्वाह करने वाले बल्लव-वारी प्ररण्यवासी सातुयों का वर्णन किया है। ये लानब्रह्म प्रतीत होते हैं। वोडों ने निज जीवन को इतना व्यापक बना दिया था कि समाज को इससे हानि गहूँचने लगी थी। संन्यासी बनने का अर्थ या सामाजिक कर्तव्यों की छोड़कर भासना। महाभारत (शान्ति पर्व २१५, १०।१७, २१, २७, १११।२) में भिक्षुपन की लिली उड़ाई गई है। मनु ने शृहस्त्याश्रम की बड़ी भविमा नाई है (३।७७)। यह भी उल्लेखनीय है कि मनु और यातवालय दोनों भिक्षुओं को दूषित करने का तुच्छ अपराध मानते थे, क्योंकि उन्हें स्त्रियों का प्रश्रया मेना प्रसन्न नहीं था।

स्त्रियों की स्थिति—कोटिलोग अवधास्व से जात होता है कि भीर्युग में स्त्रियों की स्थिति बहुत अच्छी थी। याय में उन्हें पूरा विधिकार था। कुछ अवस्थाओं में वे तत्त्वाक वे सकती थीं और पुनर्विवाह कर सकती थीं। गाम्यवं (परस्पर वेम से हुए) विवाहों में परस्पर द्वेष होने पर तत्त्वाक दिया जा सकता था (परस्पर देवान्मोक्ष)। पति के विदेश जाने तथा निविलत समय तक न लौटने पर स्त्रियों दूसरा विवाह कर सकती थीं। विषवासीं को भी पुनर्विवाह करने का विधिकार था। पति यदि स्त्री को दीन बार से अविक पीटे तो स्त्री उसको विश्व अदालत में विभिन्न चला सकती थी। नियोग की पद्धति भी व्यवस्थित थी।

सातवाहन युग में मनु भूति ने निष्ठो अवस्थाओं में कुछ परिवार किया। सौम्य युग तक विवाह एक ठहराव-मात्र था, दसमें तत्त्वाक हो सकता था। मनु ने उन्हें विद्व भस्त्र द्वारा अविक्षेप दबाया, नियोग तथा विषवा-विवाह तक निर्दिष्ट किया।

मरावि उसने स्त्रियों की स्वतन्त्रता का अधिकारी नहीं समझा किंव भी उनकी प्रशंसा भवत्य थी है—“वहीं स्त्रियों की पूजा होती है, वहीं देवता वसते हैं।”

वैदिक युग की मात्रा स्त्रियों पतियों के साथ घरें-बग्मे में भाग लेती थी, वह शशोक के पानी कालाकों के प्राचरण से बुचित होता है। धर्मरोध (हर्म) तथा बहु-विषयों की परिवारी राजभर्तिवारों में प्रचलित थी। यूनानी लेखकों के अनुसार कुछ स्त्रियों आजीवन प्राप्तिवारीयों रहकर दर्शन-दात्र स्वरूप का अध्ययन करती थी। परं मह मप्ट है कि इस युग में भी गान्धी व गैरेली-जैसी विद्युती स्त्रियों होती थीं।

दास-प्रथा— यज्ञो मेगालिनों के प्राचार एवं परिवर्तन ने लिया है कि उस समय भारत में दास-प्रथा नहीं थी, स्थानि शिलालेखों-तथा धर्मशास्त्रों से इस प्रथा का प्रचलन बुचित होता है। इसका कारण समझते हैं कि यूनान में जिस बाते पैमाने पर दास-प्रथा प्रचलित थी और उसके साथ जैसा तुल्यवहार होता था वह भारत में न था। प्रजासत्त्व-यज्ञति के दृष्टिकोण से यूनान में कृत ३५ हजार स्वतन्त्र और ऐसाह दास थे जबकि प्रति स्वतन्त्र व्यक्तियों की ओर तेह दास थे। दासों की व्याख्या जो कि कुल प्रजा के ६२.५% थे, पूर्वों से भी बढ़तर थी, वहाँ विसी उन्हीं के द्वारा की जाती थी; भारत में दास के बहुत उसके लिए थे। उनके साथ इतना अच्छा बरताय दोता था कि मेगालिनों को यह भ्रम ही नहा कि भारत में दास-प्रथा नहीं है। वौटिल्य की अवस्थाओं से प्रतीत होता है कि उस समय भारतीय समाज में जो योजें बहुत दास में उन्होंनी लह (कौटिल्य) मुकिय दिलाना चाहता था। “भास्त्रं व्यक्तिं तो द्याम दमायोऽति नहीं जा सकता था। न देवायंस्म दासभाव।” जो अनायं दास बनाये जाते थे उन्होंनी भी यार्य दमाना और उसके साथ तुल्यवहार न होने देना की त्यक्ता रखता था। परोहर रेखे दास से मुद्री, पालामा, गोदाव तथा जृठन उठाना, उसे नभगा रखना या पालना, दासियों का सतोरख इत्य, दासों को स्वतन्त्र होने वा विधाय देने देता था। अशोक ने अपने लिलानेंद्री में बार-बार दासों से सद्गुणवहार करने की हितामत की है।

वरिष्ठ प्रोट आज्ञार— यूनानी लेखकों ने भारतीयों के वरिष्ठ को मुख्यकांड से प्रशंसा की है। उनके वर्णनामुसार भारतीय सत्यवादी होते थे। ‘कभी जिसी व्यक्ति एवं भूठ बोलने के लिए मुकादमा नहीं जलाया रखा।’ जोरी नहीं होती थी। यहाँ के अतिरिक्त कभी सुराध्याम नहीं होता था। उस समय के कानून बहुत सरल थे। जोग एक दूसरे का विलास करते थे। धरोहर धादि बोर मुहरवंदी और गवाह के रखा जाता था और इस सम्बन्ध में मुकाद्देयावों नहीं होती थीं। मकानों पर जाने नहीं जानों जाते थे, यूनानी लेखकों का यह विरोध बहुत कुछ साप्त होते हुए भी अत्युत्तिकूण प्रतीत होता है।

जान-यान और सामोद-प्रेमोद— साप्ताह शशोक ने जान-यान के लिए की जाने वाली कृत्ता और दिसा की धैर्य कराया। “यहाँ देवताओं के विषय राजा प्रियदर्शी

यशोग के रसोई पर में मृण (शोरबे) के लिए प्रतिदिन बीकड़ों प्राणी मरे जाते थे । पर अब, जब यह धर्म-लिङ्ग लिया गई है, केवल तीन प्राणी—दो मार और एक मृण सारे जाते हैं । तब मृण भी मरा जाता है । यांते वे तीन प्राणी भी जे मारे जायेंगे ।” मनु तथा यात्यवलक्ष-स्मृति में अनेक प्रकार के मार्य अभिव्यक्त हैं ।

धीर्घ मृण का प्रधान धार्मोद ‘समाज’ प्रतीत होता है । धार्मोद काल में समाज का अर्थ या—पशुओं या इर्षों की दीड़ । (सम-धन्द—इकहुं हॉकना) । जहाँ पशु इस प्रकार दीड़ों या लड्डों जाते थे और उन पर वासी लगाई जाती थी उसे समाज कहते थे । बाद में वे रगभूमियों या श्रेष्ठानार, जहाँ नाटक दिखाये जाते थे, समाज कहे जाने लगे । यशोग ने धार्मिक दृष्टि दिखाकर प्रजा में धर्म-जृद्धि का धर्म किया और इसके अतिरिक्त पशुओं की दीड़, लड्डाई तथा हिंसा वाले समाजों को दूर करने की कोशिश की । मिन्तु धर्मी गोपनीयता के कारण ‘समाज’ दन्त नहीं हो सके । मनु ने समाज का उल्लेख समाज्य नाम से किया है, लक्ष इसे तथा युग को एकदम बदल करने का आदेश देता है । युग वैदिक युग से भारतीयों का एक प्रिप्य धार्मोद था । उसका बदल होना अत्यन्धित समझकर यात्यवलक्ष उसे राजकीय नियन्त्रण में ले लिया था जो एक सौते बनाता है । भीमसर भतोरकजन नाटक, मृण, यात्य और लक्ष था । पवंजनि ने कन्त-पर्व प्राची नाटकों तथा शोभिक तथा शोभनिक या दि महों का उल्लेख किया है । धीर्घ के कुछ स्थान उस समय तक प्रचलित हो चुके थे । काम-मृण से वह जात होता है कि उस समय कटेरवाजी, मेडेवाजी, मृण की लड्डाई (‘लालमण्ड-कुक्कुट मृण’) और उद्यान-कीड़ाओं का नुक्क रिवाज था ।

कृष्ण—गृगानी लेखकों ने साधारण जनता को कुपक, पकुनालक, शिकारी, व्यापारी और शिल्पी नामक नामों में दिया है । इनमें धर्मिक संदेश कुपकों की थी । धीर्घ मृण में इनकी स्थिति इतने दूसिट जे अच्छी अतीत होती है कि युद्धों में इनमें न भी अनिवार्य सेनिक सेवा कराई जाती थी और न ही इनके गोतों को जिसी प्रकार भी हानि हुई जाती थी । भीमण मुद्दों के समझ भी किसाम धार्मिकपूर्वक हुए जाते हैं रहते थे । उन्हें धर्मी पैदानार का कुछ हिस्सा अनि अवशित कर के स्थान में दाता की देना पड़ता था । साधारणकरा उन्हें पर राजा उनमें समेत प्रकार के प्रणय (नवरात्रि) जबदेस्तों देता था । कुछ वरेशों में किसामों से वेषार (विभिन्न) प्रणय (नवरात्रि) एवं अन्य कई प्रकार के कार लेने की परियाठों थो । विश्वमी भारत में शक सातक लड्डामा के १५० ही० पू० में गिरनार में लुद्देन भीषण की भरमत करते हुए उस बात पर धर्मियान प्रकट किया था कि पहुँ कोई उसमें प्रजा से चिप्पिया प्रथम नियंत्रित ही पूरा कराया है । धर्मियान, इनामुमिट व टिक्की इस से कई बार उसमें लदाव होती थी । अर्थशास्त्र में ऐसे धर्मसरों पर राज्य की ओर से सहायता देने की व्यापसना है । मूलानी लेखकों के बगैरानुगार दार्शनिक लिंग के प्रारम्भ में ही धर्मने पास एक दृष्टि हुई जनता को धारे याती सूखे तथा फैसले वाली धीमारियों की मूलता दे दिया करते थे ।

व्यापार—इसी की पहली लितियों में भारत का व्यापार सीरिया, मिस्र, रोम, नीजा, परले हिन्द और चीन से बढ़ा। सीरिया के राजाओं से शोध-सम्भाटों का र्मेनी-पूर्ण सम्बन्ध था, वहाँ की वाराव और चंबीरे भारत में पसन्द की जाती थी। दालमो राजाओं के समय कई बार संवेद नहर जाती हो जाती थी और भारतीय व्यापारी मिल तक व्यापार करने पहुँचते थे। रक्षण-सागर और नील नदी के बीच के पुराने अपार्टिक मार्ग पर शोभन (सोफोन) नामक भारतीय का एक गुनानी लेख मिला है। दूसरी श० ६० पू० में भारतीय व्यापारी जल-मार्ग से सीधा लिकन्दरिया तक पहुँचने लगे थे। दालमो एकमेंट डिलीप (१४५-१५० ई० पू०) के समय रक्षण-सागर तट के सरकारी कर्मचारी लिकन्दरिया में एक भारतीय को जाये, जिसे उन्होंने अपेक्षा एक नाव में भूख-प्यासे बहते थाया था। गुनानी भाषा का जान होने पर उसने बताया कि भारतवर्ष से एक जहाज जलने के बाद समुद्र में रास्ता भूल जाने से उसका जहाज महीनों भटकता रहा और उसके सब लाडी भूल से मर गए। एकमेंट ने एवं दोनों नामक गुनानी गुनानी के साथ उसे भारत भेजा और वह यहाँ से बहुत मलाने और रस्ते में गया। दूसरी श० ६० पू० में मध्य एशिया में जातियों की उच्चन-पुनर्जन्म तथा सीरिया में पश्चान्त्र रहने के कारण फारस की लाडी से जाने वाला स्थल-माल घमूरकित हो गया और भारतीय लालिज्ज भिल के साथ बहुने लगा। कई बार भारतीय व्यापारी इसमें घागे जा पहुँचते थे। १०० ई० पू० में एक हिन्दुस्तानी सीदगर भास जहाज द्रूकान में बहुत हुआ जमेनी के तट पर जा लगा था।

इस युग में मध्य एशिया के स्थलमार्ग से चीन के साथ तथा सीधे जलमार्ग द्वारा रोम के साथ भारत का व्यापारिक सम्पर्क होना बड़ी महत्वपूर्ण घटना थी। चीन के ताप होने जाने व्यापारिक सम्पर्क की घटना बड़ी मनोरंजक है। १३८ ई० में चीनी तमाट ने हुना के दिश्व साहमता पाने के लिए जाह-किपेन की अधिकों के पास भेजा; १० वर्षे हृषी की कीद काटने के बाद जब वह उसकी राजधानी बल्ज भै पहुँचा (१२९ ई० पू०) तो उसे वहाँ के बालारी में चीनी लेश बिकते हुए देखाकर चाप्पर पर तुका, उसे यह जात हुआ कि यह चिन्ह (चिन्ह = भारत) ने प्राप्त है। उस समय उक्त भारत और चीन का सम्पर्क आसान के दुर्गम माने जाते थे। यद्यु उसने यह जाना रास्ता पता लगाया और इसके बाद मध्य एशिया के मार्ग से विचमी-जगत् की इनने योग जाने लगा कि उसे देशम का रास्ता कहा जाने लगा। रोम के साथ सोधे जानी जाने का सम्बन्ध एक गुनानी नाविक हिन्दुस्तान ने ४४ ई० में मानसून हवाओं के नियमित रूप से बहुने का पता लगाकर किया। पहले जहाज समुद्र-तट के साथ-साथ बहते थे। यद्यु जो भास्तुर त्वारियों के बहारे पश्चिमी (प्रख) गांगर को सीधा पार करने लगे। इसमें रोम के साथ भारत के बालिज्ज में अभृतपूर्व उघ्रति हुई, जिसका सबसे बड़ा प्रमाण भारत में रामग सभाओं की गुदाओं का बहुत अधिक भारिमाण में पाया जाना है।

निर्वास-प्राप्तित—भारत उन दिनों समूद के रास्ते हाथी-दौत का सामान, भारत के गन्ध, मोती, वैद्युत घावि रत्न, काली-मिठ्ठे, लींग घावि मगाजे गूती और देवानी कपड़ों का नियाति करता था। रोम में सबसे व्यक्तिक मांग कालों मिचों से भी जो वहाँ पहली शर्ती में दो अशक्ती की एक सेर विकती थी। रोमन गृहितियों की भारतीय मलमल पहनने का बढ़ा आव था। गैदोनी नामक रोमन लेखक ने रोमन विवरों की खेदेंगी की विवाहित करते हुए लिखा है कि “कुनी हई हवा के बाते पहनकर अपना सौन्दर्य दिलाती है।” ७७ ६० में जीती ने यह रोना रोया था कि भारतीय माल रोम में ग्राहक सौनुगी कीमत पर बिकता है और उसके द्वारा भारत रोमन सामाज्य से हर तात माडे पौध कटोड सेस्टस का सोना गोब लेता है और यह कीमत हमें अपनी विवाहिता और अपनी विवरों के फैलन के लिए देनी पड़ती है। उपर्युक्त वस्तुओं के ददते में भारत में उन दिनों शराब, चोदी के बर्तन, गांव ताले लहड़े, राजकीय अम्लःपुरों के लिए रूपवती दासियों द्याया करती थीं। भारत में मैंगाया जाने वाला तामाज कम था, प्रतः लंदेशिक व्यापार की अनुकूलता के कारण भारत में दूसरे देशों का सोना वहा चला था रहा था। कुलाणों के भारत में पहली बार व्यापक कप से स्वयं-मुद्राओं का प्रचलन शुरू हुआ और रोम से अपने बाले सोने के कारण ही प्रभूत माला में बढ़ा। कुणाल सिंहके रोमन विवरों के भावधं पर ही बनाये गए थे।

उग्रोग—वाणिज्य की उग्रुता उन्नति में भारतीय विलियों और कारोगरों के इसी कौशल ने बहुत साध दिया। इस समय का सबसे प्रतिक्षेप उग्रोग व्यवसाय का था। दूड़ों ने अपनी व्यक्तियों द्वारा बड़िया मलमल पहनने का उत्तराय किया है। अवंशास्त्र से यह ज्ञात होता है कि कपास के बड़िया कपड़े उस समय दिवानी मटुरा, अपरान्त कालम, काशी, बंग, बता और माहिमती में बनते थे। पहली ८० ६० ५० में परिष्कर्ता के कल्यानमुसार मध्यसे बड़िया मलमल गंगा को जादी में, लाल के अनुसार ढाका के आस-गास बनती थी। विचनापन्नी, तंजीर, और, मछलीपट्टम में भी अच्छी मलमल बनती थी। राज्य की कारोगरों की रक्षा का इतना ज्ञात था कि विलियों का हाथ काटने वालों के लिए कौटिल्य ने मृत्यु-दण्ड की व्यवस्था की है। उस समय कारोगर अपनी उन्नति के लिए सामूहिक संगठन बनाते थे जो व्येष्ण कहलाते थे। इस समय के व्यापिलों के प्रमुख तेली, कुम्हार, मन्ती, दुलाहे, सम्म बेजने वाले, पीतल के बर्तन बनाने वाले, व्यापार करने वाले (मार्पिवाह) लैलियों में समठिल थे। व्येष्णों बर्तनान काल के लड़े बैकों का काम करती थी। पश्चिमी भारत के प्रसिद्ध लाल क्षेत्र नहपान (नगमग = २-३० ५० ५०) के जमाई उभवदात ने नालिक के बोद्ध भिजुधों के लिए कई हजार का दान किया। यह राजि उसने जुलाहों की दो व्येष्णों के पास कभी न लोटने वाली परोहर (प्रस्तपनीयी) के काम में रख दी ताकि उससे उन विश्वायों को हरसात कपड़े (धीवर) मिलते रहें। इसी प्रकार एक चन्द्र लेख में लाल उग्रासिका विष्णुदत्ता ने भिजुसंघ की द्वारा-दाल के लिए एक कभी न

लीटने वाली परोहर का दान दिया। शाज़-परिचार के व्यक्तियों द्वारा बुझाहों की खोयी गई ऐसे दान देना इनको कंची हैरियत के मूलक है।

उस समय के शिष्य धीर वाणिज्य की उन्नति का परिणाम भारतवर्ष की अमृतगृह नदी की थी। भौंपुग में शादीपुज न के बल उस समय समार का सबसे बड़ा राज़ था, किन्तु उसमें प्रत्येक वर्गत में कोई द्वारा बाहर उठको नुलना में नहीं ठहर सकता था। ग्रामों का विवाह नगर परिसर ४५० ई० पू० तथा रोम २० ई० पू० से ३० ई० तक आगे विवाह के नदी पाटीपुज का जौवा हित्ता-माच थे।

साहित्य

भौंपुग की सबसे प्रमिद साहित्यिक रसना चन्द्रगुप्त के भेंतों कोटिल्य का 'दर्जनाम' है। यह रसनालीन राज्य एवं शासन-भ्रमणीय दान के लिए एक बड़ी रसना दिल दूधा है। परंपराल महाभाष्य से जात होता है कि उस समय यनक धारणाम (प्रवाति, वासवदत्ता पादि वी कवाएं), याकवापिकाएं (कवाएं), इतिहास, पूराण, काव्य, कस्त्रध, वासित-धर्म, पादि नाटक प्रचलित थे, किन्तु इस समय ये उपलब्ध नहीं होते।

साताशहन युग साहित्यिक दीर्घि से अमाधारण महस्त रखता है, क्योंकि इसके दूरे भाग—चुड़ाजान में हिन्दू धर्म के धारारम्भ वर्ष मनुस्मृति धीर महाभारत का वर्तमान रह तबा पश्चिमीय धाराधारी पर महस्त पतंजलि का मुख्यसिद्ध 'महाभाष्य' लिखा गया। पतंजलि पूर्णामित्र चुड़ा के समाजालीन वे धीर उन्होंने उसका अवधारण वह करताया था। वर्तमान के वर्षों इन्हिंदि प्रथा 'मनुस्मृति' की रसना वीजावस्त्राल वी के मतानुवार युनति भासेत ते १५०-१२० ई० पू० के बीच में थी। बाद में 'प्राचीनत्वनस्मृति' का निर्माण हुआ। इसमें धीर व्यवहार (कामन) का पृष्ठक-पृष्ठक तथा संज्ञों में सहृद सुन्दर प्रतिपादन है।

'महाभारत' धीर 'रामायण' के वर्तमान क्षण में यक्ष, कम्बोज पादि विदेशी वासियों का उपलब्ध तथा तत्कालीन परिस्थिति का वर्णन होते से वे इसी दृग के माने जाते हैं। संक्षेप में काव्य और नाटक साहित्य का धारियोंवाल इसी दृग में है। काविय के समाजालीन अवधारों ने बीड़ापांच की शिक्षायों वी नीकविय बनाने के लिए 'बुद्ध-वर्तित' धीर 'लीलावती' नामक भी काव्य लिखे हैं जो कालिदास के काव्यों वी अवधार के हैं। लेकि कालिदास जो व्रिजिमेव का समाजालीन मासा जाय तो उसकी रक्खाएं भी इसी दृग की ही हैं, जिस्तु वाचिकाय विज्ञान उन्हें गुला काल में हुआ समझते हैं। संक्षेप का सुरक्षित नाटककार भाग भी इसी दृग में हुआ। अवधारों वे बीड़ापांच के प्रवार के लिए 'वार्षिपुज प्राचारण' नामक नाटक की रसना वी भी, इसके कृष्ण पर्व भी मन्त्र एवं शास्त्र में पाए गए हैं। चूढ़क का 'पृष्ठकटिक' नाटक भी, जो तत्कालीन समाज का काव्य विन वर्षस्थित हारने वी दृष्टि से संस्कृत नाटकी

में आदितीय स्थान रखता है; कुछ निवासों के मालामुमार १५० ई० पू० ते २०० ई० के बीच में लिखा गया। वास्तवापन का 'काम-नूत्र' काम-वास्त्र का समूलार्थ धन्न है, वह तीसरी शती ई० में लिखा गया।

काव्यों तथा नाटकों के अतिरिक्त इस समय संस्कृत के कुछ नये व्याकरण और कोश भी बने। पराणिनि की अन्ताव्यापी संबन्धित का पूर्ण शास्त्रीय व्याकरण होने के साथ-साथ कई दुर्लभ और कठिन भी। साधारण जनता वो एक सरल और नूरोग व्याकरण का प्रावृश्य लेती थी। वह नावेंमों के 'कात्तन्त्र' व्याकरण ने पूरी भी। मह व्याकरण इडना लोकप्रिय हुआ जि मध्य एविया से बालि तक तुहतर भारत में धीरघ ही दूरकाल सारांश हो गया। चिकित्सी इसी की महाविद्या से सहजत लोकों वे। इसी के अद्वैत पर 'नात्याधन' का 'पात्र व्याकरण' और तामिल का प्रसिद्ध व्याकरण 'तोल्क-प्रियम' बना। यहाँ का प्रसिद्ध 'धर्मरात्म' वीढ़ प्रसरणिह ने यहाँ शती ई० में लिखा।

आत्मुद्देश में 'चरक' और 'सुश्रुत' भी इसी युग में लिखे गए। चरक जीसों अनुनाति के महायाक्षिक का रचयेता था। इसने प्रातीय मुनवेंतु के यन्म का नया संस्कृत लिखा था। किन्तु भारतवत् इसे भी चरक-निलिता मिलती है, वह उत्तर एवं दक्षिण (पञ्चवर्षी) द्वारा चरक का पुनः संस्कृत है। इसमें उसने सुश्रुत का व्याप्तिक्रियान्वयनी ज्ञान भी निर्माणित कर दिया है। सुश्रुत चरक के कुछ गोंदे हुए। वह मन्मन्तरि का लिखा था। वर्तमान सुश्रुत नामानुन् (१५० ई०) द्वारा संपोषित संस्कृत है। नामानुन विश्वापन प्रतिवान-समाज का लिखा था। उसने भी वेदाल सुश्रुत का सम्पादन लिया, किन्तु पारे के बोग व्याकरण आत्मुद्देश में राजन वीर्योंको का प्रयोग व्यारम्भ करने की मिलाया व्याकरण की जन्म दिया। वीरह्याद्य तथा वसन-विजान-द्विषय आदि के शास्त्र लिखे और महायान सम्बद्ध की दीर्घिनिक विचार-वाचा को जन्म दिया। इसी युग में पतञ्जलि ने एक लोह-ग्राहक लिखा, किन्तु यह निश्चित नहीं कि महायाव्यक्तार तथा लोहाग्राहकार वर्तवति एक ही है। वर्णोत्तम में इस युग की प्रसिद्ध रचना 'यमं महिता' है, जिसमें वर्ण, वाक् वाक्योंकी व्याख्याओं का चर समय द्वारा वाली वातों के लाल में बर्णन है।

इस काल में महायान सम्प्रदाय ने पाति के स्थान पर संस्कृत में साहित्य-रचना शुरू की। युग में यह जिस संस्कृत में है वह याक्षिनीय निपटी का पूर्ण पात्तम सही करती; उसे निश्चित संस्कृत कहा जाता है। इसमें महायानिमों के यातिरिक्त हीनवासी ग्रन्थस्तिवादिमों का भी साझिता है। इस अकार का सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ 'महायस्तु' है। तबकि यह वैशाली महायान के बाद वीद-साम से पूछक हुए और महायानिमों वी एक वाचा है, जिसे लोकोत्तर वादियों का विमय कहा जाता है, किन्तु इसमें निपटी के आवार से सम्बद्ध वातं बहुत कम है। व्यावर्ताम वे बुद्ध और वीराधिकाल की कथाएँ हैं। कुछ भी कुछ स्तुतियों पौराणिक स्तोत्रोंके मिलती हैं।

महायान सम्प्रदाय के इस कानून के प्रसिद्ध पद्धति 'सद्गम-गुण्डरीक', 'अतितिविस्तर', 'प्रजापारमिता' और 'प्रबद्धानपातक' है। पहले दो में बुद्ध का देवधितेज काम में चक्रवर्तीक लर्णुन है। 'प्रजापारमिता' में बोधिसत्त्व द्वारा प्राप्ति की जाने वाली अपारमिताधर्मों का वर्णन है। प्राप्ति का अभिप्राप्य शून्यधारा को अनुभूति होना है। यह एक जाति, पच्चीस हजार, इस हजार और आठ हजार इत्तोकों के घार कपों में विताता है और कमदा वात, पञ्चविंशति, द्वया तथा भाष्ट—माहजिना प्रजापारमिता कहलाता है। नामार्जुन की 'शतमाहजिना' का लिखक लताया जाता है। धर्मदान का मूल धर्म है—महान् ल्पाग का उदार कार्य; इस प्रकार के कार्यों का परिचय देने वाली दग्धनक्षार्थी भी धर्मदान कहाती है। इस प्रकार के दो प्रसिद्ध धर्म 'प्रबद्धानपातक' और 'दिव्याधरदान' भी इसी युग की कृतियाँ हैं।

इस युग में बौद्ध दर्शन के धनेक धाराएँ हुए। इनमें सर्वेक्षण विवेचण प्रतिमाधारी धर्मचोर था, जो एक साथ कवि, नाटक-लेखक, कवाकार, दायेनिक और विचारक था। ऐसी के शब्दों में वह एक साथ मिल्टन, मेटे, बाष्ट और बाल्टेमह का समरण करता है। उसके कार्यों तथा नाटकों का पहले उल्लेख हो चुका है। 'वज्रमुखी' में इसने जाति-भेद की परिवर्ती बताई है। 'महायान' में महायान के दर्शन की विवेचना की है। नामार्जुन ने १५० ई० में माध्यमिक शूष्ठि लिखकर माध्यमिक सम्प्रदाय की स्थापना की, जो समूचे दृढ़व जगत् को असत् मानता है। नामार्जुन के पटुशिला जारीदेव ने चतुर्षतक द्वारा माध्यमिक सम्प्रदायों के सिद्धान्तों की व्याख्या की।

प्राहृत—इस युग में दूसरी शता ३० ई० पूर्व से दूसरी शता ५० तक समूचे भारत में अभिनेतों और सिक्कों पर एक ही प्राहृत पाई जाती है। यह उस समय भारत की राष्ट्र भाषा थी। यह कहा जाता है कि सातवाहन राजाओं के बहुतों में प्राहृत बोली जाती थी। इसमें सातवाहन राजा हास ने 'गाया सप्तशतों' की रचना की, गुणाधर्म की 'वृहत्कथा' भी दिखाई प्राहृत में लिखी गई। इस समय माध्य-एशिया के स्तोत्रन धारि प्रदेशों में भी प्राहृत का प्रचार था। वहाँ से 'धर्मगद' का प्राहृत अनुवाद मिला है तथा प्राहृत के सेकड़ों अभिनेत्र मिले हैं।

तामिल—इसी की पहली शतियाँ तामिल माहित्य का स्वरूप युग थी। इस समय मदुरा में एक ताहितीक परिषद् या 'संघम' था। जिसके नदीयों ने बहुत उच्च कोटि के साहित्य का सूखन किया। तिसका नूबर का सप्रसिद्ध शूकित-संस्थान, यो 'तामिल नेतृ' कहा जाता है, इसी युग की उत्तराधि है। इसका समय १०० ई० के लगभग है। 'भणि मेलना' और 'धीर्जन्यतिकारम्' नामक महाकाव्य इसमें १०० वरस बाद के हैं। इसी समय तामिल का 'तीतकर्ण्यम्' नामक ध्याकरण भी बना।

विदेशी प्रभाव—इस युग से भारत के उत्तरी तथा दक्षिणी प्रदेशों पर विरकास तक दैरानी, दूसानी, लक, पहलव, कुचाल आदि विदेशी जातियों का शासक

रहा। कुशाण साम्राज्य के गमग (ईसा की पहली शतियों) में रोमन राजाक्षय से भारत का अतिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध था। यह भारतीय सम्बन्धों पर इन विदेशी राजाओं का प्रभाव पड़ना स्वभावित था। इनमें हीरानी, मूलानी और रोमन ही अधिक सम्भव थे। अतः उनके प्रभाव की वही विशेष वर्चा नीजाती है।

ईरानी प्रभाव—भारत का उत्तर-पश्चिमी प्रदेश लगभग सौ वर्षों तक ईरान के हथामनी भारती के विद्यालय साम्राज्य का एक रहा। सज्जाद दारा (५२१-५५५ ई० गू०) ने ५१६ ई० गू० में अपने एक बलसेनापति सुन्हामुख को निष्पत्ति का रास्ता बोलने के लिए भेजा था। उसके बाद ईरान द्वारा कम्बोज (पार्सीर-बदली), यमार का प्रदिव्यनी भाग (पेश्वार) तथा सिर्पु व्रदेश (देश इस्मालिया, देश नाथीदी तथा निव नामग) का रोमान जीत लिया गया। सज्जाद दारा ने यही अपना एक आनंदीय शासक (क्षणपात्रन या खत्रप) नियमित किया। इस प्रान्त से उसे लगभग एक करोड़ बप्ति का सौता प्रतिवर्ष प्राप्त होता था, जो उसके अन्य सब प्रान्तों ने अधिक तथा एवं विभागीय प्रान्तों से प्राप्त होने वाले कुल सौने-नौदी का तृतीयांश था। ईरानी साम्राज्य अपने जमाने (५२१ ते ४०५ ई० गू० सक) का सबसे बड़ा एवं मुख्यावस्थित साम्राज्य था। दारा ने साम्राज्य के विभिन्न भागों को धरम्पुर चौड़ाने के लिए बड़कों का निर्माण कराया, प्रपनी राजाजार्ये पत्तवरों पर लुटवाइ थीं, राज्य की विशाल धार्य का उपयोग अपनी राजाजार्ये परिस्थितियों में भव्य महूल बनाने में किया था।

अनेक पाठ्यालय ऐतिहासिकों को यह कल्पना है कि मौर्य साम्राज्य पर ईरानी सम्बन्धों का निम्न प्रभाव पड़ा है—

(१) मौर्य राजाओं ने पाटिनिपुत्र (पट्टना) में अपने महल ईरानी राजाओं के अनुकूलण पर बनाये। मौर्य कला पर ईरानी कला का प्रभाव पड़ा। यह कहा जाता है कि अशोक ने ईरान से पत्तर का प्रयोग सीखा, उससे पहले भारतीय लकड़ी की ईमारतें बनाते थे। अशोक के साम्भों के दीर्घे व उनकी पाँचनस ईरानी गम्भों से मिलती है। अशोक के पट्टाकृति सम्बन्धीयों को ईरान से प्रहृष्ट किया बताया जाता है।

(२) चन्द्रगुप्त मौर्य के राज-दरबार में अम्नि-दूजा तथा राजमानिपेक के उत्तर की कुछ बातें ईरान से प्राप्त की गईं।

(३) अशोक को चट्टानों पर घरमें जैसे तथा धर्म-तिरिया सूचवाने की प्रेरणा हीरानी सज्जाद दारा के प्रभिलेखों से मिलती।

(४) भारत ने लेखन-कला का ज्ञान ईरान से प्राप्त किया।

गम्भीरता पूर्वक विचार करने पर ये चारों बातें ठीक नहीं जान पड़तीं। ईतिहास अद्वितीयानी सेखकों ने भीर्य राजाओं के महसूओं को ईरान के मूसा और एकत्रिता के राजमन्त्रों से अधिक भव्य बताया है। ईरान और भारत की कला-वैज्ञानिकों का भद्रता अध्ययन करने वाले कला-मर्मज भारतीय कला पर ईरानी कला

का कोई प्रभाव स्वीकार नहीं करते। अग्नि-युजा और दग्धियों की पहचान भारत में वैदिक काल से प्रचलित थी। उसके लिए उसे ईरान का जूणी होने की आवश्यकता नहीं थी। दारा शब्दों से २०० वर्ष पूर्व हो चुका था; समझते उसका शब्दों का ज्ञान भी न रहा होगा। उस जैसे प्रतिभासाली राजा को घमेलिपियाँ खुदबासे का विचार सहज ही सफुरित हो सकता है। जेलन-नकला के लिए भी भारत को ईरान का जूणी होने की आवश्यकता न थी। बाय्यो लिपि का आविष्कार वैदिक युग में ही चुका था, अतः योर्ग युग में ईरान से भारत को लिपि सेने की जरूरत नहीं थी।

किन्तु ईरान के समक्के के दो प्रभाव प्रबल्य हुए। उत्तर-पश्चिमी भारत में शरोट्टी लिपि का प्रचार हुआ, जो उड़ की भौति वादे और से लिखी जाती थी। अभी तक इसकी उत्पत्ति घनिष्ठित है, किन्तु एक छीनी शब्द में कहा गया है कि भारत के पड़ीसी शरोट्ट देश की वह भाषा भी। कुछ पार्श्वनिक विद्वानों ने इसकी प्राचीन पारस (ईरान) की घरमहक लिपि से उत्पन्न हुआ माना है। किन्तु यह लिपि दूसरी शती ई० के लगभग समाप्त हो जाती है। दूसरा प्रभाव शब्द शब्द है। ईरानी इसका प्रयोग प्रान्त के शासक के लिए करते थे। भारत में अनेक शक शासकों ने इस पदबी को धारण किया और योगी शती ई० तक इस शब्द का व्यवहार होता रहा।

मूलान का ग्रनाव—सिफ़न्दर के समय से ईस्ती सन् के आरम्भ होने तक
भारत का यवनों (यूनानियों) के साथ निरन्तर सम्पर्क रहा। योर्ग युग में ज़रदगुल ने सेन्युक्स की कग्या से विद्वाह किया, उसका बेटा सीरिया के समाट से यूनानी दार्शनिक मंगाने को उत्सुक था। शब्दों के यूनानी शब्दों में जर्मदूत भेजे थे तथा अपने पश्चिमी प्रान्त का जास्तन भी एक यूनानी जासक तुषाला को सौंपा था। योर्ग शक्ति के हीम होने पर यवनों ने उत्तर-पश्चिमी भारत पर व्याकरण किए तभा गाम्भार, वंजाव और तिन्ह में जास्तन भी किया। इस प्रकार तीन सौ वर्ष तक इस युग में यूनानियों से पर्विष्ठ सम्पर्क रहा।

वाद्यशब्द बगत में यूनान सम्प्रता का आदिक्षेत्र समझा जाता था। सर हेनरी मेन का तो यहीं तक दावा था कि अकृति की शक्तियों के तिकाय अन्य कोई ऐसी ज़ंगम वस्तु बगत में नहीं जिसकी उत्पत्ति यूनान से न हुई हो। इस प्रकार यूनान में अन्य भक्ति रखने वाले अनेक विद्वानों ने भारतीय सम्प्रता पर गहरा यूनानी प्रभाव पहने की बात सिद्ध की है और यह बताया है कि भारत में सभ कलाओं की उत्पत्ति यूनानी सम्पर्क से ही हुई है। उदाहरणार्थ संस्कृत-नाटकों में आए शब्दनिका शब्द के आधार पर यह कल्पना भी यहीं थी कि भारत ने नाटक-कला यूनान से प्रहृण की है, यूनानी नाटकों में उसका प्रयोग ही नहीं होता था। अब यूनान का प्रभाव कला, मुद्रा और स्पोतिप के लेत में ही स्वीकार किया जाता है।

(१) कला—तचास ई० पूर्व से तीन सौ ई० तक उत्तर-पश्चिमी भारत में गान्धार-दौसी का विकास हुआ। फूर्श, विम्सेप्ट सिंघ तथा सर जान गाँड़ीज का मत है कि पंजाब में क्षेत्र तथा सीरिया से बुनाये गए यूनानी शिलिंयों से गान्धार अधिक उत्तर-पश्चिमी भारत में सर्व प्रथम बुद्ध की प्रतिमा का निर्माण किया। इनसे भारतीयों ने अपने देवताओं की मूर्तियाँ बनाने की कला सीखी और गान्धार कला ने भारतीय मूर्ति-कला पर गहरा प्रभाव डाला। हैबल, जायसवाल तथा डॉ० कुमारस्वामी यह मत स्वीकार नहीं करते। इनका विचार है कि भगवान् बुद्ध की मूर्ति न तो एहले पहुँच यूनानियों ने बनाई और न गान्धार कला में पाई जाने वाली मूर्ति यूनानियों की ही कहती है। इस कला का भारतीय कला पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। भारतीय शिलिंयों को बुद्ध की मूर्ति बनाने के लिए यूनानी कलाकारों की सहायता भी कोई प्राप्तप्रक्रिया न थी; जैन तोषकरों की प्रतिमाएँ पहले से ही चली थीं रही थीं। जब महायान सम्प्रदाय तथा भूमित के सिद्धांत की प्रवर्लता हुई और बुद्ध की मूर्ति की आवश्यकता हुई तो उसे जैन नमूनों के आधार पर तैयार कर लिया गया। यदि यूनानी कलाकार बुद्ध की मूर्ति तैयार करते तो इसमें बास्तविकता और यथार्थता होती, किन्तु ऐसा नहीं है। प्रधासन-सिंह बुद्ध के चरण वास्तविक दृष्टि से एक बरत रेता में नहीं होने चाहिए थे। सभापिं-मुद्रा में “एक पर एक रते दोनों हाथ बटिं वास्तविक बनाये जाते तो उनकी कुहनी जांबों तक न पहुँचकर बहुत ऊपर पसली की सीध में रहती।” केशों का दक्षिणाकृत गुडाप्रो (धूधरों) में बना होना भी नवें या परस्पराभाविक है। ऐसी मूर्ति यूनानी कलाकारों की कल्पना नहीं हो सकती। इसका परवर्ती कला पर भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

(२) मुद्रा—मौर्य युग तक भारत की पुरानी मुद्राएँ आहत सिक्के होती थे। चीदी और तवि के ढुकड़ों पर सर्प, चमड़, चैत्य, चक्र आदि कुछ निशान छोड़ से अचूक किये जाते थे। इन पर कोई राजा की मूर्ति या कोई लेख नहीं होता था। वे सिक्के पुराण या कार्यालय कहलाते थे। यूनानी राजाओं ने सर्वप्रथम राजा की मूर्ति तथा नाम जाने सिक्के चलवाएँ। बुक में वे सिक्के यूनानी तोल के घनुसार में तथा इन पर यूनानी लिपि थी, किन्तु बाद में इन पर ग्रीको-प्राकृत में लेख सिक्के जाने लगे। इसके बाद भारतीय सिक्के भी इसी तरीके में बनने लगे। यूनानी सिक्के द्रूम (Drachm) का शब्द संस्कृत में द्रम्म तथा बाद में दाम के रूप में वापरा लिया गया।

(३) च्योतिष—धर्मने अध्याय में यह बताया जायगा कि भारतीय यूनानी ज्योतिषियों को बड़ी बढ़ा की दृष्टि से देखते थे। उत्तरोन्मे बहुत-से शब्द और जाति यूनान से सीखी थी। यहीं इनका ही लिखना पर्याप्त है कि प्रह्लै तथा उनके भास्त्र और सप्ताह के सात बारों की कल्पना पहले यूनानियों से बहुण की नई समझी जाती थी। स्लोट का यह मत या कि पांचवीं ई० ई० में भारतीयों द्वारा यूनानी ज्योतिष

सरनाने पर वहों का ज्ञान और वारों की गिलदों भारत में थाई। यह विचार उस समय तक ठीक था जब वह पाइचाट्य जगत् में वहों के विचार के आविष्कार का अप्रूप पुनर्नियों को दिया जाता था, किन्तु इब यह भासा जाता है कि वहों और राजियों को सोल धारुनी जीमों ने की थी और वारों की कल्पना सुमरों ने। यह श्रृङ्खला का ज्ञान ने कुलान में वैदा दृष्टा और न वही से आया। संभवतः उसके ऐसिक गुण में वह वैदीलोग से भारत में पहुँचा।

रोमन प्रभाव—रोम में सनाईस ई० पु० में आगस्टस वहां सजाह करा। वहां उसी समाजात्मक समाज के स्वामी बने। तत्कालीन भारतीय राजाओं ने सजाह के पास अनेक दूतावास भेजे। पैतालीस ई० में एक बूनासी नाचिक हिण्पलास द्वारा बानसुन हवाघी के नियमित बहने की जोड़ से भारतीय महासागर दैतालीस दिन में पार किया जाने लगा और भारत से रोम के बल सोलह वर्षाह में पहुँचा जाने लगा। इससे बोना देशों में प्रतिक्रिया प्राप्तारिक सम्पर्क स्थापित हुआ। रोमन साम्राज्य की सीमा जब बढ़ता नदी पर पहुँच गई तो वह भारतीय सीमान्त से कुत छः सी बील रह गया। इस की पहली जार शतियों में दोनों देशों में युद्ध सम्भवत रहा। इसका प्रभाव भुजा एवं ज्वोतिष के बीच ने ही विशेष यक्षा। कुशाणों ने रोम के लोगों के सिक्कों के प्रसुकरण पर अपने सोने के सिक्के बताये, तरंगत का अवर्ण-मूद्रावाची दीनार यज्ञ भी कुततः रोमन है। ज्योतिष के पौन चिदान्तों में रोमक मिदान्त भारत में रोम से ही आया प्रतीत होता है।

गुप्त युग का समाज, साहित्य और विज्ञान

गुप्त युग की विदेशीताएँ — गुप्त युग भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण काल है और अपनी अनेक विदेशीताओं के कारण इसे भारत का स्वर्ण युग कहा जाता है।

इसकी पहली विदेशी चार सौ वर्ष के विदेशी दासत के बाद देश का स्वतन्त्र होना, तथा एकछत्र भासन के नीचे समर्पित होना था। १०० ई० के लगभग उत्तरी भारत में संयुक्त प्रान्त तक और पौरबी भारत में उत्तरी महाराष्ट्र, काठियावाह, गुजरात और यथिकांश राजपूताने में कुशाणों और शकों का भासन था। सामृद्धिक दृष्टि से भारतीय रूप में रोम जाने पर भी, भारतीय दृष्टि के बीच विदेशी थे। कुशाणों को संयुक्त-प्रान्त से मध्य और नाश राजाओं ने लदेश तथा गुर्जर-प्रबाल में बीवें और कुणिन्दों ने, तीसरी शती में सासानी लालकर्ण के उत्कर्ष से कुशाण संस्कृत विनकुल लीण ही मई। शकों की सकित का महाराष्ट्र में सातवाहनों ने और राजपूताना में मालवगण ने उच्छेद किया। तीसरी शती के अन्त तक समुद्रा भारत विदेशी दासता के पास से मुक्त हो गया। किन्तु उस समय तक वह अनेक छोटे-छोटे राज्यों में बंदा था। मुख्यों ने चीवी, पांचवी शतों में (३५० ई०-४५० ई०) इस देश के बड़े भाग में एकछत्र भासन और चान्ति की स्वापना की। आपसी समय तक एप्पों के दौरान खट्टु करके भारत की रक्षा की।

इस युग की दूसरी विदेशी अभ्यासगृह समृद्धि है। इन दिनों भारत का विदेशी अभ्यास बहुत उम्रता था। इससे पहले सातवाहन युग में ही रोम की भारत से इतना मात्र भेजा जाता था कि उसका मूल्य कुहने के लिए उसे कई करोड़ सोने के सिक्के भारत भेजने पड़ते थे। उस समय एक रोमन विद्वक ने यह विकायत की थी कि "भारत रोम से प्रतिवर्ष मात्र पाँच करोड़ का सोना लौंग निता है और यह कीमत हमें अपनी विकायिता और अपनी विकायों को लातिर देनी पड़ती है।" इस युग में अपाधार अपने भरम उत्कर्ष तक पहुँच गया और लुदाइयों से भिजे सोने के सिक्कों से मह व्रतीत होता है कि मनव देशों का सोना यहाँ बहा जाता था रहा था।

तीसरी विदेशी चीन, मध्य एशिया, जाता, सुमात्रा, कीचीन, चीन, असाम और बोनियो तक भारतीय धर्म और संस्कृति का विद्व-भाषां प्रसार है। यदि आप

चीत, जाता, और भारत में सांस्कृतिक एकता है तो इसका कारण युग के कुमारखीवंशीय और युगवर्मा-सदूच प्रचारक है।

चीतों विशेषता भारतीय प्रतिभा का सर्वतोमुख्यो विकास तथा अभूतपूर्व वौद्धिक उत्कर्ष है। इनी युग में संस्कृत-साहित्य में कालिदास-जैसे महाकवि हुए, 'मृच्छकाटिक' और 'मृदुराजस' नाटक बने, और ग्रन्थिक साहित्य ने अपना बहुत-कुछ बत्तमान रूप घारणा किया। इसीन में महावान के माध्यमिक और विज्ञानवादी सम्प्रदाय, तथा वसुवन्धु, धनतंग, आर्द्धेश यादि बौद्ध तथा आचार्य जित्युपेन विचारक, समग्र भड़-जैसे जैन दार्शनिक उत्तरण हुए और भारतीय दर्शन को इन्होंने अनेक सर्वतो नवीन और नीलिक विचार प्रदान किये। विज्ञान के छोड़ में दशांश गणना-नदृति और दिल्ली वी जोहे की कीली इसी युग की देन हैं।

पैरिवर्ती विशेषता लक्षित कलाओं की वर्तम सीमा तक उत्थान है। अजन्मा के अगत्-प्रसिद्ध चित्र इसी युग में बने। इस काल की मूर्तियाँ अगले युगों के चित्रकारों के लिए आदर्श का बास करती रहीं।

एठी विशेषता यह है कि इस युग ने हिन्दू धर्म को बत्तमान रूप प्रदान किया। गृह सभ्याओं के प्रबल ग्रोवाहन ने वैष्णव धर्म का वर्कर्य हुआ। उच्चार्जीण सांस्कृतिक समूलति को दृष्टि से भारतीय इतिहास का कोई अन्य युग इस युग की समता नहीं कर सकता।

युग्म युग के धर्म, जासन-प्रणाली और कला का विवेचन छठे, तेरहवें और छोटहूने प्रधानों में हुआ है। यहाँ बेबल तत्त्वात्मीय ज्ञान, साहित्य और विज्ञान का विवेचन ही किया जाएगा।

१. सामाजिक दशा

वर्ण-व्यवस्था—भारतीय समाज का मूल आधार वर्ण-व्यवस्था समझी जाती है, किन्तु युग्म युग तक यह बहुत नवीनों थी। जात-वर्ति का विचार परिपलब नहीं हुआ था। जात-यान, विचाह और पेतो विषयक बत्तमान कठोर व्यवस्थाएँ जात-मही हुई थीं। इस काल की समृद्धियों में बेबल शूद्रों के साथ ही जात-यान का नियेष्ठ है, किन्तु इनमें भी धनने कृपक, नाई, धाने और पारिवारिक भित्र की अपवाद माना गया है। शूद्र होने पर भी इनके जात-जात-नाम में कोई दोष नहीं है। उस समय समाज में प्राप्त सूखरां विचाह दीने लगे थे किन्तु धर्मवर्ण विषयों की भी वेष माना जाता था। अमूलीय (उच्च वर्णों के दुर्लभ के साथ निम्न-वर्णों की स्त्री का सम्बन्ध) और प्रतिलोम (निम्न वर्णों के वर के सात उच्च वर्णों की जन्या का सम्बन्ध) दोनों प्रकार के विचाह प्रचलित थे। जाकाठक राजा राजेन ने कट्टर ज्ञान्यन होते हुए भी प्रभावती युक्ता वा विचाह वैद्यत जातीय युग्म कुल में किया। जाकाठन कदम्बों ने भी अपनी कम्पाई युक्ती को दी थी। विनिभ रक्षों के प्रतिरक्षत विभिन्न जातियों में भी विचाह

होता था। यान्धे के बादूण इक्काकु राजाओं ने उच्चविनी के शक राजन्यरिवार की कल्प्या स्वीकार की थी।

गुप्त युग में ऐसी की दृष्टि से भी वर्ण-व्यवस्था के नियम संवैधान्य नहीं हुए थे। बादूण व्यवस्थन-प्रवालयाएन आदि स्मृति-प्रतिगादित स्तुति कर्मों के अतिरिक्त व्यापार, चिला और नौकरी के पेशे करते थे। वे शाकियों का काम करने, खुबा छोड़कर तलवार बांधने में भी संकोच नहीं करते थे। बाकाटक और कदम्ब वर्षों के संस्थापक विज्ञापित और मधुर बार्मा बादूण थे। गुप्त-सम्भाट वैद्य थे। अनेक जीविय व्यापार और व्यवसाय करते थे। इस युग में शूद्रों का काम तीनों वर्णों की सेवा करना नहीं था। वे व्यापारी, चिल्पी और कृषक का काम कर सकते थे। उनमें अनेक सेना में डॉके वर्षों तक पहुँचते थे।

इस काल में यद्यपि स्मृतिकार संवर्गी विचाहों पर बल दे रहे थे, किन्तु उनकी व्यवस्था संवैधान्य नहीं हुई थी। इसीलिए इस समय हिन्दू समाज से बाहर से आगे आती विदेशी जातियों को अपने में पक्षा लिया।

विदेशियों को हिन्दू बनाना—गुप्त युग ये वहले मौर्य तथा मातवाहन युगों में भारतीय समाज ने यूनानी, अक, पहलव और कुशाण अपने में विलीन कर लिये थे। १४० ई० तक भजाव के कुशाण और पदिमी भारत के शक भारतीय बन चुके थे। तोसरी बातावरी में यान्धे के इक्काकु राजा शूक-कल्प्याधी के पाणिचहम में दीप नहीं समझते थे। गुप्त युग में भी हिन्दू समाज की पाचन-शक्ति वही जबरदस्त थी, ते एक दोहों में ही विदेशियों को भारतीय बना लेते थे। इन याकान्ता तोरमाण का देटा निहिरकुल एका दीप था। इसी समय जावा, तुगाता, बोनियो आदि दायुपों में तथा ईराक और सीरिया में हिन्दू धर्म लैना हुआ था। यह सम्भव है कि इन सब प्रदेशों में काफी विदेशियों को हिन्दू बनाया गया हो। इन सब उदाहरणों से स्पष्ट है कि इस समय तक बत्तीमान काल का यह विचार दृढ़मूल नहीं हुआ कि हिन्दू समाज में प्रवेश केवल जन्म द्वारा हो सकता है। हिन्दू धर्म से जो भी प्रभावित हो, वह हिन्दू भावाचार-विचार और संस्कार प्रणाली करके एक ही पीढ़ी में शादी-ज्वाह द्वारा हिन्दू-समाज का अभिन्न घर बन जाता था। कट्टर बादूण भी विदेशियों के साथ विचाह कुरा नहीं समझते थे। इस प्रकार हिन्दू-समाज में दूसरी जातियों को अपने में विलीन करने की शामिल गुप्त युग तक प्रचुर भावा में विद्यमान थी। यह विवित सभ्य युग में विलकृत नप्त हो गई।

भ्रस्त्रवृत्ता—किन्तु बत्तीमान छृत-छात उस समय औही-बहुत भावा में शावश्व थी। याहियान के बर्णन से स्पष्ट है कि चाषडाल मुख्य बस्ती से बाहर रहते थे और बस्ती में आने पर सड़क पर लकड़ी पीटते हुए चलते थे ताकि उसके बज्जद से सब लोगों को उनकी उपस्थिति का जान हो सके और वे उनके सम्पर्क से दूषित होने से बचे रहे।

विवाह—गुप्त युग में बाल-विवाहों का प्रचलन काफी हो गया था। इसमें शहरे मुमों के मनु प्राणि स्मृतिकार उपगुप्त वर न मिलने पर कन्या के पिता का उसे अविकाहित रखने की आनुमति देते हैं, किन्तु इस युग की पालवन्धन और नारद-जैसी स्मृतियाँ न्यून काल से पहले कन्या को पादों न करने वाले अभिभावक लो नरकगामी बताती हैं। उस समय विवाह-विवाह भी ब्राह्मणी प्रबलित थी। चन्द्रगुप्त ने सम्बवतः ३७५ ई० में ध्रुवदेवी से इसी प्रकार का विवाह किया था। कुछ अवश्यकों में स्त्री घण्टा पालना पति लोडकर दूसरे गुप्त ने विवाह कर लकी थी। दूसरा विवाह न करने वाली विवाहाएँ प्राप्त इत्तवारियों रहती थीं। सती-प्रथा का व्यापक प्रसार और घासिक महसून न था। इस युग में सती होने का केवल एक ही ऐतिहासिक प्रमाण मिलता है; भासुगुप्त के सेनापति गोपराज की मृत्यु के पश्चात् उसकी पत्नी चिता पर चढ़ी थी।

स्त्रियों की स्थिति—उच्च वर्गों में इस समय स्त्रियों की स्थिति बड़ी उत्तम थी। वे शासन-प्रबन्ध में प्रमुख भाग लेती थीं। कुछ प्राचीनों में, विवेषतः कन्नड़ प्रदेश में, वे प्रान्तीय आसक और गाँव के भूलिया का भी काम करती थीं। दक्षिण में स्त्रियों को यमरू पहाड़ में रखने की परियाई नहीं थी। वहीं के राज्य-रिवाजों की स्त्रियों घटनिलोकों में न केवल समीत और नृत्य में प्रतीक्षा बताई गई है सिंगु वे सार्वजनिक रूप से इन कालाओं में पाने नीपुण का भी प्रदर्शन करती थीं। कुलीन स्त्रियों उच्च विद्या प्राप्त करती थीं।

किन्तु यह उत्तम स्थिति उच्चवर्गों की नारियों की ही थी। साधारण स्त्रियों की दशा मिर रही थी। बाल-विवाह प्रचलित होने से उनका उपनयन प्रसंभव हो गया। पात्रवल्लम ने उन्हें उपनयन और वेदाध्यवन वा अनुष्ठिकारी माना। वैदिक विद्या न दिये जाने पर भी स्त्रियों को बड़ा और नारिल की विद्या दी जाती रही। इस युग में योंत भट्टाचार्य प्राची अनेक स्त्री-लेखिकाओं और वाक्यविदियों तृष्ण। स्त्रियों के पुराने घर्षणिनी और समाज के प्राइवेट में इस युग में परिवर्तन घटाने लगा। स्त्रियों पर पति की प्रभुता बढ़ने लगी। कालिदास न निला है—“पति ही स्त्री का स्वामी है, वह जो चाहे कर रहता है।”

जीवन का व्यावर्ष—गुप्त युग की एक बड़ी विशेषता महसूस है कि इस समय तक भारतीयों का सामाजिक और वैयक्तिक जीवन बड़ा सन्तुलित था। धर्म, धर्म, काम, सोड़ा नामक नारी तुलायों का उचित उपभोग जीवन का साध्ये समझा जाता था। बाद में भारतीय जीवन में धर्म की प्रवासता हो गई। परसोंके लिए इह लोक की चेष्टा की जाने लगी, धर्मिकता समृद्ध रत तथा पूजा-पाठ की दिया जाने लगा, मन्यान को उच्च और काम को हेष दृष्टि से देखा जाने लगा, किन्तु गुप्त युग तक ऐसा नहीं था। धर्म और काम की धर्म और मोक्ष के समान महत्ता थीं; समाज वाली पुस्तायों की प्राप्ति के लिए समाज का से बल करता था। गुप्त युग

की चौमुखी उपलिंग का मूल कारण मही है। इस काल में जहाँ वर्ष और दर्शन में उपलिंग हुई, वहाँ साहित्य, ललित एवं उपगोती कलाओं और विज्ञानों का भी उत्कर्ष हुआ।

२. साहित्य

गुरुत-काल में संस्कृत-साहित्य का अभ्यन्तरीय उत्कर्ष हुआ। संस्कृत के पश्च घनुरामी गुरुत राजाओं की शीतल छष्ट-छाड़ाया उसकी नवीनीकण समुद्रति में सहायक सिद्ध हुई। इसके प्रचार का इतना उत्साह था कि राजवीकार के कथनाभूमार इन्होंने प्रमाणे घन्त-तुर में भी संस्कृत के प्रयोग का आवेदन दे रखा था। यह स्मरण राजना चाहिए कि केवल इस दुग में ही संस्कृत राष्ट्रभाषा बनी। इससे पहले के सातवाहन और इक्षवाकु राजा कहूर बाह्यण होते हुए भी प्राकृत के प्रोत्पक थे। जैत और बोद्ध भी गाली तथा प्राकृत भाषाओं का व्यवहार करते थे। किन्तु संस्कृत के विभाग शब्दकोष तथा सर्वविषय अभिव्यक्तक सामग्र्य के कारण वे इस और बाहुद दुए। तौड़ों ने पहली-दूसरी शती में संस्कृत को अपनाया। भाषायान सम्बद्धान के प्राच्यार्थी ने प्रपनी प्रपुर्व रचनाएँ इसी भाषा में ली। संस्कृत दस समय भारत के समृद्धि लिङ्गित वर्ष की भाषा भी। गुरुओं को इस बात का गौरव है कि उन्होंने इस राज-भाषा बनाया। पहले जो स्वाम प्राकृतों को मिला था, वह अब संस्कृत से पाया। सारे देश के दार्शनिकों, वक्तियों, शासकों की भाषा होने से संस्कृत भारत की राष्ट्र-भाषा के पद पर आसीन हुई। भारत ही नहीं बहुतर भारत में, मलाया, जावा, सुमात्रा, बाली, बोनियो और जीन तक उसका प्रसार हुआ। केवल गुरु दुग में संस्कृत की यह स्थिति रही है। इससे पहले प्राकृतों का प्रसार था, उठी बती है। से दक्षिण में डकिन भाषाएँ राजकीय लेखों में इसका स्थान से लेती हैं। संस्कृत-साहित्य की दूसरे अर्थात् कृतियाँ इसी काल में रखी गईं।

संस्कृत के कवि और नाटककार—संस्कृत-साहित्य के द्वानेक प्रसिद्ध कवि इनी पृष्ठ में हुए। महाकवि कालिदास इसी काल के माने जाते हैं। 'रसुवंश', 'हुमार-संग्रह', 'सेप्तूत' नामक काव्य और 'दालविकालिमित्र', 'विकमीर्वदी' तथा 'ध्यामिद्वान शाकुन्तल' नामक नाटक उनकी असर कृतियाँ हैं, इनमें भारतीय पादर्थ जिस गुरुता से प्रमट हुए हैं, वेंस शायद आज तक किसी अन्य रचना में नहीं हुए, वे संस्कृत के रावेष्ट्रेन कवि हैं। विजातारदत्त का 'मुहाराक्षम', भारवि का 'किरातार्थ-नीति' भार्तीरि के 'नीति', शृङ्खार और वैदाम्ब वत्क' इसी काल की कृतियाँ हैं। समुद्रगुरु की विभिन्न काव्य-हृतियों ने अपनी प्रांजल और प्रसाद गुण पुकार संस्कृत में लिया है। संस्कृत-कवि-साहित्य का एक अमर रूप विश्वरूपों का 'पंचतन्त्र' इसी दुग की देन है, संसार की पचास से अधिक भाषाओं में इसके दो सी के समग्र ग्रन्तिकार हुए हैं।

शास्त्रीय साहित्य—काव्य-साहित्य के प्रतिरिक्षा इस दुग में व्याकरण शास्त्रों से सम्बन्ध रखने वाला साहित्य लिङ्गित हुआ। लिंगुओं में पाणिनि, काव्यायन और वस्त्रजलि के ग्रन्थों का आदर था, किन्तु यिन्हे जन्मतोमी नामक बड़ालों द्वारा

मिश्र द्वारा विवरित 'बन्ध भाषाकरण' बड़ा लोकप्रिय थुमा। इसका भाषापाठ पाणिनि की 'प्रधानाध्यायों' है, किन्तु वैदिक स्वर-प्रक्रिया और भाषाकरण छोड़ दिया गया है। इसका समय छठी सती ५० का पूर्वार्द्ध है। 'धर्मरक्षोश' एक बौद्ध धर्मरात्सव की कृति है। छन्दः शास्त्र का विवेचन इस समय 'अनुवादों' तथा वराहमिहिर जी 'वृहत् संहिता' तथा 'प्रसिद्ध गुरुगण' में हुया। विष्णवाला नाम प्रतिपादन 'विष्णु धर्मोत्तर पुराण' में किया गया। 'कामस्वदकीर्ण नीतिसार' और तात्स्वायन का 'कामसास्त्र' भी इसी युग की रचना है।

धार्मिक लाहित्य—पुराण भाग्य में वैदिक युग से चले थे रहे थे। उनका एक प्रधान धर्म धार्चीन वंशों का बलान था। गुप्त युग के प्रारम्भ में इनका नवीन संस्करण हुआ, इनमें ३५० ई० तक की घटनाएँ जोड़ दी गई। कहा, विष्णु तथा भगवन के माहात्म्य का बरांत किया गया, किन्तु वहाँ और अनुष्ठानों को महात्म्य देने वाला भाग अभी तक इनमें नहीं जुड़ा था।

वायवल्लभ, नारद, काश्यायन, पराशार और वृहस्पति की समृद्धियाँ इसी युग में बनी। इनमें वायवल्लभ समृद्धि बड़ी मुख्यवस्तियाँ और कमबद्ध है। इनमें भावार, व्यवहार (वीरानी कानून) और प्रायविचारों जातीन भागों में वृष्टि बलान्त है। इस समय के दोवाली कानून के विकास की सूचना नारद और काश्यायन से मिलती है।

वायोनिक लाहित्य—गुप्त काल में यहाँ भारतीय दर्शनों पर भाष्यों और प्रामाणिक ग्रन्थों का निर्माण हुआ। ईश्वर हुण ने 'सांख्य वसंत' के सबसे लुन्द्र और प्रामाणिक ग्रन्थ 'सांख्य-कारिका' का प्रणयन किया। 'भाष्यभाष्य' के लेखक वात्स्यायन और इस भाष्य पर 'न्यायवाचिक' नामक विज्ञातार्णी टीका लिखने वाले उद्योतकर इसी काल की विभूति है। 'वैयोनिक' का असिद्ध पर्याय, प्रवास्तपाद-कृत 'पशार्द संघह', 'मीरामासा' के 'साक्षर' तथा 'योग वसंत' के 'योग भाष्य' इसी काल में बने। बौद्ध वसंत के विविक्षण ऐसे धार्चार्य गुप्त युग में हुए। विजानवाद के संस्कारक मैत्रेय, इस सम्प्रदाय के प्रबर्थक धार्चार्य वसुदेव, मायाविक न्याय के जग्मदाता दिङ्गतात्मक और उत्तम करने का धेय इसी युग को है। महायान के ग्रन्थ गुप्तकालीन धाराधार्यों में विवरमति, शंकरस्वामी, वर्मणी, स्पष्टिर, वृजपालित भाष्यकार (२००-२५०), भाविनिक, वस्त्रीति, वैभाषिक सम्प्रदाय के संप्रवद, स्पष्टिरवाद सम्प्रदाय के वुद्ध-योग, मुद्दवद, पर्म्मेयान उल्लेखनीय हैं। इनके महस्तपूर्ण ग्रन्थों का प्रियंका अध्याय में विवेच किया जा चुका है।

वैन संहित्य के विकास की वृद्धि से गुप्त काल भगवान्नारण महात्म्य रक्षा है। इस युग में लवेप्रवर्तम वैक्यमें के ग्रन्थों (पाठमों) को ४५३ ई० में बनी में विविक्षण किया गया, यह कार्य वैयाक्षिकण के समाप्तित्व में हुई वैन महायाना ने किया। इसके विविक्षण इस काल की दो ग्रन्थ बड़ी घटनाएँ जैन न्याय का स्वतन्त्र व्यास्त्र के कार्य में विकास और 'वैनेन्द्र व्याकरण' की रचना है। वैन भाष्य के संस्कारक

आचार्य सिद्धसेन विषयकर (पीछवीं शर्तों का उत्तराद्य या छठी शर्तों का पूर्वाद्य) में। 'स्वापाकतार' की रचना करके उन्होंने जैन धाराय की जन्म दिया। इनके अन्य ग्रन्थ 'सम्मति तके गुप्त' तथा 'तत्त्वाचे टीका' हैं। ये केवल नीरस विषय पर लिखने वाले शुद्ध वार्षिक ही नहीं थे, किन्तु 'कल्याण मन्दिर' आदि अनेक सरस स्तोत्रों के लिखाता भी है। 'जैनेन्द्र व्याकरण' के प्रणेता पूर्वपाद देवनन्दिन थे। जिस प्रकार चन्द्रघोषी ने बीड़ों के संस्कृत-साधाययन के लिए 'जैनेन्द्र व्याकरण' बनाया, वैसे ही उन्होंने जैन धर्मात्मकविदों के लिए 'जैनेन्द्र व्याकरण' को रचना की। यह 'पाणिनि व्याकरण' का ही संक्षिप्त मंस्करण है। इसके छाटे भीर बड़े दो लंबे हैं, छाटे में लम्बाग्रन्थ ३,००० सूच हैं और बड़े में ३,७६०। गुप्त युग के अन्य जैन आचार्य जिनभद्र मणि, सिद्धसेन मणि और समस्तभद्र उल्लेखनीय हैं। समस्तभद्र अपने समवर (पीछवीं शर्त) के प्रवाणह जैन वार्षिक थे। उन्होंने 'पुनुदवशासन' में जैन धर्म के सिद्धान्तों की विवेचना की है। 'स्वाप्नाद' की प्रतिक्रियारूपारा का जन्म हमी काल में हुआ।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि गुप्त युग के बीच हिन्दू धर्म और साहित्य की उत्पत्ति का काल था, अपितु बीढ़ और जैन संस्कृत-बाह्य धर्म का भी चरम उत्कर्ष इसी काल में हुआ था। यह तीनों धर्मों के साहित्य का समान रूप से स्वर्ण युग है।

३. वैज्ञानिक उत्पत्ति

गुप्त युग में भारत ने वैज्ञानिक क्षेत्र में प्रसाधारण प्रगति की ओर अनेक नवीन प्राविष्टिकार किये। प्राचीन काल में इससे पहले या इसके बाद किसी अन्य युग में उत्पन्नोंमी शिल्प तथा विज्ञानों का इतना उत्कर्ष नहीं हुआ। इसीलिए भारत उस समय वैज्ञानिक दृष्टि से संसार का नेता और यद्यपि देश बना। बाप: यह कहा जाता है कि भारतीय सदा आव्यालिक तत्त्व-विज्ञान में ही है रहने वे; किन्तु गुप्त युग में यादः सभी भौतिक विज्ञानों का उत्पत्ति इस प्रारणा का लापदन करता है।

गणित—गणकगणित के छोटे में गुप्त युग की सब से बड़ी खोज और देन दस-गुणोत्तर श्रेणी तेजन-पद्धति थी। जौधी शर्ती १० में भारत ने इसका प्राविष्टिकार किया। इसमें पहले नी अंकों और शून्य द्वारा सब संख्याएँ प्रकट की जाती हैं, नी अंक समाप्त होने पर एक के बारे शून्य बड़ाकर इस बना लिया जाता है, दाढ़ी और शून्य लोहकर दहाई, संकड़ा, हजार प्रादि संख्याएँ प्रकट की जाती हैं, अंकों का मान उनकी स्थिति पर हीता है। अब हमारे लिए यह पद्धति इतनी स्वामानिक हो गई है कि हम यह कामना नहीं कर सकते कि हमारे पूर्वों को इस प्रणाली के प्राविष्टिकार में पहले १११ लिखने के लिए कितना भ्रमट करना पड़ता था। उन दिनों नी अंकों के प्रतिरिक्ष दस, बीम, तीस, चालीस, पचास, सी, हजार प्रादि के लिए पृष्ठह चिह्न थे, उपर्युक्त संख्या लिखने के लिए उन्हें एक, वस और सी के अंकों को लोहकर लिखना पड़ता था, ठीक ऐसे ही जैसे घटियों पर रोमन अंकों में छः या चारह के

लिए जमातः पांच और एक के मुचक वी (V) तथा आई (I) और इस तथा एक के चिह्न एकम (X) तथा आई (I) लोडने पड़ते हैं। इन भारतीय शाब्दिकार से पहले विभिन्न संस्कृतों के मुचक चिह्न जोड़कार अबों को बनाया जाता था। यह पढ़ति बहुत ही जटिल थी। दूरोप में भारतीय शरी तक इसी का प्रयोग होता था। भारत से दक्षाणीज्ञान धन्क-लेखन अवरबों ने सीखा और उन्होंने इसे दूरोप वालों को शिखाया। दूरोपियन् इसीलिए इन्हें अरबी शब्द कहते हैं और इस अरब वाले भारत (हिन्दू) से ग्रहण करने के कारण इह ही 'हिन्दू' का नाम देते हैं। इन विद्याया (जबों शरी) अद्विमधी (असर्वी शरी), अद्वेकनी (भारतीय शरी) इस धन्क-लेखन की खोज का अध्ययन भारतीयों को देते हैं। यह शब्द तक डीका तरह जात नहीं हुआ कि भारत में इसका व्याविधान किसने, कब और कैसे किया? किन्तु पांचवीं शरी के आद्वेद (४६६ ई०) के शब्दों में इसका स्पष्ट उल्लेख है, अतः उससे कामनों-काम एक शरी पहले इसका व्याविधान ही चुका होगा। इससे गणित की मणिनाथों में बड़ी सुविधा हुई, अतः इसे सब गणितज्ञों ने प्रशंसा की। आद्वेद ने वर्गमूल और अन्यमूल निकालने को पढ़ति इसी विधि के आधार पर दी है। साधारण जगता में इसका प्रयोग प्रसिद्ध होने में काफी समय लगा। ६६५ ई० के संखेव अभिलेख में सबे प्रथम इसका व्यवहार किया गया है।

मुष्ठ युग के गणित गत प्रकाश इनसे जानों के बहुत दो रक्षणार्थ हैं—'वर्षातीयों' और आद्वेद का 'आद्वेदटीयम्'। गेवाकर शहर के पाल वल्लाली गोव में जमोंस को देते हुए एक किसान को १८=१ ई० में पृथ्वी योद्धी मिली थी, यह वही विजित देया गया है। दूसरी पुस्तक प्रतिष्ठ योद्धियों आद्वेद की ४६६ ई० में वार्दलिपुष्ट में लिखी गयी है। इसमें न-किंवद भिज, वर्गमूल, अन्यमूल आदि प्रारंभिक विधियों का वर्णन है, किन्तु साधारण मणिनाथों, वर्गी और घनों की धन्क-गणितीय विधियों, वात विधि, मूल विधि आदि जिम्मेदार विधियों का भी लिखेगा है। ज्यादातिके लेख में युत और जिम्मेदार विधियों की महत्वपूर्ण विवेषाताओं का संकेत होने से पहुँचपट है कि भारतीय गणित वार्दलिपि की ज्यादातिकी पहली जारी पुस्तकों के अधिकांश साध्यों वा ज्ञान रखते हैं। आद्वेद के दृश्य में प्रगम्भामङ्ग ज्यादातिके प्रदर्शों का लिखेगा है तथा पाई का (II) भाग भी उत्तर समय तक निकासे नहीं दृश्य मानों से अधिक दूर है। शोषण-गणित में ज्यारे ज्ञान राजियों के गमनाविक गमीकरणों तथा एकाधिक गणितोंसे रुपणकों का हाल दें कि यिहा गया था।

सब विद्वान् इस जात की स्त्रीकार करते हैं कि भारतीय इस युग में गणित की शीर्ष में से दो जागराती—धन्कगणित और वीजगणित में अपने गमनाविक दूरानाथों से ज्ञान वहे हुए हैं।

प्रयोगिता—मुष्ठ युग का मध्यसे लेकर ज्योतिषी आद्वेद ४६६ ई० में वार्दलिपुष्ट में उल्लेख हुआ। रेखा विधि की अनु में इसने प्रपत्ता प्रसिद्ध दृश्य 'आद्वेदटीयम्' लिखा। वह भारत के महान् वैज्ञानिकों से है। उसने लिखन्विद्या के गुलामी अपोतिषियों के

विद्वानों का भी गहरा सम्बन्धन किया था। वह यह जात करने वाला पहला भारतीय था कि पूर्णी अपने प्रथा के चारों प्रोट घुमाती है। उसने लवंद्रवनम् ज्योतिष में बोवा का उपनाम जात किया, यहों तथा प्रह्लों सम्बन्धी अनेक मण्डनाएँ थीं। उसने जी वर्ष मान निकासा, वह ज्योतिषी द्वारा निकासे गये काल से अधिक दूर है। यह तत्कालीन भारतीय ज्योतिष की दक्षिणता का पर्याप्त एवं पुष्ट प्रमाण है। इस काल का दूसरा ज्योतिषी वराहभिरुद्ध जीवी के उत्तरार्द्ध में हुआ। उसने अपने 'पञ्च विद्वान्तिका' में तीनशी-नौशी ज्योतिषों में भारत में प्रचलित विभिन्न विद्वान्तों का परिचय दिया है। इस समय भारत पर यूनानी ज्योतिष का भी प्रभाव पड़ा। सम्भूत ने केष्ठ, हारिच, देवकाण आदि शब्द यूनानी भाषा से प्रह्ल किए। ज्योतिष के प्राचीन पञ्च विद्वान्तों में एक रोमक (रोमेस्टोप) भी है। भारतीय यूनानी ज्योतिषियों का यहा धावर करते थे किन्तु यह तब होते हुए भी यूनान का प्रभाव यत्नस्पति और नगण्य था। भारतीय स्वतंत्रतायुद्ध के मण्डनाओं द्वारा जिन परिणामों पर पहुँचे थे, वे यूनानियों के परिणामों की अपेक्षा अधिक दूर हैं।

आषुवद— चरक और सूक्ष्म दुसरी शती ई० तक बन चुके थे, इस तुम में छठी शती ई० में इन दोनों संहिताओं का भार वाम्पटु में 'धार्टोग मध्य' में दिया। इस युग का दूसरा प्रभिन्न पन्थ 'नावनीतकम्' है। यह ई० ई० में पूर्वी तुकित्ताम के बृचा में मिला था। इसमें भेत्र, चरक, सूक्ष्म संहिताओं के उपर्योगी नुस्खों और गोनों का सचह है। जो बोढ़ प्रचारक मध्य एतिया में प्रचार करने जाते थे, वे संभवतः इस पन्थ का प्रयोग करते थे। इसमें लहरुन के गुणों का बर्णन तथा संपूर्ण विष का प्रभाव दूर करने के मंत्र हैं। आषुवद में प्रधान कार्य से विकित्ता के लिए वानस्पतिक ज्योतिषियों जा गयोग होता था, किन्तु पारे तब अन्य जातियों के योग का प्रयोग प्रचलित हो रहा था। पशु-चिकित्सा पर भी इस युग के शिष्टों भाग में वानस्पति का 'हस्तायुवद' लिखा गया। इसके ई० यज्ञाओं में हार्षियों की प्रधान बीमारियों, उनके लक्षण तथा उनका घोषण एवं शल्योचनार दिया हुआ है।

रसायन और भाटुदास्त्र— दूसरी शती ई० में आचार्य तामारुनने न केवल शास्त्रीय सम्प्रदाय के दास्तानिक सिद्धान्तों की अन्य दिया, किन्तु रसायन और भाटुदास्त्र का भी गहरा सम्बन्धन करके इन आस्त्रों की उत्तरिता का व्यीग्ररूप किया। वे 'तोह शास्त्र' के प्रयोग सारे जाते हैं। इस युग में उनके शिष्टों ने इसकी तोह जारी रखी होगी। हमें उसका विस्तृत ज्ञान नहीं, किन्तु इस युग के तोह शास्त्र की उत्तरिता का अवलम्बन प्रमाण युतुब मोनार के यात्र की तोह की कीसी है। २४ फी० डेवी घीर ॥। उन भारी इस साठ ने पाइचाय पिद्वाओं को प्राशनमें दाना हुआ है। पाइचाय में लोहे के दाने बड़े स्तम्भों की इताई पिद्वाओं शती में ही होने जाती है, अग्न-रहित लोहा इस सरी की लोज है। किन्तु यह कीसी १,२०० वर्ष की वर्षीय भेत्रने के बाद भी वैसी ही लाडी हुई है। इसे विष प्रकार बनाया गया, यह रहस्यमयी गुली आव तक नहीं गुलझ रही। छठी शती के अन्त में मातृन्दा में २० पुढ़ डेवी

कुद की ताज्जन्मतिमांथी, इस काल की ७। कुद लेखी एक कुद-पूर्ति वर्णनमयम् में है। ये सूतियाँ भी यातु शास्त्र की उप्रति सूचित करती हैं।

शिल्प तथा अन्य विज्ञान— शिल्प-शास्त्र का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'मानसार' इसी गुग की रचना मानी जाती है। बराहमिहिर की 'बृहत्संहिता' से अन्य अनेक विज्ञानों पर प्रकाश पड़ता है। यह जगत् एक प्रकार का विद्व-कोश है और बराहमिहिर ब्राह्मणविज्ञानों में प्रवेश रखने वाले असाधारण विद्वान् थे। वे न केवल यातु-शास्त्र तथा रसन विज्ञान का उल्लेख करते हैं, किन्तु बनस्पति-ज्ञास्त्र, भवन-निर्माण एवं स्थापत्य और कृतु-विज्ञान का भी वर्णन करते हैं। यदि बराहमिहिर विविध विज्ञानों के अध्ययन के लिए सम्प्रदाय स्थापित कर जाते और उनको शिष्य-परम्परा गुरु की भाँति वैज्ञानिक शोध से तत्पर रहती तो भारत मध्य एवं बर्तमान काल में भी विज्ञान की उप्रति में बहुत सहायक सिद्ध होता।

गुप्तपूर्णीम उप्रति के कारण— गुप्त गुग में भारत की जी सर्वांगीण सांस्कृतिक समुदाय तुर्द उसके प्रकर कारण क्या था? इस काल में भारतीय प्रतिभा का सर्वतो-मुखी विकास क्यों हुआ?

इसका पहला कारण गुप्त सभाटों का प्रबल विद्वानुराग और विद्वानों का संरक्षण था। चम्द्रगुप्त विक्रमादित्य की सभा में 'नवरत्न' विद्यमान थे, समुद्रगुप्त की कलाप्रियता उसके सिक्षकों से स्पष्ट है, नालन्दा-विद्वाविद्यालय की स्थापना का अवलुकुमारगुप्त (४१५-४५५ ई०) नाम है।

द्वितीय कारण इस काल की जाहिन्य और समृद्धि थी। जाहिन्य और कलाओं की उप्रति इही अवस्थायां में होती है, 'यस्येषं रक्षिते राष्ट्रे शास्त्र-चिन्ता प्रवर्तते'।

तीसरा कारण विदेशों से सम्बन्ध और सुपर्क था। चोन और रोमन साम्राज्य से भारत के सांस्कृतिक और ध्यानार्थिक सम्बन्ध थे। इतिहास में प्राप्त यह देखा गया है कि दो लिमिन संस्कृतियों का संपर्क या संपर्क बीदिक एवं कलात्मक कियाशीसत्ता को प्रोत्साहित करता है। हम इन देश पूर्के हैं कि इस गुग में हिन्दू और बौद्ध दार्शनिकों के विचार-विमर्शोंमयक यात्रात्मत्यायात में उच्चकोटि का दार्शनिक साहित्य बिदा हुआ। यही दशा संस्कृतियों के संपर्क में होती है।

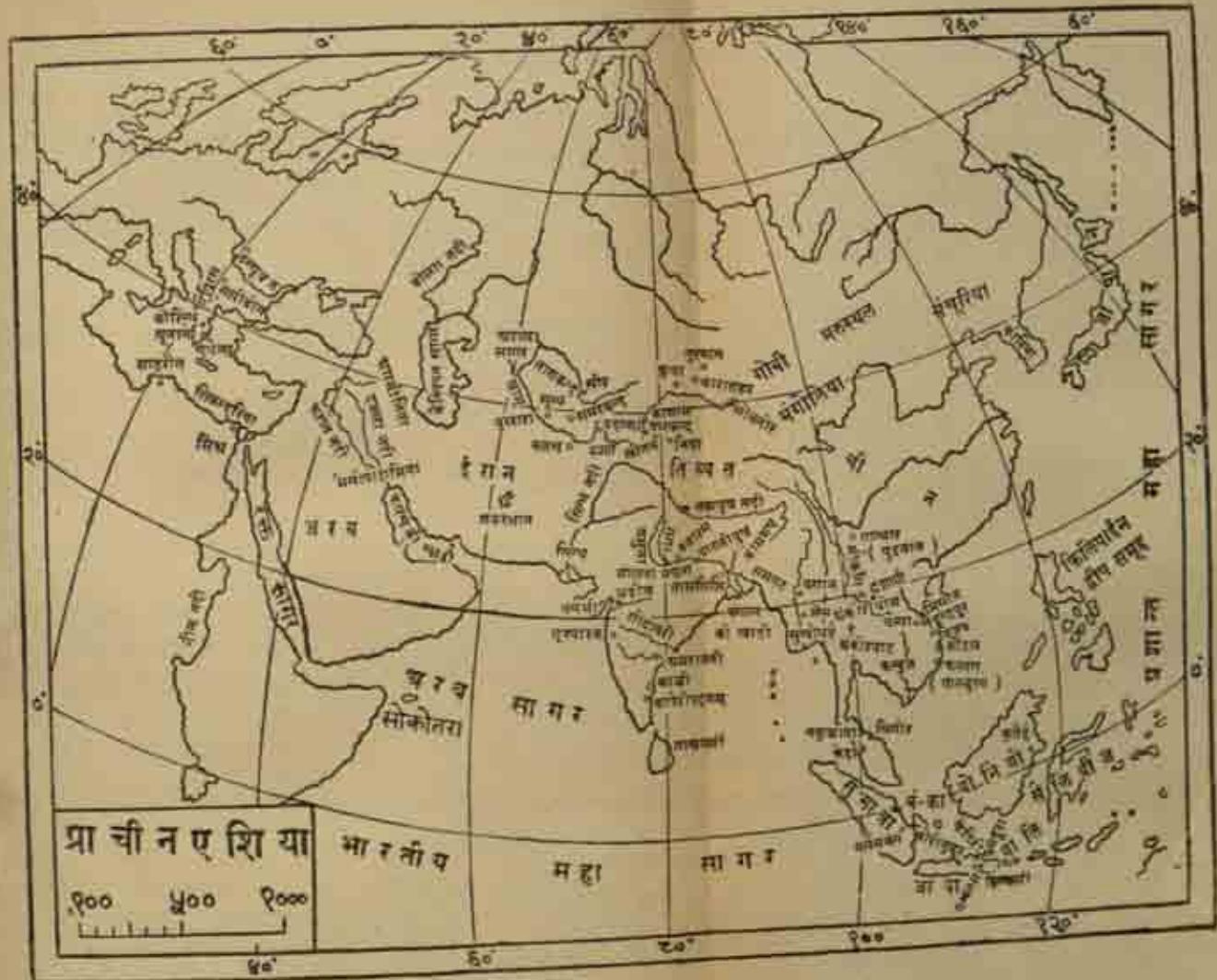
चौथा कारण भारतीयों के दृष्टिकोण की विभाजना, आत्मानिमान का प्रभाव, ज्ञान का ध्यानार्थ अनुराग और नम्रता थी। वे प्रत्येक जाति से जान और मन्त्राई लेने को उत्सुक रहते थे। बराहमिहिर ने लिखा है कि 'वृन (मूलानी) म्लेच्छ हैं, पर उनमें (ज्ञानीत्व) शास्त्र का ज्ञान है, इस कारण वे उचितों को तरह पूछे जाते हैं।' ज्ञानेन्द्र ने म्लेच्छ मूलानियों के ज्ञानीत्व का अध्ययन लिया था।

पौरवर्षी कारण स्वतन्त्रतापूर्वक ज्ञान और विज्ञान के अन्वेषण की प्रवृत्ति थी। बीड़ों ने किसी भावहृत से बोधे बिना दर्शन के क्षेत्र में झली-से-ज़ंगी उड़ाने ली। चार्मेन्ट ने यथापि याने से पूर्ववर्षी भारतीय और यूनानी दार्शनिकों के गम्ब पढ़े, किन्तु उन्होंने उनको परम प्रमाण नहीं माना, उनका धर्मानुसरण नहीं किया। उसका कहना था—‘ज्ञातिग के सच्चे और भूठे सिद्धांतों के समुद्र में मैंने महरी बुद्धि लगाई है, प्रपनी बुद्धि की नौका से मैं सत्य-ज्ञान के बहुमूल्य भौती लिकाल लाया हूँ।’

द्वृहत्तर भारत

द्वृहत्तर भारत का स्वरूप और क्षेत्र—ग्रामीन काल में भारतीय संस्कृति भारत की सीमाओं को पार करके बिन विद्याल प्रदेश में फैली, उसे द्वृहत्तर भारत कहते हैं। इसमें साइरेसिया ने चिह्न (धीरका) और दैरान तथा अफगानिस्तान से पश्चान्त महासागर के बोनियो और बाति टापुओं तक का विभास भू-भूषण है। पुराने जमाने में गहर्त्वाकांक्षी भारतीय राजा अपनी विद्याल मेलाओं द्वारा भीषण व्यवस्था करने के बारे में विद्यायों के भूपतियों को प्रदान कर दिया जाता था। जिन्होंने भारतीय संस्कृति ने रक्त की एक भी छेद बहाये तिना भारत के साहसी गायासाहों, खिलाओं, पर्वेइतों और व्यापारियों द्वारा एक विश्वज्ञान दिव्यिक्षय की। यद्यपि यहाँ दिल्ली में लंका को भारतीय संस्कृति के रंग में रंगा गया। पूर्व दिशा में यमों, न्याय, चर्मा (चनाम), कन्दोज (कम्बोडिया), मलाया, बाबा, मुगाजा, बालि, बोनियो तक के मूलभूत भारतीय घाकासहों ने बसाये, यहाँ एक अविवाहिती हिन्दू राज्य और सामाजिक स्वापित हुए, यहाँ के मूल निवासियों ने भारतीय संस्कृति का पाठ लिया। ग्रामीन काल में दिल्ली-नूर्मी एविया का यह भू-भाग भारत का ही अंग समझा जाता था। उस समय पुरानी इस 'यमासार का हिंद' कहते थे, याकबकत यह 'परसा हिन्द' कहलाता है। उत्तर दिशा में सम्पूर्ण पश्च एशिया और अफगानिस्तान में—जहाँ याकबकत प्रयात कप से इन्द्राम की दूती बोलती है—भगवान् बुद्ध की उपासना होती थी। भगवान् एविया से भारतीय सम्भूता के इतने अधिक अवक्षेप मिलते हैं कि भारत के उत्तर में वहाँ इन प्रदेश को 'उत्तरने हिन्द' का नाम दिया जा सकता है। पश्चिम में दैरान को भारतीय घार्यों के सज्जातीय वार्षियों ने प्रावरद किया, पश्चिमी देशों से व्यापारिक सम्बन्ध होने के कारण मिली, यूनानी और यरब संस्कृतियों पर भारत ने पर्याप्त प्रभाव छोड़ा।

सांस्कृतिक प्रसार के प्रेरक कारण और साधन—सांस्कृतिक प्रसार के दो प्रमाण प्रेरक कारण थे। (१) ग्रामीक—विर्तुयणा और व्यापार नन्दियों को दूर-दूर के देशों में जाने और भीषण संकट उठाने के लिए प्रेरणा देता था। हिन्द महासागर में भारत की केंद्रीय स्थिति होने से, वह पुरानी दुमिया के सभ्य देशों के समुद्री रासों के होक बीचों-बीच पहुँचा था। यहाँ के निवासी पश्चिम में नियान्दरिया और





नूर्वे में जीव के समुद्र तक व्यापार के लिए जाते थे। उन दिनों यह समझा जाता था कि इर्दे, मलाया, जावा, सुमात्रा में सोने की लाज है और इस प्रदेश को सूचना भुग्न और सुधरण्डीप कहा जाता था। अन्य जहाँ भी कहीं सोने की या सम्पत्ति की जागा होती, भारतीय व्यापारी वहाँ जाते थे। इनका किन-बनेचर और प्रस्तर्य आतिथी से सम्पर्क होता, उनपर इनकी संस्कृति का स्वाभाविक रूप ये गहरा भौतिक पक्षता।

(२) दूसरा कारण सोन-कल्पाण की कामना और चम्प-प्रसार की भावना थी। इनसे अनुप्राप्ति होकर अ॒ग्नि-भूनि और बौद्ध भिक्षु विदेशों की जागती जातियों में जाते और भीषण जाहाजों के साथजूद उन्हें सम्म और उत्तम बनाते। अशीक द्वारा प्रचलित घर्म-विवर्य की जीति से संघटित रूप से भिक्षुओं को दूसरे देशों में बौद्धभूत का प्रसार करने के लिए भेजा जाने लगा। इस प्रसार सामृतिक प्रसार के तीन मुख्य साधन व्यापारी, उपनिवेशक और घर्मदूत थे। व्यापारी जहाँ जाते, वहाँ भारत-क्षेत्र उनके साथ भारत का सांस्कृतिक प्रभाव भी पहुँचता था। उपनिवेशन का आधार दूसरे देशों में भारतीयों का स्थायी रूप में बस जाना था। यह कामें या तो जीवितव्य और अगस्त्य-जैसे अ॒ग्नि-भूनि विदेशों में अनेक व्याधि और तरोलन स्वापित करके करते या क्षतिय राजकुमार हिन्दू राज्यों की नींव ढालकर। सुवर्णांशीप में इस प्रसार के अनेक भारतीय राज्य स्थापित हुए थे। व्यापारी विदेशों में भारतीय मंस्कृति का बीज डालते और हिन्दू राज्य इने वहाँ सुदृढ़ करते थे। किन्तु जीव और मंगोलिया-जैसे देशों ने घर्मदूतों और प्रसारकों के अन्यथक अव्यवसाय और भगोरम-प्रपत्ति से बौद्ध-वर्म प्रहृण किया।

सांस्कृतिक प्रसार का क्रम—भारत की सीमाओं से बाहर भारतीय संस्कृति सर्वप्रथम भीलांका में फैली। इकिल दिशा में बहुतर भारत की यही सीमा थी, अपोकि 'इसके बाद वह समुद्र ग्रास्त होता है जिसका भूमण्डल की समाप्ति के साथ भी अन्त नहीं होता।' उपरले हिन्द में तीसरी जाती है० पू० में भारतीयों ने मध्य एशिया में उपनिवेश बनाने शुरू किये, एक्षयी श० है० में भारतीय संस्कृति जीव पहुँची, वही ने कोरिया और छ्ठठी श० है० में कोरिया से जापान। सातवीं जाती में इसने तिब्बत में प्रवेश किया और तिब्बती घर्मदूतों ने इसे लेख्चर्ची श० में मंगोलों तक पहुँचाया। इससे यह मंगोलिया, मंचुरिया और साइबेरिया तक फैल मई। 'परले हिन्द' में इसा की पहुँची जातियों में हिन्दूओं, मलाया ग्रामीण, जावा तथा सुमात्रा आदि दायुधों में हिन्दू राज्य स्थापित हुए और भारतीय संस्कृति का प्रसार हुआ। ये राज्य लगभग वेड हजार वर्ष तक बने रहे। सोलहवीं श० में इस्लाम ने इनका अन्त किया और इनकी समाप्ति के साथ यहाँ में हिन्दू संस्कृति का भी खोप हो गया। पल्चिम दिशा में भारत का दक्षिण, उत्तर और पूर्वी दिशाओं का-सा गहरा ग्रन्थ नहीं पड़ा, किन्तु लग्न एशिया, ईरान, ईस्टाइपन तथा इस्लाम पर बोड़ना असर पड़ा। इन सबका ग्रन्थसंक्षेप से यथाक्रम बताने किया जाएगा।

बोद्धका—भारतीय समुद्रत्रिके अनुसार बोद्धका में सर्वप्रथम भारतीय संस्कृति का सन्देश ले जाने वाले थे रामचन्द्र थे। किन्तु मिहन्ती इतिहास यह बताते हैं कि उठी श० ई० प० में काठियावाड़ के राजकुमार विजय के नेतृत्व में भारतीयों ने इस टापू का उपनिवेश ग्राम किया। तीसरी श० ई० प० के मध्य में समाज अद्वीक में लंका में बौद्ध-धर्म के प्रसार के लिए धर्मने पुनर्महेन्द्र की भेजा। लंका का राजा देवगामिन्य तिस्स (२५३—२०३ ई० प०) उसका विषय बना। राजी अनुसा भी भिक्षु बनना चाहनी थी, अतः तिस्स में यद्वीक के पास दूत भेजकर यह प्राप्तना की कि वह भित्तियों को भिक्षुणी बनाने के लिए अपनी पुत्री संवामित्रा को तथा बोधि बृह की एक शाला लंका भेजे। यद्वीक द्वारा भिक्षवादी बोधि बृह की शाला अनुशास्पुर के एक विहार में रोप ही गई, उससे उगा पेह आज भी विवरान है और वह भैसार के प्राचीनतम वृक्षों में मिना जाता है। इसके साथ ही महेन्द्र और गवामिना द्वारा लंका में समाई गई बौद्ध-धर्म की शाखा आज बोधि बृह की भाँति विद्याल बन गई है।

तीसरी शती ई० पूर्व से लंका में बौद्ध-धर्म का लेखी से प्रसार होने लगा। भारतीयों ने उसे पूरा संरक्षण प्रदान किया। उस समय में वह उस देश का राष्ट्रीय धर्म है। उसे इस बात का भेद है कि उसने बौद्ध-धर्म की व्योति को विहले २,००० वर्षों में प्रतिकृत परिस्थितियों के प्रबल भौतिकता में भी समर्पितश्च रूप से प्रदीप्त रखा है। महाभासुड़ की अन्यभूमि-भारत में उनके धर्म का लोप हो गया, अतः जब अन्य देशों को इसका धारोक पाने की आवश्यकता हुई तो लंका ही उनका गुरु बना। यह अपेक्षा रखता चाहिए कि धारोन काल में संस्कृति का मूल भाषार धर्म ही था, उसी के साथ वर्णमाला, नामा, महिला, कला, विज्ञ आदि मनुष्य की मुसङ्गहृत और सभ्य बनाने वाली कलाएँ स्वस्त्र थीं जाती थीं। बौद्ध-धर्म ने लंका की बाह्यी विनियोग वाली प्रवाना की, वहाँ वास्तु, चित्र, मूर्ति बलायों का शोगणेय, विहास और परिवार की विधा, परस्पर संघर्ष करने वाली विविध लातियों में सांस्कृतिक एकता के स्वरूप बनाए उन्हें एक नृप में निरौप। लंका में धर्म, साहित्य और कला आदि का ऐसा कोई भेद नहीं है, वहाँ भारत में अपना अभाव स्पष्ट कर से अंकित म विद्या है।

उपरता हिन्दू

मध्य-एशिया—तीसरी शती ई० पूर्व में यद्वीक के उभय से भारतीयों ने मध्य एशिया (वीमी युक्तिस्तान या निकितान) में भारतीय विद्यायां वसाना शुरू कर दिया था। काहियान के नामा-विवरण तथा इस प्रदेश की आधुनिक लुप्ताईयों से यह प्रतीत होता है कि इसा की वासी शतियों में भारतीय यहाँ केंद्र रहे और वाली शती तक समुद्रा मध्य एशिया भारतीय बन चुका था। काहियान के वालों में सोवनोर भौति के गविष्म की सब लातियों ने भारतीय धर्म और भाषा को पढ़ान कर लिया।

या। चीनी नूकिस्तान का अधिकार भाग मरम्बन है, केवल दक्षिण और उत्तर में उदियों के लिनारे कुछ बाहुद फैदों में बस्तियाँ बसी हुई हैं। दक्षिण में काशगर और यारकन्द तथा लोतन; उत्तर में कूचा, कराशहर और तुरकान प्रयाम बस्तियाँ थीं। इनमें लोतन तथा कूचा ने चीन तक भारतीय संस्कृति के प्रसार में बहुमहत्वपूर्ण भाग लिया, दक्षिण में यज्ञोपटी लिपि और प्राहुद का प्रभाव था; उत्तर में काल्पी लिपि और संस्कृत का।

तीसरी शती ई० तक लोतन बीढ़-रमे का प्रसिद्ध केन्द्र बन चुका था। लोतन में तथा निया, जर्वन यादि भगव दक्षिणी बस्तियों में उत्तर-उदियों भारत से इसने अधिक भारतीय था बते थे कि यहाँ को राजनाया प्राकृत और राजनियि लरांपटी हो गई, चीन को सीमा तक इसका प्रयोग होता था। इस प्रयोग से मिले ००० के लगभग लेख छप चुके हैं और ये यहाँ पर भारतीय संस्कृति के गहरे प्रभाव की सूचित करते हैं। यहाँ से मिले पत्तों में न केवल भीम, ग्रामदसन, बुद्धियोग यादि भारतीय नाम हैं किन्तु नेसहारक, दूप, चर, दिविर (सेवक) यादि भारतीय सरकारी पद, और सजाएँ भी मिलती हैं। राजा को महाराजा, देवगुरु, प्रिपदसन, देवमनुष्य से पूजित के विशेषण दिये गए हैं। राजाजाएँ प्रायः इस वायप से प्रारम्भ होती हैं—महाराजः लिहुति (महाराजः लिखाति)। मूलि और चित्रकला के सब समूने भारतीय वायर्पं पर हैं।

उत्तरी बस्तियों में कूचा प्रवान थे। इसे बीढ़ घमे का केन्द्र बनाने का वहुत बहुमहत्वपूर्ण नामका बीढ़ भिन्न को है। यह एक भारतीय राज्य के भीड़ कुमारायग का लेटा था और माता ने इसे कादमीर के महान् बीढ़ आचार्यों से विद्या दिलवाई थी। ३३३ ई० में चीनियों ने कूचा पर आक्रमण किया, वे कुमारों को पकड़कर ते गए, भीन के राजा ने इसका बड़ा सम्मान किया, इसे यस्कुत घन्यों का भीनी शत्रुघान करने का काम सीखा। ४१२ ई० में अपनी भूम्य तक ये ६८ घन्यों का मालामाल कर चुके थे। कूचा तथा अन्य उत्तरी बस्तियों ते सहायत सम्प्रदाय के बीढ़ पर्यं पत्तों के अतिरिक्त प्रसिद्ध बीढ़ याकायं यशवधीय के दो जाटों के भी कृत भग्न मिले हैं। कूचा यादि बस्तियों के राजा लीढ़ बने के भवते थे, वे हरिषुप्य, मुदण्डुप्य यादि भारतीय नाम रखते थे। भीगी याती ई० में कूचा में ही बीढ़ भण्डियों को संस्कार हुआ हुगार के लगभग थी।

चीन—चीन जनसंस्कार की दृष्टि से दुनिया का गहना और लेखफल की दृष्टि से दूसरा देश है। भारत ने उत्तरी अधिक जनसंस्कार और इसे विस्तृत मुन्द्राद की अपनी संस्कृति के रूप में रखा, यह वास्तव में उसके लिए वहे अभिमान की बात है। चीन में बीढ़ घमे का सदेश ले जाने का श्रेय कल्पना मार्त्तिग और लर्मरलन नामक बीढ़ भिन्नों को दिया जाता है। सज्जाद मिगारी (५३-५६ ई०) ने इनके लिए याज्ञवल्ली व गो-मान्ती नामक विश्वार बनवाया। इन घमेदूरों ने यहाँ रहते हुए बीढ़ घन्यों के

चीनी यनुवादों में इस महादेव को सांस्कृतिक विग्रह प्राप्त होता। २१५ ई० तक बौद्ध चित्रालयों द्वारा ३५० पोलिमरों का अनुवाद हो चुका था। १२०० वर्षों से भारतीय विद्वान् धारार बहादुर भेजते हुए चीनीजाकर वस्तुत ग्रन्थों का चीनी भाषामत्तर करते रहे। जापानी विद्वान् नानजियो के विग्रहशील विपिटक भी प्रनिवासी में चीनी में अनुवित १६६२ सरहात ग्रन्थों का बरसात है। इस गूजी के छपने के बाद चीनियों द्वारा नये चम्प मिले हैं। 'मुगाकती शुह', 'वायन्नोदिका' आदि ये ऐसे शब्द हैं जो भारत में लुप्त हो चुके हैं, इनका उदार-चीनी यनुवादों से ही रहा है। अस्त्रोप, नागार्जुन धाराव प्रसिद्ध बौद्ध वार्षिकियों की चीतनियों का ज्ञान भी हमें चीनी साहित्य से हुआ है।

२६५ ई० तक चीन में बौद्ध-धर्म का शान्ति-वानः प्रचार हुआ, शोधरी से छठी शताब्दी ६० तक यह वहीं बड़ी तेजी से फैला। छठी शताब्दी ६० के प्रारम्भ में चौल के प्रसाक कहे जाने वाले चू-ती (५०२-५४६ ई०) ने बौद्ध-धर्म को प्रबल राजनीतिक दिया। कुछ बातों में वह भौगोलिक अभाव से भी आगे बढ़ गया। उसने धरणे शब्द में न केवल प्राचिन-वज्र बन्द कराया; किन्तु गापड़ों पर बानवरों के चित्रों की बुनाई तथा कटाई भी राजाओं द्वारा नियिद्ध ठहराई, क्योंकि कपड़ों की कटाई होने पर उनकी हत्या की सज्मावना थी। ऐसे कट्टर बौद्ध समाजों के प्रबल संरक्षण का यह फल हुआ कि छठी शताब्दी में चीन में बौद्ध मन्दिरों की संख्या ३० हजार हो गई और २० साल अवधि बौद्ध पुरोहित बने। एक चीनी इतिहासिकार के राख्यों में इस समय तक प्रत्येक घर बौद्ध बन चुका था। इसने अधिक अधिक भिजू बनाते हो कि समाजों के समाज में जीतों का काम उपेक्षित हो रहा था। तांगवंश का समय (६१८-६०३ ई०) चीन में बौद्ध-धर्म का स्वरूप-नुस्खा था। तांगवंशी समाजों की इस धर्म के प्रति भक्ति-पराकारा तक पहुंची हुई थी। इसी वज्र के समय में युआन-चांग भारत आया और यहाँ से ६५७ पुस्तकों से गया, उससे गहरे पाहियान आदि तथा बाद में इत्सिग प्रभुति संकरों अडान्तु चीनी भारत की शोर्ख-वाचा करने भावे। ६६४-६०६ के चीन में इनकी संख्या ३०० थी।

तेस्ती शती में मंगोल समाजों ने बौद्ध-धर्म स्वीकार किया। मंगोलों द्वारा इसका प्रसार मंगोलिया, भैनुरिया और माओवेंसिया में हुआ।

कोरिया तथा जापान—बौद्ध-धर्म चीन से कोरिया पहुंचा, पौली शती तक जापा कोरिया दुर्ज का उपासक बन पूछा था। छठी शताब्दी में कोरिया के एक राजा ने जापानी समाज के साथ मिश्ता स्थापित करने के लिए उसे कुछ उपहार भेजे (५२२ ई०); इनमें बौद्ध-धर्म के प्रन्थ तथा मूर्तियाँ भी थीं। इसके साथ ही एक घर में बौद्ध-धर्म संवीकार करने का धनुरोध था। शुल में जापान में इसका कुछ विरोध हुआ; किन्तु शोध द्वी इने राजनीतिक मिलने लगा। समाज शोम्य (७२४-७५६ ई०) ने प्रसार धर्म-राजि का व्यय करके दुर्ज की एक बहुत बड़ी कास्ति

प्रतिमा बनाई। यह दुनिया की विश्वसत्तम प्रतिमा है, इसकी कॉलाई ५३२ फीट है। सभूत भवान के बौद्ध-घरमें को राजाओं का समर्पण मिलता रहा। १८६७ ई० तक नामान की अविकाल उप्रक्रिया का बेष्ट बौद्ध-घरमें और भारतीय संस्कृति को ही था।

तिलकत— सातवीं शती में खोगचन गम्पो ने छोटी-छोटी रियासतें जीतकर शक्तिशाली तिलकत राष्ट्र का निर्माण किया। तिलकत में बौद्ध-घरमें के प्रबन्ध कराने का बेष्ट इसी राजा को है। इसने बीन तथा नैपाल के राजाओं की फन्याधीं से विवाह किया। दोनों राज्यकुमारियों बौद्ध भी और इस विवाहों का वास्तविक परिणाम तिलकत और बौद्ध-घरमें का पारिषद्वहन था। तिलकत को कर्णामाला की वावड़कराता भी, वह गोन सभोट नामक निलक्षी विहार को वास्तवीर भेजकर यात्रा की थई, इसके बाद भारतीय गृन्थों के अनुवाद में वही ग्रायांवर्तीय संस्कृति का आलोक फैलाने लगा। घट्टवीं शती से तिलकती राजाओं ने भारतीय विहानों को अपने देश में बुलाना सुख किया। बौद्ध-घरमें के कट्टर भक्त स्थिरोहु (७४३-७८६ ई०) ने मात्रन्या के भाजार्य रामतरवित को निर्माण किया (७४३-७८० ई०)। भाजार्य को आगू त्रिम समय ५५५ वर्षों की थी। इस प्रवर्त्या में उन्होंने घर्म-व्रजार के उत्ताह में १६ द्वार फोट लें दरे और दुर्गम पाटियां पार की। उद्यन्तपुरी (विहार घटीक) के प्रमुकरथ पर तिलकत में समये नामक पहला विहार बनाने वाले थे, उन्होंने गवंग्रबम कुछ तिलकतिर्थों को मिश्र बनाया तथा बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद किया। इसी समय वास्तवीर के भाजार्य प्रवर्त्य ने भारतीय उत्ताह द्वारा तिलकत में बौद्ध-घरमें को सोकविषय बनाया। १०२८-१० में भाजार्य दीपकर औरान तिलकत गए, इन्होंने व्रजयान का प्रवार किया। भव्यकाल में तिलकत में राजाओं की विजित धोण हो गई और उनका स्थान विहारों ने ले लिया। १५०० ई० से तिलकत में सामाजिक का उल्काने हुआ।

तिलकत को अन्तम्य और बाहर दशा से निकालकर सम्भवता का पाठ पढ़ाने वाला भारत ही था।

परला हिन्द

परले हिम्द-धर्मया दलिल-गुरुओं एविया में भारत ने न केवल धर्मना संस्कृतिक प्रसार किया, किन्तु उनके विजितशाली राजों और राजाओं तो भी स्थापना की। वही परले इस धर्मों के हिन्दू उपनिषदों और वृत्तियों का उत्तेज किया गया था और वाद में सांस्कृतिक प्रभाव था।

हिम्द-धीर के राष्ट्र— हिम्द-वीर के आयडीप में भारतीयों के दो राज्यशाली राष्ट्र धीरकांग नदी के मुहाने पर उत्तरान कम्बोडिया प्रान्त तथा भगान में स्थापित हुए। कम्बोडिया प्रान्त में पहले तीसरी दो सातवीं शती तक फुमान नामक हिन्दू राष्ट्र प्रवर्त्य रहा और वाद में कम्बुज का उल्काने हुआ। भगान प्रान्त के हिन्दू राज्य का

प्राचीन नाम बन्धा था। इसे समाज द्वारा अभी कुल संघ में वर्षे हुए है। पैदान राज्य देव हजार वर्ष से भी अधिक काल तक रहे।

कृतान—चौथी शताब्दी में जात होता है कि कृतान में पहले जगती वासियों रहती थीं, स्त्री-मुख्य नरों धूमते थे। उन्हें सम्मता का पाठ पढ़ाने वाला हुण-तीन वा कौशिङ्ग नामक भारतीय वाट्टुण था। इसने बहुती की सोमा नामक नामी (नामों के द्वाक्षने वाली आमतें जाति की कल्पा) से विवाह किया और प्रथम राज्य स्थापित किया। १०० वर्षे तक इसके बंधन नहीं पर बैठते रहे। इसके बाद अस्तित्व राज्य का सेतापति फन-ये-मन नाला बना (२०० ई०)। इसने शक्तिशाली नीसेना द्वारा बनेक पहुँची राजा वीर और स्वाम, सप्तोस और भस्त्रावा-प्रायद्वीप के कुछ भागों पर प्रभुता स्थापित करके इस प्रदेश में पहला भारतीय साम्राज्य स्थापित किया। चौथी शताब्दी के अन्त में या चौनवीं शताब्दी के प्रारम्भ में कौशिङ्ग नाम का दूसरा वाट्टुण भारत से आया और प्रदेश ने इसे राजा बना। इसके एक बंधन जयवर्मी (४०८ ई०) में नासेन नामक परिवार को राजदूत बनाकर जीन भेजा। उस समय कृतान में शीश-चम्पे की प्रधानता थी और लोह-पर्ण का भी बोहा-बहुत प्रचार था। उठी शताब्दी के पूर्वार्ध में कम्बुज के प्राचमणी से कृतान का दूसरा नाम था।

कम्बुज—कम्बुज राज्य का भूल स्वाम कम्बोहिया के उत्तरपूर्व में था। यहाँ पूर्वान के शासीन था, उठी शताब्दी के प्रारम्भ में इसे जयवर्मी ने स्वामी किया। स्वतन्त्र होने के बाद वह विभिन्नामी बना, किंतु कम्बुज के ६१४ ईस्वी से ६०२ ईस्वी तक के इतिहास पर भी उक्त अव्यक्त का पर्दा गहा हुआ है। इसके बाद कम्बुज का स्वर्णगुण शुरू हुआ। इम्बुजमी (८७०-८६६ ई०) का यह दागा था कि 'वस्त्रा-प्रायद्वीप वीर चीन के शासक उसको श्रावाणी का पालन करते हैं' प्रथम राजा यजोवर्मी (८८१-८०८ ई०) कर्ति दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। राजावियों के शब्दों में वह 'दितीय मनु', परशुराम के भी अधिक उदाद, अद्वैत, भीम-येसा वीर, मूर्खुत-सा विद्वान्, विष्णु, भाग्य, लिपि वीर मूर्ख-कला में पारम्पर था। यह गयोधरपूर (गह-कोर चीम) का संस्थापक था। इसने भारतीय तपोवनों और गुरुकुलों के ऊंच पर कम्बुज राज्य में वासियों को स्थापना की थी। इनका प्रथमक कुलनाति कृतानाता था। इसका मूर्ख कार्य स्थापन-पर्याप्त तथा जाल की ज्योति को सदैक प्रज्ञवित रखा था। कम्बुज में वे आत्म विद्वान्-संस्कृति के प्रधान गढ़ थे।

भारतीय सती ने कम्बुज का अनुपार्व उत्तरण हुआ। जब भारत में महामृत नजरनवी और बहापूर्वीन गोरी के प्राचमणी से हिन्दू राज्य विवस्त हो रहे थे, उस समय कम्बुज का साम्राज्य बंगाल की जाती से चीन सागर तक विस्तीर्ण हो रहा था। जिस समय उत्तर भारत में मुस्लिम ग्राकान्तामों द्वारा मन्दिरों का विनाश हो रहा था, उस समय कम्बुज में गह-कोर के विद्व-विष्णवात मन्दिर बन रहे थे। सूर्यवर्मी दितीय (११५३-१५) ने गह-कोरवत का तथा जयवर्मी साम्राज्य (११८१-

१२०० ई०) ने भग्नकोर योग का निर्माण कराया। इसके बाद कम्बुज का हास होने लगा, पहले वह स्थान से एवं दूसरी हुए और उभी सर्वी जटी में फाल के अधीन हुआ।

चम्पा—वीतनाम (हिन्दू-चीन) में इसका हिन्दू राज्य चम्पा था। यह मिहनी जटी में १२२ ई० तक बना रहा। १८०० तर्थे तक शार्वप्राज्ञ चम्पा निवासी अपनी स्वतन्त्रता के लिए चीनियों, घनामियों, घणोसी तथा कम्बुजयासियों से ज़ुमले रहे। इनका पहला ऐतिहासिक राजा अधिमार माना जाता है। इसका राज्य-काल दूसरी जटी १२० का अन्तिम भाग है। इसके शार्वप्राज्ञ राजाओं में अपेमहाराज थी भद्रवर्म (३८०-४१३ ई०) और गंगाराज (४१३-४३१ ई०) हैं। पहला राजा शिव का परम भक्त तथा 'वतुवेदजाता' था; उसने भद्रेश्वर स्वामी के नाम से मिसोन में शिव का मन्दिर बनवाया। दूसरे राजा के समय आन्तरिक भगवें काफी बड़ गए और वह राज-प्राष्ठा छोड़कर आपना अन्तिम जीवन गंगा के तट पर बिताने के लिए भारत चला आया। भद्रवर्म का जारी वेदों का ज्ञाता होना तथा गंगाराज की तीर्थ-गाँवा चीधी-पांचवीं शत में चम्पा पर गहरे भारतीय प्रभाव को सूचित करते हैं। यसीं जटी तक चम्पा पर कभी गंगाराज के वेदों सभा पाण्डुरंग (७५०-८६० ई०) और भृगुश (८७०-९७२ ई०) के राजायों ने शासन किया। वे सब हिन्दू-धर्म के बहुर भक्त थे, घणे-घणे भद्रियों की स्थापना करके, उन्हें इब दान देते थे। चम्पा में भारतीय साहित्य का गम्भीर प्रभावन होता था। इन्द्रवर्मों तृतीय (९११-९७२ ई०) को एक अभिलेख में पट् ददौन, बोढ़ ददौन, काशिकायुक्त सहित पालिनीय व्याकरण, शास्त्रान्तर तथा शीरों के उत्तरकल्प का प्रकाश उषिष्ठ बताया गया है। यसीं जटी से चम्पा पर उत्तर से घनामियों के आकमण शुक हुए तथा इसका हास होने लगा। यग्ने आठ-सौ वर्ष तक चम्पसी स्वामीनता के लिए लड़ते रहे। १८२८ ई० में जब घनामी आकमणों का देर तक वर्तिरोप घसम्भव हो गया तो अन्तिम चम्पराजा स्वदेश छोड़कर कम्बुज चला गया और इस प्रकार मातृभूमि भारत से सेकड़ों दोस-दूर, भारत से कुछ भी सहायता न पाते हुए वेह हजार वर्ष तक प्रतिकूल प्रतिवित्तियों और भीषण आकमणों में स्वतन्त्रता की पुण्य-पताका को सदा छेंचा रखने वाले भीरपुरुष हिन्दू राज्य का अन्त हो गया।

मलाया द्वीप समूह (मुख्य द्वीप)—इसी श० ई० पू० से भारतीय व्यापारी इस प्रदेश में आने लगे थे। पहली श० ई० से हमें भारतीय धन्यों तथा निवेशी वासियों के विवरणों में इस बात के निश्चित संकेत मिलते हैं कि कालिगन्धाट के दनतपुर शार्दि वन्दरमाहों से विवेद जाने वाले भारतीय मुख्यद्वीप का भावासन करते रहे थे। जानेवाले: इस्तोने मलाया, जावा, मुगाचा, बोनियो तथा जाति में हिन्दू राज्य स्थापित किये। हजार वर्ष तक इनकी सत्ता बनी रही। इस लहलाक्षी में दो रेसे भस्तर भी शाये जब सारा मुख्य द्वीप एक शासन-मूर्ति में संगठित हुआ—पहली बार शीतेश्वरम के शासीन और दूसरी बार बिलवितिक (मञ्चपहिल) साम्राज्य के रूप में।

गम्भीरी, गोलहर्षी शर्तों में इस्लाम ने यहाँ हिन्दू राजव्यों का अन्त तथा भारतीय संस्कृति की समाप्ति की।

शेखन्द्र—मलाया प्रायद्वीप में पहली शर्ती १० में नियोर में एक हिन्दू राज्य स्थापित हुआ, इसा की पहली वालियों में हमें कलापुर (उत्तरी मलाया वा दक्षिणी बमों), कठाह (केठाह), कम-नोली (कडार मणिरक) आदि मलाया के नई हिन्दू राज्यों का नामी प्रम्मों में लिखन मिलता है। किन्तु इनका अल्लाहाबद इतिहास ज्ञात नहीं है। शाठवी शर्ती से वह प्रदेश शेखन्द्रों के विस्तृत सांस्कृतिक का अग्र चला। वे सम्भवतः भारत के कलिंग प्रान्त से आये थे, पहली इन्होंने दक्षिणी बमों पौर उत्तरी मलाया जीता, किंतु मलाया से सारे भूवर्ष द्वीप में शासनी प्रभुता विस्तीर्ण की। इनका उत्कर्ष ७७५, ई० से शुरू हुआ, बाहुबली शर्ती तक वे इस प्रदेश की प्रधान वासित थे। शर्व मालियों ने उनके सांस्कृतिक विद्यालयों और वैज्ञानिक विभाग के भीत नाएँ हैं। मस्कदी (६५५ ई०) के सब्दों में 'यहाँ का महाराजा असीम सांस्कृतिक वर शासन करता है।.....प्रभिकालम शोऽद्यामी जहाज उसके विद्यालयों की परिकल्पना दी वधे में नी पुरी नहीं कर सकते।' इन शुद्धिप्रवेह (८४०-८८० ई०) के नवभानुसार राजा की देविका जाम २०० मन सोना थी। यारहवी शर्ती १० में शेखन्द्रों का विजय भारत के बीचों के साथ संघर्ष हुआ। इससे इनकी शासनी द्वीप हो गई। बोधवी शर्ती में उत्तर से स्थानियों तथा दक्षिण-पूर्व से जाता थानों ने हमें करके इस सांस्कृतिक का अन्त कर दिया। जिन शेखन्द्रों को विजयनैजिमती-भूवर्ष-द्वीप के भौकड़ों टायुओं पर फ़हराई थी, जिनके बारां में जावा, सुमात्रा, मलाया के राजाओं के मुकुट लौटे थे, उनका शासन मलाया के चोटीने प्रदेश में ही रह गया। इनके प्रनितम अवधेष्य कडार (येरक) के राजा ने १४७५ ई० में इस्लाम स्वीकार कर लिया।

जावा—इति द्वीप की स्थानीय दलनक्षणाएँ इसके उपनिवेशन का अंग पराशर, ब्याल, गान्धी आदि भारतीयों द्वारा देती हैं। बीच इस्लामों के अनुसार यहाँ दूसरी शर्ती १० में भारतीय राज्य स्थापित हो चुका था। १३२ ई० में जावा के राजा देवरमो ने एक द्रुतमण्डल भीन भेजा। उद्दी शर्ती १० में गश्चिमी जावा में वासन करने वाले राजा पूर्णोबमो के बाद संस्कृत प्रभिलेश मिलते हैं। इनसे प्रतीत होता है कि जावा उम्म समय तक भारतीय संस्कृत को पूर्ण रूप से अपना चुका था। जावा में दूर्घटनाओं के प्रतिरिक्षण मना भरने का छोटे हिन्दू राज्य भी थे। शाठवी शर्ती में उनकी वासित द्वीप होने पर, वे सब उसके अधीन हो गए, किन्तु यारहवी शर्ती में उनकी वासित द्वीप होने पर जावा में पहले कहियो (१२०५-१२८८) और किंतु मिहमरी (१२२२-१२८८ ई०) का राज्य बनने हुआ। बोधवी शर्ती में विल्लिमस सांस्कृति ने शेखन्द्रों की भासी समूके सुवर्णांद्रीप वर जावा नियर, किन्तु गम्भीरी शर्ती में इस्लाम के प्रसार से उसका अपकर्ष हुआ। १५८२ ई० में जावा का राजा स्वधर्म की रक्षा के लिए बालि के द्वारा में बता गया।

बाति—बाति द्वीप इस दृष्टि से विदेश क्षय से उत्सेक्षणीय है कि सुवर्णद्वीप के धन्य भागों में तो इस्ताम द्वारा भारतीय मंस्तकिति का धन्य हो जूका है किन्तु बाति में यह आज भी लोकित कर में है। इस द्वापु में भारतीयों के बाते तथा राज्य स्थापित करने का श्रुत्यनामद इतिहास नहीं भिसता। छठी तथा सातवीं शती में वही कौनिकन्य नामक अतिथि राजा राज्य करते थे और औदों के मूल सम्बन्धितवादी सम्प्रदाय की प्रपातनता थी। दसवीं शती में वरपते, केसरी यादि भारतीय नामधारी राजायों ने शामन किया। बातों के माध्य समाज हीने से यह प्रायः बातों के अधीन रहा। जब बातों के राजा वरपते देश की मुस्लिम आकमणों से रक्षा न कर सके तो वे बाति चले आगे और यही हिन्दू-यम से गरमारा आज सक यथापूर्व बनी हुई है।

बोनियो—स्वकुलपुर या वासण द्वीप (बोनियो) के मुख्यरक्ती द्वापु को हिन्दू भावासक जीवी जाती है० तक वसा जूके में। इस द्वीप के कुत्ते नामक स्थान से वरपत्तव भारत यमिलेलो से यह जात हृदय है कि उस समय युर्वी बोनियो में मूलधर्मो नामक भारतीय राजा शामन करता था। वह हिन्दू मंस्तकिति वह परम भक्त था। उसने 'वाहुनुपर्णाक' नामक यज्ञ करके वाहुणों को यीस हजार गोरे तथा अम्य बहुत दान दिया था। १२२५ है० में मध्य तभा युर्वी बोनियो में पुरातत्त्वीय अमुसन्मान से महादेव, नन्दी, कार्तिकेय, गणेश, अगस्त्य, ब्रह्मा तथा इन्द्र की मूर्तियाँ भिसी हैं। बोनियो के निकटवर्ती सेनोडोज द्वापु में बुढ़ी की मूर्खियाँ विभिन्न प्रतिमा पाई जाएँ हैं। ये सब अवशेष इन द्वीपों में भारतीय मंस्तकिति के गहरे और व्यापक प्रभाव को दर्शित करते हैं।

साम्नकृतिक प्रभाव—जब भारतीयों ने विद्यान्-पूर्वी एशिया में प्रवेश करके याने उपनिषदेश और राज्य स्थापित किये, तब समय यह युसुप्त बर्वर बातिनी द्वारा प्रवर्तित था। यहाँ के निवासी बैगली, यसम्य और बोंकार थे। हिन्दू भावासकों ने इन्हें वरपते धर्म, वर्ण माला, भाषा, साहित्य, सामाजिक रीति-रिवाज, भावान-विचार, नैतिक तथा राजनीतिक धारणा, मूलि, बास्तु यादि राजायों की जिवा देकर सम्य बनाया। जीवन का शायद ही कोई पहलू ऐसा देखा हो, जो उनके प्रभाव से बच्चा रह पाया हो।

सुवर्ण द्वीप के भावासन का धर्म हिन्दू राजकुमारों और वाहुणों को है, अतः यहाँ भी धौर वैष्णव धर्मों की प्रथामता रही। बोनियो से भिसी हिन्दू-वेषतायों की प्रतिमायों का ऊरर उत्सेक्षण किया जा जूका है। जाता से शिव, विष्णु, लक्ष्मी, मणि और कई दीमुर्तियाँ भिसी हैं। प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ जापोहं ने बातों के सम्बन्ध में लिखा था कि पुराणों का ज्ञायद ही कोई ऐसा देखता हो, जिसकी प्रतिमा जाता में म पाई जाए हो। इस समय भी बाति के विलों इन्द्र, विष्णु, कृष्ण की मूर्तियाँ बनाते हैं। यहाँ के निवासी भारतीय विद्यि से दुर्घी तथा शिव की पूजा करते हैं। कम-कमाव और

पुराना-पदार्थ विजयनुज हिन्दू है। इसमें बल-याच, माला, कुशा, तिख, पूत, मधु, प्रभाव, पूर, दीप, पट्टी और मन्त्रों का प्रयोग होता है; यातकमें, नामकरण, विचाह, अस्त्वेषित आदि हिन्दू संस्कारों का प्रचार है। वर्ण-व्यवस्था, सर्वर्ण मिलाहू तथा सभी प्रथा की पढ़ति प्रचलित है। वर्तमान समय में वालि में दिव्याई देने वाला यह हिन्दू प्रभाव प्राचीन काल में मधुवे सुखरुद्धीप में विस्तीर्ण सा।

इस प्रभाव की गुणित साहित्य और कला से भी होती है। मुख्यांशीप में सर्वेष वाली वर्णमाला और संस्कृत भाषा का प्रसार था। चष्पा से ५० तथा कम्बुज से १०० के लगभग संस्कृत के लियाँ सेवा मिलते हैं। ये संस्कृत कालों की शैली का मनुस्करण करते हुए, निर्दोष, स्त्रिय, प्रोड तथा प्राज्ञत-भाषा में मिलते हुए हैं। इससे जात होता है कि इनके लियाँ का संस्कृत भाषा, व्याकरण, पुराणों, कालों से प्रयाङ प्रतिष्ठय था। मन्दिरों में प्रतिदिन रामायण, महाभारत और पुराणों के अवलोकन माठ तथा कथाएँ होती थीं। धार्मिक साहित्य के साथ-साथ लौकिक साहित्य का भी असुरीनन होता था। कम्बुज के दाढ़ा यशोवर्मा ने यात्राका महाभारत पढ़ाका लियो थी।

भारतीय भर्मे और साहित्य के साथ सुखरुद्धीप में भारतीय कला का भी प्रसार हुआ। कम्बुज की मूर्ति-कला मुख्यांशील कला से प्रादुर्भूत हुई थी। किन्तु बाने-बाने-धर्माय से मिली इस कला में इनके प्रबोध हो गए कि उन्होंने 'पापाणों में अमर काव्यों' की रचना कर दी थी। कम्बोडिया तथा चाका के मन्दिरों में रामायण, महाभारत और हरिवंश पुराण के दृश्यों को मूर्तिकारों ने अपनी छेनियों से पत्तरों पर बड़ी सफाई और सफलता के साथ बोद्धा है। बाल्य कला का उच्चतम विकास बोड़कों तथा बरबुद्दर के अद्वितीय मन्दिरों में मिलता है। इस प्रकार के देवालय त भारत में पारे जाते हैं और त निसी दूसरे देश में। ये विश्व की अद्वितीय वस्तुयों में मिले जाते हैं तथा इन प्रदेशों में भारतीय संस्कृति के अमर स्मारक हैं।

पश्चिमी जगत्—पश्चिमी जगत् में भारतीय संस्कृति का दण्डन-पूर्वी एशिया-जैसा अधिक प्रभाव नहीं पड़ा। सम्भवतः यातोक द्वारा पश्चिमी एशिया को भेजे गए बोड़-प्रचारकों ने वर्षों में जाकर तुपस्या करने वाले बैराग्य और समाधि पर चल देने वाले प्रस्तुत्यं पत के पालक ऐमनीज और वेरामूट सम्प्रदायों पर प्रभाव डाला। लिकन्दरिया में होने वाली हुमेंवाद, धर्मानवाद और नव फेटोवाद नामक विभागवारायों में भारतीय प्रदेशों से बुझ जाते पहुँच की। दूसरी तरी है। पूर्व में कल्प के द्वारा भारतीयों ने करात नहीं के उपरले हिस्से में इम्बू-मन्दिर स्थापित किये। लौटो जाती है। में शाह-प्रचारकों ने इनका विचरण किया। इसलाम के मूर्तीवाद पर बोड़-भर्मे और वेशाल का प्रभाव है। अल्लामी खलीफायों के प्रोसाहन से खलाफाद में बाहुदेव, गणित, शोत्रिय आदि विविध विज्ञानों के संस्कृत एव्यों का

प्रत्येक प्रनवाद हुआ, वर्षों ने भारत की दशगुणोत्तर अंक-सेलन-वर्गति के साथ इन विज्ञानों की पूरोप पढ़ी जाया। शल्य-नामें की बहुत-सी वार्ताएँ के लिए गिरिचमो अग्रह भारत का छाड़ी है।

उपर्युक्त—बहुतर भारत हमारे प्राचीन इतिहास की सबसे मूलहस्ती छत्रियों में से है। ये हजार वर्ष तक भारतीय विद्या के बड़े भाग की जगती वातियों के बीच से बनाकर उन्हें सम्बन्धित का पाठ पढ़ाते रहे। संयार में हजारों निदोप व्यवितरणों का लुन बहाकर विभिन्न वर्णन करने वाले तथा विद्याल मासान्न बनाने वाले मिकान्दर, सोजर, चमेजवाली, तंदूर और नैषोलिमन-जैसे विजेतायों की कमी नहीं। किन्तु विद्या के इतिहास में भारत की सांस्कृतिक विद्या से अधिक शान्तिपूर्ण, स्थायी, व्यापक और हितकर कोई दूसरी विजय नहीं हुई। “भारत ने उस समय शान्तिक और सांस्कृतिक साम्भाल्य स्थापित किए थे। जब कि सारा संसार बर्बरतापूर्ण हुए थे में दूबा हुआ था। परंपरा धार्म के साम्भाल्य उनसे कही अधिक विस्तृत है परं उच्चता को दुष्ट रे वे इनसे कही बड़-बड़कर रे; बर्दांक वे बर्तमान साम्भाल्यों की भाँति तोपों, वायुपातों और विवेती गेसों द्वारा स्थापित न होकर सल और अड़ा के ग्रामार पर रहे हुए थे।”

मध्यकालीन संस्कृति

अवनति का वारदान—गुण मुग भारतीय इतिहास की सर्वोल्लाष सांस्कृतिक समुद्दिति का इथमें मुग था। किन्तु रामपूत मुग अववा मध्य-काल (५४०-१५२६ ई०) में सर्वतोमुखी अवनति शुरू हो जाती है। हमारे जागीर जीवन के सभी दृश्यों में प्रवर्णितीयता, नवीनता, मौजिकता और दृष्टिकोण की विवालता समाप्त हो जाती है, इनके स्थान पर मन्दता, प्रतिगमिता, विविलता और संकीर्णता की प्रवृत्तियाँ प्रवल्ल होने लगती हैं। प्राकृतिक विषय के अनुसार वो हजार वर्ष तक विस्तर प्रवर्ति करने के बाद, हमारा राम-काल और मुड़ाने का अनुभव करता है। शनै-वानैः जीवन की किंगड़ीयता, उत्ताह, साहस और प्रशंकम शुरू हो जाते हैं, वृद्धावस्था की कटूता, घर्ष-द्रेष्म, कहिं-प्रियता और अनुदारता के गुण प्रवल्ल होते हैं। धार्मिक धोष में तमं का कर्मकाण्ड दृढ़ा धीर परमोक्ताव की प्रवानता अथवा गुण को मुख्य विशेषता थी। गुण मुग तक भारतीय जीवन में 'धर्म' और 'काम' एवं 'धर्म' और 'प्रोत्त' में सम्बन्ध था, अन्य विशेषताओं की प्रवानता नहीं थी, शामान्य हिन्दू का दैनिक जीवन वर्त, उपवास, पूजा-पाठ के विषयों में विट्ठ नहीं बना था। तिथि, वार, मत्तव, यहाँ की बहुत कम महुता थी, जीवन को अल्पिक और मद्दत भासकर उसके उपेक्षा नहीं जीती थी। ५००-६० के बाद के सेवों में प्रायः सामारिक ऐस्वर्य और समृद्धि की विवारता पर बहुत बहु दिया गया है, किन्तु मुख्य-मुख्य तक ऐसी बात नहीं थी। चावनीयिक सेव में पहले मुगों में भारतीय गुलामियों, जाको, मुशाखों तथा हजारों की परम्परा करते रहते थे, किन्तु इस मुग के धर्म में विदेशी आकाशतापों को हराने की बात तो दूर रही, उच्च भासत पर उसकी प्रवृत्ता स्थापित हो जाती है। सामाजिक धोष में भी यही अवनति विद्याई देती है, पहले मुगों में विदेशी जातियों को एकान्तिका भासत्तात् उर्जे वाला हिन्दू-समाज इस समय तक अपनी पात्रता-नावर्ष्य से बेक्षता है, तुके और मधों उच्चका धर्म नहीं बन जाते। धीरुद्वारा धोष में धन्वेषण और भौतिकता की प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है, दार्शनिक धर्मना सारा पांकित्य पुराने धन्वों की दीक्षाओं में तबा बाल की बाल मिकामें में धर्म करते हैं। साहृदयिक धोष में गुरामों प्रयाद-मुग-सम्पर्क का सिद्धान्त भादि महाकवियों को रखना का स्थान भास और धीरुद्वारा धन्वन्तर-प्रवर्तन काल्पनीयों से जैती है। इस वकार सांस्कृतिक

जीवन के सभी पहलुओं में नवीनता और प्रयतिशोभता का स्थान शीखता और हास ले लेते हैं।

किन्तु यह शीखता जहाँ ही प्रारम्भ नहीं हो गई; जबानों से बुझावे का परिवर्तन कई बरसों में होता है, हमारे राष्ट्र को इसमें कई जातियाँ नहीं। पूरे हवार वर्ष बाद हास की प्रवृत्तियाँ प्रधान हुईं। किन्तु इस सहस्राब्दी के दूरवर्ते में संस्कृति के प्रत्येक ओर में उत्कृष्ट कृतियों का निर्माण हुआ। मध्यकाल की कला में गुप्त-भूग भी नवीनता नहीं, किन्तु नालित्य और नव्यता की दृष्टि से वे अद्युपम हैं। लंकर का अद्वैतवाद भी इसी युग की देन है। यहीं मध्यकालीन समाज, साहित्य और वैज्ञानिक उत्तराधि पर ही विदेष प्रकाश दाला जायेगा। संस्कृति के घन्य प्रांगों—धर्म, सासान तथा कला का वर्णन छठे, तेरहवें तथा चौदहवें शताब्दी में हुआ है इसके साथ ही प्रत्येक ओर में सास्कृतिक हास के कारणों की भी विवेचना की जायगी।

१. सामाजिक दशा

वर्ष-अवधार्या—मध्यकाल के सामाजिक जीवन की सबसे बड़ी विदेशी प्राचीन वर्ष-अवधार्या का बत्तेभान बात-चीत का रूप पहुँच करना था। नदी का प्रवाह बन्द ही जाने से जैसे छोटे-छोटे जलहड़ बन जाते हैं, वैसे ही भारतीय समाज में प्रशान्ति बन्द होने से विभिन्न जातियाँ बन गईं। सामाजिक ऊर्जनीज के जितने दरवेजे से उन्होंने आगे कुल गिन लिये, इनमें यादी-जाहाह का दामरा हमेशा के लिए तीमित कर लिया गया। इस प्रकार जातियों के बन जाने से हिन्दू-समाज को पुरानी पाचन शक्ति और सात्त्विकरण (Assimilation) की प्रवृत्ति लगभग समाप्त हो गई। जैसे पहले उसमें विदेशी जातियाँ प्राकर भिजती रही थीं, ऐसे वैसा सम्भव न रहा। मध्य-युग में वो ऐसे बड़े उदाहरण हैं जिनमें हिन्दुओं ने विदेशियों को अपने में मिलाया। ११७८ ई० में शाहाबुद्दीन गौरी को हराने के बाद गुजरातियों ने उसको कोळ का बड़ा घंग कैद कर लिया। कैदियों को हिन्दू बनाकर अपनी जातियों में मिला लिया। तेरहवीं सदी में मंगोल-बंधीय घोर पासाम में आये, वे धीरे-धीरे हिन्दू-समाज में पृष्ठ-भिजते गए। वह सब पुराने पाचन-सामर्थ्य से हुआ, किन्तु साधारण रूप से हिन्दू-समाज जाति के बन्धन कड़े कारके उसमें नवे तत्त्वों का प्रवेश रोक रखा था। ये सम्भव प्रधान कप से खान-गान, ऐसे और विवाह के थे। पहले वो बन्धनों में भी तक काफी लघकोलापन था और तीसरा बन्धन तेरहवीं सदी से सुदृढ़ होने लगा। शाकबन्धन प्रधानी जाति और विशदरी में जान-भान होता है किन्तु 'प्राप्त-प्रस्तुति' के अनुगार माई, दास, न्याये वंश-परम्परागत भिज के दृढ़ होने पर भी इनके साथ जाने में कोई दोष न था। ऐसे की प्राजादी भी इस समय तक काफी बड़ी हुई थी, स्मृतियों में आदृष्टों को कृपि करने तथा विशिष्ट अवसरों पर प्राप्त तथा देश को सत्त्व पहच करने का भी अधिकार दिया गया है। शान्ति के बाल तत्त्वावार ही नहीं बल्कि वे, किन्तु जेतनी द्वारा गद्दस्वपूर्ण नवीन रचनाएँ भी प्रस्तुत करते थे। तीहान राजा विश्वरूप

का 'हृषीकेश नाटक' लिखाये पर बूद्धा हुआ प्राज्ञ भी उपलब्ध है, राजा भोज की विद्वत्ता जगत्प्रसिद्ध है, पूर्णीय चानूकम् राजा विनयादित्य गणित का बड़ा प्रकाश्य परिषद था, इसीलिए उसे गुणक कहते थे। वैद्यन भी इस समय कृष्णकार्य छोड़कर अन्य काम करते थे। उनके राज-कार्य करने, राज-मन्त्री होने, सेनापति बनने और मुद्रों में लड़ने के अनेक उदाहरण मिलते हैं। वैद्यनों ने इसकारी, कारीगरी प्रादि के प्रायः सभी कार्य छोड़ दिए। हाथ के सब काम मुद्रों के पास रखे गए।

जाति-नेत्र का सबसे जबदेस्त बन्धन अपनी ही जाति में विवाह का नियम है, यह इस युग में शर्मी-शर्मीः कठोर हुआ। प्रारम्भ में सबसे विवाह ओण ममका जाने पर भी अन्य लोगों से विवाह का नियम प्रचलित था। यहां सह-वताया जा चुका है कि बाह्यण के लिए भृत्य-वैद्य-कन्याओं के विहित होते हुए भी शूद्र-कन्या के पाणिप्रहण नियिद्ध समझा जाता था, किन्तु किर भी समाज में इसका प्रचलन था। शातवी शती में महाकवि वाणि ने शूद्र स्त्री से उत्पन्न हुए बाह्यण के पुत्र अपने पारशव भाई का उल्लेख किया है। इस समय के व्यभिलोकों में अनेक व्रतिलोक (उच्च वर्षों के पुरुष का हीन वर्षों की स्त्री के साथ सम्बन्ध) विवाहों का वर्णन मिलता है। बाह्यण-कवि राजबोधर ने भौहान-कन्या प्रवत्ति सुन्दरी से विवाह नियम था। बारहवीं शती तक ऐसे विवाह बहुत होते थे। तेरहवीं शती से निवासकारों ने असमर्ग विवाह की कलिकवये (कलियुग में नियिद्ध) बहुकर उसकी निया करनी शुरू की। 'स्मृति-वर्णिका' (१२००-१२२५) ने इसमें पहले को। 'हेमादि' (१२६०-३०) ने भी इसका विदोष किया। बाद में राजन्देश व कमलाचर ने भी ऐसे कलिकाल में नियिद्ध ठहराया प्रोट पहुँ अवस्था हिन्दू-समाज में बर्वमान हो गई।

किन्तु यह बात स्वातं देने पोष्य है कि बाद में हिन्दू-विवाह में वर्षों की ही नहीं, किन्तु उपजाति की समाजता भी आवश्यक समझी जाने लगी। शास्त्रों में इसका कही उल्लेख नहीं। इनमें प्रथम वर्ष में वर्षी तथा कुछ संकर जातियों का वर्णन है किन्तु बाह्यण, वातिय, वैद्य की अवान्तर जातियों का कहीं संकेत नहीं। ३०० ईस्वी से १००० ई० तक बाह्यण व्यभिन्न जातियों में महीं बटे थे, उनमें शास्त्रा और सोम का ही नोद था। स्यारहवीं श० से इसमें प्रदेश तथा पेशे के आधार पर वेच किए जाने लगे। डिकेडी, चतुर्हंदी, पाठक, डापालाय आदि विशेषों के तथा मालूर, गोह, सारसवत, शोदीन्य प्रादेशिक भेदों को सूचित करने वाली बाह्यण उपजातियों बनने लगी। उनका अमुकरण शृणियों और वैद्यों ने भी किया। उपजातियों बनाने और उनके अन्दर जाती करने का नियम संकामक रोग की तरह समाज के सब लोगों में फैल गया। उत्तर भारत के भृगियों में ही इस समय १,३५६ उपजातियों ऐसी हैं जो आगम में विवाह नहीं करती। हिन्दू समाज ३,००० उपजातियों में बंद गया। इस प्रथम में जाति-नेत्र के गुण-नीतों की विवेचना उचित जान चहती है।

बर्थ व्यवस्था का उद्देश्य तभा गुप्त—प्राचीन काल की वर्ण-व्यवस्था उद्देश्य प्रामुखिक रूप जात-पर्वत से सर्वेषां भिन्न हो। मह शमाज के विभिन्न बर्णों में सामन्वय प्रीत तथा अवश्यक स्थापित करने का मुद्दा उपाय था। प्राचीन भारतीय समाज में उच्च प्राच्यातिक तत्त्व-चिन्ताओं में सल्लील रहने वाले प्राह्लादों से सेकर नितान्त व्यवस्था, जगती जातियों तक—जगतो प्रकार की विभिन्न संस्कृतियों वाले वर्ण हों थे। भारतीय दर्शन में विचारकों ने जित प्रकार अद्वैतवाद द्वारा बहुत्र में एकत्र हुए हो। उसी प्रकार उन्होंने समाज के नाना वर्णों से एकता का ठहरा देखने के लिए वर्ण-व्यवस्था की कल्पना की। समाज के छोटे-बड़े सभी वर्ण एक ही विशद् पूरुष के विभिन्न भ्रम माने गए, प्राद्युण उसके मुख थे, शत्रिय भूजाएँ, देश जग्याद्-तथा गुद रेर। मह विभाग का विवरक था, जग्मयूतक नहीं था। मह भी समझ देता जात्युपरि कि यह वास्तविकों की एक प्राइवेट जलसना ही थी, वास्तविक स्थिति नहीं। किन्तु इस कल्पना द्वारा उन्होंने प्राचीन भारत के पृथक् प्राच्याद-विचार, विभिन्न गुजार-गढ़ति, घर्मन्त्रमें तथा नस्त वाले विविध वर्णों को एक विचाल समाज का अंग बनाकर उनमें गहरी संस्कृतिक एकता का बोकारोपण किया, उनमें एकानुभूति की भावना उत्पन्न करके उन्हें एक सूक्ष्म में पिरोपा। धारों के सामने विविध जातियों का प्रश्न हत्ते करने के तीन उपाय थे। पहला तो यह कि इन्हें विचार के लिए विलक्षण स्वतन्त्र छोड़ दिया जाता। इससे भारत की संस्कृतिक एकता न बनने पाती। पूरोपीय राष्ट्रों की भाविति पहुं भी जातीय विद्वेष से कल्पित रक्त-रजित भीपण गुड़-पुद्द होते रहते। पूरोप में यस और संस्कृति की समानता होने संपूर्णपण एकता का प्राचार विचारमान है, किंतु भी वह योद्धा राष्ट्रों का समूह-नाम है। भारत की विभिन्न जातियों में एकता माने का दूसरा उपाय भवित का अंगोग, दूसरा और विरोधी तत्त्वों का उच्छेषण था। भारतीय विचारक स्वभावतः सहिष्णु थे, उन्हें यह हिसक उपाय पसन्द नहीं था। अतः उन्होंने ऐसा तीसरा उपाय हुआ, विभिन्न प्रत्येक वर्ण और अवित्ति को पूरी विवितना स्वतन्त्रता देते हुए उसे विशद् समाज का अंग माना गया। सुरु में वर्ण-व्यवस्था का संगठन बहुत ही लच्छोला था सुध-धर्पन का एक शून्यसमाज का संघ मानते थे; अतः उनमें उधर वर्ण-संपर्क नहीं हुए। भला एक ही शरीर के अंग हाथ, और और पेट आपने से कौस लड़ाकते थे? इसमें कोई संवेद्ध नहीं कि “धर्पने सबोल्लक्षण का में वर्ण-व्यवस्था एक विचाल-देवा में निवास करने वाले तथा विभिन्न विचार, विचार और नस्त रखने वाले विविध वर्णों को एक सूक्ष्म में विरोपे का विपलतम प्रयत्न था।”

जात-पर्वत की हानिर्दि—किन्तु जब वर्ण-व्यवस्था में कर्म-सूलक के स्थान पर जग्मयूतक का धारण किया, उसमें पुराना लच्छोला न रहा तो वह अन्तिमत्वादीम के लिए वरदान की व्यवस्था विभिन्न व्यवस्था मिल दुहे। प्राचीन में यह व्यवस्था तो कामनयद थी। भव्यकाल में इसका प्रचारन कार्य हिन्दू-वर्म और समाज की रक्षा था। तुस्त्रम आकरणों में इसने वर्षदेवत द्यात का काम किया। भारत के भवित्वित

मिस, हीरा क, ईरान प्रादि जिन देशों में इत्तमाम गया, उसने सर्वेत युरानी जातियों और संस्कृतियों को भालमसात् करके उन्हें हवारत मुहम्मद का अनुयायी बना दाया, किन्तु भारत में उसे ऐसी सफलता नहीं मिली। इसका प्रबन्ध नारण जाति-भेद की छठी व्यवस्था थी। जाति-भेद का यह उपच्चलतम पहलू है कि उसने हिन्दू जाति को नष्ट होने से बचा लिया।

जाति-भौति के तुल्यरिताम्—किन्तु इसके साथ ही हमें जाति-भौति द्वारा होने वाले तुल्यरितामां और हानियों से भी अपनी दृष्टि धीरभल नहीं करनी चाहिए।

इसका पहला तुल्यरिताम हिन्दू जाति को निवेदन तथा राष्ट्रीय एकता को असंभव बना देना है। इसने हिन्दू-समाज को तीन हवार हिस्तों में बांटकर विलकृत तुरंत बना दिया है, यह जातीय एकता और संगठन के मामे में जबदेस्त बाधा है। संयुक्तप्राप्ति का एक जात्यांग अपने गौव के किसान या चमार की अपेक्षा विहार या बगाल के हिज से धर्मिक एकात्मकता और सहानुभवि रखता है। विरावरियों और जातियों प्रायः अपने शूद्र संघठनों से ऊपर नहीं उठ सकती।

दूसरी हानि देश की धरार प्रतिभा का उपयोग न होना तथा कला-कोशिका का लूप्त है। जन्म-मूलक वर्ग-अवस्था में जितनी जातियों के ऊपर उठने का कोई अधिकार नहीं रहता, वे उठने का प्रबन्ध नहीं करती। न जाने, इससे देश की कितनी प्रतिभा पुल में गिरती रही है। दूसरे देशों में एक किसान का लड़का गारफील्ड अमरीका के राष्ट्रपति गढ़ पर गृहीत सकता है, अपनी दूसिका द्वारा रेफल और भाइकेत एक्जक्यों की जाति उच्चतम सम्मान या सकता है, "मिम्नतम शिल्पी अपनी प्रतिभा और अध्ययनशाय के बल पर लाठ या स्टीवलसन बन सकता है, किन्तु भारत में वह लड़ी की सौह शृङ्खलायों से बैंधा हुआ है।" इसलिए गुप्त युग के बाद विलियमों ने कोई मग्ना धारिष्यकार या कल्पना नहीं की, केवल पुरानी लीक ही पीटते रहे। हाम के कामों को जब से नीचों जातियों का पेशा माना जाने लगा, हस्त-कोशिक की धरनति होने लगी।

तीसरा तुल्यरिताम बहुतर भारत में सांस्कृतिक प्रसार के गौरकम्पण कार्य का अन्त था। जाति-भौति ने विदेश तथा समुद्र-वाणी को याप बता दाया। जिनके पूर्वजों ने विदेश महासागर पार करके विद्यमपूर्वी एशिया की जंगली जातियों के बीच बैठकर और उनसे बैंधाहिक जलवाय करके भारत का सांस्कृतिक प्रसार किया था, वही प्रब-धारणे पर से निकलने में दरमे समे।

चौथा तुल्यरिताम इटिकोग की संकीर्णता और मिथ्याभिमान था। मध्य युग में ग्रेटेक जाति-धरण की सर्वोच्च समझती थी; वस्त्री दृष्टि सदैव अपने हित-साजन की ही होती थी। अब जातियों को वह तिरस्कार और पूणा की दृष्टि से देखती थी। न्यायद्वीपी याती में अववेशनों ने हिन्दुओं की संकीर्ण मनोवृत्ति का एक सुन्दर चित्र बीचे हुए लिखा था—“हिन्दुओं की उत्तीर्णी फटुरता का शिकार विदेशी जातियों होती

है। वे उन्हें मोर्चा और प्राप्तिष्ठ कहते हैं। उनके साथ किसी प्रकार का विनाश या उल्लंघन नहीं, बानेपीने का कोई सम्बन्ध नहीं रखते, वे समझते हैं कि इसमें वे जट हो जायेंगे।"

हिन्दुओं की इस संकीर्ण मनोधृति का योजना परिणाम वह है कि अन्य देशों से उनका सम्बन्ध-विलोद हो गया, वे इससे देशों के वैज्ञानिक तथा रण-कला-सम्बन्धीय विकारों और प्रगति से अधिकृत रहने वाले और सब पुग में वे सुनिम प्राक्तमणों का सफल प्रतिरोध नहीं कर सके। संकीर्णता ने त के बहुत उनके बोहिक विकास में ही बाधा डाली, किन्तु उनमें महत्वाकांक्षा और उत्ताह विस्तृत रामायण कर दिया। पहले वे यानुद्योग में परामूर्ति होने पर भी उन्हें पापने देश के बाहर बोलते रहे थे, लेकिन उनके बार-बार तड़पता करने पर भी उन्होंने उनके देश पर आक्रमण नहीं किया। कुमारगुप्त वसु (पाप) के तीर पर हूँओं से जड़ा था, किन्तु पृथ्वीराज के लिए मुहम्मद गोरी की राजधानी पीर पर आक्रमण करना अचिन्तनीय फलना था। पापने देश के बाहर कदम रखते ही मोर्चों के गत्यक से जाति प्रीर यम जट होने का उद्देश्य।

जाति-भेद का छठा दुष्परिणाम प्रस्तुत्यता थी। उन्न जातियों ने बालभिमान के कारण अस्युद्ध जातियों का घीर उत्तीर्ण किया, उन्हें मानवीय अधिकारों से अंतिम रखा, उनके साथ भीपण तुरंतवहार किया। इससे उन्होंने अपनी जाति को ही नुकसान पूर्जापा।

जातिप्रति का सातवां दुष्परिणाम आपनों को पराया जाना तथा अपनी जाति को लौट करना था। जिससे एक बार कोई भूल ही मर्द, वह हिन्दू समाज से सदा के लिए पहिलकृत कर दिया गया। चिह्नमी प्रधारकों ने इसका पूरा लाभ लिया, उन्हें वर्षों से बोहिक विलित जातियों को मुश्वलमान और दिसाई जानाया। पहले इस देश में १०० प्रतिशत हिन्दू थे, वीसवीं शताब्दी में ६५ प्रतिशत ही रह गए। हम आत्म-सन्तोष के लिए भले ही यह दावा करें कि भारत में हिन्दुओं की बहुमत्या है, किन्तु वह विस्तृत योरी भी भालत गवाक्षित है। "भारत में हिन्दू समाज आपस में बहते हुए, अलग-अलग समुदायों का कोई तीन दूजार जातियों और उपजातियों का—जो सब भोजन और विवाह के विषय में एक दूसरे को अस्पृश्य समझती है—एक प्रतिक्रिया सिद्धीयमान ढूँढ़ती है। वर्तमान स्था में जाति-भेद के रहते हुए, भारत में गच्छी राजीव एकता, गमानका और प्रवासनक की भावना उत्पन्न नहीं ही सकती।"

स्थिरों की स्थिति—गुल पुग की भाँति मध्य काल में भी उच्च तुच्छों की स्थिरों की स्थिति अतोपद्धतिक थी, किन्तु साधारण कुलों में उनकी दशा निरनाट अवस्था ही रही थी। कुलीन परिवारों को स्थिरों नेवायनम से बचाया रखने के बोहिक साहित्य और दर्शन का अच्छा अभ्यास करती थी। हर्ष की वहम राजधानी को बोहिक-सिद्धान्तों की शिखा देने के लिए विवाह प्रिय मासिक पहिल नियुक्त किया गया था। नहीं मिथ की प्रकार जितुओं वली ने वास्तविक शिरोमणि और वाकारचार को मो-

निरन्तर कर दिया था। प्रसिद्ध कवि राजदेवर की पत्नी प्रदत्तिमुन्दरी भी प्रसिद्ध पंडिता थी। उसने प्राहृत कविता में प्रयुक्त होने वाले देवी-शब्दों का कोश बनाया, इसमें प्रत्येक शब्द के प्रयोग के उसने स्वरचित उदाहरण दिये हैं। उस समय सरस्वती के लोगों में नर-नारी की पोष्यता तुल्य मानी जाती थी। राजदेवर के लोगों में—“पुरुषों की तरह लिखाँ भी कवि होती हैं। संस्कार तो आत्मा में होता है, वह स्त्री या पुरुष के भेद की प्रोत्ता नहीं करता। यज्ञामों और मन्त्रियों की पुरियाँ, वेष्टाएँ, कौतुकियों की सिंधाँ, प्राचों में फुड़ के नाम पे हैं—इन्हें या, मारुती, मोरिका, विजिका, दीना, सुमद्दा, पचली, मदालमा और लक्ष्मी। लिखाँ को गणित-वैज्ञानिक विषय लिखाँ की भी लिखा दी जाती थी। भास्कराचार्य (बारहवीं शती का अन्तिम भाग) ने धर्मी पूर्णी लीलावती की मणित का संघर्ष वरान्से के लिए लीलावती का लिखा। लिखाँ को संक्षिप्त कलाओं को लिखा तो लिखें रहने से दो जाती थीं। राजपत्री को सर्वीत, तृतीय लिखाने का प्रबन्ध किया गया था। हर्ष द्वारा लिखित ‘रत्नाकरी’ में रानी का वर्तिका (दृश्य) से रसीत लिख लताने का वर्णन है, उसी लाइक में रातों को तृतीय, गीत, वाक्यादि के विषय में परामर्श देने वाली बातों बताया गया है।

लिखित कामाघों के वर्तिकित, कुछ लिखाँ ने उस समय शासन-प्रबन्ध तथा रण-कला-वैज्ञानिक लिखाँ ने भी अपनी पहुँचा प्रदर्शित की। शिल्प के परिचयी सोलंकी राजा विक्रमादित्य की बहन एकांशुदेवी तोर प्राहृति की भी और राजन्यार्थ में प्रवीणी थी, वह चार प्रदेशों की वासिका थी, एक अधिकार से ब्राह्म होता है कि उसने गोकार्ण (गोकार्ण विं० केलगोद) के लिए पट पेय लाता था। लिखाँ में पर्वन्धना का व्यापक प्रचार नहीं था।

साधारण लिखाँ का विवाह जनी-जनी थम हो रहा था। लखवेळनी ने लिखा है कि एक स्त्री तुमरी बार विवाह नहीं कर सकती। विवाह उस समय या तो तपसिनी का नहा भीयन-ज्योतीत करती थी या सती ही बत्ती थी। मुख तुम में छती होने की केवल एक ही ऐरिहारिक प्रटक्का मिलती है, किन्तु इस तुम में इसके अनेक उत्तराहरण हैं। हर्ष की याका गोकोवती ने लिखा रोहण लिखा था, हर्ष जी बहन राजपत्री भी अग्नि में तृप्ते के लिए तैयार थी, किन्तु भाई ने उसे रोक लिखा। इस काल के अन्तिम भाग में सीधी-प्रवा का प्रसार अधिक लेवी से होने लगा।

साधारण लिखाँ की परापीतता भी एक विषय। इस काल में निरामर बहसी भसी, दामन्त्र भविकारों में विषमता आने लगी और सामी का दबी लिप्ता गया। वाल-विवाह का प्रचलन भी रिखाँ की वेदाध्ययन का अधिकार न होने से लूटों के समान समझा जाना इस दुरुत्स्वा के प्रत्याप कारण थे। इसी समय वह सिद्धान्त लाईमान्य हुआ कि हरी दैव एवं रहनी चाहिए, उसे दुर्धीन और काम-वृत्त गति की भी रोका करनी चाहिए, मोर्यकाल में पति पत्नों को तीन बार से अधिक

हाथ या खड़वली से नहीं पीट सकता जा। किन्तु परव यह बारता प्रबल है—“झोल, खड़व, लूट, गलु, नारी; वे सब ताड़न के धूषिकारी।”

२. साहित्य

इस समय संस्कृत साहित्य के सम्मान सभी धर्मों की उल्लति है। अनेक प्रसिद्ध दार्शनिकों, कवियों तथा लेखकों ने इस काल को सत्तंकृत किया, किन्तु दार्शनिकों में धर्मकीर्ति, बान्तरक्षित और लाकर के बाद पहले की-सी भौतिकता और वाजपी समाप्त हो जाती है। नये विचार के स्थान पर लाल की यात्रा निकालने की प्रवृत्ति प्रबल होती है। कविता में महज सौम्यवं की वजाय ललकारी की कृतिम धौसी प्रधान हो जाती है। कानून के लैंग में नई स्मृतियों का निर्माण बन्द हो जाता है। इन काल में पहले तो स्मृतियों के भाष्य होते हैं और अगले में पुराने सम्बन्धियों के आधार पर निवन्ध प्रथा बनने लगते हैं। इस काल की एक प्रधान विशेषता प्रासादीय भाषाओं के साहित्य का अन्युल्लास और विकास है।

काव्य—मध्यकाल में संस्कृत साहित्य के प्रायः सभी धर्मों—काष्ठ, नाटक, चमू (गद-नदात्मक काष्ठ), भस्तकार शास्त्र, व्याकरण, कीर्त, रसायन भावित का विकास हुआ। इस समय के काष्ठों में भट्ट का ‘रत्नग-वर्ण’ (छठी शती का उत्तरार्द्ध), माप (उगमग ५३५ ई०) का ‘शिशुपालवर्ण’ तथा श्रीहर्ष का ‘वैष्णवीय चरित’ (बारहवीं शती का उत्तरार्द्ध) उल्लेखनीय है। इन सबने प्रायः भारती छारा प्रवृत्ति पद्धति का अनुसरण करके काव्य को रत्नमय बनाने की विदेशा उसे प्रधिक-सै-प्रधिक भस्तकारों से विशुद्धित करने का यत्न किया है। संस्कृत धौसी का चरम विकास श्रीहर्ष के काल में है, उसके एक-एक दलोंक में अनेकों भस्तकार हैं तथा कई दलोंकों में अनेकार्थक शब्दों का इतना स्पष्टिक प्रयोग हुआ है कि एक ही पद के कई धर्म किये जा सकते हैं। इसके कथावलक प्रायः रामायण तथा महाभारत की कथाओं से लिए गए हैं। इसके कथावलक प्रायः रामायण तथा महाभारत की कथाओं से लिए गए हैं। इस समय कुछ कवियों ने याने घासंवदातारों के चरित्र को बोक, काव्यमयी भाषाओं में विस्तार उन्हें भगव करने का प्रयत्न किया तथा संस्कृत में ऐतिहासिक काष्ठों की प्रवर्णना बोली। इसमें पश्चिम परिमत्त (पश्च रघुनाथाल १००५ ई०) का ‘नवशाहूसाक चरित’ (राजा भोज के पिता गिन्धुराज का चरित्र) और विल्लु का ‘विकमोक्षदेव चरित’ (चालुक्यवंशी विकमादित्य गाठ १०७७-११२७ ई० का रसायन), जयमाल का ‘पृथ्वीराज-विजय’ और हेमसन्ध का ‘कुमारपाल-चरित’ प्रसिद्ध है। किन्तु सबने प्रसिद्ध ऐतिहासिक काव्य कल्पना रचित ‘राज-तरसिणी’ है। इसकी रचना कालीनी राजा जयसिंह (११२७-११४६ ई०) के समय में हुई, इसमें बारहवीं शती तक के कालीनी इतिहास का बड़ा सरम बरंग है।

नाटक—मध्यकाल के प्रसिद्ध संस्कृत नाटक है—हर्ष की ‘रत्नावली’, ‘प्रियदर्शिका’ और ‘नागानन्द’, भट्टनारायण का ‘वैष्णोविहार’, भवभूति (धाटवों जही का पूर्वार्ध) के ‘जटर यमवर्णित’, ‘महावीर-चरित’ और ‘मालकी-मायव’, मुद्रारि का ‘प्रसर्व शास्त्र’,

राजेश्वर (नवीं श० का उत्तरार्ध), के 'बाल रामायण', 'बाल भारत', 'कूरुर मन्त्रवरी'। इनमें भवभूति की कहि 'उत्तररामवरित' सर्वथेष्ठ मानी जाती है।

संस्कृत के मुक्तक और तेष काल्पों की विविध प्रसिद्ध रचनाएँ इसी गुण की हैं। सात बार संस्कार और महात्म्य के बीच में दोलने वाले भट्टहरि के शृङ्खार और वैराग्य शत्रों में दोनों भावों का मुन्द्र चित्रण है और नीतिशालक में नीति-विषयक तत्त्वों का उदात्त वर्णन है। शृङ्खार रत का सर्वथेष्ठ मुक्ताक 'प्रमहक-शत्रा' है। इसका एक-एक परम संस्कृत भास्त्रित्य का अभिव्यक्ति ही यह है। यारहवीं शती में महाकवि ललितेष ने कोमल कामुक पदावली में 'गीत-गोविन्द' की रचना की।

वृथा— संस्कृत में वृथा की अपेक्षा गृष्म बहुत कम लिखा गया। सबसे बड़े गृष्म-लेखक 'वासवदत्ता' के प्रणेता मुदन्यु, 'आदम्बरी' और 'हृष्ण-वरित' के रचयिता बाल (सातवीं शती) और 'दशकुमार-चरित' के लेखक दण्डी (सातवीं शती का उत्तरार्ध) हैं। वर्णी पद-नालित्य की तरफ बाणभट्ट वर्णन-कोलाल को दृष्टि से अनुप्रम है। गृष्म-पदभित्रित रचना जम्पू कहनाती है। जम्पूओं में विविक्षम भट्ट (इसकी शती का आरम्भ) का 'नलचम्पू' सर्वथेष्ठ है।

मध्ययुग में भृत्याकार-यात्रा काव्य के विभिन्न पांचों-रस, अचनि, गुण, दोष और अल्पकारों का चूठम लिखन किया गया। इनके पहले भालार्य भास्मह छठी शती के मध्य में हुए, इन्होंने इनके मौलिक सिद्धान्तों का 'काव्यालकार' में सुधारण्ठ प्रतिवादन किया। उनके बाद इण्डी, बासन (पाठ्वीं शती का अन्तिम भाग); आवन्दवर्षेन (नवीं शती), अभिनव गूरुत, मम्मट भादि लिङ्गार्ती में इस शास्त्र को प्रोक्ता तक पहुँचाया।

इस गुण में कल्पा-वासित्व भी कापी लिखा गया। 'पहसी या-दृष्टी श० ई०' में मुण्डाहम ने 'पृहक्षया' लिखी थी। यह चूप्त हो गूंही है, इसके प्राचार पर प्यारहवीं शती में देवेन्द्र ने 'पृहलक्षय-भवरी' तथा नोन्देव ने 'कल्पा वरित्यापर' लिखा। पिछला ग्रन्थ बहुत जड़ा है और भालार्य में महाभारत का चूप्तधैर्य है। इस अकार के अन्य ग्रन्थ लेखक भवविद्यति' 'लिङ्गासन दावितिक' और 'शूक लप्तिति' हैं।

पर्मदासन के द्वेष में इस काल में नई सूतियों का निर्माण बन्द ही गया, तुरावी सूतियों पर दीकारे और भास्म लिखे गए। 'मधुसुति' की गहरी ओह प्रसिद्ध दीकारे भेदातिति (नवीं श०) और गोविन्दराज (प्यारहवीं श०) में लिखी। विज्ञेनदार थी 'गालालय सूति' भी अग्रिम व्याक्या 'मिलाकरा' भी यारहवीं शती की रचना है। वर्तमान लिङ्ग कामुक का प्रधान व्याक्या है। बास्तवी शती से पुराने वर्मेशास्त्री के भालार्य पर निवास-वन्य लिखे जाने लगे। इस अकार का पहला अन्य ग्रन्थ के राजा गोविन्दचन्द्र (१३४४-४५) के नवीं नवधीर का लगाया हुआ 'कृत्यक्षमता' था।

इस काल के व्रातेनिक साहित्य का परिचय पहुँचे दिया जा चुका है। व्याकरण में जपादित्य और वामन ने ६६२ ई० के लगभग पाणिनीय सूत्रों पर 'काशिका-वृत्ति' के नाम से भाष्य लिखा। भट्टद्विरि ने 'वात्सपदोग', 'महाभाष्य-दीर्घिका' और 'महाभाष्य विपर्यी' नामक ग्रन्थों की रचना की। पाणिनि से जिम्मे धन्य व्याकरणों में इस काल में वर्द्धवर्मा का 'वात्स्य' छहा लोकप्रिय था। उहतर भारत में मध्य एशिया से बाहिन तक इसकी पुरानी पोखियों मिली हैं। जैन आचार्य हुमचन्द्र ने अपनी तथा अपने आश्रय-दाता भर्त्य सिद्धराज की स्मृति-मुराक्षित सूत्रों की दृष्टि से 'मिद्दहेम' नामक प्रसिद्ध व्याकरण का निर्माण किया। संस्कृत कोशों में 'धर्मर कोष' इतना सोकारिय हुआ कि इस गर ५० के लगभग टीकाएं लिखी गईं। इनमें १०५० ई० के लगभग होमे जासे शीरस्वामी की टीका यत्यन्त प्रसिद्ध है। पुरुषोत्तमदेव ने 'धर्मर कोष' के परिचयट दृष्टि में 'विकाश शेष' की रचना की, हारातली में तबे कठिन शब्दों का वर्ण दिया गया। भर्त्य कोशों में हुमचन्द्र का 'धर्मियान चिन्तामणि', 'प्रेसकार्य चराह', गावच का 'वैजयनी', हुमायूँ का 'धर्मियान रत्नमाला' उल्लेखनीय हैं। राजनीति यात्रा में इस काल की प्रसिद्ध रचना 'शुक्र नीति' है। कामवास्त्र में वात्सपदोग के 'वाममूर्त्ति' पर टीकाएं लिखी गईं, इस विषय के स्वतंत्र ग्रन्थ कोका प्रतिक का 'कोकावास्त्र' और बोद्ध पद्धति का 'नामर सर्वेन्द्र' है। संगीत की प्रसिद्ध धन्य साहू देवकृत (११वीं श.) 'संगीत साहाकर' है। जान तथा कला की संवर्ततः कोई यात्रा ऐसी नहीं थी, जिस पर संस्कृत में प्रत्यन्त न लिखे गए हों। पहीं तक कि औरी की कला पर भी साहित्य था। दुर्भाग्यकृत, प्राचीन साहित्य का बहुत बड़ा हिस्सा नुक्स हो चुका है।

प्राकृत साहित्य—संस्कृत वाक्-संघ की भाँति इस काल में प्राकृत और अप्सरासाहित्य की भी बहुत उन्नति हुई। प्राकृतों का विकास-नाल पहली से छठी श. ३० ई० तका भारतीयों का उन्नति युग ६००-५००० ई० समझा जाता है। वैदिक भाषा के वन्न-नाधारण में प्रवर्तित रूप के अवान्तर भेदों की दृष्टि से, वहाँ प्राकृतों का जल्द हुआ और वाद में धर्मिक अन्तर बहुत यह भारतीयों का। यही प्रपञ्चम व्यापनिक भारतीय भाषाभाषायों—हिन्दी, मराठी, मुख्याली, बंगला आदि का पूर्व रूप है। प्रथम प्राकृतों मात्राओं, शौरसेनी, महाराष्ट्री और वैशाखी हैं। इनमें साहित्यिक दृष्टि से महाराष्ट्री गंभीरेष्ठ है। इसी में सातवाहन राजा हाज की 'मात्रा सप्तशती' है। जैनी ने इसका बहुत विकास किया। मात्राएँ और शौरसेनी के विधान यद्यप्तमासारों में उनके प्राचीन भाषगम प्रत्यक्ष हैं। सातवीं शती से अप्सरासाहित्यों का प्रवोग ग्रामस्मृति हुआ। पुरानी हिन्दी इसी से लियी है। इसमें दोहा प्रधान रूप है। इन भाषाएँ की सर्वत्र प्रसिद्ध और बुस्त धन्य दसवीं श. ३० ई० में अनापात डारा लिखा 'भवित्वसत्कहूः' है। प्राकृत साहित्य का विकास होने पर इनके अनेक ग्रामाणिक व्याकरण और कोश लिखे गए।

दक्षिणी भाषाएँ—दक्षिण की प्रथम भाषायों—तमिल, मेलुद और कञ्चह में इस पुग से काफी साहित्य बनने लगा था। तानिल का साहित्य जो रिता की पहाड़ी

परों से बनाने लगा था। इसका प्राचीन अध्याय में उल्लेख हो चुका है। सत्त्व-तुग वे इसकी प्रसिद्धतम रचना कहने के लिए 'रामायणम्' थी। उल्लेख में सोलांकी राजा गजराज ने नानिमधट्ट से महाभारत का अनुवाद कराया। इस रुद्र भाषाओं पर संस्कृत का महारा प्रभाव है।

३. वैज्ञानिक उन्नति

इस समय व्योतिष्ठ, बाहुदेव भाद्रि भीमी विद्यार्थी का सांहित्य विकसित हुआ; किन्तु उसमें नवीन शून्यसम्भास और भौतिकता का ह्रास हो चुका। इस काल के प्रथम व्योतिष्ठों ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य थे। ब्रह्मगुप्त ने ६२८ ई० के आसन्नास 'ब्रह्मस्कुट सिद्धान्त' और 'गोविदाद्य' ग्रन्थों में प्राप्त आचार्यों के सिद्धान्तों का समर्पण किया। भास्कराचार्य (जन्म-काल १११४ ई०) ने 'सिद्धान्त शिरोमणि' के पहले दो भागों—'नीलावती' तथा 'नीलवर्णित' में गणित-विषयक तथा 'प्राङ्गणिताभ्याम्' और 'गोलाभ्याम्' में व्योतिष्ठ-सम्बन्धी नियमों का प्रतिपादन किया। इसमें उसमें गुणों के बीच द्वारे तथा उसकी आकर्षण-शक्ति के सिद्धान्तों की बड़ी मुन्द्र व्याख्या भी है। इनी काल में भारतीय व्योतिष्ठियों को बलोफा झार्ट रशीद और धरमाधुन ने बाबाद में जुलाया, उसके ग्रन्थों का भरवी अनुवाद कराया। प्रबों द्वारा भारतीय व्योतिष्ठ का भालू पूरोग पहुंचा। गणित के भीमी लोकों में भास्कराचार्य ने आपने पूर्ण मिशिंग घनमें पूराने आकारों के सिद्धान्त लिए हैं। विकोणमिति का इस समय अन्तरा विकास हुआ था। भारतीयों ने यह और उत्कम यथा की सारचियों बना ली थी। गविंशम में घूटन (१३४०-१७२०) ने पीछे शती तथा विस गुरुत्वाकरण नियम का और गतन शक्ति का व्याविकार किया, भास्कराचार्य गणित यात्री पूर्वे भारत में उत्तरों लोक फर चुके थे। इनकी रायियों की गणना गूलान व्योतिष्ठी याँकीसीदिस से असाधा थुड़ है, प्रह की व्याख्या गति के हिसाब में उन्होंने एक सीकाढ़ के ३३७५ वे भाग की जूटि का भी लालेख किया है।

शारुपेद—सर्व लोग में शारुपेद के कई प्रसिद्ध सम्बन्ध मिले थे। शारुपेद ने २०० ई० के लघुग्रन्थ 'शब्दागृह्यम्' और माधव ने 'माधव निदान' लिये। 'माधव निदान' में रोमों के निदान व्यक्ति उत्पत्ति-कारणों पर विस्तार से विचार है। १०३० ई० में वसान के लक्षणिकान्त ने लालू, मुख्यतः पर दीकार्यों के भूतिरिक्त 'चिकित्सा-दार-निरह' की उत्पत्ता की। १२०० ई० के लघुग्रन्थ 'माहू' परसंहिता' लियी गई, इसमें याकोम, वारा भाद्रि वीषयियों के परांते के अतिरिक्त साड़ी-विज्ञान के भी मियम दिए गए हैं। वसन्तानि-दार के लोकों में शब्द-वर्णीय और 'निषेध' प्रसिद्ध है। हमारे यहाँ लालू और लालूविता काली उपत थी। प्राचीन भारतीय हित्यम लोकों के बनाने, लगाने तथा कुदिम नाले की बनाकर लोहने ली कला भी जास्ते थे, भौतिक्य विद्य की धारणेश्वर में दूर करते थे। पर्यो, घम्भूति (हनिया), भगवर, नारी-वर्ष एवं गर्भ की ठीक कर लेते थे। रियों के दोगों के भूलन-नैनूचन धारेश्वर, वस्त्वन्किया द्वारा गर्भ-विमोचन की विधि भी उन्हें सुपरिचित थी। यामोंका धरमाधुर

ने प्राचीनों शरीर में भारत के लाई वैद्यक प्रभावों का अवश्यीय अनुवाद कराया था। हाँ रामोद में प्रमेक भाल्तीय वैद्य वगदाद बुलाये। प्रवक्ता द्वारा भारतीय आयुर्वेद शूरेण पहुँचा।

इस में सर्वप्रथम चिकित्सालय सम्भवतः भारत ही में थे। पुरोण में इसकी दृष्टि में पहुँच शोषणात्मक की नियमना हुई, किन्तु भारत में इनका सर्वप्रथम उल्लेख तीव्रती दृष्टि पुरोण के अधित्तेजों में है, जिन्होंने दृष्टि में काहियान तथा सात्त्वा दृष्टि में शुद्धान-व्वाणि में पाटातिपूज, तत्त्वशिला और मधुरा आदि की पृथ्वी-आलाघों का उल्लेख किया है, जहाँ नियंत्रों तथा विषवाघों को भोजन और पत्र के अतिरिक्त मुख्य वौयवि भी दी जाती थी।

पशु-चिकित्सा भी काम ढलत नहीं थी। हाथियों और गोहों की समस्य को दृष्टि से बड़ी महत्ता थी। अतः इन पर सर्वस्कृत साहित्य में बहुत गत्य थे। इनमें नियम उल्लेखनीय है—प्राचीनाय की 'गज-चिकित्सा', 'गजायुर्वेद', 'गज वर्णण', 'गज परीक्षा', 'गज लक्षण'; चयदत्त-नृहत 'चयदत्त-चिकित्सा'; नकुल का 'गालिलोत्तरशास्त्र'; अद्यतन्त्रगण-ट्रिचित् 'अद्यतन्त्रायुर्वेद', 'अद्यतन्त्रशास्त्र', 'हम लीलावती'। इनमें विषिकांश सुन्तु दी चुके हैं, दूसरे पन्थों में उद्धृत वाक्यों में ही इनका ज्ञान होता है। पशु-चिकित्सा तथा कुमि-वास्तव का प्राचीन रूपों में सूठम-वर्णन है। जैन पञ्चित हृसदेव के 'मूर्म-पशुशास्त्र' में जिहु आदि पशुओं तथा मारस, उल्सु, तोता आदि पशियों का विस्तृत विवरण है।

इन समस्य विभिन्न उपयोगी ग्रिह्यों—वास्तु, मूति, गुणि, रस-परीक्षा, आयु-विज्ञान एवं बहुत पुस्तकों लिखी गई। भूमि-मापन के सम्बन्ध में 'सेत्रगणित शास्त्र' उपलब्ध होता है, और नौ-नियमण पर 'नौ-कास्त्र' आदि गत्य मिलते हैं। इस प्रकार के साहित्य में 'मध्यिका', राजा भोज-कृष्ण 'समसीमण सूत्रशास्त्र' और 'मुक्तिकल्पशास्त्र' विद्येय कथा से उल्लेखनीय है।

वैज्ञानिक ध्यानस्ति के कारण—किन्तु हमारे पूर्ववर्ती की यह उम्मति देह तक जारी नहीं रही, वज्ञकाल में हमारा सांस्कृतिक ध्यानस्ति ही था। इसके द्वारा ध्यान कारण से। पहला कारण वैज्ञानिक प्रभाव की अत्यधिक वृद्धि था। पहले सह कहा जा सकता है कि गुप्त युग तक भारतीय वीजन में एक स्तोर वैद्यमें तथा गोप्य तथा दूसरी और काम और धर्म में संतुलन और सामर्ज्य था। सम्भाल से धर्म का दर्शक सारी होने लगा। इसका पहला परिणाम से यह हुआ कि हमने सामाजिक विषयों की व्यवस्था वैज्ञानिक विषयों को वैज्ञानिक महात्म देना चुन किया, लौकिक एवं वैज्ञानिक विषयों का ध्यानस्ति उपेक्षित होने से उसकी प्रतिक्रिया ध्यानस्ति होने लगी। धर्म की अत्यधिक प्रभृता का दूसरा परिणाम यह हुआ कि धर्म-रूपों को धर्म प्रवाल माना जाने लगा। इससे स्वतन्त्र विद्यमें तथा विज्ञेयमें को प्रयुक्ति सम्भाल हो गई। वैज्ञानिक विषयों में भी दूरांग ध्यान माने जाने लगे। जनता उनमें ज्ञान-विद्याओं और लदा रखती थी। भारतीय वैज्ञानिकों ने लोकप्रियता आप्त करने के लिए इस सिद्धान्ती

को गलत होते हुए, भी स्वीकार किया गया। इससे स्वाधीन तक घोर अनुसन्धान समाप्त हो गए। एक उदाहरण से यह बात भली भाँति स्पष्ट हो जायेगी। पुराणों के चर्णनामुदार मूर्य-प्रहृष्ट और लक्ष्मणहृष का कारण राहु और केतु है। किन्तु योगियों यह भलते हैं कि पृथ्वी की छापा पड़ने से ये घटण होते हैं। पुराने भारतीय योगियों को यह अच्छी तरह जात था कि इसका वास्तविक कारण छाया है, राहु छाया था जाना तहीं। किन्तु वे आगे को इस लोक-प्रचलित पुराणानुभोक्ति पायिक धारणा का गवाहन करने में दर्शनर्थी पाते थे। यदि इतना ही होता तो भी गमीभत थी, किन्तु दूसरे योगियों ने लोकधियता प्राप्त करने के लिए शुल्कमन्युलक्ष्य यह कहना शुरू किया कि वास्तवों में कहीं बात भठ्ठी नहीं हो सकती। यह वैज्ञानिकों की पृथ्वी की छाया बाती बात गलत है। बहुगुण ने बहुमिदान्त में इन व्यक्तियों की भलतीना की है जो घटण का कारण राहु को नहीं मातते। उसको मूल युक्ति यह है कि वैद और स्मृति की बात ऐसे मिथ्या हो सकती है। पूरोप में यह तक बाइबिल की वैज्ञानिक विद्यों में धाराणिक जाना जाता रहा, विज्ञान की उन्नति नहीं हो सकी। भारत में जिस समय से वास्तव-प्रामाण्य का ग्राहण्य दृष्टा, स्वतन्त्र वैज्ञानिक अनुसंधान बढ़ हो गया। इसने उन केवल विज्ञान किन्तु अन्य जमीं देखों में जाता अभाव डाला। पुराने रन्ध और आचार्य पूर्ण जमके गए, सारी प्रतिभा और विद्वता उनकी रचनाओं के भाष्य और वृत्तिय बनाने में व्यय की जाने लगी। २०० ई० के लगभग जादीसौ वर्षों वार्षिक ज्ञान भट्ट ने इस युग की भावना का परिचय देते हुए लीक ही लिखा था—“हममें नई वस्तु की कल्पना करने की शक्ति बढ़ी है।” सांस्कृतिक ह्यास का दूसरा बड़ा कारण संकोश मनोपुरिति का प्रबल होना था। पुराने जमाने में भारतीय दूसरे देशों से उपर्योगी कलाएँ और विज्ञान-वहां करने में कोई सकोच नहीं करते थे। भारतीय कला और योगियों गूणनीय प्रभाव से समृद्ध हुई थी। पिछले अध्याय में इस विषय में बराहमिहिर का एक बाक्य उड़ायत किया जा चुका है कि वर्तमि गूणनीय संतुष्ट है किन्तु योगियों हीने के कारण बादरणीय है। अल्लोकनी के लगभग भारतीयों में कहीं भी मनोपुरिति तथा मिथ्याभिमान बहुत बड़ नुक्के थे। वे समझते थे कि उन-वैज्ञानिकों कोई देश नहीं, उन-वैज्ञानिकों कोई जाति नहीं, उनके व्यक्तिगत किसी जाति को विज्ञान का बुल भी जान नहीं है। ‘उनका अभिमान इतना प्रधिक है कि यदि विषय उनसे चुराजान या फारस के किसी विज्ञान या विज्ञान का उल्लेख करें तो वे उनको अज्ञानी और जुड़ देना समझें।’ यह वैज्ञानिकों द्वारा प्रधान कारण भारतीयों का दूसरी जातियों से न भिजना-जूनना और विदेश-प्राया न करना समझता है। यानी का प्रवाह करने पर उसमें गहोंद पैदा हो जाती है, भारतीय विज्ञान में भी यह प्रगतिशीलता न रही, विज्ञान जाना शुरू हुआ लव २,००० वर्ष की कियाजीलता के बाद व्यापाराचिक भक्तान, वास्तव-प्रामाण्य और संकोशांता से उसमें ह्यास जाने वाले और सांस्कृतिक व्यवस्था प्रारम्भ हुआ।

इसी समय भारत में इस्ताम का प्रवेश हुआ, उसके समक्ष और सचावे से भारतीय संस्कृति ने जो परिवर्तन हुए, उनका मनने प्रक्रिया में बरुन होगा।

इस्लाम और हिन्दू धर्म का सम्पर्क तथा उसके प्रभाव

इस्लाम का उदय—सातवीं शती ६० में यरब प्रायदीप में एक नये धर्म और नई धर्मिता का प्रस्तुत्यान हुआ। उस समय तक यरब को महमूमि नामा देखी-देवताओं के उपासक, तामाजिक तुर्रातियों में दूषे हुए, भावा-परसार लड़ने-भगवने वाले जगती धर्मों और ध्यायापारियों का देश था। हजरत मुहम्मद (५७०-६३२ ई०) ने उसमें एक निराकार ईश्वर (भल्लाह) की दृग का प्रचार किया, बातिकान्दण, चूल तथा मादिरा-सेवन पादि दुराइयों तथा हानिकारक कहियों का वर्णन किया। उनके उपदेशों ने धर्मों में नवजीवन का संचार किया। शीघ्र ही समूचा यरब जगत् उनके नेतृत्व में अप्रतिष्ठित हो गया। ७५० ई० तक यूनूस में मध्य एशिया की पायीर पर्वत-भाला और सिंध से पश्चिम में फिरनीज पर्वत-भाला (फाट) और दोन तक के विशाल भू-खण्ड में इस्लाम की विजय-व्यजयनती फैलाने लगी।

भारत में इस्लाम के प्रचार के दंग

(१) यरब ध्यायारी—इस्लाम की विश्व-ध्यायी लहर धीर ही सीमान्तों से भारत में प्रवेश करने लगी। इन देश में इसका प्रचार दो रूप से हुआ, बाहितपूर्वक और शक्तिपूर्वक। प्रथम तरीके से प्रचार करने वाले यरब ध्यायारी, मुस्लिम कलीर और दरवेश थे। दूसरे के माध्यम थे—यरब, तुक़ा और मुगल धाकान्ता। प्रायः यह समझा जाता है कि इस्लाम तत्त्वावाद के जीर से आता, किन्तु यह बात सर्वांग में नाप नहीं है। भारत में सर्वेवथम इसका प्रसार बाहितपूर्वक ही हुआ। यरबों और भारतीयों का सम्बन्ध हजरत मुहम्मद के जन्म से पहले कई सदियों से चला आता था। वे नाविकों तथा ध्यायापारियों के लग में भारत के पूर्वी तथा पश्चिमी नदों के बन्दरगाहों पर आते थे। विशेषतः पश्चिमी टट पर जौल, काल्याम और गुपारा तथा मतावार में इनकी धनेक बस्तियाँ थीं। इस्लाम के प्रचार के बावजूद मुगल भगत द्वाकर भारत आने लगे। इनमें ने धनेक यरब ध्यायारी भारत में ही बस लाते थे, भारतीय किलों से बाढ़ी कर लेते थे। इन्हों की सन्तान कोकण की नटिया और मतावार की नोपला जातियाँ हैं। उस समय के पश्चिमी टट के हिन्दू धामों की विषेषतः सीराटु के तलायी बंश और कालीकट के जमोलियों को लोकि इन ध्यायापारियों

को भले राजा में पूरा प्रोत्साहन देने वाली थी, ताकि इनसे उनके राज्यों को बड़ी शायद थी। अतभी के राजाओं ने इन्हें अपने राज्य में न केवल महिलाएँ बनाने वाली अनुमति दी अपितु लक्ष्य भी इनके लिए महिलाएँ बनवाई। मन्त्रिमंत्री के राजाओं ने इन्हें अपने राज्य से बड़ी रियालते और ठंडे पद दिए। एक राजा ने तो यहाँ तक आशा दी थी कि हर हिन्दू मन्त्राहार के पर जाम-जैकम एक लड़के को बधायन से ही मुसलमानों की तरह शिक्षा दी जाए। इन कारणों से रीविंग में इस्लाम का प्रचार बेची से होने जाए।

(२) मुस्लिम फ़कीर—जानियूर्बेक खर्म-बचार में सबसे अधिक महस्त और बफ़लता मुस्लिम लोटोरों तथा दरवेशों को मिली। ग्यारहवीं शती से इनका कार्य शुरू हुआ। इन फ़कीरों की पोट पर कोई यज्ञनितिक अविकास न थी। इन्होंने अपने उपदेशों तथा चमत्कारों से ही हिन्दू जनता को मुस्लिम बनाया। ग्यारहवीं शती में जेता इस्माइल और अस्तुना यस्ती भारत आए। बारहवीं शती के प्रारम्भ में नुर सतामर ईरामी ने गुरुवरत की नीच जातियों को मुसलमान बनाया। तेरहवीं शती के प्रसिद्ध फ़कीर अलाउद्दीन खलाफी, सैयद अहमद खलीर, कवाज़ मुर्ईनुद्दीन चित्ती जैसे। इनकी शिष्य-प्रशिक्षियाँ में परीक्षुद्दीन, निजामुद्दीन घोलिया (तेरहवीं-बीदहवीं शती), कवाज़ कुतुबुद्दीन, गोर अलाउद्दीन घली, अहमद गाविर पिरनकलियर वाले प्रसिद्ध हैं। इन्हें हिन्दूओं और मौकीणों जाति-प्रथा के कारण बहिनृत और वदवित अवित्यों और नीच जातियों को मुसलमान बनाने में कामों बफ़लता मिली।

(३) बल्लूर्बेक अध्यात्म—उल्लूर्बेक इस्लाम-बचार का कार्य मुस्लिम धाराकान्ताओं ने किया। पहला इस्लाम ११६५ ई० में मुहम्मद बिन लालिम ने लिया पर किया। इसके बीच सौ वर्ष बाद ग्यारहवीं शती में महम्मद गजनवी ने १७ बार बुमले किए। इसके बीच सौ वर्ष बाद यहाँबुद्दीन खोरी ने पूर्णीराज को हडाया (११६२-६०)। यहाँबुद्दीन के सेनापति उत्तुकुद्दीन ने जिलों में मुस्लिम यासन की स्थापना नीत डाली (१२०६-००)। १२२६ ई० तक दिल्ली पर तुक्कों और धार्यान मुसलमानों का धारन था। और इनके बाद दो सौ वर्ष तक मूर्छों का। इस काल में फ़ौरोह भारत तुमलक (१२५१-८८ ई०), तिकलदर लोटो (१२८८-१३१७ ई०), कारमीर के सिकन्दर (१३६४-१३१६ ई०) तथा खोरगवेल (१३६८-१३०० ई०) आदि जातियों ने इस्लाम के प्रचार के लिए राज्यवित का मान्यता प्रयोग किया।

एक अभ्यासपूर्व जड़गा—किन्तु मुरीदों काले तक मुस्लिम-यासन द्वारा अवित्यों तथा जानियूर्बेक अध्यात्म से भी इस्लाम को उत्तेजनीय बफ़लता नहीं मिली। हिन्दू-पर्म और इस्लाम के मस्जिद से दोनों के इतिहास में एक बोने तथा अभ्यासपूर्व जड़ना हुई। इस्लाम के बहुत भारत पर यात्रा, शक, दूष आदि अनेक जातियों के अध्ययन हुए थे। हिन्दू-पर्म और हिन्दू-यासन ने इन जातियों को आरम्भात् कर लिया था। किन्तु मुसलमान ही ऐसी पहचान बफ़लता जाति थी जो हिन्दू जाति का अस न

यह सची। दूसरी ओर इस्लाम भारत में प्राप्ति से पूर्व विन देशों में गया वही उसे विवरण सफलता मिली थी। उन देशों की समूची जनता को उसने अपने रंग में रंग लिया। द्वितीय की पारसी, चिक्क की युवानी भास्त्रालों का स्थान अरब सल्हति, अरबों भाषा और इस्लाम ने प्रहृण कर लिया। किन्तु भारत में इस्लाम कई साईदों द्वारा प्रभाव बालने के बाद भी बहुत भोजे भाग को ही बदलत मुहम्मद का अनुयायी बना सका। हिन्दू-धर्म और इस्लाम दोनों के एक दूसरे की अपने रंग में न रंग बदलने के लो प्रशासन कारण थे—(१) इस्लाम का कठुर एकेश्वरवाद (२) हिन्दू धर्म की पावन-पवित्री की दीवाता।

इस्लाम का एकेश्वरवाद—भारत में यहाँ बाले मुस्लिम विजेता एक बात में अपने पूर्ववर्ती सभी धारानामालों से भिन्न है। यह, कुशाम भी हुए आदि जातियों का अपना कोई विशिष्ट धर्म नहीं था। किन्तु मुसलमान न लेवल एक कठुर एकेश्वरवादी धर्म अपने साथ लेकर आये, अपितु उन्हें अपने अपने धर्म को पौत्राने की जगत और लोक भी था। बुलपरस्तों से जहाँ उन्हें जोर लगा था, वहाँ वे बुतविकल होने में गर्व भी अनुभव करते थे। हिन्दू समाज को इसमें कोई आलिंगन से भी यह उनके लिये बारोड़ देखों में प्रस्ताव भी यामिन बार लिया जाय, उन्होंने अल्लोपनिषद् की भी रक्षा कर दी; किन्तु मुसलमानों का अल्लाह नामरीक था और शिरकत (अल्लाह के साथ अन्य देवताओं को सम्मिलित करना) इस्लाम की नज़र में सबसे बड़ा कुक था। अतः इस्लाम के अनुयायी हिन्दू-धर्म में लियी गई होने की विद्यार न थे।

यदि वह लियी तरह सम्भव होता तो भी हिन्दू-धर्म इस्लाम को न पका पाता। उसमें प्राचीन काल में दुर्लभों को नियमित, हवम करने, अपने रक्त, भास, मरक्का में विभिन्न करने तथा अपना धंग बना सेने की जो विवरण शमिल थी वह मुसलमानों के आगमन काल तक बहुत मन्द हो चुकी थी। जाति-नेतृ की कठोरता ये हमारी जागि की यह युद्धानी विदेषता लुटप्राप्त हो रही थी। इसका परिणाम यह हुआ कि विन राजवर्षों के पूर्ववर्त पहले एक पीढ़ी में ही बाहरी जातियों की अपना धर्म बना सेते थे, वे अब भौतिकों के सर्व-मात्र से अवरोने लगे। लिंग-मात्रा में उनका भर्म नाट होने लगा। वह उसके बर्गे हिन्दू धर्म में ही समाज के निम्न वर्गों से भी अल्प रहने लगे तब वे विवर्भी मुसलमानों को विन तरह अपने में लिया सकते थे?

किन्तु भी हिन्दू धर्म और इस्लाम का जो सम्बन्ध हुआ उसका बड़ा महत्व है। इस प्रकार की दो विरोधी संस्कृतियों का सम्बन्ध न केवल भारतीय, किन्तु विश्व-इतिहास का एक विवरण बढ़ना था। सर जॉन गार्डन ने ठोक ही लिया है कि "भारत जाति के इतिहास में ऐसा दृष्ट नहीं होता यहा यहा जब इसी विश्वास, जितनी सुविधिगत और सामग्री भी मौतिक रूप से इतनी विभिन्न सम्भालालों का सम्मिलन और सम्मिश्रण हुआ है। इन संस्कृतियों और वर्गों के विस्तृत विभेद उनके सम्बन्ध के द्वितीय को विवेष लिखा प्रद बनाते हैं।"

समिलन को प्रवृत्ति— यहाँ दोनों घर्में एक दूसरे के नहर विरोधी हैं, जोनों में उप राजनीतिक मंस्पति और भविकार मुख हुए; लेकिन इसके बावजूद हम जीवन के अलौकिक दौर में दोनों को एक दूसरे के पास प्राप्त हुए, मिलने के लिए आगे बढ़ते हुए पाते हैं। मानवारण जीवन के सभी वहनुओं में समिलन, सम्मिलन, सहयोग, मानीष, पारस्परिक घ्रेम, सामूहिक और समझौते की मंगलकारिणी प्रवृत्तियों के दृश्य होते हैं। इस्लाम का सूक्ष्मीवाद वेदान्त से प्रेरणा प्राप्त करता है, हिन्दू घर्में के सूधार-यान्त्रीनम इस्लाम की समाजता और भास्त्र भी भाषणा से प्रभावित होते हैं। सर्व-मानवारण जनता में ऐसे यन्त्रों को पुका शुक होती है जिनमें हिन्दू-मुस्लिम का भेद नहीं रहता। एक और अद्विवेकीय धार्दि रिवाज संस्कृत पाते हैं, तो दूसरी ओर राय भानामत जैसे हिन्दू फारसी में सुमिलम गाहिया की परम्पराओं पर प्रकाश डालते हैं। अमीर शुसरो और सल्तान धार्दि हिन्दी में कविताएँ लिखते हैं और हिन्दू फारसी में। वो समाजाओं के सम्पर्क से वस्तु, चिज, सर्वीत कलाओं में नई शैलियों का आविनीय हुआ, जिनके मूल तत्त्व तो भास्त्रीय से किन्तु बाह्य भाकार दैरानी। मुगल बादशाहों ने हिन्दुओं के तुलादान धार्दि रिवाज यहाँ किये, हिन्दू सरदारों से फारसी भाषा, मुस्लिम रहन-महन, पीछाक और पहनावा भेंगीकार किया। राजनीतिक क्षेत्र में दोनों एक दूसरे के और विरोधी हैं। किन्तु, मुस्लिम जामान हिन्दुओं के सहयोग के बिना नहीं जल सकता था, इसलिए इस यन्त्रे पुग में मुस्लिम आघात हिन्दुओं की ओर गदों पर भी रखते हैं। गोलकुण्डा के सुलानों का शासन हिन्दू मन्त्रियों पर निर्भर था, बंगाल में हुसैनगढ़ (१४६३-१५१६ ई०) ने ज्ञा, सनातन और पुरान्दर धार्दि हिन्दू प्रकार नियुक्त किये। मालवा के राजक धनाड्हीन गाह द्वितीय ने पहले अपना भाजी बसन्तराज वो बनाया और यीसो इस पद पर भैद्रियी राज की नियुक्त किया। बीजापुर के भूमुख भाजिलगाह के राज्य में अनेक हिन्दू उच्च गदों पर थे। इबाहीम भाजिलगाह हिन्दुओं का सरकार देने से 'जगद्गुर' बहसाता था। राजनीतिक तथा सामाजिक धीरों घर्मों के सम्पर्क से जिन धरियाम उत्पन्न हुए। यामिक धर्म इस्लाम ने हिन्दू-घर्में एवं दो जातर जातें।—(क) धर्म घर्म की रक्षा के लिए हिन्दुओं ने जात-जात के बन्धनों को तुक बनाया, (ख) जमाजता के वस्त्र पर बल देन वाले बाह्य-मेदन-विरोधी मूर्ख आन्दोलन उत्पन्न हुए। इस्लाम पर हिन्दू घर्म का यह झनाव वह कि उसमें कुछ कोमलता और सरसता थाएँ। उसके स्वरूप में भी कालों परिवर्तन हुआ। किन्तु इस सम्पर्क का सबसे मुख्य भास्त्र प्रभाव यह था कि इसमें कुछ ऐसे सम्प्रदायों वा जन्म हुए वो हिन्दू और मुस्लिम घर्मों के घन्टर को मिटाने वाले थे।

मुगलमानों वाला हिन्दुओं के सम्पर्क के अन्य परिणाम निम्न हैं—

(१) बास्तु कला में दोनों की सम्प्रदायों का विवाह लिये नहीं कला-वैज्ञानिकों का विकास हुआ। चिकित्सा और सर्वीत कला को उन्नति हुई।

- (२) भारत ने मुसलमानों से बागवानी, कामद्रव यताना आदि किसी ही नहीं करता एवं सीधी।
- (३) नाहिंयिक ममृदि और वैज्ञानिक चमत्ति।
- (४) राजनीतिक एकता।
- (५) साधारण जीवन पर प्रभाव—वेश-भूषा तथा खान-पान में परिवर्तन, कटूपन में मृदि।

पाँचक प्रभाव—(क) मुसलमानों की कठुरता के कारण हिन्दू उन्हें अपने समाज का धर्म नहीं बना सकते थे, लेकिन मुसलमान कठुर होने के साथ-साथ अपने धर्म के प्रबल प्रचारक थे। यह भय था कि वे सब हिन्दुओं को इस्लाम का धनुपायी न बना जाते। इसके प्रतिकार का उपाय कठुरता ही संचार गया। जोहा नहीं को कठुरता है, इस्लाम की कठुरता का निराकरण हिन्दुओं की कठुरता से ही ही बनता था। इस समय के धर्म-दास्ताओं ने जाति-भेद के नियमों को कठोर बनाकर हिन्दू धर्म को इतना सुन्दर दुर्ग बनाने का प्रयास किया जिसका नेतृत्व इस्लाम न कर सके। इस प्रकार के नियमों में 'पराधार-मृदि' के टीकाकार माघव, 'मरन 'पारिजात' के रखिया विश्वेश्वर, लगात के रघुनन्दन तथा 'मनुरमृदि' के प्रसिद्ध टीकाकार शुल्काभट्ट, सोलकप्ठ, कामलाकर भट्ट और हेमादि मुकु हैं। हेमादि ने अपने धर्म 'बतुर्वर्ष चिन्तामणि' में साल-भर में करने के लिए २,००० प्रनुदानों को अवश्यक की। इस प्रकार के प्रनुदानों से नियन्त्रित हिन्दू समाज पर इस्लाम का प्रभाव पहुँच की सम्भावना कर थी।

(ब) हिन्दू-धर्म के गुप्त आद्योतन—किन्तु अर्देशास्त्रियों की अवस्थाएँ हिन्दू-धर्म की पूरी रक्षा नहीं कर सकती थीं। समाज की नींवों जातियों तथा धर्म उच्च वर्गों द्वारा पद-वैतित और उल्लीळित थे। इस्लाम समाजता और जाति-भव पर और देता था। उसकी धर्मोक्ता और पश्चिमी एथिया में उसके जीव ब्रह्मार का एक कारण यह भी था कि उन देशों के पद-वैतित गोंदों को अपने भाण का एक मात्र उपाय इस्लाम ही प्रसीद हुआ। भारत में भी इस्लाम धर्मधिक भोक्तृप्रिय ही जाता था विंडीक इसी समय समाजता और भक्ति उच्च पर बल देने वाला यात्रीलोकन न होते। जाति-भेद लिपमता की जह थी; उस पर धर्मों ने भक्ति के लिप्ताम्भ द्वारा प्रबल शुल्कारपात्र किया। यह अवित भवतों पश्चिम करने वाली थी, इसने नींवों की भी जैव उठा दिया। हिन्दू समाज में भवते ही भेद-भाव हो, लेकिन भवताम्भ के दरवार में सब भक्त समान हैं। यहाँ तो 'जाति-वैति-पूछे नहीं कोई, हरि को भवते गी हरि का होई।' इन सम्भों में सब धर्मों की समाजता तथा दैवत की एकता पर कल दिया, वात्सुदामवर और कर्म-काण्ड की नियम थी। वन्म-के स्वाम पर कल को महत्व दिया और धर्म के देवेशार गणितों, पुरोहितों और मूलतासी को नियम को, मुकित का एक-मात्र साधन भवित को माना।

मध्य युग में पहले दक्षिण भारत और फिर उत्तर भारत में सुधार-भान्दोलन प्रारम्भ हुए। दक्षिण के सुधार-भान्दोलनों के नेता शक्तिचार्य (लगभग ७८८-८२० ई०), रामानुज (लगभग ११०० ई०) और बसवेश्वर थे, तथा उत्तरी भारत में इसके प्रत्यक्ष थे रामानन्द। पहले यह बताया जा चुका है कि भारत में इस्लाम का धार्मित्पूर्वक प्रवेश दक्षिण भारत में हुआ, वही से सुधार-भान्दोलनों का शुरू होना सह मुश्तित करता है कि इनको इस्लाम से कुछ प्रेरणा घटवन्न मिली। इस्लाम के प्रत्यापायिमों की उपस्थिति में जाति-भेद, आमिक जीवन और ईश्वर के प्रस्तुतत्व प्राप्ति विषयों पर जोगों को विचार करने के लिए उत्तेजित किया। एकेवरनाड़ी और रामानन्द आदि के विचार हिन्दू धर्म से पहले से ही विद्यमान थे, किन्तु इस्लाम से उन्हें बह गिला। शक्ति और रामानुज के जिहानों पर व्यधिं इस्लाम का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा किन्तु लिगायत-सम्बद्धाय पर घटवन्न ही पड़ा। हिन्दूओं का धर्म होते हुए भी ये जाति-भेद स्वीकार नहीं करते, इनमें तत्त्वाक और विधावा-विधाही की इजाजत है, मुर्दे फूंकने की अग्रह वफाओं जाते हैं, जे आदि तथा पुनर्जन्म की नहीं मानते, सब एक दूसरे के साथ जानी सकते हैं। इस गत का प्रसार इस तरफ बैठकी, बीचापुर और आरथाड़ विषयों, कोलहापुर और कलाटिक या बेंगुर के राज्यों में है।

उत्तर भारत में जाति-भेद का विचार करने और भवित पर और देने वाले आमिक भान्दोलनों के संस्थापक रामानन्द हैं। उन्होंने राम की भक्ति वह और दिया और हर जाति के सोगों को अपने विषयों में जम्मिति लिया। रामानन्द के विषयों में एक नाई, एक मोक्षी और एक सुखलभान थे। नैकानिका के सुतानुसार इसमें कोई सन्देह नहीं कि बनारस में विडान् सुखलभानों में रामानन्द की मेंट होई थी। श्री रामानन्द के विषयों में महारामा कवीर (१३२८-१३१८ ई०) इस दृष्टि से विदेष उत्तेजनीय है कि उन्होंने इस्लाम और हिन्दू धर्म की जोड़ी खाई को पाठने तथा उसमें सहयोग और समर्पण की भावना उत्पन्न करने का धर्म किया। उन्होंने दोनों धर्मों के बाह्य मेयों, सहियों और धाइम्बों का विचार करते हुए भास्तरिक एकता पर बह दिया। हिन्दू-मुस्लिम धर्मों की जूली युक्तिता का सवाल करते हुए उन्होंने कहा :—

भाई दे दुई जगदीय कहीं ते आया, कहु कोने बोराया।
अलाहू राम करीमा केशव, हरि हृषीकेश नाम वराया॥
भृत्या एक कनक ते यहमा, यामे भाव न दृश्या।
कहन सुनत को दुई कर भाये, एक नभाव एक गृहा॥
कहो महात्रेव वही मुहम्मद, बहु धारम कहिये।
को हिन्दू की दुर्लक कहाये एक विसी परिहारिये॥
वेद किलेव पढ़े वै कुवाय, वे मुलता वे पांडे।
वेनर वेनर नाम पराये, एक मिठौ के शोडे॥

दोनों धर्मों के बाह्य कर्मकाण्ड की विद्या करते हुए उन्होंने हिन्दूओं से कहा :—

पाहन पूजे हारि मिले, जो मैं पूजूँ पहार ।

ताते या जाती भली, धीर साम संगार ॥

और मुसलमानों से कहा :—

जाकर पावर जोरि के मस्तिष्ठ तह गुमाय ।

ता चढ़ि मुस्ला बींग दे लया बहुता हुआ खुदाय ॥

कबीर की शिक्षाएँ रहस्यवाद से खीत-धोती थीं। उन पर मुसलमान तुकी करोंडों का समष्टि प्रभाव है। इस्ताम के समाजता, भातू-भात, विशुद्ध पौरेश्वरवाद और मूलि-भजन के सिद्धान्त महाराष्ट्र की जनता पर भी यहारा प्रभाव बाल रहे थे। वही बाह्यण और प्राह्यण दोनों तरह के प्रचारक इस बात पर बल दे रहे थे जि राम और रहीम को एक समझो, जाति-भेद के बन्धनों को तोह ही, मनुष्य-मान के साथ द्रेम करो। रामानन्द के समकालीन विद्वानों ने भूति-जूला का नदृत विरोध करते हुए कहा—‘पत्तवर का देवता नहीं खोलता, वह हमारे इस जीवन के दूसों को किस तरह दूर कर सकता है। परि पत्तवर का देवता हमारी इच्छा पुरी कर सकता है तो विसने पर वह दृढ़ जयों जाता है?’ लेखन के विषय नामोंहैं हूए। इन्हें महाराष्ट्र में भास्मिक संकीर्णता और जाति-धैर के बन्धनों की सीधने पर बत दिया। इनके विषयों और अनुवायियों में लिप, लर्म, लर्ण और जाति का भेद नहीं था, उनमें स्वीकृत्य, हिन्दू-मुसलमान, बाह्यण-भजनात्मक, कुम्हार, बलवन, गहार और प्रसंगित वेश्याएँ तक सम्मिलित थे। नामदेव के महार विषय बोल मेला का बाह्यण पुरोहितों ने बब पद्मावत के प्रतिष्ठ मन्दिर में श्रवण करने से दोका, तो उसने उसके दिया—‘ईश्वर यमने बच्चों से भक्ति और प्रेम चाहता है। गह उनको जाति की परवाह नहीं करता।’

पन्द्रहवीं सदी में वंशाल में गुरु नानक ने कबीर की भावित चब धर्मों की भीतिक एकता और हिन्दू-मुसलमानों के आभेद पर बत दिया—

बन्द इक लूटाय दे हिन्दू मुसलमान ।

दावा राम रमूल कर, लहरे बैद्यमान ॥

उन्होंने शिक्षणों के संगा-साज, सीर्ज-गाढ़ा, जट-गूदा-गाठ और प्रतिमान्यूद्धन धारि का विरीच करते हुए जाति-भेद को तोह निया की और मुसलमानों को भी यह उपदेश दिया—‘दग्गा को अपनी मस्तिष्ठ बना, इन्द्राजल अपना कूरान समझ, जिक कामी को अपना कावा बना और परामपकार को कलमा। चुदा को बरली को अपनी तमरीह बान।’ गुण नानक के शिक्षणों में हिन्दू और मुसलमान दोनों थे।

नानक के समकालीन महामन्त्र चैत्रन्य (१४६२-१५३३ ई) थे। उन्होंने वंशाल में हठि-भक्ति के अचार के द्वारा बाह्यणों के कर्मकाण्ड और जाति-भेद का

जबर्दस्त समझन किया। उनके शिष्यों में नीच काति के लोग और मुसलमान भी सम्मिलित थे।

इस्लाम में परिवर्तन—आमिक खेत में सीधरा प्रभाव यह पड़ा कि भारतीय इस्लाम का कामनातर होने लगा। अरब के रेगिस्तान में उत्पन्न इस्लाम वहाँ की बनस्ताति की भाँति सरल, कठोर और मुक्त था; वह भारत के बाईं जलवायु में रूपान्तरित हुए बिना नहीं लगा सकता था। उस पर भारत की हरियाली का प्रभाव गहना अनिवार्य था। अतः हम देखते हैं कि भारत में इस्लाम के साथ ऐसी भौतिक बातें जैसे यह, जो प्रम्भर की शिकायों के संबंध प्रतिकूल और प्रभ्य-विश्वासों के परिणाम थीं। मूर्ति-पूजा के कटुर बिरियों होने से हुए भी बंगाल में उन्होंने गीता, काली, घर्मराज, बैठनाथ और इतर देवताओं की पूजा जारी रखी। इसका साथ ही उन्होंने नदियों के पश्चिमांश स्वामी जिच, मूर्द जन में दोर की सवारी करने वाली देवी के प्रेमी और अंग-रेताक विन्द्यागांड़ी यादि नये मुसलमान देवता बना लाने। पीरों के मजारों को पूजा जाता पड़ी। इनका प्रधान कारण यह था कि भारत में इस्लाम ने जो अनुपायी बनाए वे गहना मूर्ति-पूजा और प्रभ्य-विश्वासों की नहीं छोड़ सकते थे।

सम्मिलन की प्रवृत्ति—दोनों धर्मों के सम्पर्क का जौषा प्रभाव यह हुआ कि दोनों में सम्मिलन की अनुसृति यही थीर ऐसे सम्प्रदायों और मुकारकों का जन्म हुआ जिनके अनुयायी हिन्दू और मुसलमान दोनों ही थे। हिन्दुओं ने उदारतापूर्वक मुस्लिम दर्वी-देवताओं, पीरों और मजारों की पूजा युक्त थी और मुसलमान हिन्दू दर्शन की यम्भीरता से बनावित होकर उसकी और भूके। भारत को जनगणना को लिंगों में दीरों के पूजाक हिन्दुओं का दाखिल उत्तेज है। एक शरीर के शुल में पंजाब से अच्छुल कादिर जिलानी के मुरोंदों में राष्ट्रपिण्डी के बाह्याम है, वहराइच में सैंपर सालाह मूर्द के मजार के ऊपरांक हिन्दू थीं। अबमेर में योग मुर्दनहीन चित्ती के मजार की भी यही दशा है। बमस्त के बेहाली मुसलमानों द्वारा हिन्दू देवताओं की पूजाओं के द्वायाहरण पहले दिए जा रहे हैं। मध्यसाल में अकबर और दादा शिकोह हिन्दू जमें की ओर रुके थे। बाय रिकोह का सी यही तक कहना था कि तोहोर (तोहिलरवाद) का सबोलम क्व उपनिषदों में पाया जाता है। उसने एकाम उपनिषदों का अवासी में अनुवाद कराया तथा 'मजमूउल् बहरैन' नामक एक मन्त्र को उच्चा कहाई। यह के नात का पाया है—'यो सम्पदों का संगम'। इनमें कारसी पड़ने वाला के बिंग बेगमत की परिआपायों का संघटीकरण था, जाव ही उनके मुख्यी पर्याद भी दिये गए थे।

हिन्दू-मुसलमानों के मेव और पायोज की लहरों का परिणाम यह हुआ कि सरपांगी, सालानामी, गायबायी आदि ऐसे प्रस्तों का भावुकर्त्ता हुआ जिनके अनुयायी हिन्दू और मुसलमान दोनों ही थे और वे दोनों में भी योद्धा-भाव नहीं मानते थे। बारहवीं शती में बंगाल में हिन्दुओं का मुसलमानों की दरमाहुँ पर मिठाई बढ़ाना,

कुरान पड़ना और मुस्लिम रोहार मनाना प्रारम्भ हो गया था। मुसलमान भी हिन्दुओं के धार्मिक रिवाजों के प्रति कियात्मक सम्मान प्रदर्शित करते थे। इसी में जोन से बगाल में एक नये देखता 'सरपीर' की पूजा चल रही है। कहा जाता है कि शीर जल वायव्याह हर्षनाथ (१४४३-१५१६ ई०) इस सम्प्रदाय का संस्थापक था। शीरगोल के समय सततामी और नारायणी सम्प्रदायों न दोनों को भिजाने की कोशिश की। पिछले पंच में हिन्दू मुसलमान दोनों लिये जाते थे, ये भूंह की ओर मुँह करके दिन में पौच बार प्रार्थना करते थे, इनकर के नामों में घनताह की भी नामों में और मुर्दी को दफनाते थे। मुख्यतः के एक साधक प्राणनाश ने जाति-नेतृ, मूर्तिपूजा और बाट्टाओं के प्रभूत्व का लान्डन किया। उनसे हर नये दीजा लेने वाले को हिन्दू और मुसलमान दोनों के साथ दैठकर भोजन करना पहला था। प्राणनाश का मनन्य था, सबका—चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान—एक ईमान होना चाहिए।

कला

बास्तु-कला (भवन-निर्माण)—सामीक्ष्य तथा मेल-जीवन की ओर प्रवृत्ति धार्मिक विचारों में थी, वही विभिन्न कलाओं में दृष्टिगोचर होती है। बास्तु-कला इसका ठोस और ज्वलन उदाहरण है। मध्य-युग में कला के एक नवीन रूप का जन्म हुआ, जिसमें हिन्दू और मुस्लिम कला-कैलिग्राफी का सुन्दर सामर्ज्यस्य पाया जाता है। इसे भारत-मुस्लिम (इटो-सारसेनिक) मा पठान-कला कहा जाता है। दोनों कलाओं पर भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव था। 'भारत उत्तर पश्चिम, विश्वात् वैदानों, दुर्भेद वैमानों, प्रथम अत्युपां और पर्वी वनस्पतियों का देश है; यतः भारतीय कला में विशालता, स्वलता और विस्तार पर्याप्ति बन था। जिस तरह भारतीय लंगों में असाध छूल-नीतियों से सारी भूमि ढकी रहती है, उसी तरह भारतीय मन्दिरों में कोई जप्ता यत्करण से छाली नहीं रहता। विस्तार, बाहुल्य और विश्वप्राच्ये इसकी प्रथान विशेषताएँ हैं। इसके विपरीत अरब एक विशाल रेतिस्तान है, जिसमें भीसो तक कोई वनस्पति नहीं दिखाई देती। यतः मुस्लिम कला वीर विशेषता बढ़े-बढ़े भवन, ऊँची गीलारे, साफ़ और सादी दीवारें थीं।' भारत में मुसलमान गुम्बद, गोनार और डाट जापे और उन्होंने भारतीयों से तंग स्वरूप-निकितयों, तबा भवन-कला के अस्य अनंतकरण बहुण किये। मुसलमानों को मेहरबन का जाम था, यतः उन्हें गम्भीरों की आवश्यकता नहीं थी। हिन्दुओं को डाट का जाम न था, यतः उनके लिए स्तम्भ-प्रतिक्रियाएँ थे। सल्तनत युग तथा मुगल युग की बास्तु में इन दोनों का सम्बन्धण हुआ। इस सम्बन्धण में दो कारण सहायक सिद्ध हुए—(१) मुस्लिम भवनों के शिल्पी हिन्दू थे, जो मुसलमान बादशाहों की देश-नेतृ में भवन-निर्माण करते थे, (२) तब मुस्लिम भवन तुराने हिन्दू मन्दिरों की विष्वस्त सामरियों से बने थे। यतः मुस्लिम बास्तु एवं हिन्दू प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था।

हिन्दू प्रभाव की मात्रा विभिन्न कला-वीलियों में परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती थी। सत्त्वनत युग की दिल्ली-योगी में कुतुबमीनार और याताई दरबार में मुस्लिम तत्त्वों की प्रधानता है; किन्तु जौनपुर, काशी, गुजराती तथा बीबादुरी शैली में हिन्दू तत्त्वों की प्रधानता है। जौनपुर में फकीर-मुलतानों के मध्य कारीगर छोटी गीलरिया स्पष्ट रूप से हिन्दू प्रभाव की सूचक है; और जौनपुर की मस्जिदों में मुस्लिम कला की एक प्रधान विशेषता भीनार विनकुल नहीं है। इसका नवसे घटना जयाहरल १४०-१५० में पूर्ण हुई जौनपुर की 'यताजाविवो की मस्जिद' है। बगल में हिन्दू प्रभाव प्रवल रहा और इसका मुख्यरत्न उदाहरण पाल्लवा में मिकन्दर द्वारा (१३६० ई०) बनवाई हुई घडीना मस्जिद है। गुजरात, भालवा, कारमीर और बीजापुर की मुस्लिम बास्तु भी हिन्दू प्रभाव से प्रोत्त-प्रोत्त है।

मुगल युगों की इमारतों में ईरानी और भारतीय दोनों शैलियों का सामन्वय कहे सुन्दर रूप में दृष्टिगोष्ठी होता है। घकबर द्वारा बनवाये फतहपुर सीकरी के भवनों, यागरा के जहाँगीरी महल, मुहम्मद खीस और 'हुमायूँ' के मकबरे में यह प्रभाव सुस्पष्ट है। इसका चरम उत्कर्ष शाहजहाँ की इमारतों—यागरे के ताजमहल और खीरी मस्जिद—में दिखाई देता है।

संगीत—इस्लाम के संसर्वे का भारतीय संगीत पर गहरा प्रभाव पड़ा और वह नये बाद यत्थों तथा नये रागों से समृद्ध हुआ। प्राचीन भारतीय तथा ईरानी संगीतों के सम्मिलन ने एक नई संगीत-वीनी को जन्म दिया जो दोनों शैलियों से अधिक उत्कृष्ट और मनोहारियी थी। अमीर तूसुरों की यसाधारण अतिभा से भारतीय-संगीत की एक अनुपम विशालता और एकना मिली। भारत में वह मिटार का धारमभक्ति याना जाता है। इससे उसने भारत की जटी और दक्षिणी संगीत-शैलियों में सामन्वय स्थापित किया। कल्याणी भी उसी ने सुरु की, वह पठति गवर तक लोकप्रिय है। जौनपुर के फकीर दरबार की यससे बड़ी देन 'लगान' है। घकबर के दरबार में ईरानी, तूसुरों, कारमीरी और हिन्दू श्वी-युग्म घरनेक उत्कृष्ट गवेये थे; किन्तु उस युग का सबसे बड़ा रागी तानसेन था। अमीर तूसुरों से मुहम्मदशाह रखीते के समय तक घोरमजेव के एक-मात्र घरवाद की छोड़कर मुस्लिम दरबारों में भारतीय संगीत को प्रोत्तात्तुन मिला; इसमें तरामा, दमरी, गजम, कब्बाली आदि का उसमें प्रवेश हुया।

विष-कला—मुगल विष-कला के उद्भव तथा व्रेणा का मूल खोत ईरान था; किन्तु बास्तु कला की भाँति वह भी ईरानी और हिन्दू कलाओं का सुन्दर सम्मिलित हुआ। घकबर के दरबार के विषकारों में बहुप्रस्ता हिन्दुओं की थी। १७ प्रधान विषकारों में १३ हिन्दू थे जो छवि-विषय में भल्लन्त कुलन थे। इनमें बसावन, मात और दसवान्त विषेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

उद्यान-निर्माण-कला—प्रतिद्वंद्वीय कला-भर्तुल हेतु ने उद्यानों की योजना और निर्माण को भारतीय कलाओं में मुगलों की सबसे बड़ी देन कहा है। भारत में मुगलों के शासन से पहले भी बाग थे, किन्तु वे मुख्य रूप से फलों के लिए जैसे और प्रायः वन जैसे होते थे। मुगलों के बगीचे हिरान और तुकिस्तान में विकसित उद्यान-कला के अनुरूप थे। इनकी विशेषताएँ ये थीं—नहरों को लेनाहै ये ताकर उससे सात-आठ प्रपात बनाये जाते थे, इसमें फलारे जैसे होते थे, नहर को पटरियों के दोनों ओर फूलों की बारायियाँ होती थीं। सबसे ऊंचे या निचले फलारे पर बारह दरी होती थी, जहाँ से जारे दृश्य का अवलोकन किया जाता था। काँडमीर के शान्तामार, निशात, अच्छावल, बैरोलाग और लाहौर के शान्तामार बगीचे इसी दृग पर मुगलों के बनवाये हुए हैं।

साहित्यिक उन्नति

ग्रन्थ प्रभाव—इस्लाम ने मध्ययुग में साहित्यिक उद्धा वैज्ञानिक उन्नति और राजनीतिक एकता के विकास में बड़ा भाग लिया। उसने जन-साधारण के बीच, रहन-सहन, वेष-भूषा और खान-पान पर भी प्रभाव डाला। हिन्दी में विद्यालय, तुलसीदास और सूर की रचनाएँ इस युग की हैं। बंगला भाषा को साहित्य के एवं पर पहुँचाने में अनेक कारण थे। इनमें निसर्नदेह सबसे अधिक महत्वपूर्ण हेतु नुस्तल-मानों का बंगाल विजय करना था। यदि हिन्दू राजा स्वार्योन वने रहते तो बंगला भाषा को राजाओं के दरबारों तक पहुँचने का अवसर मुश्किल से ही मिल पाता। चौदहवीं सदी के शुरू में नसीरशाह ने महाभारत का संस्कृत से बंगला में अनुवाद कराया। रामायण के अनुवादक कृतिदास को मुस्लिम दरबार से पूरी सहायता मिलती थी। सलाहूद हृषीनशाह ने मलखर बगु जैसे भागवत का बंगला में अनुवाद कराया। मुसलमानों के द्वारा संस्कृत प्रथमों के बंगला अनुवादों के अत्यधिक उचाहरण है। बहुमनी बादशाहों ने भराठी को पूरा प्रोत्साहन दिया। इसी काल में उदूँ का विकास हुआ। सोलहवीं सदी में उसका जन्म हुआ और झटारहबी घरों में वह माहितिक भाषा बनी। कारसी तबारीओं से देश में इतिहास लिखने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला।

वैज्ञानिक उन्नति—वैज्ञानिक उन्नति विशेष रूप से सामरिक कला में हुई। मुगलों ने यूरोपीय रण-कला तथा बाल्ड, बन्दूक और लोपों का अधोग तुको और हिरानियों से सीला तथा उभयना भारत में प्रसार किया। युद्ध विद्या, सैनिक अध्ययन और किलेबन्दी की इस समाप्त विशेष उन्नति हुई। कागज बनाने की कला मुसलमान ही भारत में जाये। इससे विद्या-प्रसार के कार्य में बड़ी सहायता मिली। मूगल शासन ने शारे देश में सुदूर आसन डाय राजनीतिक एकता उत्पन्न की।

उत्तर भारत की भाषा, वेष-भूषा, रहन-सहन और खान-नान में मुस्लिम प्रभाव बहुत स्पष्ट है। हिन्दी, बंगला, भराठी में उनकी भासी, परवी, तुकी वर्णों

से उद्धि हुई है। हिन्दुओं के विवाह-जैव पवित्र संस्कार में सेहरा और जामा का प्रयोग होने लगा। हमारी धर्मिकाओं मिठाइयाँ इसी काल की ईजाद है। बालुणाही, लकर-पाला, कलाकन्द, गुलाब जामुन, बरफी, हलबा यह भूखलमानी नाम है। प्राचीन साहित्य में भीड़ (नहद) और घटप (मालपूक) के अतिरिक्त बहुत कम मिठाइयी का उल्लंघन किया जाता है।

इसलाम के शाय हिन्दू धर्म के लगाए ने भारत में जो प्रभाव देता किये थे अनुपम हैं। इनमें से कई समन्वयात्मक सम्पत्ति देने का प्रयत्न किया, तो न हिन्दू और न मुसलमान; अगर तु हिन्दू और मुसलमान दोनों संस्कृतियों के मुद्रण-तत्त्वों को लिये थी। इसने वह विभाजन मानव वर्षे दिया जो जात-जात और नक्कीर्णताओं से मुक्त, पुरोहितों के प्रभूत्व से स्वतन्त्र, कर्मकाण्ड के बाह्य प्राप्तमवर और विभिन्न देवताओं को पूजा से रहित था, जो एकेवरराद, विकलन-धूल, प्रेम, सद्यम, गदाधार और ग्राम-पुष्टि पर वल दे रहा था। इसने हमें बास्तु के लेव में ताजमहल दिया, विद्यके तुल्य भव्य भवन संसार में इन-गिने ही है। इसने हमें सूर, तुलसी, विद्यापति और हुस्न-बास दिये। इसलाम और हिन्दू धर्म के राजनीतिक संवर्पण अक्षीत का विषय बन गए हैं, जिन्हें उस समय का कलात्मक वस्तु-वैभव—फलहार सीकरी और मोती मस्तिष्क तथा उस समय के मनों की चाणी हमें उस स्वरूप युग को याद दिलाती है, जब हिन्दू और मुसलमान एक होकर सहिष्णुता, प्रेम और सहयोग से समस्त भारत में एक वर्जनतर, पवित्रतर संस्कृति का निर्माण कर रहे थे।

शासन-प्रणाली

प्राचीन भारत में राजतन्त्र और प्रजातन्त्र दोनों प्रकार की शासन-प्रणालियाँ प्रचलित थीं, किन्तु प्रधानता राजतन्त्र की थी थी। गुप्त युग से ५०० ई० के बाद प्रजातन्त्री का अन्त हो जाने से देश की एक-मात्र शासन-प्रणाली राजतन्त्र ही रह गई। वहाँ दोनों का संविप्त उल्लेख किया जायगा।

राजतन्त्र

वैदिक युग—राजतन्त्र की प्रणाली भारत में वैदिक युग से प्रचलित है। उस समय राजा को उत्तरि का कारण सम्मतः सामरिक आवश्यकता थी। युद्ध में सफल नेतृत्व करने वाले अधिक स्वभावतः राजा का यह नाम थे और उनके दूर्जों के पास होने पर यह पद धार्तुर्धिक बन जाता था। वैदिक राज्य प्राप्त जनशक्ति होती थी, इनका प्राप्ति कुनै या परिवार होता था। कई कुनों ने 'विश' का निर्माण होता और कई विशों से जन की रक्षा होती। एक जन या कठींदे के अधिक धूपा भूष युध एक ही मानते थे, उनका युलिया राजा होता था। वैदिक युग के पारम्पर में राजा का निर्वाचन होता था किन्तु सम्मतः साधारण जनता इसमें भाग नहीं लेती थी। जनता के नेता—कुन्तिति और विजिति—ही राजा था, वरण करते थे। वरण या यथे राजा बनने की स्वीकृति देता था। वरण हीने पर राज्याधिक होता था और राजा अवतारात्मक की 'प्रतिष्ठा' करता था। प्रतिष्ठा तोड़ने पर राजा निर्वाचित और पदचुनून किया जा सकता था।

ऐतरेय वात्सुप्त में सैन्धवहानिवेदन का वर्णन करते हुए इस प्रतिष्ठा का विवर करते हैं। इस समय राजा बड़ी अवधि के साथ इस प्रतिष्ठा की उद्घोषणा करता था—“ये विष रविको उत्पन्न हुआ था और विष राज की भवेष्यता इन दोनों के दीर्घ में मैने जितने विशेष प्रत्युष्णत और युध जाते लिये हैं, मैं उनमें स्वर्वतोक से तथा भवनी संतान से विचित हो जाऊ, परि मैं प्रजा से द्वोहु छहौं।” (या च राज्य-मवाहीर्य या च वेतासिन्य लक्ष्मप्रसातरेण इत्प्रपुस्तेय लोके युहतमायुः अज्ञो दृष्टी-पा विद्यते द्वाष्टे विनिति । ऐ० बा० आटम परिका, लग्नाम ४, कंहिका १५)। राज्याधिकों के समय राजा के लिये इससे अधिक कठीर प्रतिष्ठा की जन्मना नहीं थी वा सकती। इसमें राजा प्रजा के प्रति अपने कर्त्तव्यपालन की विधिवत्ता की अपरस्या में

थपने सब शुभ कर्मों के पुण्य कल की प्राप्ति से तथा शिवतम सन्नान से विभिन्न होने का संकल्प करता है। इससे इस प्रतिज्ञा की मुस्ता और गंभीरता स्पष्ट है। इस पौष्ण्य के बाद ही राजा को व्याघ्रचर्चमें से आनन्दादित यामन्दी या काठनिवित सिंहासन पर बैठने की प्रमुखता दी जाती थी तथा पुरोहित उसके ऊपर सोने की यात्री से सौ या नौ छिंडी से बहने वाले जल के द्वारा उसका शमिषेक करता था। इस प्रकार प्रतिज्ञा पूर्ण शमिषेक द्वारा राजा के चित्त पर प्रजापालन के कर्तव्य की महत्वा भली भाँति चकित कर दी जाती थी।

समिति और सभा—वैदिक काल में राजा निरंकुश नहीं था, उसका निर्वयन समिति द्वारा होता था। यह कर्तमान काल की केन्द्रीय लोक सभा समझी जा सकती है। यह समूचे जन की संस्था थी। इसमें कौन-कौन जाते थे, यह कहना कठिन है। किन्तु पामगी, सूत, रथकार और कम्भर इसमें व्यवस्था समिलित होते थे। राज्य की प्रसल बागडोर इसी के हाथों में थी। राजा की शिवति इसी के समर्थन पर अवलम्बित थी। राजामों की यही इच्छा रहती थी कि समिति सदा उनका साथ हो। इसके बिना होने पर वे घोट संकट में पड़ जाते थे। इसकी सद्भावना और लहरों पाने के लिए राजा निर्मिती की बैठकों में भाग लेता था।

सभा का अर्थ कुछ विदाओं ने 'समान काति (मा) वाले' व्यक्तियों का समझन किया है। इनके प्रमुखर नभा एक प्रकार की बृद्ध परिषद् थी, इसमें पुरोहित, धर्मिक आदि उच्चवर्गों के अधिकार समिलित होते थे और 'समिति' में साक्षात् व्यक्ति। सभा और समिति को प्रलग्नित की जुड़वी कल्पाने समझा जाता था। केन्द्रीय सभा के अतिरिक्त प्रत्येक गाँव में भी सभा होती थी।

१००० ई० पू० से समितियों नुस्ख होने लगी। इसका प्रधान वारण यह था कि पुराने जन-राज्य विस्तीर्ण होकर प्रादेशिक राज्य बन रहे थे। इनसे इनका विस्तार यत्नमान जितों के बहावर था, साक्षात् बनने पर मे कमिलनियों के बहावर हुए। इन विस्तृत राज्यों में समिति-बैठों केन्द्रीय सीके सभा के सदस्यों का डक्कु लोना तभा काम करना कठिन था। उन सभय न तो यातायात के साक्षन इनसे उत्पन्न हो और न प्रतिनिविष्यवस्था का धारिकार हुआ था, अतः वैदिक युग के बाद समिति का अन्त हो गया।

वैदिक राजा इतिहों की लडायता से शासन करता था। इसमें राजा के सम्बन्धी, भाषी, विभागों के अधिकारी और बहावरी समिलित होते थे। इस युग के प्रधान धर्मिकारों गेमालान, संघर्हिता (वोपाधार) भाग्युक (कर-संघाइक या वर्ष-सम्बन्धी), यामगी (गांवों का युक्तिया) और शूल (रथ सेना का नायक) थे। सरकार का प्रधान कावे भास्तरिक उदाहरणों और बाह्य भाक्षणों में राज्य की रक्षा करता था। वह यहाँ प्रेक्षित और बाद में धारवश्यक हो गए। राजा का प्रधान वर्णन्य प्रजा की

आधारित और भौतिक उन्नति करना था। राज्यों का शाकार लोटा होने से इस समय तक प्रान्तीव और स्वातंत्र्य शासन का विकास नहीं हुआ था।

मोर्ये पुरा—मोर्योंका लोल राजतन्त्र ऐदिक काल की अपेक्षा धर्मिक सुविकसित और उन्नत था। उस समय तक राजा के अधिकारों में कहुत बृद्धि हो गई, राज्यों के अधिक विस्तृत होने तथा यातायात की अठिनाई के कारण राजा पर अकुल रखने याती समिति का आना हो गया। राजा सेना, शासन, व्याय आदि सब विभागों का अधीक्षण बना, उसे कामन बनाने का भी अधिकार मिला। इस काल में राजतन्त्र को दो विवेगताएँ उत्पन्न होती हैं—(१) शासन-शासन का विकास (२) राज्य के कार्य-क्षेत्र का विस्तार।

शासन-तन्त्र—मोर्य साम्राज्य का शासन-प्रबन्ध बहुत ही व्यवस्थित था। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय शासन का स्पष्ट भेद और यित्ति का विकास सबप्रथम इसी तुम में हुआ है। केन्द्र में राजा मंत्रि-निरिद के साथ शासन करता था। मोर्य सभाद् अपने को केन्द्र 'राजा' कहते थे और अपने साम्राज्य को 'विजित'। ऐदिक काल के चलियों पर राजा के परामर्शदाताओं ने यह मंत्रि मण्डल का संघ घारण किया। वैष्णविक दृष्टि से यद्यपि यह राजा के प्रति उत्तरदायी था; किन्तु सोलहवत का इस वर काही प्रभाव या और राजा को कही बार वायित होकर अनिक्षणपूर्वक भवित्वों की बात स्वीकार करनी पड़ती थी। उदाहरणार्थ चन्द्रगुप्त मोर्य अपने संघों कीटिल्य की इच्छा के विरुद्ध नहीं वा सकते थे। सभाद् ग्रामोक बौद्ध संघ को असामुख दान दिये जा रहे थे, मंत्रियों ने इसका विरोध किया और अन्त में एक बार ग्रामोक को 'उन्मुक्तोपेक्ष' होकर भी संघ को आगे आवेदन का दान करके ही संतोष करना पड़ा।

प्रातोद शासन की विस्तृत व्यवस्था भी सबप्रथम इसी काल में हुई। मोर्यों का 'विजित' पांच प्रान्तों (माण्डों) में बंदा था, इन्हें संभवतः चक्र कहते थे।

(१) भृष्ट-देश—इसमें उत्तर प्रदेश, विहार, मध्य प्रान्त का हिस्से भाषा-भाषी क्षेत्र सम्मिलित था। इसकी राजधानी पटना थी।

(२) प्राची—कलिम-बंगाल यादि पूरी देश प्रान्तों कहताते थे। इसका शासनकेन्द्र तालपुरी (धौली जि० पुरी) थी।

(३) नमेदा के दक्षिण का प्रदेश इंद्रियां-यम था। इसकी राजधानी मुकुर्ले मिठी थी।

(४) भारवाह मिथि, गुजरात, कोकण के प्रदेश 'अपर लकण्ट' या पश्चिम देश में थाने थे। इसका शासन-क्षेत्र उत्तरधिकों से गवालित होता था।

(५) उत्तरायण—यताव, कालमीर, कामुल यादि उत्तरायण में थिने जाते थे। इसकी राजधानी तक्षशिला थी। इन पाँचों प्रान्तों (चक्रों) में राजा को और वे नियम 'कुमार' (शाजकुमार) या महामाता (मत्तिव) शासन का सम्पूर्ण विवेशम्

करते थे। यसोंक मुनराजावस्था में उज्जविनो का शासक रहा था और उसने याने पुन तुणाल को उत्थापिता का शासन-प्रबन्ध सौंपा था।

राज्य के कार्यक्रम में भी इस युग में शासकवंनका विस्तार हुआ। पहले उसका प्रधान उद्देश्य आन्तरिक उपद्रवों से तथा बाह्य आकर्षणों से देश को रक्षा करना था, अब उसका धार्य राज्य की सर्वाङ्गीय उन्नति तथा समस्त भवन। आंचिक उन्नति तथा भौतिक दृष्टि से देश को समृद्ध करने के लिए राज्य की ओर से उद्योग-प्रयोग लगाने, नई वित्तीय वसाने, नई जमीन कृषि सेवा लगाने, बीज बनाना, ताने-मुदवाने, कारोगरी और शिलिंगों को मंत्रक्षण देने की अवस्था बढ़ दुइ। यातान जनता तथा उपभोगताओं के हितों का ध्यान रखते हुए नाय तथा लोकोंका यात सिवर करने, बलुओं का सचय और मुनाफाकीरी रोकने के लिए राज्य की ओर से धर्मिकारी नियत किये जाने लगे। राज्य बर्तमान कान में लिख शाश्वत धर्म-व्यवस्था (Planned Economy) को अवस्थर समझकर, उसे स्थापित करने का यज्ञ कर रहे हैं, जर्मन विद्वान् उसका जन्मदाता चन्द्रशुल के मंत्री चाणक्य को मानते हैं। दुनिया में धर्म-कानूनों का प्रतिपादन रखने पर्हते उसी ने किया। कारोगर का हाथ या घोल बेकार कर देने वाले को प्राण-दण्ड मिलता था। भौतिक दृष्टि के सात-साथ जनता की नीतिक, धार्मिक, सांख्यिक उन्नति की ओर भी पूरा ध्यान दिया गया। विष्णु-वृत्ति, धूम, मदिरा-पात्र आदि दुरादारों का राज्य की ओर से नियन्त्रण किया गया। धर्म और सदाचार के ग्रोत्ताहम के लिए 'धर्म महामात्य' नामक राज्य-कान्चनारी नियत किये गए, विद्वानों, धर्म-शवारकों की राज्य की ओर से प्रोत्त्वाहम हिया गया। दीन-नितियों के कष्ट-निवारण के लिए धर्मशालाएं, धातुरात्रि (हस्ताल) तथा अन्न-बेंज लोकों गए।

इस सब कापों के लिए केन्द्र, प्रान्त तथा नगरों में वटिल शासन-व्यक्त का लियाग हुआ। पाटिलुड नगर का प्रबन्ध तीस धार्मियों की एक सभा करती थी। इसके पाँच-पाँच प्राइमो छ: छोटे कमी में विभक्त होकर शिला, वैदेविलों की देश-भाल, बन-गमना, वर्णिक्य-व्यवसाय, बस्तु-निरीक्षण और कर-बम्पी की धार्य करते थे। केन्द्र में भीवों का जेता और गुप्तकर विभाग यहुङ भक्तृत और व्यवसित था। रोपा के छ: विभाग—पैदल, सवार, हाथी, रथ, जल-सेना और रसोद के थे। न्याय-प्रबन्ध के लिए कठिकोपन या भीवी और धर्मस्व दोवानो न्यायालय थे। केन्द्र में राज्य के धाय-धय हिसाब आदि रखने, उदाहरों की उन्नति के लिए अनेक घक्कर थे। इनसे उपर समय के द्वारा शासन तथा संविधानय को धर्मित विकास सुचित होता है। धर्मकी पुरों वा राजतन्त्र लगभग भीवे धार्य रहे ही बना रहा।

शतावधान पुर—इस युग में भारत पर गुलामी, जोकी और कुशापों के आकर्षण हुए—इनसे शासन-प्रदत्ति तथा राजतन्त्र में कोई बड़े परिवर्तन नहीं हुए। इस कान में दो विशेषताएँ हैं।

(१) राजाओं के देवत्व का विचार कहा और उन्होंने लम्बी-नामी उत्तरियों पारण करनी शुरू की । कनिष्ठ की देवपूजा की उपाधि से सूचित होता है कि राजा की दिव्यता वो भावना पहली श० ई० तक काफ़ी प्रबल हो नहीं थी । कृष्ण राजा देवकुलों पर मन्दिरों में अपने वंश के मृत राजाओं की मूर्तियाँ स्थापित करते थे । राजाओं में उत्तरियों का असर बह रहा था । मैथिं युग में चन्द्रगुप्त और गदीप जैसे शक्तिशाली नरेश केवल 'राजा' कहताने से सन्तुष्ट थे, किन्तु कमिला ने 'महाराजा', 'राजादिराज' की गौरवपूर्ण पद्धतियाँ घारण की । इसका प्रमुकरण करने हुए परवर्ती हिन्दू राजाओं ने भी 'महाराजाधिराज' की शासनार उपाधियाँ अपने नामों के साथ जोड़ना शुरू किया ।

(२) एक कृष्ण राजाओं की दूसरी विशेषता राजा और युधिष्ठिर, पिता तथा पुत्र का संयुक्त शासन या 'द्वैराज्य' पद्धति थी । इस प्रकार के उदाहरण मांवोपार, कनिष्ठ द्वितीय तथा दृष्टिकोण के शासन हैं । यकों में पिता महाभिषेष और पुत्र विवर की पद्धति पारण करता था और दोनों अपने नाम से विकले जाते थे । वह प्रताली यथिक सोकप्रिय नहीं हुई । एक न्याय में वी समवारी का तथा एक विवर में दो दोस्रों का रहना असम्भव है । इसी तरह एक राज्य में दो राजा नहीं रख सकते । इस काल में केन्द्र, प्रांत, विषे और नगर का शासन गठायूँ चलता रहा ।

मृत्यु युग—मृत्यु युग में भारतीय राजवंश और शासन-नृति लगभग अपरिवर्तित ही रही । शासन को बागडोर यामुर्यादिक राजा के हाथ में थी, तारी प्रभुता और शक्ति का स्वीक रही था । शासन, न्याय, सेना के सर्वोच्च यथिकार उसी को आता थे । मन्त्रिय-परिषद् भीयं युग की तरह प्रधान शय से उसे एरामये देने वाली थी, किन्तु इसमें राजा को प्रभावित करने की पर्याप्त शक्ति थी । मुधान चाल के बधनानुसार राजा विक्रमादित्य प्रतिदिन गोच लाल मुद्दारे दान देना चाहते थे पर मन्दिरों ने इस शासन पर दान का विशेष विषय कि इससे राज-कोण भीष्म ही समाप्त हो जायगा और नये कर लगाने गहोने । राजा के दान की मध्यम सुनि लंगी विन्नु मन्दिरों को प्रजा की यानियों शुमनों गहोना । केन्द्रीय लक्षितालय गिरावे मृत्यु की जाति काम करते रहे । राज्य द्वारा वेद की भीतिक, गांधिक, तेतिक और गानधिक उन्नति की ओर पूरा यान दिया गया । तेतिक उन्नति के लिए एक विशेष मन्त्री होता था, इसका प्रधान वायं लीगी के आचार की देव-माप, वामिक गम्भारी और मन्दिरों को दान देना, सामाजिक सुधार के सम्बन्ध में राजा को एरामह देना था । राज्य की ओर ये विशेष-प्रसार एवं ज्ञान-नृति के लिए सहायता की जाती थी । तालन्दा विश्वविद्यालय का विकास गृह्ण सम्भालों के उदार दान से हुआ । किन्तु यह समरपण रखना जाहिंग-कि उम समय राज्य विद्या-मंत्रालयों के व्यावरण के प्रवर्ग और पाठ्यक्रम शादि में कोई हस्तक्षेप नहीं करता था । राज्य द्वारा मन्दिर अवामे भी प्रवृत्ति में स्वारप्त, मूर्ति, चित्र आदि तत्त्व विद्याओं को बहुत प्रोत्साहित किया ।

राजाओं द्वारा विद्वानों का भरतवाण भाग-विभाग की उन्नति में बहुत सहायक निष्ठ हुआ। समूचे मध्यकाल में राजव की ये प्रवृत्तियाँ जारी रहीं।

याम-पंचायत—गुरु गुण के राजतन्त्र सम्बन्धी दो परिवर्तन स्मरणीय हैं। पहला तो यह कि ४०० ई० से भारत में गणराज्यों का घन्त हो गया। यांग इनके विद्युत होने के कारणों पर विशेष प्रकाश दाला जायगा। दूसरा परिवर्तन स्पानीज स्वत्यासन-संस्थायाँ—याम-पंचायती और नगर-सभाओं—के कामी प्रीर अधिकारों में आदचंद्रेचनक बुद्धि है। ये संस्थाएँ मोर्ध्वकाल से और उससे भी पहले से चली या रही थीं किन्तु यों-ज्यों राज्य के विस्तार और केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति बढ़ती गई, यथोन्यों इनका अधिक विकास हुआ। सत्यन-विग्रह को छोड़कर इन्हें सब अधिकार प्राप्त है। ये ग्राम की रखा की अवस्था तथा राजकीय करों का संघर्ष करतीं, जो कर लगाती, गांव के भगवों का फैसला करतीं, लोक-हित को योजनाएँ बनाने हुए में लेतीं, सार्वजनिक व्यष्टि आदि लेकर भकात और अन्य सकटों के प्रतिकार का उपाय करतीं, गाड़भालाएँ, मनाधालय, विद्यालय चलातीं, मन्दिरों द्वारा विविध सांस्कृतिक और धार्मिक कार्य करतीं। इन समाजों पर व्यवसि केन्द्रीय सरकार का निरोधण और नियन्त्रण होता या किन्तु प्रशान्त रूप से ये याम की सापारण जनता द्वारा नहीं जाती थी। दिवियी भारत के लेखों से इनकी निर्वाचन-पद्धति तथा कार्य-प्रणाली पर अधिक प्रकाश पड़ा है। उदाहरणार्थ चिंगलाट जिले के उत्तर में रुर गांव की कार्य-कारिगरी के महस्य जिन्होंने बालकर चूने जाते हैं। याम के लीसों वारों (विभागों) में प्रत्येक द्वारा कई व्यक्तियों के नाम प्रस्तावित किये जाते हैं। प्रत्येक उम्मीदवार का नाम कामज के पूर्वक पूर्जे पर लिख लिया जाता था। हर एक बाहू के पूर्वे या पूर्वियों एक बर्तन में रख दी जाती थीं और किसी घरबोध गिरु में एक पर्वी उठाने को कहा जाता था। जिसके नाम की पर्वी जाती थह उस बाहू का प्रतिनिधि घोषित होता था। इस चुनाव में किसी प्रकार के प्रचार, परेवों या यारीबाजी की जड़रत ही न होती थी। इस प्रकार सापारण जनता द्वारा निर्वाचित याम-पंचायत उन दिनों अव्याहार का गुणद दुर्गम थी। वैदिक काल की सभिता का कार्य ये भारे मध्ययुग में कासी रही। राजा प्रायः याम-पंचायत के कामों में कोई हस्तक्षेप नहीं करता था। यदि कहता था तो पंचायत समूहों जागतकाला से उसकी रोक-याम करती थी। पंचायतों के हात में राजा की नियन्त्रित करने का एक ब्राह्मण था, जनता से बाहू बहुत करके, उसे राजा तक पहुँचाया इसके कामे थे, यदि राजा अनुचित, जो और अन्यत्र बहुत लगाते थे, उनको बहुत करने से ढीक बैसे ही इनकार कर सकती थी जैसे फौज राज्य-कान्ति से गहरे राजा के अनुचित करों को फौज वालेसंघ (न्याय-नग) वैष मानता अग्रीकार नहीं करते थे। इस प्रकार प्राचीन काल में याम पंचायत प्रजातन्त्र के इस भौतिक सिद्धान्त को लियाराह का प्रदान कर रही थीं कि कोई कर प्रजा के प्रतिनिधियों को सहमति के बिना नहीं जगता जा सकता। इन याम-पंचायतों के कारण उन समय उदाहरण होते हुए भी लोकारण जनता अव्याहार के सबों याम

उठा रहो थी, क्योंकि स्थानीय स्वशासन में उसे पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त थी। लिटिंग युग की शासनता ने पंचायती और याम-नाभायों का अन्त कर दिया। यह असमन्ता की बात है कि स्वतन्त्र भारत में इनका पुनरुद्धार हो रहा है। इन्हें मैं जेवल न्याय किन्तु सांखेनिक रवास्त्र, निर्माण, विकास योजनाओं, शिक्षा, सर-नंबरह आदि के कार्य में जो रहे हैं।

प्राचीन राजतन्त्र की समीक्षा—याजकास नोकरन्ड का युग है, राजतन्त्र को प्रजातन्त्र की भाँति जनता के लिए उतना कल्पागकारक नहीं समझा जाता। इस यावद्या में यह देखना यावद्यक प्रतीत होता है कि प्राचीन भारतीय राजतन्त्र इसके लिए कितना उपयोगी और हितकर सिद्ध हुआ। राजतन्त्र का सबसे बड़ा दोष यह है कि उसमें सारी जकित एक व्यक्ति के हाथ में केन्द्रित हो जाती है, यदि उस पर कुछ प्रतिबन्ध न हों तो वह उसका मनमाना दुरुपयोग करते रहता है और प्रजा का नट नहीं है। पूरोप में मध्यकाल में जब राजायों ने अपने असीम अधिकारी का दुरुपयोग करके प्रजा के गढ़ पर्सीने से कमाये थे तो भोग-दिलान में अन्यायोग फूलता भूल किया; निरपराध अवितरी को जेल में डालना तथा प्रजा पर अनुचित कर लगाना युह किया तो जनता ने राजायों के विरुद्ध विद्रोह किया और वही राजतन्त्र का अन्त हो गया। भारत में राजा अपने अधिकारी का दुरुपयोग न करते हों, सो बात नहीं; किन्तु उनकी जकित पर कई प्रकार के प्रतिबन्ध थे। इनके कारण प्रजा प्राप्त निरकुञ्ज राजतन्त्र की चुदाइयों से बची रहती थी।

राजतन्त्र पर प्रतिबन्ध—यहां प्रतिबन्ध—राज्य-सम्बन्धी प्रत्येक उदास प्रादेश और उच्च वारणीय ही। मैं राजा को निरकुञ्ज या स्वेच्छाकारी होने के रोकती थी। यहांसी भारणा यह थी कि राजा प्रजा का सेवक है उसका प्रधान कार्य जनता की प्रसन्न-रखना है। राजा कहते ही उसे हैं जो प्रकृति का अनुरक्षण करे। कोटिन्य के मत्तानुभार प्रजा के हित में राजा का हित है और प्रजा के सुख में राजा का भूख है।

इसी परिणाम ही कि उसके पातन राजा का यावद्यक कर्तव्य है। संसार के सबसे पहुंचे राजा पूर्ण को मह प्रतिज्ञा करनी पड़ी थी कि मैं धूति-स्मृतियों में बताये उसके पातन कर्तव्य भीर कभी मनमानी म रहेगा। प्राचीन काल में प्रजा में रोग, शोक और कष्ट का कारण राजा का कर्तव्य-धूर होना समझा जाता था। अतः राजा से उसके पातन की पूरी प्राप्ति रही जाती थी।

'तीसरा विचार यह था कि राज्य राजा की वैद्यकिक सम्मति नहीं किन्तु अविव अरोहर है। यदि राजा सांखेनिक इच्छ का दुरुपयोग करता है तो वह नरकगामी होता है।' जेवल इतना ही नहीं कि उसे राज्य से स्वार्थ-सिद्धि नहीं करनी चाहिए, किन्तु उसके लिए स्वार्थ-त्याग भी करना चाहिए। 'यमिं पूर्यण' वे शब्दों में जिन प्रकार नरेष्वती व्यों प्रप्त उद्दरस्व शिष्य को हुनि पहुँचने की यात्रा का अन्ती इच्छाओं का निषेचन

पीछे गुलों का लागा करती है, वेंसे ही राजा को भी यजा के हित के लिए याने मुखों की परवाह नहीं करनी चाहिए। इसमें कोई बदेह नहीं कि धीराम और असीक वेंसे राजाओं ने इस उदात्त आदेश का पालन किया। प्राचीन काल में नरक के नाम से अधिक भौतिक पालना बड़ी कठिन थी। अतः मह यजा रत्नी जा सकती है कि अधिकाय राजाओं से यानी सत्ता का तुकाराम नहीं किया होगा।

दूसरा प्रतिक्रम मन्त्र-मण्डल द्वारा राजा का निघनण था। पहले अशोक और विष्णुविद्य के यन्माधुन्द दाम के विश्व मन्त्रियों के सफल विरोध का उल्लेख किया जा चुका है। 'राजतरन्गिणी' में उनके प्रभाव के अनेक उदाहरण हैं। राजा यजवान-पीड मन्त्रियों के निर्णय से पदचुनून किया था। भृत्य-यज्ञा पर पढ़ा हुआ कलश अपने पुक्क हाथ को मुबराज बनाना चाहता था, पर मन्त्रियों के विरोध के कारण सफल न हो सका। वैचानिक तौर से जनता के प्रति उत्तरदायी न होने पर भी मन्त्रि-मण्डल राजा को स्वेच्छावाचिता पर काफी धंकून रखता था।

तीसरा प्रतिक्रम प्रजा को राजा के विश्व विद्रोह का अधिकार था। प्राचीन यात्रकार यह कल्पना नहीं करते थे कि प्रजा राजा के यज्ञावाट को चूपचाप सहन कर सकती। उन्होंने उसे राजा को जेतायनी देने तथा उसे पदचुनून करने का अधिकार किया है। पहले तो प्रजा वह प्रभकी देती थी कि पदि नुम यज्ञा रवेया नहीं बदलते तो हम तुम्हारा राजा होइए और प्रजा पर इसका कोई प्रसार न पड़े तो वह यमोग्य राजा को यही से उतार कर अन्य युष्यवान् व्यक्ति को उस पर पर मन्त्रियों कर सकती थी। महाभारत में यज्ञावारी राजा के वय एक की याता दी गई है। वह इस प्रकार के अभ्यास राजाओं में से था। नहुण, मुद्रास, गृहुत, निमि इत्या की ग्रन्थोगम्मि वा विकार हुए थे। कौटिल्य ने इत्या को प्रजा के राज से सर्वेष सावधान रहने का आदेश दिया था। प्राचीन जात में राजा के विश्व विद्रोह करना और उसमें राक्षस पांग बहुत कठिन न था। यीर्य और युज्ञ वद्य के अन्तिम यात्राको तथा राष्ट्रकूट राजा तोकिन्द बहुत का अन्त जनता, सामनी और सेनापतियों के विद्रोह द्वारा ही हुआ।

चौथा प्रतिक्रम धाम-यज्ञावती का विकास था। इनमें जनता का तुरा यात्रना पा और ये राजा के स्वेच्छावार पर पर्याप्त निघनण रखती थीं। राजा जाहे किन्तु ही यन्माने कर क्यों न लगा हे, उसे कही कह मिल महते थे किन्तु याम-यज्ञावती बचून करने देने को चैशार दी। इन्हे यात्र के भी पर्याप्त अधिकार थे। यात्र राजा इस लिए में भी यन्मानी नहीं कर सकता था। 'धाम और नगर मन्त्यार्त बहुत बहुतों में छोटे-छोटे यज्ञावन हीं ते, जिनमें जनता की इक्षवा के अमुसार यात्रन होता था।' अतः राजा परि यज्ञावारी होता ही भी उसका व्रताव राज्यावारी सक ही कीमित रहता था।

इन प्रतिबन्धों से प्राचीन भाष्य के राजतन्त्र के दुष्करिणम् बहुत कम लोभने पड़े। मध्य युग में जनता जब अपने राजनीतिक व्यक्तिगतों के लिए जामकां नहीं रही, तबीं राजाओं को भनवासी करने का भीता भिता। सामग्र्यतः प्राचीन राजतन्त्र नीतिहित का उच्च व्यादर्थ अपनाने के कारण जनता के लिए दिलकर ही रिक्त हुए।

ପ୍ରକାଶକ

प्राचीन वाल में राजतम्ब के साथ-साथ वैदिक युग से मृज्ञ युग तक भारत में प्रजातर्क्षों या गणतर्क्षों का व्यास्तत्व चला रहा। उत्तर वैदिक युग में उत्तरकुरु तथा उत्तरभद्र देशों की धारत-प्रधानी वैराज्य प्रवर्त्ति राजाहीन कहनाती थी, क्योंकि वहाँ राजा धारत मही करते थे। यौद्ध प्रभ्यो से पह जाक होता है कि संयुक्त प्रान्त के गोरखपुर विले थीर उत्तरी चिह्नार के प्रदेशों में उठी था ८००-५०० में इस गणराज्य थे। ५०० ८०० में ४०० ६०० तक गंगाव थीर सिन्ध में गणराज्यों का बोल-वाला था। इन्होंने जीधी ३० ६०० में सिकन्दर का उटकर भूकाला किया; बाद में, शब्दों थीर युसालों का प्रतिरोध करते रहे। भारत में विदेशियों के शासन का अन्त करने का बहुत बड़ा क्षेत्र इन्हीं को है। मही प्रधान गणतर्क्षों का संघित परिचय दिया जाएगा।

बौद्ध साहित्य के गणतन्त्र—बौद्ध साहित्य में दस गणतन्त्रों का वर्णन है
कृपिलवस्तु के वाक्य, अल्पकाण के वृत्ती, केमपुड़ के कालाम, सम्मुमार के भग्न, रामगाम
के कोलिय, पादा तथा कुमीनारा के भल्ल, लिङ्गली वन के सोरिय, मिथना के विदेह
और वैष्णवी के निचलवि। इनमें भग्न, वृत्ती, कोलिय और सोरिय गणतन्त्र साधुतिक
वहसीलों से अधिक बढ़े थे। इनमें अधिक प्रसिद्ध वाक्य, भल्ल, लिङ्गली और विदेह
थे। इन सबमें वाक्य राज्य भवसे छोटा और गोरखपुर जिसे में अवस्थित था। इसी
में भग्नवान् बुद्ध हुए थे। इससे पूर्व में गठना तक भल्लों का राज्य काफी विस्तृत हुआ था,
इनके प्रसिद्ध केन्द्र कुमीनगर (गोरखपुर में कुमीनारा) और पादा (जिला गठना)
थे। कुमीनगर भग्नवान् बुद्ध की तथा पादा वर्षभान महावीर की निर्वाक-भूमि थी।
इनसे पूर्व में लिङ्गली और विदेह गणतन्त्र थे। लिङ्गलियों की राजधानी वैष्णवी
(जिला जिला मृत्युकरपुर) थी और विदेह की भित्ति। इनमें से अधिकांश गणतन्त्र
बुद्ध के जीवन-काल में बने रहे, किन्तु शनी-वारी शक्तिवाली पहोची वाय्यों द्वारा इनका
प्रसिद्धत्व मिटने लगा। मगध का गाम्भार्य इनके लिए भवसे बड़ा व्यापर था। वात्स-
रवा के लिए गणतन्त्र संयुक्तसंघ बनाने लगे। लिङ्गलियों की भल्लों से भित्ति थे
और कभी विदेहों ने। बुद्ध के समय लिङ्गलियों और विदेहों के संघ में आठ गणतन्त्र
सम्मिलित थे। महासंघ उस समय विज्ञ लाभ से प्रसिद्ध था। मगध का वाय्य
वज्रावधार् इसे जीतना चाहता था। उसने इनके जीतने का उपाय पूर्णे के लिए भवना
मन्त्री वर्षभान भग्नवान् बुद्ध की तेजा में भेजा। बुद्ध का कहना था कि वज्र-तक वज्री
विजयकर वसनी सभाएँ करते रहेंगे, संगठित होकर राज्य-कार्य करेंगे, प्राचीन रीति-

रिवाजी का पालन करें, यदि पुरुषों को सम्मति का आदार करते रहें, तब तक बड़वीं लोगों के पत्नी को आशंका नहीं करनी चाहिए। अजातशत्रु ने पपने कृटनीति-इश्वर मन्त्रों से विजयों में फूट उठवा दी और विहार के सबसे शक्तिशाली मणितन्त्र को ध्याने धधीन कर लिया। ५०० ई० पू० तक बाकी सब मणितन्त्र भी मणव साम्राज्य का अंग बन गए। तिज्जुलियों को गद्यपि इस समय मणव के धारे नलमस्तक होना पड़ा, किन्तु २०० ई० पू० तक वे फिर स्वतन्त्र हो गए। बौद्धी श० ५० ई० में वह राज्य अत्यन्त शक्तिशाली था और गुप्त साम्राज्य की स्थापना करने वाले बहुगुप्त ने इसकी कुमारदेवी से परिणाम करके ध्याने वश का उत्कर्ष किया। वैवाहिक + म्बन्ध से मह राज्य गुप्त साम्राज्य का द्यम बन गया।

पञ्चाब के मणितन्त्र

बीघेय—५०० ई० पू० से ५०० ई० तक पञ्चाब और सिन्ध में मणितन्त्रों की प्रधानता थी। यहाँ केवल प्रधान मणितन्त्रों का ही संक्षिप्त परिचय दिया जायगा। बीघेय सौन मणितन्त्रों का शक्तिशाली संघ था। इसकी मुद्राओं से यह जात होता है कि इसका विस्तार पूर्व में सहारनपुर से पश्चिम में बहावलपुर तक, उत्तर पश्चिम में लुधियाना से दक्षिण में दिल्ली तक रहा होगा। इस प्रकार इसमें वर्तमान पूर्वी पञ्चाब का काफी बड़ा हिस्सा आता था। बीघेय उस समय के उत्कृष्ट योद्धा वे और उनकी खीरता के लिए विकास थे। देवताओं के सेनापति कालिकेय को वे ध्याना कुलदेवता मानते थे। इन पंजाबी बीरों के पराक्रम की कथा जब सिकन्दर के सेनिकों ने सुनी तो उनके दिल दहल गए, उन्होंने आगे बढ़ने से इनकार किया। सिकन्दर ने विवर होटार जोटना पड़ा। पहली श० ५० में इस नगर को कुशाखों ने जीता, किन्तु स्वतन्त्रता-प्रेमी बीघेयों को वे देर तक अपने अधीन नहीं रख सके। “दूसरी श० ५० के उत्तरार्ध में ‘अपने पराक्रम के लिए समस्त शक्तियों में आगराद्य’ इन बीरों ने फिर उड़ाया और २२५ ई० तक इन्होंने न केवल प्राचीन लोई हृष्ट द्वारा स्वतन्त्रता पूँज़ पायी की, किन्तु कुशाख साम्राज्य को ऐसा धक्का दिया, जिससे वह फिर न सैनक लगा।” ३५० ई० तक यह मणितन्त्र बना रहा। बहावलपुर के बोहिये इन्हीं बीघेयों के बड़वा माने जाते हैं।

कुणिन्द तथा घड़—यह संघवतः जातन्धर द्वारे में था। इसका पुराना नाम किन्तु बनाम था, बाद में इसे ‘कुणिन्द’ कहा जाने लगा। यह राज्य इसरो श० ५० तक वर्तमान था, कुशाखों को भारत से लाएँने में इसने बीघेयों को बड़ी सहायता दी थी। राष्ट्री, चनाह, द्वारे के उपरसे हिस्सों में बड़ों का शक्तिशाली राज्य था। ये संघवतः कठों से फिल न थे। इन्होंने सिकन्दर के सम्मुख नवमस्तक हो प्राण-रक्षा को ध्यानमानवनक समझ, युद्ध में लड़कर भर जाना ही अपेक्षकर समझा। इसकी राजधानी स्पालकोट थी।

मालव और अद्रक—जेहुलम और राजी के संघर्ष के नीते राजी के दोनों तटों पर मालव संघ का राज्य था और उसके पूर्व में इनके साथ मिला हुआ अद्रकों का संग्रहालय था। ये दोनों पठ्यन्त मृत्युन्यता-प्रेमी और अद्भुत जातियों थे। चिकन्दर का सामना करने के लिए इन्होंने संयुक्त बोलना बनाई थी किन्तु दोनों की मेनाएँ मिलने से गहरे सिकन्दर मालवों पर टूट पड़ा। मालवों के एक साथ लड़ाक घोरों से दूनानियों से जम कर लाहा लिया, सिकन्दर एक बछु के घाव से मरते-भारते बचा। सिकन्दर के संकट से उन्होंने एकता का पाठ पढ़ा और मालव और अद्रक संघ को एकता कर्दा यातानियों तक बढ़ी रही। १०० ई० पू० के लघुभग मालव पंचाश से निकलकर अब्दमेर-चित्तोड़ टोक के प्रदेश में बसे थीर फिर वहाँ से यांते बहते हुए भय भारत के उस प्रदेश में पाये, जिसे पाल भी उनके नाम से मालवा कहा जाता है। १५० ई० के लघुभग याकोंने उन्हें परास्त किया किन्तु २२५ ई० तक वे पुनः स्वतन्त्र हो गए। इनके सिक्कों पर किसी राजा का नाम न होकर 'मालवों की जय' का नेत्र उल्कीर्ण मिलता है।

शिवि और अम्बल—मालवों के पड़ोस में वर्तमान शोरकोट(पत्तिमी पंचाश) के पास शिवि गणतन्त्र था। और अम्बलों के पड़ोस में अम्बल। इन दोनों ने विनालके चिकन्दर को प्राप्तीनता मान ली थी। शिवि १०० ई० पू० तक राजपुताने में चित्तोड़ के पास मालवमिका नगरी में बा बसे थे।

आरु नायन—आधुनिक आगरा-जम्पुर प्रदेश में २०० ई० पू० से ४०० ई० तक यह गणतन्त्र विद्यमान था। इनकी मुद्राओं पर 'आरु नायनों की जय' का नेत्र मिलता है। ये अपना उद्भव संबोधते, महाभारत के असिंह पाण्डव अर्जुन से मानते थे। इनके प्रतिरिक्ष द्वारिका में अम्बल—तुलियों का भी एक गणतन्त्र था। थोड़ा से इनके प्रधान नेता थे।

गणतन्त्रों की कार्य-प्रणाली

गणतन्त्रों का यादा राज्यनाम उनके समान्यहों या सम्बोधनों में होता था। शासन का सर्वोच्च अधिकार केन्द्रीय समिति के हाथ में था। योग्यों की समिति में पांच हजार तक लिखड़वियों की समिति में ३,३०० सदस्य थे। रोम की आरम्भिक थीमेट की भाँति ये सदस्य कुलीन बर्ग के होते थे, बद्य-परन्नरा द्वारा समिति में दैनन्दी के भवित्वातीरे थे। सरकार पर केन्द्रीय समिति का पूरा नियन्त्रण था। समिति के सदस्य राज्य की सरो-न्तोषी आनोखना लूप करते थे। अन्यक पुण्य संघ के नेता थोड़ा से नारद से विकायत को भी कि मुझे आलोकको के कटु वचन मुनने और गहने पड़ते हैं। वर्तमान मुग की भाँति इनमें पाटीबाबी और इलवन्दियी काफी होती थी। शीढ़ धर्मों से जात होता है कि समिति में प्रस्ताव भावकल की तरह तीन बार ऐसे होने के बाद पास होता था, मतगणना का कार्य उलाकाप्राहृक नामक अधिकारी

वरस्ता था। विवादास्पद प्रश्नों के लिए उद्दाहिका या निवाचित समिति बनाई जाती थी। आप सभी निर्णय बहुमत से लिये जाते थे।

प्राचीन गणतन्त्रों ने भारत के सांस्कृतिक विकास में बड़ा महत्वपूर्ण भाग लिया। इसके स्वतंत्रक बातावरण में स्वाधीन तत्त्वजिन्दगी ने बड़ी उल्लंघन की। और कुछन, दुर्ज और महाधीर की गणतन्त्रों ने जन्म दिया। उपनिषदों के एवं बोध तथा जैन दर्शनों के विकास में इन्होंने बड़ा भाग लिया। इन राज्यों की उनकट देश-भाषिक प्राचीन राजतन्त्रों में कही नहीं किया जाता, इन्होंने राजाओं की अपेक्षा सिक्खनदर का अधिक सफलतापूर्वक सामाना किया। गणतन्त्रों में कुछ, व्यापार और बाणिज्य की भी यही उल्लंघन हुई। इसमें कोई विवेद नहीं कि वेदाधितक राष्ट्रीय विकास की दृष्टि से ये राजतन्त्रों के समान महत्वपूर्ण थे। इन्होंने विवेशी आकान्ताओं को देश में भेजा, जब तक ये बने रहे, भारत उल्लंघन करता रहे।

इनके घटना का कारण थी जापसवाल के भत में गुप्तों की साम्राज्यवादी मीति थी जिन्हुंने गणतन्त्रों ने लिक्खनदर का तथा भौपं और कुशाण साम्राज्यों का सफलता-पूर्वक अतिरिक्त किया वे गुप्तों द्वारा केंसे परामर्श हुए? गुप्तों ने उसको आलंदिक द्वितीयता में हस्तांत्रिक तहीं किया, अतः उनका साम्राज्यवाद उनके लिए पालक नहीं हो गया। वास्तविक कारण गणतन्त्रों को जनता में स्वतंत्रता के लिए कामक के रहना, अपने नेताओं को राजकीय उपाधियों, राजसी ठाठ-बाट और सानुविधिक पद प्राप्त करने से न रोकना था। गणतन्त्रों की एक बड़ी कमज़ोरी पारस्परिक दलवर्गी और कृष्ण थी। इसमें संगठन और एकता का अभाव था। उनका जातीय समिमान इसमें खबरेस्त थाथक था। उनकी दृष्टि खेड़ुकिया थी। अपनी स्वतंत्रता पर संकेत धारने के समय वे आओं को घाहुति देने को लैवार रहते थे किन्तु लिक्खनदर, जोको या कुशाणों का सामना करने के लिए विजाव, विन्ध्य और राजगृहोंने के मणतन्त्रों में एक होकर लियान उत्तर-पश्चिम-राष्ट्रीय धनाने की कल्पना उनके मन में न था सका। विरेशी धरातलगों का सफल अतिरिक्त भौपं और गुप्त भज्जाओं द्वारा ही हो सका। अतः याजतन्त्र जोकारिय न हो। उपर्युक्त वारणों से मे समान हो गए। आज प्राचीन गणतन्त्र नवीन भारतीय गणराज्य के पंथ-प्रदर्शन के लिए महत्वपूर्ण विभागे दे रखे हैं और इनको भली-भाली हृदयगम करने में ही हृनारा कल्पान है।

भारतीय कला

भारतीय कला की विशेषताएँ

१. भाव-व्यंजना की प्रधानता—भारतीय कला अपनी प्रतिष्ठित विशेषताओं के कारण अम्ब देशों की कलाओं से मौलिक रूप से भिन्न है। उसका सर्वे नमस्ते के लिए उनका परिचान आवश्यक है। उसकी पहली विशेषता भाव-व्यंजना की प्रधानता है। कला प्राकृति, प्रतिष्ठित और अभिभवित पर धन देने के प्राप्त तीन वैदिक हिस्सों में विभक्त की जाती है। किस कला का उद्देश्य मुकुल का से चीर्हर्वयी आकृतियों का ताता है, वह प्राकृति-प्रधान (Formal) कहलाती है। विशेष रूपीय प्राकृतिक वट्टाओं और सानरोय लोंगों की गत्यामें प्रतिष्ठित इनाकर उहे सर्वेद के लिए स्थानीय बना दिया जाता है, वह प्रतिष्ठित-प्रधान (Representative) होती है और विशेष किसी अमूर्त भाव को कलात्मक रूपता हारा अभिभवत किमा जाए वह अभिभवित-प्रधान (Expressive) कला नहीं जाती है। चीरियों में पहले प्राकार पर धर्मिक धारा दिया, उसकी हालियों देखते ही हम उनके चीरियों की प्रवृत्ति करने लगते हैं। गूतानी तथा परिवर्ष की शाहुनिक कला प्रतिष्ठित-प्रधान है, उसमें तुरन्तरी के साथसे रमणीय रूप की हु-बहु विस्तर में सोइते तथा विलक्षण पर अधिक दर्शन का गफ्ता और मराहनीय प्रधान किमा जाता है। पहली दृष्टि में ही उम्मीद कला-हृतियों देखक को अपनी अंगसीकरण-प्रधान यथार्थ्यों रमणीयता से प्रभावित करते हैं। किन्तु भारतीय उसकाओं में ऐसी बात नहीं है, उसमें वायु सौन्दर्य दिखाने के धर्माद्य साम्भृतिक भावों के धक्का को बहुत बहुत दिया जाता है। इसमें बहुरी लाइन को भोट नहीं, किन्तु अन्तर्रूप के धर्मित्वन की ओर धर्मिक धारा दिया जाता है। भारतीय कलाकारों ने गतान्त्र चुक्के छन्द-प्राधान यथार्थ्यों रमणीयता से भूल-भूल दिखाने के भूल विशेष, भजनीदार भूजाओं के धक्का की धर्मित्वा उनके भूल-भूल पर लियांग और सरापि के दिव्य शान्तन की धर्मित्वा करते में धर्मिक हृत्योंका प्रदर्शन किया है। भारतीय कला में प्रतिष्ठित-भूलक हृतियों का सर्वेदा धमाक हो, सो बात नहीं। किन्तु प्रधानता भाव-व्यंजना की ही रही है। कला की भूति कला की आत्मा भी 'रस' ही मानी जाती थी। इस की अभिभवित है कला का वर्तमान रस या। इसके धमाक में गूतानी तथा यस्तियों कला विलाकर्पक होते हुए भी विश्वास

धोर निर्वाचि है, भारतीय कला कहि बार उत्तमी विषय और नवनामिदाम न होते हुए भी प्राणवान् धोर सचीव है।

२. अर्थ तत्त्व की मुख्यता—दूसरी विशेषता भारतीय कला में अर्थ तत्त्व की प्रधानता है। प्राचीन काल से कला अर्थ की वेदी थी, इसके सभी अंगों का विकास अर्थ के साथ से हुआ। मूलिकार्यों ने प्रधान रूप से महात्मा तुड़ तथा पीटायिक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बनाई, जास्तु कला का विकास स्थौर, विहारी और महिरों द्वारा हुआ, जिन कला का प्रधान विषय धर्मिक घड़नाएँ थीं। भारत में कला कला के लिए नहीं, किन्तु धार्मत्वरूप के सामाजिक या उमे परम तत्त्व की ओर उन्मुखीकरण के लिए थी। भारतीय कलाकारों के अनुभाव विद्योपदीमें प्रदृश करने वाली कला कला नहीं है, जिससे यात्मा परम तत्त्व में लीन हो, वही अधिक कला है।^१ मूर्तिकला का प्रधान विषय उत्तमों के हित के लिए भगवान् की प्रतिमा बनाना या (सामाजिक हिताधीय व्रद्धाणी शाकलवाप्त)। यही शब्द धन्य लक्षणों का या। किन्तु भगवान् पर्सीम, अपरिमित और अनन्त है, इसकी मान्त्र प्रतिमा कीते बन सकती है। अतः मूर्ति के बाल उनको प्रतीक है। भगवान् के विविध रूप हैं, प्रतः उनके प्रतीक भी विभिन्न होते। भारतीय कला इस प्रतीकात्मकता (Symbolism) से योग-योग है। कलाकारों का प्रधान विषय निरुद्ध दावंतिक तत्त्वों को मूर्त्त रूप प्रदान करना या। इसीलिए इनके बारे में यह कहा जाता है कि वे गहरे अमृतेश्वर और दावंतिक वे और बाद में कलाकार। उनका प्रधान उद्देश्य सूक्ष्म धार्मिक भावनाओं को सूक्ष्म रूप देना या। उन्होंने सुन्दर कलाकृतियों का निर्माण किया, किन्तु धार्मात्मिक गरण की अभिलाखित के लिए ही। सभ्य युग के पूरोपीय कलाकारों की भूमिका भारतीय विलायों ने यो कुछ बनाया, प्रायः भूमिका भाव में सनुप्राणित होकर ही। भजनों आदि के विषयों के निर्माण वही यहने बारे बोड़ भिजू थे। उन्हें राजाओं को प्रसन्न करने के लिए या भगवान् पट भरने के लिए नहीं, किन्तु अपने चेहरों और विहारों की असूखत करने के लिए कलात्मक सूचिट करनी थी।

३. अनामता—भारतीय कला की तीव्रती विशेषता अनामता है। कहा जाता है कि नाम और वोकेयरों की भावना, महात्माओं की प्रतिम दुर्बलता होती है। किन्तु प्रविकाद्य भारतीय कलाकार इससे नुक्त हैं। उन्होंने विषयों या मूर्तियों पर भावने नाम की प्रेक्षा कृति की दाङ्डिता से प्रवर होता विषयकर रहमत। नाम ही वही दिया जाता है, वही धार्मात्मिकता और विशेषता की भावना जड़त ही। उनका उद्देश्य ही वास्तविक तत्त्व धार्मिक भावनाओं की, तथा भगवान् की भवित्वजना थी, अतः उसमें नाम प्रवान् और नाम नौल था। यही कारण है कि भजनों ने प्रतिद गुरुगमिदारों के निर्माणाभौं के नाम हमें जान मही है।

^१ विवाहितसंस्कृत तत्त्वोंमें या कला न कला नहीं।

बोपते पठनानन्दे यमामा या पश्च कला ॥

भारतीय कलाओं का विकास— सब भारतीय कलाओं का मूल वेद माना जाता है किन्तु वेदिक युग की भूमि, चित्र, वास्तु प्रादि कलाओं के कोई ग्राहीन घटकाय नहीं मिलते। इसका परामर्श यह है कि उस समय इमारतें, मन्दिर, शृणिवास प्रामः जलजुः की बनी होती थीं, भारत के यादें जलजम् और धीपक के प्रभाव से इनका कोई निरानन नहीं बचा। भारतीय कला के भारतीय इतिहास पर अवधार का एदो गड़ा दुष्टा है। वह पहली बार ईसा से २,५०० वर्ष पूर्व मीड़िोरों का



इन्होंने दो वर्ष



कृष्णोदरों की मूर्ति

में लघा दूसरों बार ईसा के २,५०० वर्ष साप नीसरों वा० ई० १० में ग्रहों के समय चलता है। दोनों कालों को कला सम्पन्न छोड़ है। उसमें कला गर्वों को विस्मय में

दात दिया है। योहेजनीवाड़ी का बड़े कटुद वाला बैत रथा अच्यु परु इतने मुन्दर हैं कि भारतीय वे शब्दों में उनकी कला को किसी भी तरह प्रारम्भिक नहीं कहा जा सकता। हड्डियाँ वे भी भूतियों देखाकर तो वे इतने विस्मित हुए कि उन्हें पहले यह विचार नहीं हुआ कि ये मूर्तियों प्रार्थितिहासिक काल की ही सकारी हैं। इतनी सद्यन इतनी मुन्दर है कि पुरानी दुनिया में गुलानी युग से पहले वैसी रक्षा अन्यथ कही नहीं पाई जाती। बीबीस शाताक्षियों के प्रश्नकार के बाद हमें किर मीरे युग में भारतीय कला अत्यन्त प्रारंभिक और विविधत रूप में दिखाई देती है। यथोक्त मतम् के दीर्घ पर बन जिह उस समय की कला की दृष्टि से बेंडी है। मीरे युग से ही भूति रथा वास्तु कला के उदाहरण प्रचुर भाला में उपलब्ध होते हैं, अतः इस युग में प्रत्येक काल के कला-नियमित्यांशी विकास पर सधिष्ठ प्रकाश वाला जायगा।

मीरे युग

भारतीय कलाओं का लिंगतृत इतिहास सभाट प्रशोधे के समय से उपस्थित होता है। उसने बोद्ध पर्व वर्मीकार वार्ता के बाद देश में कला को पूरा श्रीलाल्हन दिया, एवं-प्रचार के लिए बहुत प्रयिक स्मारक बनाये। बोद्ध वन्दुशुति के बनुपार



मीरी का सूच

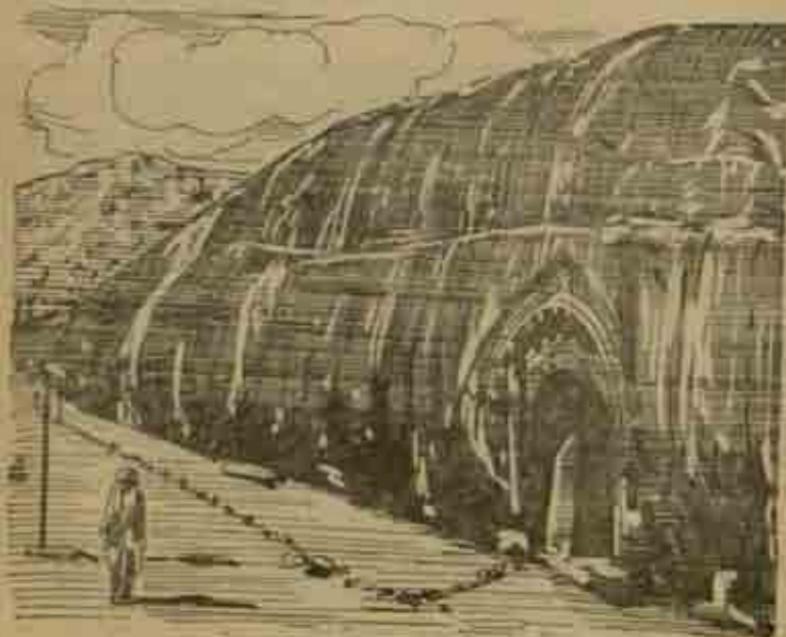
उसे बहुत स्तूप बनाने का लेय दिया जाता है। वर्तमान समय में उसके उपलब्ध स्मारकों को चार भागों में बोटा जाता है। (१) सूच (२) स्तम्भ (३) गुहाएँ (४) रथ-प्रामाण।

स्त्रूप—महात्मा बुद्ध की पवित्र वासु (भस्म) पर नथा उनके सम्पर्क से पवित्र स्थानों पर स्तूपों का निर्माण किया जाता था। स्त्रूप उल्टे कटोरे के सामान का पत्थरों या ईंटों का ठोक मुख्य होता था। 'बैदिक' काले से 'बैब' भी (विना बलाय मा बलाकर) ठोककर जो तुड़ा बनाने की रीति बल्ली आती थी, यह उभी वा विचित्र विकास-नाम था।^१ प्राचीन स्तूपों से मौर्यस्तूपों में मह विशेषता भी कि इनमें सुरक्षा के लिए चौड़ी बाहु नगा दी जाती थी, आइटर्वे एक छप भी ऊपर स्थापित किया जाता था, जारों खोर के लिए कोई ब्रह्मकिणी वर्ष का कप किया जाता था और इस परे में जारों विद्युतों में चार सीरें या द्वार बनाने जाते थे। पहले कहा जा चुका है कि बौद्ध परम्परा के अनुसार असोक ने ८५५ द्वारा स्त्रूप बनवाये, उसके नीं मीं वर्ष बाद मुग्धान ज्ञान ने भारत-अमरण करते हुए उसके बैठकों स्त्रूप इस देश में देखे। ज्ञानम समय में इसका सर्वोच्चम् स्मारक सूची का स्त्रूप है। इसके बोधवालों तो युग युग के हैं, किन्तु मूल स्त्रूप इसी युग का है।

स्तम्भ—ध्यानोकीय वासु के सुन्दरतम् स्मारक स्तम्भ है। इस समय से इस स्तम्भ दिल्ली, सारनाथ, मुजास्करपुर, लम्पारन के तीन गोपों, अमिनदर्द (बुद्ध की जन्मभूमि लुम्बिनी बन) तथा सौची ध्यादि स्थानों में पांच बनते हैं। ये सब बुद्धार के सामने पत्थर के बने हुए हैं और इनके दो भाग हैं (१) लाट पा प्रधान इत्तहायार दिस्ता (२) साम्बशीर्ष या परमहारा। समूची लाट और समूचा परमहार एकाक्षरीय या एक ही पत्थर से तराशा हुआ है। दोनों पर ऐसी धोह (पालिया) है जिस पर तेरी भी किसी भी विस्तरी है। २,२०० कवं नीति जाते पर भी ऐसा प्रतीत होता है कि यह पालिया बहारी की गई है, दिल्ली वाले साम्ब पर बड़िया पालिया के बारम इत्ती जमक है कि एक उसे भासु का समझते रहे हैं। सबहीं यहाँ में दोष बोलियेट से तथा चलोचकी यहाँ में बिलाप हुवर से इसे पीछला हो गया हुआ समझा या। यह श्रीष्ठ या पालिया भारत की प्रस्तुत कला की ऐसी विशेषता है कि उनिया में व्यवस्थ की नहीं भिनती। इसकी प्रक्रिया आह तक प्रवाहत है और यह अप्रैल के गोष्ठी-सम्प्रति के बाद से भारत से युज्ञ हो जाती है। लाट गोल और गोले डोर-तक चारों-चारों द्वारा द्वारा है। इस दृष्टि से ब्रह्मारन के लौरिया बन्धाई की लाट-वासने सुन्दर है, जोने उसका व्यास ३५२ इंच है और कुरु दरूरे इच्छा। लाटों की ऊँचाई तीस से चालीस फुट तक और भार १,३५० मत (५० टन) तक है। इन भीमाकार एकाक्षरीय स्तम्भों को यहाँ, जाने से अपने डिकाने तक जलाई, इन स्थानों पर इनका बड़ा करना और इन पर पश्चात्यों का ठीक-ठीक बैठाना इस बात का प्रमाण है कि भड़ी-हुगुमीन शिर्षों और इबोनियर बारीयरों में किसी भव्य देश के पिलियों में कम नहीं है। इन लाटों के सीधे या अस्त्रहीन पर भीड़ भूमि कला जाने उत्कृष्ट बाद में मिलती है। इन तर और, हाथी, बैल या गोहे को भूतियों बनो होती है। इनमें सारनाथ का शीर्ष शर्वोदय है। इसे कला-मंसको ने भारत में अब तक जाओ गई इस देश की वस्तुओं में बड़ों सम बढ़ाया है। महात्मा बुद्ध के एकेनक ग्रनाइट के स्थान पर इस स्तम्भ की गड़ा किया

गया था। इनके दीर्घ पर चार मिहों की मूरियाँ हैं और उनके बीचे आरो विशाला में चार पहिये प्रमे-चक्र-प्रवर्तन के मूरचक हैं। पहले इन मिहों पर भी एक बड़ा चमे-चक्र था। "सिंह दीठ से दीठ सठाये जारी दिशाओं की ओर दृढ़ता से बढ़े हैं। उनकी भाकुति भवता, दर्शनीय और गीरवपुराण है, जिसमें कल्पना और वास्तविकता का मुन्द्र सम्मिश्रण है। उनके महीने प्रसं-प्रत्यंग समविमक्त हैं और में बड़ी सफाई से गड़े गए हैं। उनकी कहराती हुई लहरदार केसर का एक-एक बाल बड़ी मृदमता और चालता से दिखाया गया है। इनमें इन्हीं नवीनता है कि में आज के बने-प्रतीत होते हैं।" इन मूरियों की कलाविदों ने मुक्त-कठ से भवना की है। निष्ठ ने लिखा है कि 'संसार के किसी भी दश की प्राचीन पशु-मूरियों में इस सुखरुक्ति से उत्कृष्ट या इसके टक्कर की छीड़ पाना असम्भव है।' सर जॉन मार्लोन के शब्दों में "दीनी पर्व निर्माण-निरुद्धति की दृष्टि से में भारत डारा लमूर मुन्द्ररत्न मूरियाँ हैं और प्राचीन जगत् में इस प्रकार यी कोई बस्तु भी जो इनसे बदलार हो।" भारत में स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद इन्हीं मूरियों को अपना राज-चित्र बनाया। रामधूरका (जिं चम्पारन) के स्तम्भन्दारे पर बनी पुष्पमूरि जही रुनीव और भोवत्तो है।

पुहारे—भक्तों तथा उनके गोप दशारथ ने निष्ठाओं के निवास के लिये गुहाएँ को बुद्धाचारा था। ऐसी गुहाएँ गया के १६ भीन उत्तर में दरावर नामक स्थान



दरावर (जिं संघ) में भक्तों की बसावो बोनरामाणे वा पुष्प

पर मिलते हैं। ये बहुत ही कठोरतिया गत्यर (Gneiss) से न बेवज भूमीरथ परिष्वर्म तो काती गई है अपितु दूदाई या वज्रजेप द्वारा 'कीरों की भूति' जमकाई भी नहीं है। महाकुरानी धोप की कला भारती धरकाठा तक पहुँची हुई है।

प्राचीन—गाढ़लिंग भूमि अवशोक ने बहुत ही भव्य राज-प्रासाद बनवाए। ये सात-धाठ शतियों तक बने रहे। पांचवीं शती में फाहिगान ने इनके निर्माण-बीचसे की प्रशंसा करते हुए लिखा था कि ये मनुष्यों के बनाये हुए नहीं हो सकते, इनकी रचना देवताओं ने की है। सम्भवतः ये महेन लकड़ी के थे, अतः दूदाई में इनके जानावरों के घटिरिकत कुछ नहीं मिला।

सातवाहन शृंग

मोरों के पत्ते में गुप्तों के उदय तक की गोच शतियों भारतीय कला के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण हैं। इन समय मोरों, भारहृत, दूद गया, मानवार, महाराजपा आदरायतों और नामार्थ नीकोंका वैविध्य प्रकार की कला-शतियों का विकास हुआ। इनमें पहुँची तीन तो प्रमाणतः चुंगाय (१५० ई० पू०—३० ई०) से सबूद है और योद चुंगाय-सातवाहन (पू०—१०० ई०) से। इन दोनों कालों को एक छहवीं शताब्दी-वर्ष है कि महेन काल में तुक की कोई प्रतिभा या मूर्ति नहीं बनी, उन्हें संबंध वरण, लत, गाढ़का, धर्मवाक, यासन, रामल या स्वरितक के संकेत से प्रकट किया गया। किन्तु दूसरे काल में इनकी मूर्तियाँ बढ़ बनने लगी। दूसरी शतियों यह है कि भारहृत, लोचों और दूद गया के कलाकारों का विषय प्रबन्धित है, उनका उद्देश्य स्तूपों की अवलोकन करना है किन्तु नृतियाँ वासिक न होकर वयव्याधि, प्राकृतिक और प्राकृतिक हैं। इनमें यमेनदेव तो प्रमाणता नहीं, किन्तु लोक-जीवन का सन्दर्भ प्रतिक्रिया है। यह कला बोड़ घर्म के डारा द्यनुप्राप्ति नहीं, प्रशुंख वस समय प्रबन्धित लोक-कला का बोड़ घर्म की धावदधकताओं के प्रत्युमार बदला हुआ करा है।

भारहृत—मध्यभारत के नामोद राज्य में दूसरी ३० ई० पू० के अध्य में भारहृत में एक विशाल स्तूप की रचना हुई। दुर्बोलमय महेन लूप विवरस्त हो चुका है; किन्तु इसे परमे लाली गल्वर की लाहों (पेट्टनियों) का तुज भाग और इसका एक सुनीरथ कलाकला के भारतीय समाजमें नुराजित है। इसमें भारतीय कला में एक नई प्रवृत्ति की गुणता निलंबी है। योगीकलालीग बोड़-कला बहुत गाढ़ी थी, उसमें गम्भीरताओं की प्रवालता थी, किन्तु नहीं कला में तुज के जीवन से सम्बन्ध रखने वाले दृश्यों की प्रस्तुर में उत्तराधा जाने लगा। भारहृत की गल्वर की लाह ऐसे ही मूर्ति-विवर से अलंकृत है। इसमें याद्या दर्जन सौ तुज के वरिष्ठ से सबूद ऐतिहासिक दृश्य हैं और लालीम के लगभग जातक कलाओं का संकलन है। प्रमेन दूसरों में गोमे मूर्ति का विषय लिला हुआ है। यहाँ प्रकार के शृंगों में बेतवन का रान ध्येय-कला ये उल्लेखनीय है। भारहृत कला में पश्चु-नृतियों, नामराज और जलवरों की नृतियों

बड़ी सज्जीव और स्थानाविक है। इसमें केवल भवित भाव के हो सही अधिक हमें उनके भी भले ही चित्र है। भारतके दुर्लभों में बन्दरों की लोगाएँ हैं। एक स्थान वह बन्दरों का दल एक हाथी को गाड़-बांध से जिये जा रहा है। एक वह दृश्य भी कम होनी का सही है, जिसमें एक भयभूमि का दौत हाथी द्वारा सींच जाने वाले एक वह भारी संघासे से उजाओ जा रहा है। भारहृत के चित्र हमारे प्राचीन भारत के सामोद्ध्रमोद्धरणीय लोक-बीचन का वास्तविक दिग्भैर्ण कहाते हैं, उनमें धमेश्वरों के दुर्लभ और निशाचाराद की हल्की-सी भलतक भी नहीं है। कला की दृष्टिं ते, भारहृत की मात्रावाय मूर्तियों आकार और आकाश में दोषपूरण हैं, उनमें वपटागत है, किन्तु समय का में वे उल्लंगातीन घासिक विष्णुगत, पहनावे भार्दि पर गुम्फर प्रकाश उत्तमी हैं।

दुर्द गंगा के भूतिक दग्धिर के लालों और एक छोटी लाल है। यह संभवतः पहली ८० ई० पू० की है। इस पर बने कमलों और प्राणियों के अवलकण भारहृत जैसे हैं; किन्तु उसकी घोषणा अधिक सुन्दर है और पहसुचित करते हैं कि इस समय तक कला काफी उत्तम हो चुकी थी।

सौंचों—यह दुर्द गंगा से भी अधिक उत्कृष्ट विष्णुगता का दौतुप है। इसमें तीर वह सूर्य है और सौंचामालक लाल के कुर आगात होने पर भी काफी अच्छी अवस्था में है। सौंचामालीन प्रथान सूर्य के ५४ फीट ऊंचे पर्वत सोलाकार मुख्य के लालों और पत्थर की भलड है, विशिष्ट के लिए पर्वत है तबा पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में बाह तोरण या द्वार है। प्रत्येक द्वार बीदर फुट ऊंचे दो वर्गकार स्तम्भों से बना है, जिनके ऊपर बीच में से तीनका कामानोदार तीन बड़ेरियाँ हैं। सौंचों में सूर्य की बेट्ठी हो सकती है, किन्तु लालों लोरन भारहृत की भाँति दुर्द-बीचन की तथा जानक दुर्लभों को लिखित करने वाली मूर्तियों ने अलंकृत है। बड़ेरियों पर भिन्न हाथी, सर्वचक बदा, तिरत्व के चिह्न हैं। इनमें विपरीत विष्णुओं में मौह फिरी ऊंठ, द्विन, बैन, गोर, हाथी आदि के दौते बड़ी सकारी और वासाविकाता गे बने हैं। ऐसा श्रीत होता है कि सारा एक जगह मगवान् दुर्द की वपटागता के लिए उपर पड़ा है। अन्ये के लियले हिस्ते में द्वार-रक्षक पद बने हैं। लग्ना पूरा होने पर बड़ेरियों का बीम दोनों के द्विष्ट अन्धर की ओर बीमुखे हाथी तथा बीम बने हुए हैं तथा धातुर की ओर वृत्तवासिनी विशिष्ट या वृत्तिकारी। इनकी भाव-भूमि बड़ी भलोरम है। सौंचों की मूर्तियों और विष्णु मारहृत जैसे हैं; किन्तु इनके विष्णुयों ने भारहृत के मूर्तिकारी की घोषणा विष्णु तथा जलामल कलाना में अधिक प्रोडता प्रदर्शित की है, भनुप्यों की विभिन्न भास्त्रों द्वारा भाव-भूमियों में अधिक सकारी ते विष्णुगत है, इनमें बरत और गुम्फस्त का गे पापाण में जटिन जगायों और भावों को प्रतिविनियुक्त करने का अधिक सामर्थ्य है। भारहृत की भाँति, यह सूर्य भी उच्च समय के सोक बीचन और भग्नकृति का विष्ट-कोपा है।

मधुरा लोली—मधुरा महाराष्ट्र, वाराणसीके नगर तथा कुलाणों की राजधानी होने से इसी की पहली संतियों में कला का एक महान् किन्द मात। गुग्गेकाल में महो

भारतीय को सोक-कला तथा सोची की उम्मत खेली शाद-शाश खल रही थी। कुण्डल-काल में यह एक हो गई। पुरानी कलाओं में कलापाण व्यापिक था, यह इस वर्ष में बहुत हो गया। किन्तु भारतीय के अनियाय (molti) पौर वस्तकरण बने रहे। मधुरा में इस काल की महत्वपूर्ण मूर्तियों मिली है, यह उनका धरण नोड घटीत होता है। में सभी मूर्तियों सोक विली जाते गाल रखादार परचर को है। मधुरा दीनी के पुराने पौर विली दो बड़े भाग किये जाते हैं। पुराने काल की मूर्तियों लगभग भारतीय-दीनी पौर काली भगवत हैं। किन्तु पिछले काल में वे उत्तम परिवर्त हो जाती हैं पौर इनमें एक महत्वपूर्ण नवोगता बुद्ध की प्रतिमा है। बुद्ध की चित्रा मूर्तियों के विषय थी, चिरकाल तक उनकी मूर्ति महीने बनी, भारतीय पौर सीढ़ी में यहो स्थिती थी, किन्तु भक्त भगवान् के वर्णन के लिए छटपटा रहे थे। वे उनकी पूर्णि चाहते थे। मधुरा के बलाकारों में उसे प्रस्तुत करके ज्ञान-शासारण की भाकाला को घुसा किया। बुद्ध की मूर्ति बजने से भारतीय कला में युगमन्तर हो गया, भगवती कई दीतियों तक भारतीय शिली बुद्ध की मूर्तियों द्वारा इस देश के शास्त्रात्मक विचारों की उच्चाम अभिव्यक्त करते रहे।

गम्भार दीनी—विश्व समय मधुरा के मूर्तिकार भगवान् बुद्ध की प्रतिमा बना रहे थे, लगभग उसी समय उत्तर पश्चिमी भारत (गम्भार) में कुण्डल राजाओं के ग्रोस्साहन से वहाँ के मूर्तिकार एक विशेष प्रकार की बुद्ध मूर्तियों बनाने लगे। वे सब प्राणी काले सीट के परचर की बा बुद्ध जूने भगवती की बनी हैं। इस उत्तर की जाकारी मूर्तियाँ अफगानिस्तान, उत्तर पश्चिमी चीमा प्रदेश से मिल जाती हैं। इनका समय ५०—३०० ई० तक मात्रा जाता है। ब्राह्मीत गम्भार देश में विकसित होने के कारण, इन मूर्तियों को दीनी की गम्भार दीनी कहा जाता है। दीनी तोर से देखने पर इनका सम्बन्ध यूनानी कला से बहुत होता है। आइ इसे हिन्दू-यूनानी (Indo-Greco) कला भी कहा जाता है। यूनान को सन्दर्भ का शाविस्तोत भगवत्ते दीनी यूरोपियन विद्वानों ने यूरोपीयों को वसायारण महस्त्र दिया है, प्राच दे दो तीन दशक पहले प्राचीन भारत में केवल इसी दीनी को वास्तविक भारतीय कला दीनी भगवता जाता था, यद्य पहले दीनी को यह भारतीय दीनी नहीं मूर्ति मिल हो जाती है। जि इस दीनी का महत्व प्रत्युक्तिपूर्ण है। इसका परचर्ती कला पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। गम्भार दीनी के भूत तत्त्व भारतीय है, इसमें यूनानी मूर्ति कला की वास्तविकता पौर भारतीय कला की भाग्यमय शास्त्रात्मक अनिवार्यता के सम्बन्ध का प्रबल लिया गया किन्तु इन दोनों के विभावीम होने से वह अप्रकल्प हुआ और वह दीनी स्वयमेव समाप्त ही रही।

गम्भार दीनी की मूर्तियों प्रधानी कई विशेषताओं के कारण भट्ट पहानी जाती है।

इनकी पहली विलक्षणता मानव दरीर का वास्तवकारी दृष्टिकोण से भए हैं। इसमें प्रग-प्रत्यय और मानस-प्रक्षिप्तों को धार्यिक गृहमता और युद्धता के साथ विविध किया गया है।

दूसरी विशेषता यह है कि मूर्तियों को मोटे काढ़े गहनाये गए हैं तथा उनकी सामग्री वडो मृथमता से दिलाई गई है। इस शैली की बुद्ध मूर्तियाँ भारत में प्रमाण पाई जाने वाली प्रतिमाओं से विलकृत भिन्न हैं, ये प्रायः बुद्ध या धीमिस्त्रव की शरीर से विलकृत महो, अव-प्रत्यय दिलाने वाले भीने या अधे पारदर्शक वस्त्रों में विविध करती हैं, और उन्हें शादम्भ मानव के कप में प्रक्षिप्त करती हैं। मूर्तियों के लिए मनुष्य और मनुष्य की तुदि सभी बुद्ध थीं, उन्होंने देवताओं को भी मानव कप प्रदान किया, ते भारतीय देवताओं में वज्रा रखते थे, उन्होंने इन देवताओं को मानव बना दाया। यही कारण है कि युतानी कला वास्तवकारी (Realist) है और भारतीय प्राचीनवादी (Idealist)। पहली भौतिक है और दूसरी प्राचीनतम्। मानवाद दैनी में इन दोनों का सम्मिल्यन था। गत्याद कलाकार की प्राच्या और हृदय भारतीय था, किन्तु वायु शरीर पुनर्नीय था। यह दैनी मध्य शिल्पी दैनी हुई दैन और जागत तक पहुँची तथा इसने उन दोनों की कला को प्रभावित किया। पहले यह समझा जाता था कि बुद्ध की मूर्ति सबसे यहसे इन्हीं कलाकारों से बनाई, भारतीयों ने इसका अनुशरण किया। किन्तु यह यह शिल्पी भ्रमान्तर से चुका है। हम यही देख सके हैं कि मानव के मूर्तियों ने इसका स्वतन्त्र रूप से विकास किया। दोनों में भावों बहार है। पहली प्राचीनवादी है, उसमें भौतिक गौन्धर्य और ध्रग-सौन्दर्य पर धारिक व्याप दिया गया है, दूसरी यादमेंवादी है, इसमें आरोरिक रूपता की अंगमा मूल-मूलक तर विष दीनित दिया जा सकता है।

भारतीयता दैनी—दूसरी शत उत्तरार्द्ध से दक्षिण में कुल्ला जदी के निवासी भाग में पारापठी (Parā पाठी), लग्नापेट और नामार्जुनी कोंडा में एक विशिष्ट दैनी का विकास हुआ। यमराजती में न जेवल स्तुप की बाक या लेण्डनी संगमरम्बर की थी; किन्तु तारा-गुम्बद इसी पट्टर के विज्ञ-कलाकी में बना हुआ था। भारहुत की भौति इसी दैनी बाट मूर्तियों में घोषित हो। किन्तु ये यही की मूर्तियों से कई दूसियों में भिन्न हैं। इसमें बुद्ध को जैवीकों तक मूर्तियों दैनों बढ़ावर से व्यक्त किया गया है, अतः यह भारहुत और शैलों तथा मानव और गायार-कलाओं का संकलित काल माना जाता है। यही युद्ध भ्रमान्तर की शैलः पूट में जैवी नहीं मूर्तियों वहाँ ही गम्भीर उद्दासीन और वैशाय भाव से परिपूर्ण हैं, यारे कहे जातिन प्राचीनों से सुन्दर शैली और प्रसन्न माहसिनी स्विकृत है, दूसरों में बहुत धार्यिक व्यापारा भरने का पल किया गया है, बनस्तातियों और गृहों के विशेषत नामतों के धर्मकरण बहुत मुन्दर है। सारी कला भृति-भाव से घोत-घोत है। दूसरे के वार्त्त-विल के उम्मुक नह जामिकाओं का दूल लहूत मध्य है। हास्तरम्ब की भी कमी नहीं है। ये सा ध्रगुम्बन हैं कि

मन्त्र हजार वर्ग चूट से इस प्रकार की मूर्तियाँ बनी हुई थीं। अलठ लम्पस्पा में अपेक्ष संगमरमर का यह स्तूप बहुत ही नवद रहा होगा, एवं अधिक सौ वर्ष पहले जूना बनाने के लिए इसका बहुत बड़ा भाग कुछ दिया गया।

युद्धर जिसे मैं ही नामाङ्कुर्ती की नामक स्थान पर एक अन्य स्तूप मिला है। इसका नाम यमराजती-वैष्णो उत्कृष्ट नहीं। कुछ जन्म का एक सुन्दर दुष्प्र मही ने मिला है। इसकी तथा यमराजती की मूर्तियों पर कुछ रोमन प्रभाव है।

मात्राहर युग की बास्तुकला प्रणाली पहाड़ों की छटानों में काढ़ी हुई गुहाएँ हैं। इनके कानूने की पद्धति तो यांत्रिक के समय से बुक ही गई थी, किन्तु उस समय तक वे तांदे करने वे, अब इन्हें स्तम्भ-अविलयों तथा मूर्तियों से अलगृहत किया जाने लगा। मैं प्रायः वो प्रकार की होती थीं, जैत्र और विहार। जैत्र तो उपासना के लिए सुन्दर मन्दिर या घोर विहार विज्ञायों का निवास-स्थान। जैत्र एक बायताकार स्थृप्त मा बड़ा हाल (Hall) होता था, इसमें दोनों ओर दो स्तम्भ-अविलयों और अन्दर अद्वितीयां गिरे पर एक लोटा-ना स्तूप होता था। बामने की दीपार और दरवाजों पर चित्र लगे होते थे। विहारी में एक केन्द्रीय हॉल के चारों ओर कोठरियों होती थीं। जैत्र-युगाएँ जाते, कहेरी, भाजा, नामिक आदि स्थानों पर महाराष्ट्र में पाई गई है। वही इन्हें 'सेप' कहते हैं। इनमें खेतों सुन्दर बाजानेलगा है। उड़ीसा में इन प्रकार की गुहाएँ सुम्माने कहलाती हैं। मैं उच्च जैत्र-मन्दिर हूँ।

मात्राहर युग में कुछ स्तम्भ भी बने। इनमें दूसरे यती हैँ दूँ प्र कलिया के पाप युमानी राजदूत हेजियोदोर डारा चवापित महाध्यज स्वर्ग अधिक प्रसिद्ध है। किन्तु इन स्तम्भों ने यांत्रोक्तालीन चमक नहीं। इन बाज में पिछले युग की भारतीय सुन्दर पश्च-मूर्तियों भी नहीं थीं, किन्तु इन काल की सबसे बड़ी देव युद्ध की मूर्ति सभु अन्य भाजतीय मूर्तियों और गुहामन्दिर हैं।

गुप्त युग

गुप्त युग में भारतीय कला अपनी गताकाला पर पहुँच गई। हमारी कला के वर्तमानिकाल के घटनाएँ के भित्ति चित्रों-वैत्ते अनेक सुन्दर उदाहरण इसी युग के हैं। अनेक मूर्तियों को लापना के दायः इस समय सक भारतीय चित्रियों का लाप लगा। सध-भया का किंवद्दि चित्र वस्तु गा लिया को लेने उसमें जान याल देते हैं। उन्हीं मूर्तिकलित शैलेय-नाचना, परिभावित एवं द्वीप कलमना तथा अद्भुत रचनाएँ दीजते हैं। वे अपनें दूसरों में आदर्श का काम होती रहीं। गुप्त कला में न तो पिछले कुआल युग की प्राकृतिक विद्विकता है और न गरवती मन्त्र युग की प्रतीकात्मक अमूर्त भावना। इनमें दोनों का संयुक्त और सामंजस्य है। कुआल-मूर्तियों के पारदर्शक परियान का सध्य शरीर के नम्न तौदर्यों को प्रकट करता था,

गुप्त काल के भीमे वर्ष में यह आवरण बालने लाले हैं। गुलों से न जै कला अस्तक रूपों की अधिकता है। इनके भार से कला दबी जा रही थी। गुप्त विलिनी ने इसे कम करके कला को अधिक सरल और सजीव बनाया। उनका प्रयत्न उद्दृष्टि कला द्वारा उच्चतम आध्यात्मिक भावों की अधिकाक्षी और इसमें वे गुण रूप के सफल हुए हैं। इस द्वारा यिन्हें मृद्गुर भावोंका द्वारा उच्चतम आध्यात्मिकता, सामीक्षा, रमणीयता, नालिन, मानुष, ओज और साक्षीता की दृष्टि से गुप्त कला अद्वितीय है।

गुप्त मूर्ति-कला की कलाएँ बड़ी देन बोहे तथा पौराणिक देवताओं को आदर्श मूर्तियाँ हैं। यासनाथ और मधुरा से दुड़ की अनेक प्रतिमाएँ मिलती हैं। और फट्टी विले के देवघान मंदिर से निज, विष्णु आदि हिन्दू-देवताओं की। इनमें यासनाथ और मधुरा की दो बुद्ध-प्रतिमाएँ तो भारत की मूर्तिनों में सर्वशेष लम्बी जाती हैं। इनमें आध्यात्मिक भावों की वित्तनी मुन्द्र योग्यतित हुई है, वैसे इनमें बहुत कम देखने को मिलती है। इनमें उनके उत्कृष्ट मुखमण्डल पर अपूर्व प्रभा, कोमलता, गम्भीरता और साति है। मधुरा बालों मूर्ति में कहाना और आध्यात्मिक भाव का मूर्ख सम्मिश्रण है। गुप्त धूम की एक बड़ी विशेषता यह है कि इसमें दुष्कृत और भावपत्र में संतुलन है, आध्यात्मिक अभियांत्रण के साथ-साथ भीन्द्रं पुढ़ि और समानुग्रह का गूरा ध्यान रखा गया है। बाद की कला मानुकता की प्रधानता और इतकारनों के प्रचलन से एकांगी ही बदली है।

विवरकला—गुप्त कला केवल धार्मिक भावों की अधिकारकला तक ही सीमित नहीं थी। धर्मनाट्य के विलिनियों से यह भूमो-भूति जाग लोटा है कि भारतीय कलाकारों ने मानव-जीवन का बोहे लोक घटकों नहीं लोहा पा। यहो हमें भारतीय विवरकला के वैद्यनम और लकड़ीतम कला से उत्तम होते हैं। तथापि इनका विषय धार्मिक है, प्रधानादा विश्व विवरकला के भावों से बोहे-दोहे हैं तथापि सामाजिक और भूर्याचर जगत् के सभी पहलुओं की यही वृक्षी वृक्षी है। एवरना के विचों में ऐसी, कलाना, प्रेम, कोह, यज्ञना, हों, उत्ताह, चिन्ता, धूला आदि तभी वृक्षाद के भाव, प्रधानादा अवलोकितेश्वर, प्रधानादा वपस्ती और देवी-देव उत्तर के मानव-भेद, यमादि-सम्म दुर्द में प्रणष्ठ-जीवों में रस इन्द्रि और शूलार में जगी नारियों तक का सकल मानव-आपार अवित है। धर्मनाट्य से विचों की यह वृद्धिपत्रा आदर्शनाय है।

अवरना में लोम प्रकार के विक्ष हैं—मत्तकरश्वर्यक, अवित विक्ष (Porterinita) तथा अठनाटनक। सजावट के लिए अवरना में आपार, वर्णनपार, एवारपार, तुण्णी, पंडो; प्रधुमों की मातृतियाँ दसी हैं। इनके धर्मनाट्य में है और कोहे एक विक्ष—इन दुवारा नहीं योहराया गया। लिका शवल मरते के लिए, अस्त्राधारों गनवर्णी, यशों

की मुन्द्र मूर्तियाँ हैं। व्यक्ति-विचारों में पद्मपाणि धर्मलोकितेश्वर न केवल भारतीय



बालाजी का एक भित्तिचित्र



पद्मपाणि धर्मलोकितेश्वर

किन्तु एवियासी विचाराका मुन्द्रतम उदाहरण समझा जाता है। वर्णामक

चित्रों में जातवारे के दृश्य हैं। इनकी भाव-वर्जना जैसे अवस्था के चित्रकारों ने बहाल का बोलबल देखाया है। सोलहवीं शुद्ध की 'स्थियमाला राजकल्पा' के दृश्य की चित्रकला प्रभृति गारांचालय आलीचकों ने सुखत कंठ से ब्रह्मचा की है। विकल्पता और कल्पता के भावों की दृष्टि से कला के इतिहास में इससे बढ़कर कोई उत्तरहट नहीं नहीं। एतोरेसनियामी चित्रकार इसका घासेस्थन (Drawing) अधिक बच्छा कर सकता था, वैनिस का कलाकार इसमें अधिक अस्त्वा रंग जासकता था, इन्हुंने इस दोनों में से कोई भी इसमें अधिक भाव नहीं भर सकता था। शूद्ध महाभिनिष्ठमण (शूद्धतामण), भास्त्रविकल्प, यशोपरा द्वारा भ्रह्म की भिक्षा कल में देने के दृश्य वहें हृष्ण-शाही हैं। सर्वनाश का सदेश देने वाले शूद्ध के चित्र में चित्रकार ने शूद्ध रेखाओं द्वारा उसके हृष्णत भावों की सूचदर अभिव्यापित भी है। उत्तरा उत्तरा नेहरा, जहाँ नेप और ह व वे मुद्रा हीं जैसे दृष्टिनाम की भूतता दे रहे हैं।

शूद्धनाम-जैसे चित्र-बाप (भावी पर राज्य) वित्तनवासित (पृथि, कोटी) तथा लिंगिरिया (लका) में भी मिलते हैं।

शूद्ध युग की एक बड़ी कला शूद्धमूर्तियाँ और वकाई मिठी के फलक हैं। इनका सौन्दर्य और स-वैकल्प भावनु की भूतियों से भी बहा-बहा है। इस कला का एक सूचदर उत्तराहरण यांत्रिकी-मस्तक है।

शूद्ध युग की बास्तु कला भूति या चित्र कला के समान उभरत न थी। इस समय के प्रथम मनिदर भूमण (नागोद), तत्त्वनाशकूर (ध्वन्यगड) तित्तरस्योत्र (कालपुर) और देवगड (भोंसो) में मिलते हैं। वे बहुत बोटी और बिलकुल साँवे हैं, इनमें गिराव या कल्पणा के बाहर विद्युते दो मनिदरों में ही मिलता है।

मध्य युग

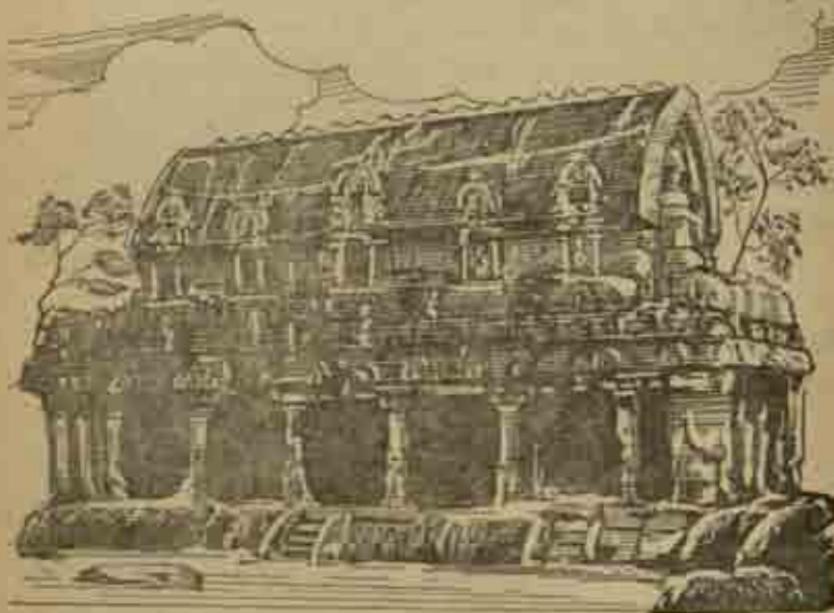
मध्य युग की भारतीय कला की सबसे बड़ी विद्युता बास्तु का विदेश विकास है। इस युग में बास्तु कला की विभिन्न वीनियों का विकास हुआ, स्वयंसा तथा विदेश में भवा मनिदरों का विस्तृत हुआ। इस समय बस्तुतः भारतीय भूति और स्थानात्मकता यहाँ सबसे मनोरम का में प्रकट हुई। उसमें शूद्ध युग का यो और नवीनता की नहीं रही, किन्तु नामिताप बहुत बढ़ गया। मध्य युग को वहे भासा में बोटा जाता है—पूर्व में काल (१००-६००) तथा उत्तर बज्जल काल (६००-१२००)। पूर्व मध्य काल में कला याप्ति उपर्युक्ती वाले करते थे, किन्तु दूसरे बाल में बज्जल करते थे पर बहुत बज्जल दिया जाते रहते। तथावाद के प्रभाव से कुछ बनानों पर अवर्गीय भूतियों को बनानवाला विनी। भूतियों एवं मनिदरों के विभिन्नों में प्रतिवेदी पुरानी भौतिकता बहुत ही मात्र, वे पुरानी भौतियों का प्राप्तन वर्ति हैं, अपनी इच्छायों को अधिक-से-अधिक विकसित कराने का वास्तव करने जाते। “यह भीन्दर्ये भी मिन्न जमलकार का युग है। इसकी भूतियों में कला नहीं, कला-भास है।” विकल्पता भी इस काल में लाप्तोंपुर्व हुई और इसमें आपन्नत वीरों प्रधान हुई।

वास्तु कला की दृष्टि से इस कला के मन्दिरों के दो बड़े भेद लिये जाते हैं। उत्तर भारतीय और दक्षिण। इसका प्रथम अन्तर विश्वर-विश्वम् है। पहली दोनों में देवता की मूर्ति बाले गर्भशुद्ध की छत ठोस, बर्वेलालमक (Corvillineur या परसीलार) दूसरे की तरफ हीमी है, जो ऊपर की ओर छोटा होता चला जाता है। इसके ऊपर भास्तुक होता है और इस पर कला और व्यवहार स्थापित किया जाता है। दक्षिण-दोनों के मन्दिरों में गर्भशुद्ध का ऊपरी भाग या विमान चीजों तक तक नहीं होता है, प्रत्येक ऊपरी भाग से निचली से कुछ कीटों ही जाती है और इसको मार्गति विश्वमिह के सदृश होती है। इसके ऊपरी सिरे पर गोप पत्तरों की टापी होती है। विमान को इस विभिन्नता के प्रतिरिक्ष दक्षिण मन्दिरों में गर्भशुद्ध के घासे मध्य पर अनेक स्वरूपों वाले होते होते ही तका मन्दिर के दोरे के एक या दोषिक द्वारों पर एक बहुत ऊपर अनेक देवी-देवताओं की मूर्ति बातों द्वारा भरता है। यिन्होंने विमानों तथा गोपुरों को मूर्तियों से कुछ अलंकृत किया जाता था। इस कला के साथ दोनों के मन्दिर लिम्बाशुद्ध भव्यनेत्रर (उडोसा) तथा लकुराहा (माम प्रदेश) में हैं, इनमें से अनेक ऊपर से नीचे तक विश्व प्रकाश की प्रतिमाओं और अनेक ऊपर से मूर्खामिह होते के नामण अलबन्त भव्य हैं। दक्षिण दोनों के मन्दिरों में मामल्लपुरम् (विश्वालाट विले में महाविश्वपुरम्) कोवीवरम्, इलोरा, तबोर, बेलूर तथा व्याप्तमेत गोला (वि. इसन में सूर राज्य) और ओरंगमढ (विश्वनामली) वस्त्रेवमोप है। उस ऊपर में वास्तु तथा मूर्ति कला का अभिन्न सम्बन्ध होते से दो ओं का साध-साध बर्णन किया जायगा।

पूर्व मध्य कला (६००-६०० ई०)—इस युग की मूर्ति कला की प्रधान विश्वता वटनाग्रों के बड़े-बड़े दृश्यों का सकल अकृत है। नातवाहन तथा मुख्य तुमों में वटनाग्रे वकूफ महूचित विश्व-पत्तरों पर उत्तीर्णों की बाती थी, यह भास्तीप्पे ने उक्त ऊपर जहाँ मन्दिरों के लिए पहाड़ काटने शुरू कि, वही दूसरों ऊपर दृश्यों के अन्तर्माले लिए सौ कुट ऊपरी विश्वाल लटाने लगी। इस समय तक उम्मा शुष्क चूपा था कि उनकी लेसी ने दर्गा-भाइयासुर युद्ध, विव तथा विमुरदाह, रावण द्वारा कैतार के उठाने-जैसे बड़े-बड़े दृश्यों को काढ़ी गति, अभिन्न और सजोकाला के नाम तथा शाह है। इस युग के तीन प्रधान मूर्ति-केन्द्र उत्तेजनीय हैं—(१) मामल्ल-पुरम्, (२) एलोरा (३) एतिहाय।

१. मामल्लपुरम्—नलिक राजा महेन्द्र वर्मी (वि. ६००-६२५ ई०) तथा उसके पूर्व नरसिंह वर्मी ने (वि. ६२५-६४० ई०) दक्षिण में कांची के साथने, इस स्थान पर समुद्रनह पर एक-एक छटुम से कटवाकर विश्वाल मन्दिर बनाये। इन्हें 'रथ' कहा जाता है। ये समार की यद्यपि वस्तुओं में हैं। इनमें से सात रथों (मन्दिरों) का एक समूह सात गोलों के नाम से विद्व-विश्वाल है। इनके नाम पाण्डवों के नाम पर भव्यराज रथ, भीम-रथ आदि हैं। विश्वालकाम लटानों से काट जाये ये व्यक्ताशमीय मन्दिर पत्तरों की बास्तु और मूर्ति कला के वर्षीयम-उदाहरण हैं।

यह समरण समवा चाहिये कि वैसे हुमें उसके भारत में भीसंग्रह में भूत को पूर्व कला गवाए रहने अत्यन्त उल्लङ्घित क्षमा में मिलती है, वैसे ही वर्षाय भारत



मातंगेश्वरम का एकाल मन्दिर

या शृण्य-दिन्दि इन भगिरथी ने शर्वप्रभम प्रौढ लग में दिलाई देता है। यह कई शतियों के विकास का परिचाम है, इसके शारीरिक उदाहरण तकारी पर बने होने से जट ढो चुके हैं।

मातंगेश्वरम के 'एष' शब्दों वीलों के लाई लगडों में ऊपर उठो हुए भगिरथी के प्राणीमत्तम उदाहरण है। इस प्रत्येक भीलों का लाल में न केवल लम्बे दिलिख भारत, किन्तु कृष्णार भारत के जापा, कम्बोडिया, चनाम आदि देशों में प्रचार हुआ। मातंगेश्वरम की शृण्यों ने महिलानुर में पुज करायी हुई दुर्गों की प्रतिमा में वर्षी भूति और सबोचता है। यहसे आश्वर्वदनका मूल भगिरथ की तपस्या का दृश्य है। यह ६० कृष्णनम्बो, ४३ पूट भीली विशाल लड़ी चट्टान पर लाठी गई है। कंकाल-मरकायिलट भारीराह मंगा के भूतज पर भवतारण के लिए सप्तस्या-मन्त्र है, पारा दिल और धार्वद—रहो वह कि बन्धु-कर्गत उनका माय दे रहा है। यह विशाल दमाको-तापक दृश्य बहुत ही सावधान थोर लास्तविक है। उपर्युक्त दृश्य भीर रथ एकलव लड़ा की उड़ान्ताका की भगव जोगि-नवाका है और द्वंद्वक इन शिल्पियों के विस्मयान्तर लोधत को समझा किये बिना नहीं रह सकता।



प्राचीनकालीन कृष्णाकृत स्तम्भ शोरण, (३२० च० ८० फ० प०) राजपुरवा
(मिहार) ने उपलब्ध (प० १०१)



भाद्रकली के स्तूप का एक दृश्य (पृ० १८६)



भाद्रकली में चुल्ह की उपस्थिति का एक दृश्य (२०० फू० पू०) (पृ० १८३)



भारहृत स्तूप पर उत्कीण राजकुमार बेन के उद्यान को
वरोदन का दृश्य (रुपी म० ई० प०) (प० १०३)



भारहृत स्तूप पर उत्कीण बृह की माता महामाया का
स्वप्न (रुपी म० ई० प०) (प० १०३)



बामरस्थानियी यक्षी दीवारमण्ड, पटना
(२०० ई०५०) (७० १६३)



भारद्वात स्तूप पर उल्कों में खेड़ी की मूर्ति
(२०० ई०५०) (७० १६४)



ग्रनाइट से मुशोनित पांचती गम्भीर अहिन्दूता
बरेली से प्राप्त (इती ८०८०) (७० १६०)



भगवान् राम की कास्त्र प्रतिमा (११वीं शत. ई०) (ए० २०१)



दिल्ली में भारतीय संस्कृति के प्रसारक
महर्षि वसुस्तव(चिदनवरम्) (१२वीं शत.ई०)
(पृ० १६८)



प्रजा पारमिता (१२वीं शत.ई०)
(पृ० १६८)



शोणमलेश्वर(मेसूर) के मन्दिर का
बाहरी भाग (१२वीं शत.ई०)
(पृ० १६०)



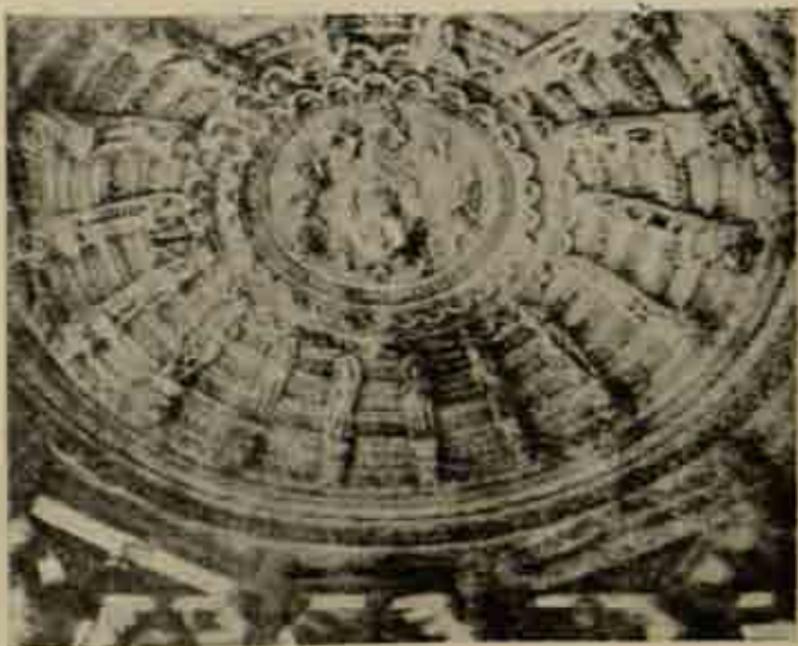
सारनाथ की चूडमूर्ति (ग्रंथ १८०)



राजस्थान लोल द्वारा तंजीर में चमबाया बृहदेश्वर का मन्दिर (१०वीं ई.) (पृ० १६३)



पारापुरी (एलिफेंटा) की चिमुर्ति (१०० १६०)



देलवाड़ा (भावु) के लेनमन्दिर में संस्कृतमर्म की नक्काशीचाली छत (१०३ १६०)
(१०० १६६)



बच्चे को दूलार करती हुई मा (मुवनेश्वर, उत्तीसा इलाई गा. दौ.)
(पृ० १९६)



पश्चिमी हड्डी नारी (भुवनेश्वर, उड़ीसा, ११वीं शताब्दी) (मृ० १९६५)



भुवनेश्वर के मंदिर [१० शताब्दी]



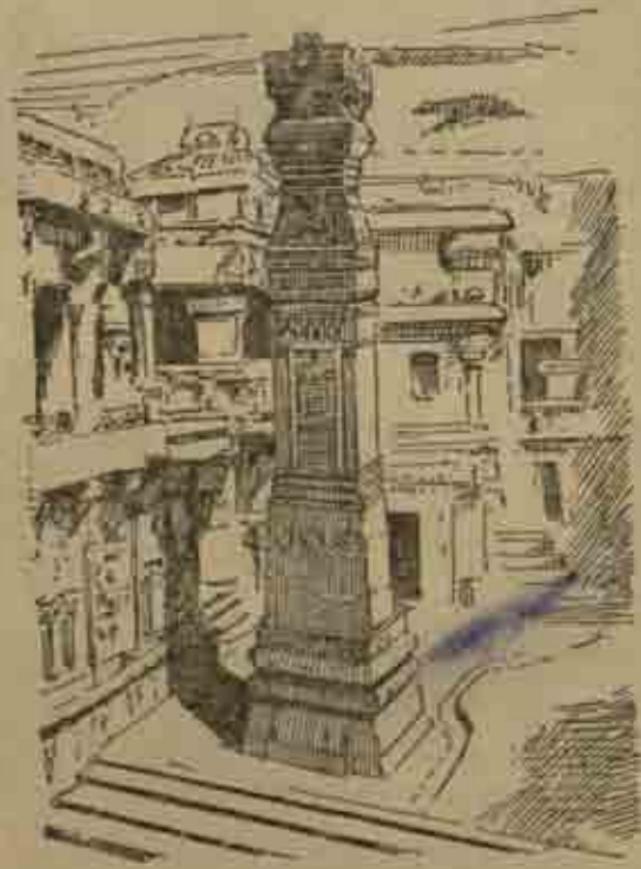
कौताल के रथ का विशाल चक्र (पृष्ठ १८५)



जलीरिय की व्यवसा (महाराष्ट्र)

२. एसोरा (बेलन) — महाराष्ट्र में जोरावार ते सोलाह गोल पर एक गुड़ी-गुड़ी गहाड़ी को काटकर मनिदरी में परिचालित कर दिया गया है। इसमें गच्छी-गोल हिन्दू, बोद्ध सभा वैष्ण मनिदर हैं। इनमें राजदूत राजा डूर्गा (१८०-१९५ ई०) द्वारा सन्तवापा हिंतांग मनिदर मध्यसे विशाल घीर भव्य मनिदर है। १८० कुट डैन, १८२ कुट लखे, १८३ कुट लोडे देश में डाँडे, खरोली, मीडिंगी भुन्दर लालभ-वालमों में युक्त यह विशाल मनिदर एक ही गावर का बना हुआ है, इसमें लड़ी-घोड़, लम्ब-मसाला या छोप-काठा भीही है। इसे बनाने के लिए पहाड़ गिरा काटकर उभड़ घोखली की गई, यह २३० कुट गहरे धीर और नीचे गहरे स्थान से बाल-गाम के पहाड़ में पूरक है, जिसके बीच में जायुलत मनिदर या मिनीय कर्के तिलिनी ने जो कुति प्रसूत की है, वह मनव के थार, लालभ-वाल घीर कामा का उल्लंघन उदाहरण है। बिना किसी भवाने के दूधजाहो इमारत वरामा बालमा बाल विशाल कार्य है, इसके ऊपर देशकर दोतों-तने उनसी दशा लेता है और इसके विरहीन

अम्भात कारीगरों के बागे नह-मस्तक होता है। नौसास-मन्दिर को काटने हुए कारीगरों ने बमालीक पीरायिक दृश्य भी खोला किये हैं। इनमें नूसिहापतार का दृश्य, शिव-पार्वती का विशाह, इन्द्र-हनुद्वाणी की मूर्तियाँ, रामण डारा की लालास का उत्तोलन वहो मुम्बर, चिमात, भावपूर्ण और धोजस्वी दृश्यही हैं। अनिम दृश्य विशेष रूप से चर्सेलनीय है। रामण कीलास को उठा रहा है, भय-बस्त वालेंटी शिव के विशाल



शिव कीलास मन्दिर

भूजन्दण का धारनमढ़ से रही है, जिसकी भाव रही है; जिसकी शिव भवत है, जहांके चरणों से जीवाय को इकाइर राखन का धराम विकल कर रही है।

३ भारतपुरी (एलिकोटी) — यहांहै ऐसे छ: योग हुए धारणाएँ गामधाराएँ में दी जाएं परंतों के ऊपरी भाग को काटकर मन्दिर और मुरियों कोड़ाई रही है। इनका समय आठवीं शती है। यहों की शिवायामों में महालक्ष्मी की प्रवाहन विमूर्ति, विवतांडन तथा शिव-पार्वती-विशाह का दृश्य बहुत ही भव्य है। यहलों के मुख-भृष्टल पर धूपधूंप, प्रशान्त गम्भीरता है, दूसरी 'यथा धैरो विवाहस्थो' की आदान समाप्ति भवस्त्रा-

की भव्यतम अभिव्यक्ति है और तीसरी में पांचवी के शाल्मण्डर्पण का आप वही सहजता से दिखाया गया है।

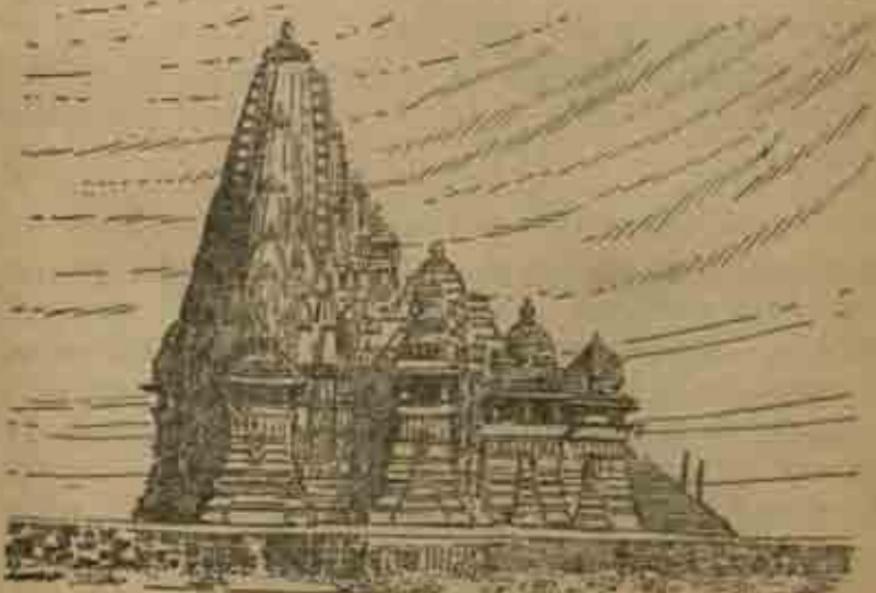
चाठवी जाती में ही जगत में शिल्पद्रव्यों ने बोरोबुदुर का असिद्ध सत्त्व-विस्तार किया एवं भव्य मन्दिर बनाया, जिसे खानुमिक कला-मर्मज्ञों ने पश्चिम में तराया हुआ महाकाष्ठ कहा है। इसको गैलरियों में काँतकों के तापा बृद्ध की जीवनी के अनेक दृश्य बने हुए हैं। इन सबको एवं एक गवित में रखा दिया जाय तो वह तीन सौ लाखी होगी। इसमें आमित और आधारात्मिकता का अनुपय सौन्दर्य है। दक्षिण में नटराज की असिद्ध मूर्तियाँ इसी समय से बनने लगीं।

चाठवी जाती मामलाबुद्धम्, कैलाश और बोरोबुदुर-जैसी शमर कलाहुत्तिष्ठा पैदा करने के कारण मारतीय कला के इतिहास की स्वरूप जाती है। इसके बाद कला में धीरणता घाने लगी।

उत्तर भूमि में बास्तु के पांच केन्द्र उल्लेखनीय हैं—

(१) खजुराहो, (२) राजगुलामा, (३) चौपाटा, (४) चोल राज्य, और
(५) होमशल राज्य।

खजुराहो—इसकी जाती में बनेत्र चाहायों ने गव्यभारत के शतरुद्र जिसे (कुन्देश्वरपट) में खजुराहो का प्रसिद्ध मन्दिर-समूह बनाया। इसके भव्यतम मन्दिर



खजुराहो का कर्त्तव्यात्मक मन्दिर

राजारथ (१५०-१८० ई०) के बान शीर श्रीमाहन का था। इसमें सबसे मुख्य शीर

प्रधान बंदरीयनाथ महादेव का विशाल मन्दिर है। ११५ पुठ ऊंचा, विशाल कुमी और जारी चतुरे बातों यह मन्दिर अपने कमया छोटे होते हुए विश्वर-मूर्तियों से चतुर भव्य मालूम होता है। प्रथमित्रा गम में सुन्दर स्त्रीम-पोक्ता है। मन्दिर का कोई विश्वास नुच्छर मूर्तियों तथा अलंकरणों से रहित नहीं है। उस समय हिन्दू धर्म में तन्त्र की प्रथाएँ हो रही थीं, उसके प्रभाव से यहीं कामत्वकम्बलनी भइसील मूर्तियों भी काषी शश्वा में पाई जाती है। भारतीय मूर्तिकला में शूगरिकता से मार्यज्ञ और लोची के काल से यहाँ और वृत्तिकार्यों के प्रकृति में जली वा रही थी किन्तु अप्रतीक्षित नहीं थी। क्या इसी गुण में युक्त हूँ।

राजपूताना—इस गुण में धृति शब्दकार-प्रधान लोची की प्रशाकाण्डा राजपूताना और शुक्रान् ने मिलती है। इसका सर्वोत्तम उदाहरण यातू वर्तं पर देवताओं के पास दो लंग मन्दिर हैं—पहला विमलदाह नामक वैष्णव में १०३२ हि० में तथा दूसरा लेखपात्र ने १२३२ हि० में बनवाया। लोचों में लोचे से ज्वर तक संगमरमर लगा है। इसमें वृत्ति पत्तकरण की इतनी अधिकता है कि मन्दिर का एक चूपा भी लानी नहीं होता गया और इन पत्तकरणों में बहुत अधिक पुनरावृति का दोष है, तथापि इसकी विस्तार लालिया, पुतलिया, बेल-नूट और नक्काशियों देवतकर दर्ढक देग रह जाता है। “सगमरमर ऐसी बारीकी से तराशा गया है, मानो किसी कुआन सुनार ने रेती में रेत-रेतकर धार्घपण बनाये हैं या यों कहिये कि कुमी हुई जालियों और भासरे उपरा गई हैं। लोचों की मुन्द्रता का तो कहना ही क्या ? इनमें बनी हुई भूत की भाव-भग्नी लाली पुतलियों और सर्गोत्तम-लालियों के सिवा औच में सगमरमर का एक भाव-भी बटक रहा है, जिसकी एक-एक पत्ती में कटाय है। यहाँ पौधों पर ऐसा मरीत होता है कि हम अद्यत स्वान सोक में आ गए हैं।” इनकी मुन्द्रता बहुतविवाहित तात गे बहुत अधिक है।

उडीजा—इस प्रान्त में यसके नाम ने बने भव्य मन्दिरों में पुरी का बगलाय नाम का मन्दिर, कोणाकों का सुर्य मन्दिर और भूवेश्वर के मन्दिर प्रधान हैं। कोणाकों का देवात्मक रघु के लाकार का है, इसमें बड़े विशद् गहिरे हैं, इन्हें बड़े बलवदार घोड़े लोच रहे हैं। इस सबको इनकी विनाशता और अलंकरणबहुतता ने बहुत भव्य रखे गतोऽस बना दिया है। मन्दिरों का कोई कोसा या चम्पा खानी नहीं छोड़ा गया। “इनमें लालिका-भव और लाग-कमरायों की बड़ी सुभग मूर्तियाँ बनो हैं, किनके भीते मूल धर से व्याप्त होती ही होती। पहले विलासी हुई नाये की मूर्ति ती भाव-भग्नी बड़ी गतोऽस है। कई मूर्तियों से लातू-ममता की बड़ी सुन्दर यमियाँचि हुई हैं। माता पापने लिया जा नाह करने से माली अपने हृदय को निकालकर धर ऐसी हुई अकिञ्च की गई है।” यही भी अलंकार मूर्तियों की भरभार है।

भोज कला—इधिय जाति में लक्ष्मी के लाद घोलों में इसी दशी में अविह लोची की विकसित करने के परिपूर्णता-तक पहुँचाया। इस लोची का एक सर्वथेष्ठ

उदाहरण राजराज महान् द्वारा तंबोर में बनवाया हुआ बृहदीश्वर का महान् शैल मन्दिर है। इसका विमान पा लिलार १ मिलिना और १६० कुट ऊंचा है, इसके कारण एक ही प्रसार-क्षेत्र का भीमकाय मुख्य है, कहा जाता है कि इसे मन्दिर के कारण साथ शुद्धकालीन वासने के लिए ४ भीत लम्बी मालक विशेष कृपा में बनाई गई थी। यह विशालकाय देवालय ऊपर से नीचे तक मूर्तियों द्वारा घटकरणमें तुरीयित है। चोल कला की प्रधान विशेषता बृहद्वयुक्त भव्यता है। भीमकाय मन्दिरों को घटात्मिक परिवर्तन से अत्यन्त सूखम् तक्षण से अलंकृत किया गया है। इस विशेष में फौरूसन ने ठीक ही लिखा है कि चोल कलाकार अपनी बास्तु का प्ररक्षम् दातानों की-जैसी विशाल कलामा से करते ही और उसकी पूर्ति बौद्धियों की भाँति घरते हैं। चोल कला वो एक वही वेन प्रस्तरीय पूर्णों में गोपुरम् के मन्दिर का विशाल प्रवेश-द्वार या। धीरे-धीरे इनका आकार और रूपना बड़ने लगी और वे मन्दिर के गम्भीर के शिखर से भी ऊंचे उठने लगे। कुम्भकोणम् के गोपुरम् ने प्रधान मन्दिर की विस्तृत दर्शा दिया है। गोपुरम् के अधिरित इनकी दूसरी विशेषता स्तम्भ धूमितियों वाले विशाल मण्डपों या हाउनों की थी। सब गुण के बाद वसे महुआ, धीरम् और रामेश्वरम् शादि मन्दिरों में इन विशेषताओं का यूर्यु विकास हुआ; उदाहरणात्मक महुआ के भीमाकाय मन्दिर का मण्डप ३५ लम्बों का है और सब लम्बों पर अद्भुत नकारात्मी है।

होणित कला—२१११ ई० से मैसूर में होणित पाइयी था एक वंश प्रबल हुआ। बारहवीं-तेरहवीं शती में इन्होंने एक नये इकार की बास्तु-कला का विकास किया। गम्भीर। इन्होंने अपने रीढ़ पूर्ते वास्तव गंगों को कलानगरमन्दिर को आप बनाया। गंगों के वास्तव में है है १६० में एक मन्दी चामुण्डायन में वर्षम् बैलोंला की पहाड़ी पर अत्यन्त कठोर काले गिरजे के एक ही लकड़ से बनी ५३ कुट ऊंची (५ कुट के गारमा से ६३ गुण) गोमतेश्वर की प्रतिमा स्थापित की। विशाल-कोशल की छठिनामा शीर कलामा की विशेषता की दृष्टि से धुमिया की दृग्य कोई मूर्ति इसके आगे नहीं टिक सकती।

होणित राजाओं ने भी अपने बास्तु में इन्हीं विशेषताओं को बताये रखा। इनके मन्दिर वर्गीकर नहीं, किन्तु तारकाहति या बहुकांगित हैं। इनकी दूसरी विशेषता दृढ़ी कृमियों या शाधार है। इसमें विशेषियों की मूर्तियों वालाने के लिए जगह मिल गई है और इन्होंने इसका गूरा उपयोग किया है। गिरजे विशेषित-कार हीने हुए भी काफी नीचा है। इस बास्तु दृली का सर्वोत्तम उदाहरण हालेविदा पा दोरमसुट का होणितेश्वर का विशेष मन्दिर है। यह पाँचन्तः कुट की चट्टारे पर बना है, चकुतरा बहु-द्वारे विशालकलों में बाढ़ा गया है। इस पर अपर से धीरे तक ३१ घरकरण-पट्टिकाएँ हैं, जो ३०० कुट लम्बी हैं और सभूते मन्दिर को ले रहे हैं। इसमें शामियों, खिरों, शुद्धशब्दों, दिव्य पशु-नारेबों की मूर्तियों डाली गयी हैं।

उदाहरणार्थ तबसे विषयी घरकरण-बहुता (Bhutaa) में दो इवार हासियों का मजाकहो और भूतों के ताथ सफल एवं सुन्दर बनते हैं। इनमें कोई भी को हाथी-

एक दूसरे से मही मिलते। इस मन्दिर के सम्बन्ध में रिपोर्ट की यह विज्ञप्ति गवाई है कि यह विद्यालय वैदेशीय सान्देश जाति के घर का धर्मयन्त्र आश्रयजनक मन्दिर है। इसको मुन्दर कारीगरी ने काम को देखते-देखते अपेक्षा तृप्त मही होती। मेकाडामन ना भवत है कि समस्त संसार में शायद यूनान कोई मन्दिर ऐसा न होगा जिसके बाहरी भाव में इस प्रकार का अद्भुत गृहार्थी का काम किया गया हो। १३१३ ई० में युस्ताम शायदमण के कारण यह मन्दिर अधूरा रह गया।

प्रहलाद भारत का बास्तु—इन युग में स्वरेता में ही ही, अग्रिम विदेशों में भी बड़े मन्दिर गिर्नु-मन्दिरों का निर्माण हुआ। कम्बोडिया में अंकोरवत् और अंकोरवाट के विद्यालय पर्याप्त मन्दिर बने। पहला मन्दिर वर्गांकार है और इसका प्रत्येक गार्ड एक भीत नम्बर है। इसकी दोनों भारतीय मन्दिरों से विकल्प मन्दिर निष्पत्ति है। इसमें कमाया एक दूसरे से उन्हें हुए और छाँड़ होने हुए अनेक गढ़ होते हैं। प्रत्येक वायद भवत की ऐतिक जगत् भी खुड़ता से ऊंचा उठाता हुआ उच्च प्राच्यालिङ्गकरा की ओर लाता है। अन्युज मन्दिरों की यह उदास भवतव्यता इविह मन्दिरों के विद्यालयों में और उत्तर य विमानों तथा गोपुरों में नहीं मिलती। इन मन्दिरों की नीतिशीर्षों में युद्धार्थों के दृष्ट भवित है। मनो दृष्टि में जाता है कि राजा ने एक राजा द्वा ने ग्रावनन में शिव-संज्ञ नकाशित करके बहा, विष्णु, महेश के मन्दिर बनवाये। इनमें याम और कुण्ड की लीलाएँ इकाईयां हैं। भारत में इन विदेशों ने एक सुन्दर सूतियाँ नहीं बनी। ग्रावनन में शिव की देवता और शृंगि देव में दो प्रकार की आकृतियाँ मिलती हैं। यहाँ के मुख्य-मानक पर हासाचिमनता, गोनीवं और चमोम जाति का आद भवित है। इसी में उनका बदायूह और यही बही सुन्दरता से बनी दृष्टि है। तेजवाही जाति के जाता की गर्वाल्य मूर्ति योद्ध प्रजापातिमिता की है। यह राजा अमुरेभुमि (१२२०—१२५७ ई०) के नाम की है। इसके मुख्यमन्त्र को तुकुमारता, सरमाता, आकृति-प्रसादता, और और जाविल्य बनाता अद्भुत है।

गायगुण की सुतिकासा—इन युग की मूर्तिकला की कुछ विवेषाएँ जिम्मेदार हैं। शनै-शनै यानिक द्वामान प्रवत होने लगता है, सीन्डय-तुङ्गि गोण ही जाती है; मुण्ड मुम तक दोनों प्रशुतियों में जो सामंजस्य था, वह तुप्त हो जाता है। यानिक भावों की विविधता के लिए भीयम वधा कुरुप भूतियाँ भी बनती हैं। तेजवाही की सामर्थ्य प्रविति करने के लिए उनके कृत्यकाल हाथों में अनेक प्रकार के हातियाह एवं वाहन जाति हैं, इतका निर्माण विल-दात्व की सहितों के धनुजार होने लगता है। मूर्ति-शिल्प में जातियाँ और सीन्डय द्वा विकल्प समाप्त हो जाती हैं।

इन लाल के होते हुए और जान्मु-जन्म दो दृष्टि से यह काम अविस्मरणीय है। माधवनन्दुरम, कैमात, बोरोबुर, पग्कोरवत, और और और जातेविह इमारी संस्कृत के द्वारा बनाए रखे हैं। आलियों की यहाँ यह एक मानवाङ्क लकड़ा-हातियाँ भी हैं। इन दृष्टि से प्राचीन भारत का विवर में यहाँ जेता स्थान था। हालाँग पूर्वजों ने विविध

जहाँ और यन्हें परिष्रम से जिन कृतियों की रखना की, उनमें त केवल विल्प-
पातुर्प था, किन्तु, लालित, सुहृदि और मुस्तस्कारिता भी भी जो उच्च संस्कृति के
प्रणाल चिह्न हैं। प्राचीन भारतीय कला भारतीय भावदों का सच्चा प्रतिदिम्ब है।
इसके यह जात हीता है कि सब प्रकार का ऐश्वर्य उपभोग करते हुए भी भारत में
भीविकला और ऐतिहासिकता के प्रति ही मनुष्यम न था; किन्तु यारनीकिनारा और
भास्त्रालिकाता को भी लोक आकाशा थी। इसके सर्वोत्तम गुण में इन दोनों का मुख्य
सामंजस्य था। कलाकार उच्चतम भाव्यात्मक भावों की वार्तिक्यवित्त के लिए, विभिन्न
कलाओं को सकलतामूर्ख के आगा भास्त्रम बना रहे थे।

मध्यपूर्वीम विष्ववाला—भाठजी याती के बाद यजसत्त-वैसे बहुत भाकार के
निति-विवर भारत में सोकारिय नहीं रहे, लगुनियों की समितिय थी। वे विवर यहाँ
को पर्वकृत एवं विवित करने के लिए बहावे जाते थे। इनको दो जीवियों उल्लेख-
मीय है। (१) काल की पाल लैली (नवी-वाम्हवी याती १०) (२) अपचंग योकी
(११००-१३०० ई०)। यहाँ का विषय बोढ़ है और विदेशताएँ हैं—वह रेताएँ
और गरज रखना। यह महायान बोढ़ घर्म के भावित-भाव से योग्यता रहे। प्राचार-
मिता की योने ताङ्गपत्र यह निचो पोषियों इस योनी से विनिष्ट है। आपअथ योनी
योन ती बहस तक बहाती रही, इसके भारतिक नमूने ताङ्गपत्र की पोषियों पर
तथा कागज पर देखे हैं, इसके मुख्यतम उदाहरण दस सकल याती (१३२०-१४५०
ई०) के हैं, जब कामज ताङ्गपत्र का दृश्य ले रहा था। इसकी विदेशताएँ योग्याकार
चिह्न, तुलीयों नाम, जोहर की रेता से आगे बढ़ी प्रोत्त और बल्कार-यानानता है।
गुह में साधारण रूप बरते जाते थे, परद्दहों याती से योने और मुलहरी रंग का गुब
प्रयोग होने जाता। इनका विषय भारतम में जैन धर्म-चर्चा थे, बाद में 'वीत गोकिन्द',
'मागपत', 'वालवोमालस्तुति'-वैसे वैष्णव याती ने जीविक देव का चिवण होने
जाता। वहाँ पर योग्य तामन-विलास (१४५० ई०) में धमन या देवत याती तुलनाता
की चिह्नित है। यह योनी देव भाव के साथीय योन में बहुत युक्त हुई है।
इसके अधिकार उदाहरण गुबरात से मिले हैं, जल इसे मुलहरी योनी भी कहा
जाता है।

राजस्वामी—इस योनी का उद्भव भारतीयों से मुकरात एवं भेषाह में
परद्दहों जाती में हुआ। इसका उपाय विषय कृष्ण और राधा योनी नरनारी के
आश्वत द्रेस का घबरात रही ने लिखा है, इसमें सोन-चौकम की याता तथा नारी के
भारतीयों ना बहा मुख्य बहन हुआ है। यज्ञस्वामी विष्वकार योनी युक्तिका
है कृष्ण-योनी, गुणार, लादिकार-भेद, रामायण, मालामारत के ताम उल्लेख है, नल
दमयनी, बालकासा, योनी तथा रायमाला के दृश्य प्रदर्शन करते थे। यमसाता में
विभिन्न रायों की विवाह याता योनीरम यूत्त लक दिया जाता या जैसे विलास में
योनिका धर्म में धर्म लक के देखने ले उद्यम जेमरीदा से वर्णित विकार जाती

धी, मातृत्वीम वे प्रेमी प्रणाल-कीदूरा ने रत होते थे, भैरवी में अविचाहित नामिका शारंती की अर्द्धत वाले मनकाहे परित की जपानामा में लक्षण होती थी।

मुगल शैली—मुगल सज्जाटी के समय चिन-कला को बहुत प्रीताहन मिला। 'हुमायूँ' ने इरान से भीर संवाद गलों और ल्लाजा घन्तुसमाद गोदावरी को दुलाया था, अकबर ने अपने दरवार में मारे भारत के सैकड़ों चित्रकार एकज बरके इससे पारसी और संस्कृत के विविध ग्रन्थों 'हन्दानामा', 'बाबरनामा', 'अकबरनामा' और 'महाभारत' (रामनामा) की विविध कलायां। वहाना प्रणाल-कलाओं का धन्व था, जो अकबर को बहुत प्रिय था। इसके लिए वस्त्र पर १३७५ चित्र बनाये गए, जो उभी तक सौभाग्यवत्त जगपुर के पोर्टफोलो में सुरक्षित हैं। अकबर की कला सब देशों से अच्छे दृश्य लेकर उन्हे प्राप्त भारतीय रूप देने लाती थी, आरम्भ में इरानी प्रभाव प्रचिक होते पर भी बाद में वह भारतीय रूप लिया गया। यह कला प्रधानतः अन्ध-चित्री, दरबार और राजमहल से सम्बन्ध रखने वाली पट्टायों तथा अक्षितायों पर विचार करने वाली है। राजस्थानी दैनी से न केवल इसका विषय-लेन्ड है, किन्तु इसके लेहरी में विचारिता और अक्षित्य प्रधिक है। अहंभीर से भी इस कला को बहुत उत्तेजन मिला, उसके समय में उस्ताद ममूर ने एक्षु-अक्षियों के बहुत सुन्दर चित्र बनाये। प्रोटो-जेव ने समय में राज-सरकार ने मिलने से पहले कला गुरुभाने लगी। मुगल शैली की एक दृष्टियों द्वारा भीजापुर तथा गोलकुण्डा के खाली दरवारों में फली-फली।

पहाड़ी शैली—मुगल साम्राज्य का विषय-होम-पर भास्त्राही चित्रकार ने चारथम-दातायों की सोब में शारीरे के पूर्व की कांगड़ा दून की विविधता—चम्बा, मुखपुर, कांसड़ा, मुँहूँ, सभी धारियों में गहुने और इनमें गहाड़ी-दीनी जा चित्राया हुआ। कांगड़ा के दाता संग्रह चम्बा (११०५-१=२३ ई०) का समय पहुँची कला का स्वर्ण तुम है। इसकी दो कम्पाएँ गद्दामनेन्द्रेय में आही यई और यह कला गढ़वाल में भी पहुँची। पहाड़ी चित्रों को चित्रकार वास्तविकता और भावना का सम्बन्धण है। 'भग्नायम', 'महामाय' तथा 'भग्नकल' इसी वास्तवीकरण की रचनाएँ इनका प्रधान विषय है। "भग्नता युग के बाते पहाड़ी दीनों में ही भावतीय कला एक ऐसी ज़ेनाई तक उठी है जहाँ तक पहुँचना लियाजाएँ गही।"

अन्य कलाएँ

काँस्य-प्रतिमाएँ—काँसी की मुन्द्र मूलियों द्वालने की कला भारत में ओहूंजोड़ों पुग से ही चली आ रही है। कर्णकी की मूर्ति इसका मुन्द्र प्रमाण है। पहाड़ी-दुनारी दीनी १० बी. कुल चोंदी मूलियों तथायिता से मिलती है। गुरुत युग में इन कला में काँसी उत्तरांश हुई। काँसीगर वही भास्त्र की प्रतिमाएँ सफलतापूर्वक बनाने लगे। इनमें भागलपुर से पाई गई भास्त्रकल युद्ध-मूर्ति और भीरसुर भास-

(सिना) से मिली बहुत की मुन्दर मृति उल्लेखनीय है। 'कौट्य-प्रतिमाओं' का स्थान
दूष दक्षिणभारत में चोलों का शासन काल (दक्षिणी—तेज़हरी २० ई०) था। इस समय
महोन नटराज कित्त की भव्य प्रतिमाएँ बनाए गयी।
इनमें प्रसव के सापड़व नृत्य की भाव भग्नी में विव
की बहुत मुन्दर अभिधर्मालित की गई है।

बहव— प्रठारहरी याती के घन्त में लगभग २,००० वर्ष तक विश्व में भारत के बने कपड़ों की
शारीरिक और मानव गर्भी रही। वहसे यह यताही जा
चुका है कि भारतीय मस्तक, जिसे रोमन 'कुनी
हेड' कहते थे, रोम की स्थियों द्वारा बहुत पर्वत की
जाती थी। दसवीं याती में भ्रव के व्यापारी नुवरात
में बने भारतीय बहवों को भिरव तक पहुँचा रहे थे
और वहीं को पटोला साक्षियाँ आया, सुमारा एक
भेजी जा रही थीं। मुस्लिम बादशाहों द्वारा
प्रोत्ताहन पाकर वस्त्र-कला की बड़ी उप्रति हुई।
इस काल में याती के लगाकारों द्वारा नैयार की
बाजे वाली मन्त्रमण विशेष का से उल्लेखनीय है।



मुख्य बादशाहों के लिए नैयार होने वाली मन्त्रमण गोडेलोहरी का नाम भूति
याता का २० वर्ष का पूरा चाल तेवार करके बाल की शोखली नसी में बल करने
और इसका अल्प निकालकर बादशाह को भेजा जाता था। इसे शावेस्या (बहुत
पानी), बापत हवा (कुनी हेड), भद्रम (धोव) के कावितामन नाम दिये जाते
थे। मस्तक की बारीकी और पारदर्शकता के सम्बन्ध में यह प्रतिष्ठित है कि एक बार
लौरमजेव ने प्राप्ती धुधों को दीटा कि तु नमी बर्नी जाती है, तुमें ताक नहीं जाती ?
बोली जाती—“धज्जा जास, आज नाहूँ दिमाले हैं। मैं तो कपड़े की सात सहे करके
उसे लपेटा हूँगा है, फिर भी यह मलकता है तो येरा क्या कहूँ ?”

बदोला— गुजरात में विवाह के समय पहनी जाने वाली लड़ोला जाती बुगाई
का एक वास्तव लक्ष्मीतार है जो इस गुग में गुजरात कालिघरों से नैयार थी थी। इसमें
साझी एवं बसाहे जाने वाले विवाहम को पहले ही गुग में लक्ष्मी लाने-याने के सूत
को लिभिल रंगों में रंगा जाता है और बुगाई के समय वे यारे विवाहित कपड़े के
दीनों द्वारा या जाते हैं।

किमलाक— विमलाय का शब्दार्थ है—बुगा हुपा छुत (किम=फूल,
शाख=बुगला)। इसमें बुगाई में लिभिल रंगों द्वारा धोक प्रकार से विवाहित लड़ोल
जाते हैं, इसका गटोला से यह गलता है कि उसमें दोनों ओर एक ही विकाल याता
है और इसमें तेजा नहीं होता। इसमें सीधे-बालों के लार (लरी) जा भी दायों

होता है। इसमें मुड़ सामर्थी का प्रयोग किया जाता था प्रतः यह शोधा जाते एवं भी उसी तरह खराब नहीं होता था। मध्य युग में किम्बलाव का सबसे प्रसिद्ध लेन्ड चनारस था, इसके साथ ही मुशियावाद, चन्द्री, प्रहमदावाद, सौरगावाद, सूरत, लज्जीर में भी यह नाम होता था।

इसके अतिरिक्त मध्य युग में तटवों को रंगाई, लौट, कडाई को कसा भी बहुत उन्नत हुई थी। कादम्बीर के शाल विश्वर्विश्वात थे।



प्राचीन शिक्षापद्धति

भारत में विद्या वैदिक युग से मनुष्य के सबोर्गोण विकास, राष्ट्रीय संस्कृति के अन्तर्गत तथा जातीय उत्थान के लिए प्रावश्यक समझी जाती रही है। प्राचीनवैदेश में इष्टावैदी की भृहिमा के गीत माने गए हैं। प्राचीन शास्त्रकारों ने इस प्रकार की धर्मकाव्याओं की व्याख्याता दी थी, जिनसे यात्रा द्वारा अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध न होने पर भी इसका बहुत प्रधिक प्रसार हुआ। प्राचीन घटियों ने भावन और विद्या के लिए या। उत्थान-संस्कार सब द्वितीये के लिए यावद्यक था, निश्चित अवधि तक इसके न करने याचिनि विद्यामाला में निविलता दिलाने से उच्च वर्ण वृत्ति या जाति-वृत्ति समझे जाते थे। विद्या के साहृदय को यजके वित वह भली-भाँति धंकित करने के लिए ही स्नातक की पुराने जमाने में राजा से प्रधिक प्रतिष्ठा दी गई थी। प्रत्येक अधिकृत या यह कानून नवमहा जाता था कि वह न केवल पुन भी अम वेकर पितृ-कृत्य से मुक्त हो, किन्तु इसके अतिरिक्त घटियों को भी उठाते। हिन्दू शास्त्रकारों ने इन का प्रसार करने वाले घटियों को न केवल नाना प्रकार के दासों का अधिकारी बताया, किन्तु उन्हें करोंसे भी मुक्त कर दिया। राजाओं ने यह उदार दाता से नालदा, विकसिता, उद्यग्युरी प्रभृति विद्यालयों के विकास में पूरी जहायता दी। महीं जारी या कि प्राचीन दाता ये जितनी साक्षरता भारत में थी, उसमीं उस समय किनी दूसरे देश में नहीं थी। याता अवश्यति और दृश्यरथ का यह दाता या कि उसके राज्य में कोई अविभिन्न अधिकृत नहीं है। प्राचीन विद्यापद्धति से भारत ने न केवल सेकड़ों वर्षों तक योग्यक प्रसारक द्वारा विद्याल वैदिक वाह्यभय की सुरक्षित रखा; किन्तु प्रत्येक युग में उत्तम, विषय, गतित, वर्णोत्तम, वेदाक, रसायन आदि वास्तवों में प्रत्येक मौतिक विद्यारक विद्याल उत्थान किये, किनसे भारत का मस्तक याज भी ढंगा है।

वृद्धावैद-यावद्यम और उत्थान-संस्कार—प्राचीन काल में घटियों ने वृद्धावैद और उत्थान-संस्कार की व्यवस्था द्वारा सभूते समाज की विधित करने का सराहनीय उद्देश निया था। अवश्यवैद से जात गोता है कि उस समय तक वृद्धावैद की प्रवृत्ति प्रवालित हो चुकी थी। वृद्धावैद का वास्तविक है—वेद का प्रवालन। उस समय सरल वृद्ध तपोव्याप्त और विद्यालयों द्वारा वृद्ध या स्वाध्याय करते थे। यह समझा जाता था कि वृद्धावैद का यातन वृद्धानुषाध द्वारा के लिए यावद्यक है। "वृद्धावैद के तप से

ही राजा रघु की रक्षा करता है, ब्रह्मचर्य से ही कन्या गुप्त पति को प्राप्त करती है, इसी के तरफ ते वेतामो ने प्रमुखत्व तथा इनमें उच्च पद प्राप्त किया था ।" (पृष्ठ १५—१६) । ये लब उक्तियाँ ब्रह्मचर्य का गोरव सूचित करती हैं ।

ब्रह्मचर्य धार्यम का प्राप्तम् उपनयन-संस्कार से होता था । उपनयन का शब्द है—समीप जाना । उस संस्कार द्वारा बालक गुरु के समीप जाकर, विद्यानाल के लिए उसका शिष्य बनता था । उपनयन विरकाल तक ब्राह्मण, अधिष्ठ, वैद्य के लिए अनिवार्य मही था, किन्तु वैदिक साहित्य के अध्ययन और संरक्षण के लिए इसे धार्यक बना दिया गया । ब्राह्मणों, उग्निशिवों और गृहश्रव्यों के निर्माण के बाद भार्यक साहित्य इसका विवाह हो गया । कि उसकी रक्षा के लिए समूचे समाज का सहयोग धार्यक का अतीत हुआ, यतन्न उपनयन-संस्कार को लीनी चाही के लिए भाववाक बना दिया गया । इसके न करने पर अवृत्ति समाव से परित एव बहिर्भूत उम्मीद जाता था (मनु श.३.३६) । धार्य विद्या-राज्य द्वारा अनिवार्य बनाई जाती है, उस समय पर्यन्त ने इसे धार्यक बनाया । इसका एक चुन परिणाम यह हुआ कि धार्य जाति के सब सदस्य खोड़-बहुत वैदिक जाति अवश्य प्राप्त करते थे, किन्तु ८००-९० पूर्व के बाद वैदिक जाति इसका बटिल हो चुका था कि उसमें वल्लचित् ग्रनेश के लिए भी प्रारम्भिक विद्या अनिवार्य थी । यह नहीं सामा जा सकता है कि उपनयन धार्यक ही जाति के बाद भार्यकाति में भाग रहता बहुत बड़ी होगी । उस समय सभवतः सौ यी सदी भाविता साकार हुगे । किसी भी धर्म धार्यक जाति ने विद्या के लेने में इसी प्रभावि नहीं की । परिवर्ती सम्भवता के मूल लोक प्रानाम में यह अवस्था थी कि ऐसेह के दस यी सदी घोर साकार में भार्य प्रतिशत अधिक ही विद्या पाने थे । यह बहुत दृढ़ बोला बात है कि परवर्ती शास्त्रधारारों में ५००-६०० ई० के बाद यह सिद्धान्त जनामा कि वर्तिषुग में शविष्य और वैद्य वर्ण नहीं होते, इससे इन व्यापों का उपनयन बनव हो गया और साकारता बहुत कम हो गई ।

ब्रह्मचर्य के लियम्—उपनयन-संस्कार के बाद ब्रह्मचारी युवा से विद्याध्यम करता था । विद्याध्यम-नाम में ब्रह्मचारी को अनेक भाववाक के लियमों का पालन करना पड़ता था । आधीन विद्याध्यति का भावमें सारा खोयन तथा इच्छ विवाह था, अत यही लियम इसी को व्याप में रखकर बनाये थए थे । उसका भोजन सारा होता था, मास-मादिरा का सेवन वर्जित था, योगाक में भी सारमी थी, तरु और खाट का उपयोग वर्जित था । किन्तु साकारारों का यह भास्त्रद क्षयापि नहो था कि स्वास्थ्य को हानि पहुँचाते हुए इन तरों का व्याप किया जाए । जातक-साहित्य में ऐसे देव-इरणों की कमी नहीं है, लियम ब्रह्मचारी क्षमास और लक्षणाल की भोगण शर्मों से ब्रुत और दातों का अपोग करते हैं । ब्रह्मचर्यवस्त्रा गारीबिक विकास और वृद्धि का कारण था, इसलिए साकारारों ने यह अवस्था की थी कि ब्रह्मचारी तपस्या में धन्वे भीत्र को बदल न जाना, किन्तु व्यापारी सकता हो, लागे । ब्रह्मचारी के लियमों में

संगम शीर्ष-सदाचार के पहले पर बहुत बड़ा दिया जाता था। इसी का परिणाम यह हुआ कि बहुधर्म धर्म-धर्मोदयमें वास्तविक धर्म वैद्यव्यवस की विपेक्षा सबत जीवन को प्रतिक मूर्चित करने लगा। वैद्यविदों का मह मत या कि यामोद-द्वमोद से विद्याभ्यास में बाधा पड़ती है।

विज्ञा-वृत्ति— कई स्मृतियों में यह अवस्था भिजती है कि ब्रह्मचारी प्रतिदिन खाते लिए भाँति से भिजा भाँति कर लाये। अमरवेद में विज्ञानदरण (११११६) का स्पष्ट उल्लेख है। किन्तु मह यात्रकारों का जात्यर्थ ही प्रतीत होता है, वास्तविक स्थिति ऐसी मही भी। तज्जित्या के ब्रह्मचारी यात्रने गुरुओं के पर्यांत में बड़ी यात्रा के दूर्जों के समान रहते थे। नामन्दा, बनमी, तज्जित्या-दैसे वहे विश्वविद्यालयों में, जहाँ हवारों विद्यार्थी पढ़ते थे, भिजा-वृत्ति संभव ही नहीं थी। इन दब स्थानों पर संभवतः वहे भ्रष्टार्दों में खाने का प्रबन्ध होता था। यात्रन्दा की युद्धार्द में कुछ बड़ी भट्टियों भिजती है। युधान-न्दीन ने लिखा है कि भारतीय विद्यानों के मध्यीर पाणित्य एवं एक कारण यह भी है कि उन्हें भोजन, बहुत तबा बदाही की जिम्मा नहीं करनी चाहती। इतिहास के कुछ युद्धों में इस बात का साप्त कम से उल्लेख है कि यही विद्यालयों में जीमीं के दिवे दात जे छात्रों के भोजन की अवस्था की जाती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि विज्ञा केवल अस्त्वन्त निर्धन छात्र हो न गोगा करते थे। विज्ञा के नियम का उद्देश्य ब्रह्मचारी को न घर बनाना तथा इस बात का जान करना था कि वह समाज की सहायता और सहानुग्रह से जान प्राप्त कर रहा है, उसे उसके प्रति सम्पन्न करनेवाले में जागरूक रहना चाहिए। भिजा के नियम का एक बहु जान यह था कि इसमें निर्धन भी भी पर्यांत दीनों विज्ञा प्राप्त कर सकते थे। विज्ञा की वावस्था समाज को भी इस कर्तव्य का लोध करती थी कि नहीं भीड़ की विज्ञा के लिए उसे यज्ञ करना चाहिए। ब्रह्मचारी प्राचीन संस्कृति का ग्रन्थक तथा उसे आते बड़ों बापों द्वारा या, इसमें जमात को जान था, यह तिन्हुँ यात्रकारों में ब्रह्मचारी की विज्ञा देना सब गुरुस्नामों का यावरमक कर्तव्य निर्धारित किया था और ब्रह्मचारी पर भी यह ज्ञान-ज्ञानापाय था कि वह अपनी यावरमकाना में वृधिक भिजा नहीं लेगा, यदि वह लेगा करता है तो भीड़ का महाराप करता है।

युक्तुस्पददर्शि— ब्रह्मचारी विज्ञा-काल में यात्रा गुरु के पास रहते थे, इसलिए उन्हें जनतेजानी कहा जाता था। भिजा-यमात्प कर्तव्य पर जब वे सीटों ये गो जमाका 'यमाकर्त्तन' होता था। गुरु के पर में विज्ञापितों को भेजना वही यात्रीयों ने व्येष्यकर गम्भीर जाता था। गुरु की वैष्णविकाल-देव-रेत में विज्ञा वस्त्री होती थी, जनारदन के राजा यह जमातों ने कि इसमें राजपूतों का धर्म होता है, वे यात्र्य-मिमेत रहते हैं। दुनिया का वृच्छा जान प्राप्त करते हैं। युक्तुस्नी में प्राप्त विज्ञानी प्रारम्भिक विज्ञा के द्वारा उच्च विज्ञा के निए ही भेज जाते थे। तज्जित्या में जाते जाने विज्ञापितों की यात्रा कई बातों में स्पष्ट कर से १६ वर्ष बढ़ाई नहीं है।

प्राचीन गुरुकुलों के सम्बन्ध में यह तीक्ष्ण-प्रत्यालित भारता यतीय में जल्द नहीं प्रतीत होती कि वे भगवान् से दूर जगतों में होते हे । इसमें योई सैद्ध नामों कि यात्रमीठि, लच्छ, सांदीपनी आदि गुणियों के साथम वर्णों में हे । किन्तु ऐसे उपोक्तों की संख्या बहुत कम थी । अधिकांश गुरुकुल और शिला-केन्द्र पश्चरों द्वारा गोंडों में हो हे । तथाशिला के गुरु श्रीर छात्र गाम्यार की राष्ट्रधारों में ही रहते हे । स्मृतियों में यह कहा गया है कि वह शौच में भूषु हो गा तो भासा हो तो गम्याय हो । यदि गुरुकुल जगतों में हो तो शौच के उपदेवों के कारण अल्पगत बन्द करते ही योई धाराधरकाला नहीं थी ।

गुरु और शिष्य के सम्बन्ध—प्राचीन शिला-पट्टियों की एक बड़ी विवेषता गुरु और शिष्य का सुमधुर पारिवारिक सम्बन्ध था । शिष्य गुरु के घर पर जाकर उसके परिवार का सदस्य बनकर रहता था । गुरु अपने गुरु की तरह उसका पालन करता था । भगवान् बुद्ध ने कहा था—‘गुरु को चाहिए कि वह शिष्य को गुरु समके और शिष्य को उचित है कि वह गुरु को पिता माने’ । प्रायः गुरुओं के पास १०-१२ शिष्य होते हैं और वे न केवल इनके प्रबोधन, किन्तु गान्धारा भी लिखितों की भी गुरी चिन्ता करते हे । भगवान् बुद्ध ने उपाध्याय के लिए यह नियम बनवाया था कि वे अपने शिष्यों की डेव-भांड, उनके वस्त्रों का तथा शिला-पाठ आदि का धार्म रखें । जातीयी भूतों में भारत यासे जाते जीनी जापी इतिहाय के विवरण में वह भी रख होता है कि वे इस नियम का पूरा पालन करते हे । जब शिष्य बीमार पड़ते हे, तो गुरु उसकी परिचर्या भी किया करते हे ।

इसके साथ ही, शिष्यों का प्रधान कर्तव्य गुरु को देवता की तरह प्रतिष्ठा और आरत्यना करना था । गोता के घनसारे गुरु के प्रति नमाम और सेवा से ज्ञान प्राप्त होता है । यह कहा जाता था कि शिष्य को गुरु, दाता और प्राप्ति की भाँति गुरु की सेवा करनी चाहिए । उसे गुरु को अतुम और नहाने के लिए बहु देवा उचित है, शाश्वतकाला यहने पर यह बहुम भीजने तथा कपड़े धोने का भी काम करना चाहिए । गुरु के घर के लिए वह अभ्यन्तर से ईमान लाता और पशुओं की डेव-भांड बरता था । कुण्ठ और गुरुदामों ने अपने गुरु शोदीपनों कहाँगी की इसे प्रकार सेवा की थी । किन्तु यह अमरण रखना चाहिए कि गुरु शिष्यों से इस प्रकार का योई कार्य सही तैर सकता जिससे शिष्यों के धर्मव्यवस्थ में बाधा पड़े (आदि भ० स० १ । २।८) । यदि गुरु का कार्य करते हुए किसी शिष्य की गुरु हो वापस तो उसे वहाँ कठोर प्राप्तिक्षित रखना पड़ता था (व० व० स० ३ । । १८) ।

शिला की कीमत—उस समय शिला तिष्ठुल नहीं होती थी । उसी भी समय शिष्य शिला आरम्भ होने से पहले या बाद वे गुरु-दीक्षियों के रूप में गुरु यो शिला-घुरु देते थे और नियम शिला की अपनी सेवा द्वारा कोई धर्म बदा करते हे । वास्तवों में हम जानते हैं कि शिला विश्वविद्यालय में गुरुओं को पहले कोई देने का

स्पष्ट उल्लेख नहीं है। एक ज्ञातक (म० २५२) में बनारस से पाणि छात्र से गुरु गुहाता है कि 'यथा तुम् गुरु की फीस लागें हो वा सुनाएं गढ़ते के बदले मेरी सेवा करता आहुते हो।' जो विषय गुरु की सेवा करने पड़ते थे, उनके लिए विद्याका रात को विशेष अवधियाँ लगाते थे, क्योंकि वे दिन में उसके काम में जगे रहते थे। फीस पड़ते देने के प्रतिरिक्षण भर्त में गुरु-विद्यिता के कान में भी कुछ देने का दिवाव था। कई वास्तुय इसने धर्मिक दिविता मीमतों थे कि विषय उसे अन्य व्यक्तियों से मीमत कर पुरा करते थे। औसत ने अपने गुरु बनतन्हु वी १४ करोड़ की दक्षिणा महादेव रथु में यात्राना करके दी थी। प्राचीन विद्या-गठति की यह एक बड़ी विचेष्टता थी कि कोई ज्ञान-प्रियामु उससे बीचत नहीं रह सकता था। गुरु सामाजिक क्षमा से विद्या विषय की जगत देने से इनकार नहीं कर सकता था। यदि कोई गुरु किसी विषय की ज्ञान-प्राप्ति के लिए आने पर एक तर्ह तक तहीं गहाता था तो वह यात्राना जाता था कि विषय के सब पाणि गुरु की लगते हैं। छात्र की विद्येन्तता का बहाता करके वह उसे नहीं ढरका सकता था; क्योंकि छात्र भवेष गुरु की सेवा करने के लिए तैयार रहता था।

विद्या-काल:—दूराने ज्ञानमें में विद्या का गुण धार्यवी (धर्मस्त) से प्रारम्भ होता था तथा पोष या मात्र (कर्वी-मात्र) में समाप्त हो जाता था। प्रारम्भ में पहले, यहींने का था, विद्यायों तथा विद्याओं की वृद्धि में वह काना हींने तथा। उन विद्यायों की भावित प्रतिवर्ष गमियों की वृद्धियों नहीं होती थी। किन्तु उस समय के विद्यावीं भी अन्यायायविक्रम के भीतर प्राप्ति सात दर्जे, पोषणमात्र तथा ही वाटमियों के बारे अवकाशों के प्रतिरिक्षण आकाश-सेपालउप्र होते, विद्यायी बनकरने, मूलाकावार गानों, शौपी, वास्तु पहने पर भी वृद्धि भिन्न जाती थी। पे अवकाश उस समय की स्मृति करते हैं, जब गुरु-विद्या लोकाविदों में रहते हैं भीर अमन व्याप्त्यरिक्षणों में अव्याप्त जारी रखता अवकाश ही जाता था। विद्या-काल सामाजिक क्षमा से १२ वर्ष का था। यह एक वेद के लिए पर्वाय समझा जाता था। सामान्यतः दूसरे विद्या १२ वर्ष को अवकाश से प्रारम्भ होता २४ वर्ष की आयु में समाप्त हो जाती थी। जारी वेदों के लिए ४८ वर्ष का व्याप्त्यरिक्षण रखा जाता था, जिन्हु वारकावार इसे बदलने नहीं समझते थे।

पाठ्यविषय:—ज्ञान विद्यायी भीर विद्याओं के विद्याम के अनुसार प्राचीन विद्यामूलति के पाठ्यविषयों में समाधृक्षन गणितम हीते रहे। कारबिक वैदिक गुरु (२००० ई० ७०) तक भूमध्य पाठ्यविषय वेद-भाष्य, दर्शनशास्त्र, दुर्घटना भीर नारायणी मावाणे (धौर दूषों के विचार) थी। विद्यायी वैदिक भीर वाटपाल गुरु (२००० ई० ७०—१००० ई० ७०) से वेद की व्याक्तियों भीर यजोग मीलियाओं की विज्ञान में वृद्धि हुई, वाटपाल-वाय विषे गए भीर हन्ते भी पाठ्य-क्रम में स्थान मिला। उपनिषद् भीर गुरु (१००० ई०—७५० ई० ७०) तक वेद के विषय

प्रमों व्याकरण, विद्या (उच्चारण विज्ञान) पाल, व्योतिष्ठ, सन्द, निश्चल के विद्याओं के अतिरिक्त घटेक प्रकार के विद्याओं तथा उपर्योगी विज्ञानों का आविभाव हो चुका था। विद्याओं के बहुत वैदिक विषयों का ही अध्ययन नहीं करते थे, बर्मिंग्हम वैदिक विज्ञानों में भी प्रत्यंगत होते थे। उस समय के विद्याओं का परिचय उन्नदोषीगणित के एक संदर्भ से मिलता है (१०१५२)। इसमें इसीम की उच्च विद्या पासे के लिए सनात्कुमार के पास आये नारद ने कहा है—“भगवत् मैत्रे वैद्यनेत्राम् के अतिरिक्त इतिहास, पुराण, गणित (राति) व्योतिष्ठ, मठान विद्या, सर्व विद्या, देव (भूमि, वायु-जात्रा) आदि प्राकृतिक भूगोल व्यवहा भविष्यत्कलान की विद्या), निधि (विनियोग विद्या अथवा यह विद्याएँ का एता लगाने का विज्ञान), नाकोत्काप (तक्त-जात्रा), वात्सिक्षा, भूतविद्या (प्राणि-जात्रा), राजधानी विद्या (सैनिक विज्ञान तथा राज-जात्रा), एकायन विद्या (नीति-जात्रा) का अध्ययन किसा है”। उस समय के सभी छात्र नारद की नीति में खाली ही तथा अब विषयों का अध्ययन करते हों तो वह नहीं, किन्तु ऐसा व्यवहार जाति पड़ता है कि उस समय विद्या-नीति में साहित्यिक एवं वायोगी दोनों प्रकार के विज्ञान का सुन्दर सम्मिलण हुआ था। जातियों ने यह जाति होकर है कि तत्त्वज्ञान में लक्षित और वात्सिक्षा युक्त लोगों वेदों और अठारह विद्यों का अध्ययन करते थे। इन विद्याओं में पुरुषिक्षा, वैद्यक, जात्र, सर्वविद्या, गणित, ग्रन्थ, पशु-नामान, व्याकरण आदि का सम्बोध होता था। इस मुग्न में भारत ने दर्शन, साहित्य, व्योतिष्ठ, धर्म-जात्रा, काषण-विकित्ता, शल्घन-चकित्ता, पूर्ति, भूमि तथा वीत-निर्णय-विद्या में बड़ी उल्लति की। इस समय बीड़ और जैन साहित्यका विकास हुआ। वैदिक साहित्य में यह, यह और जड़ बाढ़ का आविसीकृत हुआ। इन दिनों वेदों की लोकाप्रियता घट रही थी, प्रतः वात्सिक्षा में वैद्यन १५ प्रतिशत ही वैदिक विषयों का स्वाक्षर्य करते थे। इतिहास विज्ञानों का अध्यान नव विकसित विद्याओं —व्याकरण, ज्याय, ज्ञानिष्ठ, दृष्टि और भूमिज्ञात्र की ओर था। पहली शे १०—१२०० तक के स्मृति, पुराणों और विषय-व्यवहारों के द्वारा में वेदों का महत्व बहुत कम हो गया। वीमी गानिधी के विवरण इस समय के विज्ञानों और महाविद्यालयों के वाहन-क्रम एवं सुन्दर प्रकाश द्वारा हैं जिनमें वैदिक विषयों से मिल लोकिक विषय पढ़ाये जाते थे।

इतिहास के अन्तानुसार ३ लाई की सागृ में विद्याओं तथांनाला लीखना सुन करते हैं, इसमें यह सहीमें नहीं है। इनमें वर्ष संभवतः गणित, पशुपाल जाता था। भूवै वर्ष से १८२० वर्षे तक वायोगीय व्याकरणों और उगाहि शूर्वों का व्याक्षरण करता जाता था। १३-१४ लाई की सागृ में विद्याओं का एकत्र है, इतिहास इस विषय में जीव है, नामवरत, उच्च-काषण, साहित्य और कोष-का भान करता जाता था। १५वे लाई में विद्याओं का व्यवहार की वस्त्रालों में कुछ विषयों का विशेष अध्ययन करते हैं। विशेष अध्ययन के विषय व्याकरण, तक्त-जात्रा, दर्शन, वैद्यक, गणित एवं नीतिक व्योतिष्ठ हैं। इसमें सबसे वर्षिष्ठ वीकाप्रिय विषय व्याकरण था।

व्याकरण का उच्च पाठ्य-क्रम गाँव का होता था और इसके प्रभात पाठ्य-नन्य वाचिका और पाठ्य-ज्ञान महाभाष्य थे। एसवेस्मी के ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि व्याख्याती शर्ती में भी सबसे विविध लोकविद्यता व्याकरण को प्राप्त थी। इनके प्रतिरिक्ष सुराणों और नाटकों का भी अध्ययन होता होगा, जोनी वाचिकों ने इसका उल्लेख नहीं किया।

पाठ्य-विज्ञानी—प्राचीन काल में पाठ्य-विज्ञानी प्रधान रूप से गुह-मुख से पाठ्य-विज्ञान कारने वाला उसके सामने उते दोहराने तथा प्रदर्शन गृहकर जान प्राप्त करने की थी। इसका कारण यह था कि वेद उस समय विशिष्ट रूप में नहीं थे। सेवन-कर्ता वे भर्ती-भावित परिचित होते थे और भी भास्तीयों ने वेदों को कई वारणी से विविध नहीं किया। ऐसा होने से भगवती विति के विविध हार्षी में पढ़ने की भ्राताका थी, विविकारों के घटाम और प्रमाद में वेद के स्वरों और वर्णों के द्रुपित रूप से विवेकानन्द को संभावना थी। व्याख्यानी, नवीं शर्ती में कर्मीरी परिषत बन्दुक ने पहली बार वेदों को सेवयद्ध करने का साहुरा किया। उस समय तक विज्ञानीजिक ही शर्ती थी। नुक एक-एक विज्ञानी को भ्राताम पढ़ाता, उसका पाठ सुनता और गतिसी ठीक करता था। इस पद्धति से कई लाभ थे। गुरु सब विज्ञानियों पर विवितक व्याप्त देता था, इसका व्याप्त वर्तमान विज्ञान-पद्धति को सबसे बड़ी कमी है। पूर्वी पद्धति में पूर्वतीय विज्ञान पद्धति में होते से विज्ञानी प्रत्येक विषय को गुरु दोष-समझकर याद करता था। यह कहना गलत है कि उस समय की विज्ञान-पद्धति में रहना और योग्य हो प्रधान था। यास्ताकालमें और सुधूत ने पोड़न की ओर निष्ठा की है, सुधूत ने रहने वाले जाप की उस गोपे से तुलना की है जो ग्रामों पर बोझ कर तो अनुभव करता है किन्तु वह नहीं जानता कि वह किस पस्तु का बोझ है। विद का व्याप्त विद-मन्त्रों की व्याकरण के साथ होता था। गद्यों वाद्यन-नाडियों इसी प्रकार को रखता है। भारतीय विद्वान् वर्म-वर्मों के व्याप्त-वीश्वा के लिए जगत्प्रसिद्ध है। इसीलिए जीनों नाडियों ने उनकी मुक्त लाल्हे में प्रसन्नता की है। इसिये ने लिखा है कि “मैं इस शह दें सर्वव वहा ग्रस्त हूँ कि मुझे भारतीय वर्मियों के चरणों में लैठकर जह जान प्राप्त करने का सीधार्थ मिला है, जो व्याप्ता नहीं प्राप्त ही महाता था।” युधान वर्मन ने भारतीय परिषदों की विविध प्रवृत्ति इस दृष्टि से की है कि वे प्रस्ताव स्वर्णों की सुन्दर व्याकरण करते हैं। प्राचीन पाठ्य-नवदृष्टि की गहरी गहरी भी कि वह समझकर व्यव्यक्तिय बनने पर वस देती थी। उस पद्धति से पूँछ विविधों का व्याप्तिक वहा बन्दीर होता था। वर्तमान काल की विद्वान् पूर्वकालियों में रखे विद्वन-नोडों में है, प्राचीन परिषत ग्रन्थों वालों की वलता-फिरता विज्ञान-कोश बनाने का प्रबन्ध करते हैं।

इस प्रकार की पाठ्य-नवदृष्टि में नुक विविध जाऊं की भही गुरु गवता था। सामान्य कद से व्यव्यिधा और साक्षात्कार में एक गुरु के पास १५-२० से विविध जान मही होते थे। नुक उन विज्ञानियों पर पूर्य व्याप्त देता था। प्रत्येक विज्ञानी को

पिछला पाठ में वह उसकी योग्यता के अनुसार अमर्ता पाठ दिया जाता था। मुह मिथ्यान्कार्य में बड़े विद्यालियों का भी उपयोग करता था। भगवत्सीमकातक के अनुसार कुरुदेव के एक रावपूत ने ग्रन्थ-साथों की वर्षेश्वर पहले विद्या में प्रवीणा प्राप्त कर ली, उसे अपने ओटे भाई की विद्या का काम भी विद्या था, तु वे अनुप्रस्थिति में बड़े छात्र उसके समावृत्ती की पूति करते थे। इससे एक और लही के विद्यालियों को कियात्मक अनुभव मिलता था, वहीं दूसरे और इन छात्रों द्वारा निश्चल विद्या में विद्या का अवय भी कम होता था।

विद्या प्रबोधक तथा वातीलाप की पद्धति ने दी जाती थी। उपनिषद् में विद्या के बहु तरहों का इसी तरह उपदेश दिया गया है। भगवान् तु दो उपदेश-दीर्घी भी इसी प्रकार की थी। इसका बहु नाम यह था कि विद्या के नमम विद्या को उसमें पूरा भनोयोग देना चाहता था, उसमें विचार और विश्लेषण की भौति विकसित होती थी। आवश्यक विषयों पर मुह तथा विद्यायों में वाय-विद्याद होते थे। इनमें उनमें वाकोद्दता, विनाम, तिरीक्तण, तुलना आदि की अनेक वानस्पति विकासित प्रमुखित एवं पुष्ट होती थी। वर्तमान विद्या-पद्धति में विद्यायों प्राप्त निषिक रूप से अभ्यासकों के व्याख्यान मुनता है, भरत उसका उचित वानस्पति विकास नहीं हो पाता।

वरीक्षाएँ और चर्याविधी—प्राचीन भारत में न तो वर्तमान विद्या-पद्धति प्रबोधित भी और न ही विद्या-वानस्पति के बाद भी उपाधियों दी जाती थी। उस समय मुह वित्तियत नहीं पाठ पढ़ाने से बहुतें इस बात को बाबी कही भी विकास परीक्षा से लिता था कि विषय को प्राप्ति की विद्या या नहीं, ऐसा न होने पर अगला पाठ नहीं दिया जाता था। भरत उस पद्धति में दीनिक परोक्षा होने के कारण विकास विद्या की वानस्पतिकता नहीं थी। विद्या-वानस्पति के बाद समावर्तन में पहले कई बार विद्यायों ने विद्युतरिक्त में उपलिख्यत किया जाता था और उनमें कुछ प्रबन्ध पूर्ण जाते थे। याजोक्तर और वरक्त में बाद-इन्द्रवारी में वानस्पति द्वारा होने वाली वरीक्षायों का उल्लेख किया है, किन्तु वे वर्तमान वरीक्षायों से संबंधित हैं। किन्तु मुठाने वालवालों में विविक्तम विद्या और प्राप्तिश्वर विद्यामें वाला ही पाप हो सकता था। जे प्राप्त विद्या अवसरी पर होते थे, वानस्पति बन्द में इनका प्रबन्ध नहीं था। परोक्षाएँ न होने के बावजूद, उस समय भी उपाधियों भी नहीं थी जाती थी। मुख्यम लालू में लिता है कि वालवीं शती में कुछ नोंग विकास सम्बान्ध परिक्षे के लिए महे कहा करते थे जे नालन्दा के पड़े हुए हैं। नालन्दा में ज्ञानियों न दी जाने वे ही उन्हें ऐसी युर्ता का भीजा मिलता था। सभ्य तुम के अन्तिम भाग में विकासिता विद्याविधायक के सरवाक वालवीं लाला समावर्तन के समय विद्यायों की उपाधियों देने लगे। वालवालीन लंगाव में कुछ विद्युतरिक्ते भवापर जगदीश-नैसे प्रकार लिप्तमे-

को सर्वेभवतीं, तत्कालेकार की प्रतिष्ठित पदवियों देती थी; किन्तु यह पदवि प्राचीन नहीं थी।

परीक्षार्थी और उपाधियों के न होने से बत्तमान काल के विद्यापियों नो यह तभी समझता चाहिए कि प्राचीन काल का शिष्य उनकी प्रपेक्षा अधिक सौभाग्यशाली था। प्राजकल का छात्र परीक्षा से पहले भव-कुङ्क रटकर और परोक्षा-भवन में उसे उपेक्षकार पास हो जाता है और किर उपाधि प्राप्त करके अपना बारा पहा-विद्या भूता सकता है। वब तक उसके पास उपाधि का प्रमाण-पत्र है, उसकी सौभाग्यता में कोई सदृश नहीं कर सकता, किन्तु पुराने विद्यार्थी को न केवल प्रतिदिन गुरु जो कही परीक्षा देनी पड़ती थी, बरपितु उसे विद्यामास के बाद भी अपने जान को बद्धूण ही नहीं किन्तु नवीनतम खोली में नमृद्ध बनाये रखना पड़ता था। उसे सदृश सारी विद्या बाठस्य रखनी पड़ती थी। इसी भी समय उसे आस्थामें के लिए बुताया जा सकता था। और उस समय उसकी सौभाग्यता की परीक्षा बाब-विवाद से होती थी। वह अपनी उपाधि के बत पर तथा नोटबुकों द्वारा बत्तमान विद्यार्थी की भाँति उस अग्निन-परीक्षा से नहीं बच सकता था।

विद्या-संस्थाएँ—प्राचीन भारत में पीछवी-झठी शर्ती० ई० तक विद्या प्रदान करने के लिए यमात या राज्य की ओर से बत्तमान काल की भाँति सुखंभट्टि विद्या-संस्थाएँ नहीं थी। गुरु वेदवितक का से स्वयमेव शिष्य की विकार दिया करते थे। सुखंभट्टि विद्या-संस्थार्थी का विकास सर्वप्रथम बोद्ध विद्वानों ने किया। इनमें पहले भिष्म-भिष्मिणियों को उसका बाब में सर्वेनामारपण जनता की अवशिष्टता का से विद्या थी जाने जानी। नामनवा इस प्रकार का पहला विद्याविद्यालय थर। संभवतः इसके अनुकरण में हिन्दू-मन्दिरों के साथ विद्या-संस्थार्थी का विकास हुआ। बीद्ध-भिष्म लगभग ५०० ई० से विद्या का कार्य आरम्भ कर देते हैं, किन्तु हिन्दू-मन्दिरों के उत्तर विद्या का वेद्य अनन्त के निवित्त प्रमाण उसकी शर्ती० ई० से मिलते हैं।

विद्या-केन्द्र—भारत में प्रधान काय से पौच्छ प्रकार के विद्या-केन्द्र ये राजवासियों, सीधे, विहार, मन्दिर, अपाहूर-दाम। राजा लोग जाय विद्यानों के संरक्षक होते थे, दुर-दूर से बहे-बहे विद्यान् उनके इच्छार्थी में थांते थे, राजभासी में रहते थे, उनके भास उठाने के लिए विद्यार्थी आते थे और राजवासियों विद्यानेन्द्र वज जाती थी। उच्चविद्या, विद्यारम, कन्नीक, विविता, भारा, उज्ज्वलिनी, पैठन, भाजसेद, कास्यादी इसी प्रकार के केन्द्र हैं। तीर्थ प्राचीन काल से विद्यान् जात्यानों के केन्द्र थे हैं। विद्यारम, कोची, तथा नविनक इन्हीं विद्यार्थी के कारण प्रमुख विद्या-कालान् थे। भगवान् कृष्ण बीद्ध-विहारों में नये विद्युतों को बीद्ध-वर्षे की विद्या देने के लिए १० वर्ष की वयवि नियत की थी। इसे इनका विद्यान-काम विद्युतों उक सीमित था, बाब में वापारण जनता भी इनसे जाम उठाने लगी। बीद्ध-विहारों की भाँति वब हिन्दू-मन्दिरों को बहे-बहे दाम मिलते रहे तो उनका कृष्ण भाव विद्या के लिए सुरक्षित

रखा जाने लगा। हिन्दू-मन्दिर न केवल हिन्दू भगवं, संस्कृति और समाज के प्रतिष्ठित हिन्दू धाराओं के विश्वास का भी केन्द्र बने। पहले बताया जा सका है कि हिन्दू मन्दिरों द्वारा विद्युत-कार्य के निश्चित प्रमाण दरवाज़ी शती १० से मिलते हैं। किन्तु यह समझ है कि मन्दिरों ने यह कार्य लाएको पहले सुरक्ष कर दिया हो। पुराने जमाने में विद्युत् ग्राहण-कुलों की प्रपत्ति निर्वाह तथा उँचाई के प्रकार के वास्तविक-प्रतिपादित कर्तव्यों को पूरा करने के लिए जो मात्र जान में दिये जाते थे, वे अप्रभाव कहलाते थे। वास्तविक कार्य के लिए जो मात्र जान में दिये जाते थे, वे संश्लेषण कहलाते थे। वास्तविक ग्राहण-कुलों की प्रपत्ति निर्वाह तथा उँचाई के प्रकार के वास्तविक-प्रतिपादित कर्तव्यों को पूरा करने के लिए जो मात्र जान में दिये जाते थे, वे संश्लेषण कहलाते थे। वास्तविक ग्राहण-कुलों की प्रपत्ति निर्वाह तथा उँचाई के प्रकार के वास्तविक-प्रतिपादित कर्तव्यों को पूरा करने के लिए जो मात्र जान में दिये जाते थे, वे संश्लेषण कहलाते थे।

प्रसिद्ध विद्विद्यालय

तद्धशिला—प्राचीन भारतवर्ष का उबसे पुराना और प्रसिद्धतम शिक्षा-केन्द्र तद्धशिला था। रामायण के वर्णनामुकार भरत ने इस नगर की स्वायत्ता की थी और उसने 'उत्तर तथा को उसका गहला धारक कराया था। महाभारत में जनसेवय का नामज्ञ ईश्वर स्वाम पर होमे का वर्णन है (१।३३२०)। रामायण और महाभारत में इसके प्रसिद्ध केन्द्र होमे का वर्णन नहीं, किन्तु सातवीं शती १० पूर्व तक मह स्वाम विद्यापीठ के बाहर में इसका प्रसिद्ध हो चुका था कि रावणह, बनसपा और विद्विला-जैसे दुरुकरी ध्यानों से लाज यहीं पड़ने आये थे। तद्धशिला पर विदेशी वाक्यमण होते रहे थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उससे उसे काली जाति पहुँची। इस प्रदेश पर छढ़ी शती १० पूर्व में ईरानियों, दूसरी शती १० पूर्व में बैविट्टा के पूसानी राजाओं, पहली शती १० पूर्व में याको, पहली शती १० में कुशाणों तथा पचमीं शती १० के मन्त्र में हुओं के प्रबल वाक्यमण हुए। फाहिमन को गौचरी शती के प्रारम्भ में विद्या की वृष्टि से वह स्वाम महस्तपूर्ण नहीं प्रतीत हुआ। उस समय तक यह विद्यापीठ-समाप्त हो चुका था।

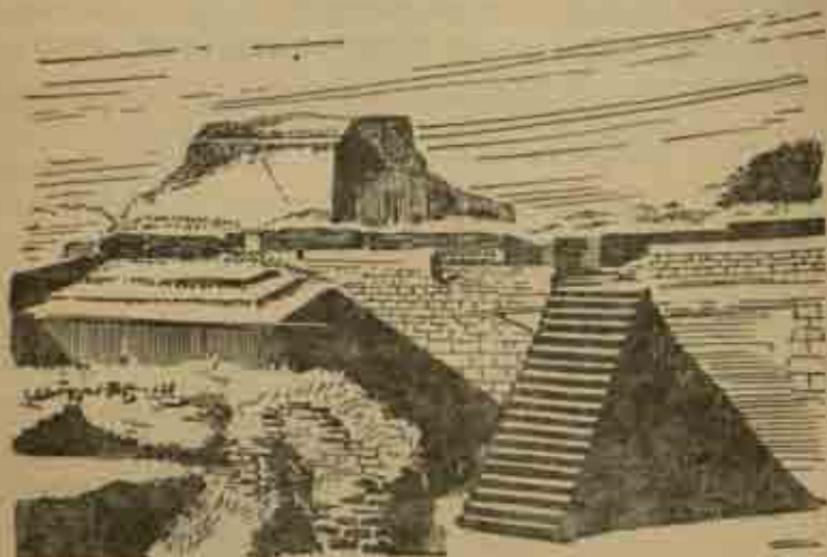
तद्धशिला-वाचुनिक काल के बाहे कालिकों या विद्विद्यालयों की जीति संघटित विद्यापीठ नहीं था। तो उसके विश्वक किसी केन्द्रीय नियन्त्रण में थे, न वही का वाह्य-काल और विद्या-काल गिरिजत था। वही कोई परीज्ञाएँ भी नहीं होती थीं और न ही कोई उपाधियों दी जाती थीं। यह सेवन एक विद्यालय विद्यापीठ था, वही सेवन वगत्-प्रसिद्ध (विद्यापासीनत) विद्यान् रहते थे। ये किसी कालिक से सम्बद्ध था उसके विद्यालयों विद्याक नहीं, किन्तु स्वतन्त्र थे। इनकी कोरिति से शाक्षर होकर भारत के वर्षी ग्रामों से विद्यार्थी आते थे, इनके पार में रहते हुए इनके बराबों में बैठकर विद्या लेहने करते थे। यद्यपि जातियों में किसी मुक्त के पास ५०० से कम लालों का वर्गीकरण नहीं, किन्तु वास्तव में ये प्रायः १५-२० से अधिक नहीं होते थे। इनमें पांच दर्दने वाले छात्र शुरु के तमाम रहते थे और नियंत्रण छात्र

दिन-भर गुह का काम करके रात को उसमें पड़ते थे। प्रत्येक गुह का अपना स्वतन्त्र कालिङ्ग था, उसका कोरे भी उसकी इच्छा पर अवलम्बित होता था और विद्यार्थी जो विषय पढ़ने के लिए उसके होते थे, वही उन्हें पढ़ाया जाता था। विद्यानालय की कोई याचिका निरिखत नहीं थी। भगवान् गुड़ के विकितसक वीषक को वहाँ पढ़ते हुए जब सात वर्ष बीत गए तो गुह से अनुमति प्राप्त करके वह राजपूत जीके पाया। मत्ता वृषभ शशीगुरु ने उसकी इलाम-गुण की कियात्मक परीक्षा भी थी, तथापि वह आजकल की परीक्षाओं से भिन्न थी।

तत्त्वधिका साहित्यिक एवं उपर्योगी घोनों प्रकार की जलायों का विद्यानेत्र था। वही 'तीनों' वेदों तथा भागवत विषयों की विज्ञा भी जाती थी। विषयों में वेदान् और अनुविद्या प्रधान थे। वेदान् की विज्ञा बहुत उच्चकोटि की थी, जो इसे वहाँ से विज्ञा-प्रहृष्ट करने के बाद पेट-घौर सिर के जो प्राप्तरेतम किये हैं, उन्हें भावकल्प के बहुत काम दान्पत्तिविलक कर सकते हैं। प्रहृष्टिया के एक 'अमर्दर्सिद्ध' प्राप्तायं से देख के विभिन्न भागों से आये हुए १०३ राजपूत विज्ञा अल्प करते थे। विज्ञिना में प्राप्त विद्यार्थी १२-१५ वर्ष की आयु से जाति थे और छः से बाढ़ वर्ष तक वही अध्ययन करने वाले थाए थे। बनारस के राजा अपने राजपूतों को विज्ञा के लिए तत्त्वधिका में ही भेजते थे। कौशलराज प्रसेनजित ने भी वही विज्ञा पाई थी। पाणिनि घटक के पास शास्त्रानुर गांव के रहने वाले थे। सम्भवतः वे वही के विद्यार्थी और बाढ़ में गुण रखे होंगे। तुक्र जत्युतियों के अनुसार वाणिज वही के आत्मार्थ है।

नालन्दा—प्राचीन नालन्दा का दूसरा इष्टा प्रसिद्ध विश्वविद्यालय नालन्दा पट्टी के विशिष्ट परिवर्म में ४० भौज की दूरी पर शापुनिक बहुमीम था। इसका उत्कर्ष पचवर्षी वासी के मध्य में मुख्य राजायों के द्वारा दानों से हुआ। द्वारा दिन्हू दीरे हुए भी उन्होंने इसके संरक्षण और विद्यालय में वही भाग लिया। वालार्दित (जो गम्भीरतः कृमार मुख्य प्रभम ४१४-४५४ ई० है) ने एक विहार की स्थापना करके नालन्दा की नीव रखी। इस विहार का बोड मन्दिर कई वर्षों तक नालन्दा का केन्द्रीय देवतालय रहा। इसके बाद तथागत मुख्य, नरसिंह वालार्दित (४६२-४०२ ई०), बुधमुख (४०५-४०० ई०) ने एक तथा बृह नामक राजा ने इसमें दो संग विहार बालाग्रे। छठी वर्षी ३५० में इसे सम्मिलित कीजून्यामे के कट्टर द्वीपी हृषि राजा मिहिरकुम्ह और बंगाल के शासीक के हाथी काली सानि उठाती रही। किन्तु सातवीं वर्षी के पूर्वोदय में दुष्यान चाँग के आने सक वह पूरी हो गई तथा इस चीमी वासी के गीवर्मी-नेत्रक के बहुमानुसार नालन्दा की सबसे उपर्योगी मन्दिर बालनों से भी छूटी थी। और वही पर बैठने वाला दर्शक गह देख सकता था कि बादम विस प्रकार आने भावान् बदलते हैं। इसमें भले ही अल्पुत्ति ही, किन्तु नालन्दा भी 'पञ्चनिन्दिविहाराद्यविति' का वर्णन वस्त्रोवर्मी के अभिरेत्र में भी ही।

मुग्धात ज्वाले के बीचनी-लेखक ने, जो कभी भारत नहीं आया था, सातवीं शती के दूसरे चरण में यहाँ के भिन्नों की सभ्या दम हजार लिंगी है। इस्तिग यहाँ ६७५ हॉ में आया। उसके बर्दौनामूसार यहाँ तीन हजार से अधिक भिन्न नहीं रहते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि सातवीं शती में यहाँ की जातवारण छाप-संकल्प गांव हजार



मालवा की प्राचीन ज्वालाएँ

थी। मालवा की गुडाई में जिथार्थी के भास्त्रे तथा बड़ी-बड़ी भट्टियाँ मिली हैं। कुछ भास्त्रे एक ही भिन्न के लिए हीते थे तुम्हारे दो के लिए। भास्त्रमें सौने के लिए एक या दो प्रस्तर-शाखाएँ दीरक के लिए तथा पुस्तकों के लिए ताक हैं।

मालवा शती हॉ के पूर्वी से नालन्दा से धर्मगात, बन्दगात, मुग्धमति, लिवरमति, प्रभाकर भिन्न, जिनभिन्न, विष्वद्वन्द, शीतभड़ नामक वित्तिद्व बीड़ भावार्थ दें। एक हजार विद्वान् ऐसे थे जो सदूचे बीड़ वाले भवत की व्याख्या कर सकते थे। विद्वतिवादमें वाड यहे प्रोट तीम सो ओट कमर वे घोट प्रतिदिन एक हजार व्याख्यान होते थे। उन दिनों मालवा की इतनी स्पष्टि भी कि कोरिया, चीन, विश्वत, तथा भगव एवं याम वे दीक्षां छाप देते रहते थे। मालवा में प्रेषण गांव के लिए वही परीक्षा होती थी। मुग्धात ज्वाले के बर्दौनामूसार इम्म-बीस या तीस प्रतिशत विश्वार्थी ही पाठ होते थे। मालवा की एक यही विशेषता 'पर्सेप्त' तामक विश्वाय 'मुग्धकालय' था। चीनी याकी पुस्तकों की प्रतिभिन्न करते के लिए भी यहाँ आते थे। इस्तिग पांच लाख लड़कों के बारे यो संस्कृत-ज्वालों की नक्कल यहाँ से हो गया था। मालवा के महायान बौद्ध भगव का केन्द्र होने से यहाँ मुख्य काष्य के बीड़ पर्से और दीर्घ वडाया जाता था। किन्तु इसके बाये ही नेद, हेतु विश्वा (तकनीक्ष्व), वाल, योदि विश्वा (व्याकरण),

विकिस्ता तथा अवर्देश (जाहू-मस्करी गम्ब) प्रोट साक्षात् दर्शन का भी अध्यापन होता था।

झाठबी शती में नालन्दा भारत का सबसे बड़ा शिळाकेन्द्र था, इसे उसे समय तक प्रभासरोद्धीय महात्म प्राप्त हो चुका था। इसके घनेक धाराओं ने तिक्ष्णत में बोल गम्ब के प्रसार में बड़ा भाग लिया। नवीं शती में जाका, मुमाचा के राजा बाल-पुष्टदेव ने नालन्दा में एक विहार बनवाया। इसी, ग्यारहवीं शती में वारहवीं वित्तीयों में इसमें बोल गम्ब का साहिरिक कार्य होता रहा, किन्तु ग्यारहवीं शती में प्राचीनी राजाओं द्वारा विकमिला को द्वोस्माहम् लेने से इसमें लीगता आने लगी। यह उन दिनों ताँचिक बोल गम्ब का केन्द्र बन गया। बारहवीं शती के अन्त में तुर्की के आधमन ने इसका ग्रन्थ हो गया।

बलभी—इसी (काठिमावाड़ में आधुनिक बला) यह शती शती में नालन्दा के समान व्याप्ति वाला विद्यापीठ था। दूरिंग के वर्णनानुसार विद्वान् उच्च-विद्वा पूरी करने के लिए यहाँ अभ्यास नालन्दा दो-तीन बारे रहा करते थे। बलभी में भारे भारतवर्ष के विद्वान् विद्वान्तों पर विचार करने के लिए एकत्र होते थे। विद्वा पश्चिम का विचार बलभी के विद्वान् महो मात्रते, वह अपनी तुदिमता के लिए सारे भारत में प्रसिद्ध हो जाता था। बलभी को भी राजाओं द्वारा सहायता मिलती थी। बलभी की उन दिनों इतनी व्याप्ति थी कि उत्तर उपेश के अधिक भी भारती मन्दान और विद्वा के लिए यहाँ आना करते थे।

विकमिला—विकमिला (भागलपुर से गुर्जे में २४ भील द्वर पश्चिम) की स्वाध्याना प्राचीनद्वयो राजा गम्बदाल ने झाठबी शती में को भी और चार शतियों तक गृहीं भारत का यह शिळाकेन्द्र प्रशासन विद्वान् पेंदा करता रहा। तिक्ष्णत के साथ इसका विशेष सम्बन्ध था। तिक्ष्णती विद्याविद्यों के लिए यहाँ एक विद्येष गम्बदाली थी बनाई हुई थी। यहाँ के धनेक धाराये तिक्ष्णत जांते तथा संस्कृत शंखों का तिक्ष्णती में धनुषाद करते रहे। इनमें विकार धोतान सबसे विशेष प्रसिद्ध है, वे ग्यारहवीं शती में तिक्ष्णत गये, उन्होंने दो सौ पुस्तके विद्यों तथा अनुवाद की। ग्यारहवीं शती में इसमें तीन सौ भिक्षु और एक विद्वान् गुरुतात्पत्र था। इस विद्यामय में गवेशामी विद्याविद्यों को धरोत्ता के लिए छ.-नात प्रसिद्ध थे। यहाँ व्याकरण, नाय, व्योत तथा अन्य का विद्यारण से भ्रात्यापन होता था।

विकमिला अन्य मध्य विद्यविद्यालयों को घोटा व्यापिक मुसंगद्वित भी अध्ययनात था। यहाँ विद्वा व्याप्त होने पर विद्याविद्यों को बंगाल के राजाओं द्वारा दाताचियों वितरित की जाती थी। जेतारि और ग्लावय को महोगाल और कनक मामाल राजाओं ने विद्यविद्या देखन की थी। विद्यविद्यालय के पुराने प्रसिद्ध वार्षी की सूति कालिक-जून्नत भी दीवारों पर उनके निति-चित्र बनाकर मुराखित रखी जाती

थी। १९०३ ई० में मुहम्मद बिन बक्तियार चिलबो जी ने भगवा ने इरे दुर्गे समझा और इच्छा पूर्ण विवरण किया।

बनारस—बनारस इस समय संस्कृत शिक्षा का बहुत बड़ा केन्द्र है, जिसने २५०० वर्ष पहले यह स्थिति नहीं थी। सातवीं शताब्दी ई० पू० में हम बनारस के शासकों के पुत्रों को अध्ययन के लिए तत्त्वजिला जाता हुआ पाते हैं। भगवान् बृह के समय इसका तुल धार्मिक महाकल प्रबल्लय था। उन्होंने सारनाथ में ही धर्मेचक प्रवर्तन चिना। धर्मोदय से यहाँ धर्मेक विहार बनवाये। हिन्दू धर्म का महत्वपूर्ण तीर्थ होने के कारण संस्कृत पाठ्यतात्री का यह जहाँ केन्द्र था। भारहूबो शताब्दी में अल्लवर्दी ने इसे लगा जाइयोर को विद्या का बड़ा केन्द्र बिला है। यहाँ सब पश्चिम धर्मों पूर्वक धर्मालय केन्द्र बनाये रहे। ऐसा नहीं प्रतीत होता है कि आचार्यों काल में यहाँ कभी नालनदी पा विक्रमशिला-बैठे मुत्तंगांडित विद्यालय स्थापित हुए हों।

शिक्षा-पद्धति के उद्देश्य—भारतीय शिक्षा-पद्धति के ऊर प्रचान उद्देश्य व और यह इनमें पूरी तरह सफल हुई।

यहाँ उद्देश्य अरित्र का निर्माण या आचार्यों का प्रयोग ही आचार का निर्माण है। कहु चर्चाविद्या में सेवा, शाश्वत और सच्चारित्रता पर बहुत बल दिया जाता था। भारतीय शिक्षा-पद्धति को अनिवार्य-निर्माण के उदास लोक में किन्तु सफलता मिली, यह भेगस्थनीज, युधान च्छान, इदरीसी, माकोंपोलो प्रभृति विद्यार्थी याचियों के विवरण में भली-भाली स्पष्ट है। इन्होंने भारतीयों के विद्युत की मुख्त कंडे से प्रशंसा की है।

दूसरा उद्देश्य लक्ष्मित्र का विकास था। युह के पर में रहने वाले विद्यार्थी को माननी मानसिक और शारीरिक शक्तियों के विकास का पूरा भवसर मिलता था। युह उसमें धार्म-सम्मान, आत्म-विकास और आत्मसंयम की भावना पैदा करता था। यह धर्मों जाति की संस्कृति और सम्पत्ति का गरकान का। जाति का उत्थान और उन्नति उसके कामों पर ध्वनित्वित है, ऐसा उसे पुरा ज्ञान कराया जाता था। इतना महत्वपूर्ण प्यक्षि होने के कारण ही स्नातक की यज्ञा से ज्वा स्थान दिया गया था। उसमें उसमें उत्तरदायित्व और कर्त्तव्य की भावना का जन्म होता था और वह उसके अविकल्प के बोन्हीय विकास में महायक मिल होता था।

तीसरा उद्देश्य सामरिक एवं सामाजिक कर्त्तव्यों का बोध था। स्नातक ही उसमें उसे सब बताया जाता था कि दूसरों स्वार्थ-प्रदायण जीवन नहीं किताना चाहिए। स्नातक का नूस पर जहाँ है, सम्भानोलालन और उनकी उचित शिक्षा हारा वह उस तुम्हें उत्तरना है। यहने यात्रा का विनियोग गोम-विनास के लिए नहीं, विनु लोक-हित के लिए करना है। लिमिन पेस्याली को धर्मों व्यवसाय के उच्चतम उदात्त भावों तर्फ बासने रखने पड़ते थे। उदाहरणार्थे वैद्यों के लिए यह विद्या

बनाया गया था कि अपने प्राण चाहे तक्कट में हों, किन्तु बीमारों की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए।

चौथा उद्देश्य प्राचीन संस्कृति का संरक्षण था। इसमें शिक्षा-पद्धति पूर्ण रूप से शाफ्ट है। विद्यालय वैदिक वाङ्-मय नैकड़ों वशी तक मुख्य-शिष्य-परम्परा ने ही सुरक्षित रहा है। इसे सुरक्षित रखते हुए, प्रत्येक वीक्षा ने उसे समझ बनाने का यत्न किया।

उपसहार—प्राचीन शिक्षा-पद्धति ने नाना जातियों वाले इस देश में एक विलक्षण सांस्कृतिक एकता उत्पन्न की। इसी भारतीय समिताक का यह उत्पत्ति विकास द्वारा, जिससे गृह्ण युग तक हम इर्दें, न्याय, गणित, ज्योतिष, वैदिक, रसायन आदि वास्तवों और ज्ञान के सभी वाँछों में विद्वन् का नेतृत्व करते रहे। पुरानी शिक्षा-पद्धति की कुछ विशेषताएँ लाइटरीय हैं। उपनग्न द्वारा नमूने समाज को जाप्तर बनाना इन्धियों की शिक्षा की व्यवस्था, चरित्र-निर्माण तथा बागरिक दृष्टिं का शिक्षण किसी दूसरे देश की प्राचीन शिक्षा-पद्धति में नहीं दिलाई देता। इसके कुछ मौलिक सिद्धान्त गृह-शिष्य का वैयक्तिक सम्बन्ध, गृहकुल बोधन का आवश्य, भाषा रहन-भहन तथा उच्च विचार, गाहित्यिक एवं उपर्योगी कलाओं की शिक्षा वर्तमान युग में भी स्वत्त्वात् यथा अनुकरणीय है।

आधुनिक भारत

आधुनिक युग का महत्व—प्रथारहीनी रानी के मध्य में बंगाल में विटिय यता को स्थापना हुई, शनै-वनैः सारा देश अंदेजों के आधीन हो गया। १६० वर्ष (१३५८-१६०० ई०) तक भारत परस्त रहा। किन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से इस काल का प्रसाधन महत्व है। विटियाँ शासन में ही भारत ने कई वित्तीयों की कुम्भकर्णी निर्दा का प्रारूपण किया, इसी समय धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक, चौकिक, वैज्ञानिक, प्राचिक लंबों में यसाध्यरण जागरण और उन्नति हुई। धार्मिक शेष में राजा रामभौद्धनाथ, श्री एकेन्द्रनाथ ठाकुर, श्री केशवचन्द्र सेन महर्षि दयानन्द, श्वामी रामकृष्ण, बरहमद्वारा, श्वामी लिलेकानन्द प्रभुति महापुरुषों ने भारत का मस्तक झेला किया। राजनीतिक शेष में राधारामद्वै नौरोजी, गोपाल कृष्ण गोलखे, बाल गंगाधर तिलक, भाजामा गोधी और जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में अंदेजों से संघर्ष करके भारत ने अवतारता प्राप्त की। सामाजिक शेष में सती-दाह, कन्या-बद, बाल-शिवाह, शारि कुपलाघो के हटाने, विषया-शिवाह, दूरित्वन-उत्त्वान, श्री-शिक्षा प्रादि उपयोगी मुद्दों के प्रवास से हमारे समाज का कायान्तरण हो रहा है। साहित्यिक शेष में ग्रान्तीय भाषाओं के विकास तथा श्री एकेन्द्रनाथ-हीरो विद्व-विश्वामात् विभूतियों के उत्पन्न करने का श्रेय यार्थमान भारत को ही है। इसी काल में श्री जगदीशचन्द्र बोस तथा रमण-जीसे वैज्ञानिकों, एटो-जीसे वृक्षोंगातियों, श्री अरविन्द-जीसे शीघ्रियों और वास्तोनिकों का आकृतान्त्र दृष्टा है। भारत तथा में एक नई भावना और नई भेत्ता का उदय हुआ और इससे भारत में मध्य मुग्ध साधुनिक युग में प्रवेश किया है।

ये तो प्रत्येक योद्धों भ्रातों को आधुनिक बहतो है, किन्तु इतिहास में कई विद्यमान उत्पन्न होने पर ही आधुनिक युग का शोभगमोश समझा जाता है। योग-प्रियक परम्परा की मान काल को अविदुष बताती है किन्तु ऐतिहासिक इसे कल-युग कहते हैं। आधुनिकता का प्रभाव चिह्न कलिदूषों होना व्याप्त मध्यीनों की व्यापादा में भारी परिवार में उत्पादन तथा वैज्ञानिक व्याविधिकारों का व्यविकाशिक उपयोग है। इसकी अन्वयिता राजनीतिक भाषण, व्यावायिक तथा पार्मिक विचार-क्रान्तरण है। ये किसी भी देश में आमूल वरिवर्तन कर देती है। पिछले सी वर्षों में इन्हों के कारण भारत में नवयुग का प्रारम्भ हुआ है। यही सांस्कृतिक दृष्टि से हुए

महत्वपूर्ण परिवर्तनों का उल्लेख किया जायगा। तो परिवर्तन घर्म, समाज, आर्थिक और कला के शब्द में हुए हैं और इनसे अभृतपूर्व भारतीय जागरण हुआ है।

धार्मिक आनंदोत्तम

आधुनिक भारत में नवयुग की ल्योति सर्वप्रथम धार्मिक आनंदोत्तमों के रूप में प्रकट होती है। इस समय भारत में जो जागृति दिलाई देती है, उसका सूत्रपात्र इसी से हुआ है। इनसे भारत को सर्वप्रथम धर्मनीय वर्तमान स्थिति का बोध, स्वर्गिम भर्तीत का ज्ञान तथा उत्तरवल भवित्वमें विश्वास उत्पन्न हुआ। इन्होंने आत्मोनामक दृष्टि से यात्राओं के अवश्यक पर बत दिया, धर्म-विश्वासों और काहिनाद के स्वाम पर तक और दुष्टि जो प्रधानता दी। इन आनंदोत्तमों के प्रेरक कारण विदिष यात्रन से उत्पन्न नवीन परिस्थितियों से। इसाई-प्राचारक हिन्दू और मुस्लिम धर्मों पर प्रबल आज्ञान कर रहे थे, धर्मजी यित्ता के प्रवार से परिचय के उदाहरण विचार विधित जनता तक पहुँच रहे थे और वर्षों की भाँति धीरें-धीरे उन्होंने जमूरे भारत की धर्मप्रवास से योग-प्रोत किया। उन्नीसवीं शती के ग्राममें में भारत के सभी धर्म समें धर्म-प्रवर्तकों की धर्मसो यित्ताएँ भूलकर नाना प्रकार के धर्म-विश्वासों, हिंदूओं प्राचारकों, युक्त कर्माण्डल तथा ज्ञान विचारों के मोह-जाल में फँसे हुए थे। विदिषी ज्ञान के आत्मों से धर्मों जूनने पर तथा पदार्पणता की पोड़ा अनुभव करने पर समझदार भास्तीयों ने धर्मप्रवास की दूरवस्था देखी, उन्हें उसमें संशोधन की यावद्यक्ति प्रतीत हुई, उसके परिणाम उन्नीसवीं शती के धार्मिक आनंदोत्तम थे।

ये आनंदोत्तम दो प्रकार के थे। कुछ उस सुधारवादी थे, ये वर्म और समाज में जहे धार्मिकारी सुधार जाहे थे, इनकी प्रेरणा का प्रधान स्रोत परिचयी यित्ता और विचार-जागा थी। इनमें बहुसमाज और प्रार्थना-समाज मूल्य थे। इनके नेताओं ने धर्मियों विचारों से भाव्य तौकर तब संघर्षित भीतिया परिवर्तन करने जाहे तो इसकी धर्मिकाया कठुर सुधार-आनंदोत्तमों के रूप में प्रकट हुई। धर्मोत्तमी और राम-कृष्ण मिथन ऐसे ही प्रवास के। दोनों धर्मियादियों के बीच में धर्मक नरस विचारों वाले सुधारक तथा धार्म-समाज के नेता थे, जो वैदिक परम्परा को धर्माण रखते हुए परिवर्ती युगों में उत्तम हुई कुरोतिमों का संशोधन करता जाहे थे।

धर्मसमाज—क्रष्णसमाज के प्रवर्तक राजा रामगोप्त राम (१९३२—१९३३ ई०) थे। वर्षपन वे ही वे धर्मियों के विरोधी थे, उसका विचार या कि सब धर्म एक ही दैवत को भावत है। १९३२ ई० के जाद हिन्दू-मिथनारी हिन्दू वर्म पर बहुत प्रबल धारणा करने लगे। उसमोहन राय गहे तो इनका उत्तर देते रहे और धारण में उन्होंने युद्ध एकत्रवाद को ज्ञानना के लिए धर्म-समाज की स्थापना की। इसकी पहली बैठक कलकत्ता में २० अगस्त, १९२८ को हुई, इसके सामाजिक धर्म-विचारों से लेकर का जाठ, उपनिषदों के अनुत्तर धर्माद का ज्ञानन और वंगमा में उपदेश

होते थे। राममोहन राय द्वारा इयलेज लिए गए और १८३३ई० में उनकी मृत्यु के बाद इसके प्रबाल नेता श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर बने। उन्होंने हिन्दू-समाज के संगठन को निरिचित विभान तथा नियम बनाकर मुद्रित किया। इन्होंने समूल वेदों को प्रामाणिक भावने का विचार छोड़ दिया। १८५७ई० में बहासमाज में अपेक्षी विद्या-नाम्पत्ति, अत्यधिक भावक तथा बास्ती युवक थोके विवरण्ड सेन का प्राप्तमन हुआ। इसने बहासमाज को नहीं भावना और स्कूल से जोत-प्रोत किया। इसके विचार बहुत उदार पर थीं और १८५० में इसने उदारता के नाम पर दविष्य यज्ञोपवीत को भी तिलाजनि दे दी। उन दिनों श्री केशवचन्द्र सेन पर ईसाइयत का प्रभाव अधिक पहुँच रहा था। १८६६ई० में उनके एक व्यापाराम से श्रीतामों ने यह समझा कि थी कि ये सेन यज्ञ ईसाई होने वाले हैं। ११ नवम्बर, १८६६ को उन्होंने आपना पृथक् समाज स्वाप्ति किया। इसके बाद बहासमाज में सेनक मतभेद उत्पन्न हो गए और उसका प्रभाव शीण होने लगा।

बहासमाज ईसाइयत के विरोध में हिन्दू-समाज की रक्षा के लिए यहाँ बौध था, किन्तु वह भ्रम में ईसाइयत के जबरदस्त प्रवाह का मुकाबला न करके उसी के साथ बह गया। मूलियूका के विरोध के प्रतिरिक्षत बहासमाज ने जाति-भेद भावि की कुरीतियों के विवरण की ओर भी बहुत ध्यान दिया। और केशवचन्द्र सेन के प्रवाल से १८७२ई० में 'विशेष विवाह करना' पास हुआ, जिससे शाही के धन्त-जीविय विवाह बैठ गए।

बहासमाज हिन्दू-समाज में यह सुधार करना चाहता था, उस पर पाइचाल्य प्रभाव, ईसाइयत और अपेक्षी विद्या का बहुत प्रभाव पड़ा था। इसका कोई बगाल तक ही सीमित था। विद्यमो भारत में १८६४ई० में वो केशवचन्द्र सेन को बापा तथा भाऊओं का विधित बनता पर गहरा असर हुआ। १८६७ में बम्बई में 'प्रार्थना-समाज' की स्थापना हुई। यह बहुतभाज का ही युसरा कष पर था। इसके नेता ही अलमराम 'पश्चृत रामकृष्ण पोताल भवदासकर, महादेव गोविंद राम' थे। वे जाति-विद्या के लच्छेद, विष्वा-युनिविश्वाद, स्त्री-विद्या के प्रसार तथा बह-विवाह-विशेष के सुधारी पर बह देते थे। निरिचित विद्यमो के पापार पर इस समाज की संगठन म होने के, यह आन्दोलन विविधाती महीं बन गया।

ये सुधार-व्याप्तीतन के बह दिन-दर्शन तक ही रीढ़ित न थे। अपेक्षी विद्या द्वारा जिस पाइचाल्य प्रभाव और ईसाइयत के प्रभाव ने दिनुमो में बहासमाज और प्रार्थना-समाज वैदा किये, उसी से बरपृक्षी एवं सुस्तित विद्यमो में सुधार की प्रवृत्तियाँ अपन दृढ़े। १८५१, ई० में विधित प्रतिरिक्षियों ने पारसी पर्म की रक्षा तथा कुरीतियों के संसीधन के लिए 'हिन्दूमाये भज्वायस्तात' नामक समाज की स्थापना की। इसका उद्देश्य पारसी समाज का पुण्यकर्त्त्ववाल तथा पारसी पर्म को प्राप्ततम पवित्रता की ओर ले जाना था। इसके नेता विद्या भाई भीरोडी तथा वैदा बो। वामा शाहि महानुभाव

थे। इस्लाम में जैसे धार्मिक सुधारों का श्रीगणेश करने वाले सब सम्बद्ध थहमरे थे। पट्टूर एवं कठिन-पस्त इस्लाम को उन्होंने युक्ति-संगत बनाने का प्रयत्न किया, वे तर्क को ही प्रश्न प्रभाष्य मानते थे। हवालत मुहम्मद की शिखाधीनों को सम्पादनकूल बनाने का दूसरा प्रयत्न भारत के सब-प्रश्न प्रियी कोन्सिलर थी अमोर चलो ने किया।

उपर्युक्त सभी स्वामी साम्बोलन उप्र सुधार तथा आमूल परिवर्तन के प्रधानाती थे। १८८८ से १८७७ ई० तक इनकी प्रधानता रही। शिखु इसके बाद उप्र सुधार साम्बोलनों की प्रतिक्रिया कठुर-साम्बोलनों के रूप में जुरु हुई। इन्होंने न केवल ईसाइओं के लितरे का अनुभव किया, किन्तु हिन्दू-धर्म के भौतिक सिद्धान्तों को उपेक्षा और तिरस्कार को भली भाँति गमना। पचास वर्ष पहले जहाँ शिखित हिन्दूसमाज हिन्दू धर्म के विविध सिद्धान्तों और उनकानों की विली उदात्ता था, अब वह उसका वैज्ञानिक समरैत करने लगा। प्रत्येक हिन्दूप्रथा और कठिन का जाहं वह सामाजिक दृष्टि से हानिकर ही करो न हो, आत्मकारिक इंग से इस प्रकार बरांग किया जाने लगा कि वह स्वृक्षीय और आदर्श समर्पो जाय। इस प्रकार के साम्बोलनों में श्री रामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्द का प्रचार और विमोचको मुख्य थे।

रामकृष्ण-भिशन-साम्बोलन—श्री रामकृष्ण परमहंस उच्चकोटि के सुन्दर और साधक थे। १८५६-१८३५ ई० तक उन्होंने कठोर साधना की, अन्य सभी के प्रति उनकी दृष्टि अत्यन्त उदार थी। वे भौतिक धर्म से दिव्यों को उपदेश देते थे। उनके शिष्यों में नरेन्द्रनाथ (स्वामी विवेकानन्द) बहुत प्रमिल है। यह की मृत्यु के बाद उन्होंने अन्याय प्रहण किया, ले वर्ष तक तित्वर गावि में बौद्ध धर्म के सम्बद्धन के लिए पर्यटन करते रहे। १८६३ ई० के यितन्दर भास में शिकासों के शम्भनामेश्वरन में अभियन्त होकर उन्होंने वह प्रतिद्वंद्वीय विवेकानन्द की विदेश समरीका की भारत के पार्मिक महस्त का पहली बार पूरा जान हुआ। अमरीका और इंगलैण्ड में हिन्दू-धर्म का प्रचार करने के बाद के बाप्स भास्त लीटे। तारे देश में उनका अमृतांक व्यापक हुआ। उन्होंने बेनूर और मायाकी (बड़मोहा) में दो केन्द्र स्थापित किये। देश में हुमेश पहने पर उन्होंने सहायता-कार्य का शंखठन किया, इसी समठन में बाब में श्री रामकृष्ण-सेवायम का काम चारण किया। ४ जुलाई, १८६२ को स्वामी विवेकानन्द दिवंगत हुए।

रामकृष्ण-भिशन-साम्बोलन की कई विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं। यह सुधारों को दृष्टि से प्रहृ-समाज की भाँति उप्र नहीं है, बेदान्त के सिद्धान्तों की आदर्श मानता है और आत्मात्मिकता का विवाद ही इसका प्रधान लक्ष्य है। इस समय के अन्य सुधारक भूति-नूजा के विरोधी थे, किन्तु रामकृष्ण परमहंस इसे सामाजिक आवाजा जागृत करने के लिए उपयोगी मानते थे। जिन प्रथाओं पर परम्पराओं को अद्यतनावी या कठुर हिन्दू-धर्म के अन्य साम्बोलक समाज के लिए भातक समझते थे, मिथन उन्हें उस रूप में नहीं देखता था। स्वामी विवेकानन्द हिन्दू धर्म के बतेबाने

श्रीवर्णवर-प्रधान विद्वान की कठोर भल्लना करते थे, किन्तु फिर भी सुधारकों का मार्ग ठोक नहीं समझते थे। उनका कहना या "पुराने सभी विचार भवन्व-विश्वास हो सकते हैं, किन्तु अब्द-विश्वासों के विश्वास समूह में सत्य की सुधारणा करिकार्त है। क्या तुमने ऐसा साधन ढूँढ़ निकाला है जिससे सुधारणा को सुरक्षित रखते हुए उसकी अद्युति को दूर कर सको?" रामकृष्ण-मिशन को दूसरी विशेषता यह है कि यह सब भारी की सत्यता में विवाद संखता है और इसकी आधिक दृष्टि प्रत्यक्ष उद्दार है। मिशन का समाज-सेवा का कार्य धर्मन्तर सराहनीय है, दुनिधि, बाहु आदि विषयों में ऐत-वासियों की सेवा के साथ, इसके सेवाधर्म रोगियों की चिकित्सा और लोक-शिक्षण में भी लगे हुए है। स्वामी विवेकानन्द के प्रयत्नों से पाश्चात्य देशों में भारत का मान-बदा, उन्होंने सर्वेक्षण वर्तमान युग में पश्चिम के सम्मुख भारतीय संस्कृति और सम्भवता के गीरज को प्रतिष्ठापित किया। इसीलिए इन देश में वे बहु सोकप्रिय हुए। उनका कहना या हि पश्चिम का उद्धार भारतीय प्रधानमन्त्री ने ही कहता है और भारत की उन्नति परिवर्ती देशों की उपचोरी विशेषताओं को ध्यानाने से ही यकीनी है। विदेशों में हिन्दू धर्म तथा वेदान्त के प्रचार तथा भारत में लोक-सेवा के कार्य को रामकृष्ण-मिशन में सफलतापूर्वक सम्पन्न किया है।

पियोसफी—पियोसफी की स्थापना मैडम अर्डेन्स्की द्वारा कर्मेन घट्टाट में १८७३, ई० में अमरीका में की थी। ये १८४६ में भारत आये। १८८६ ई० में यशस्वि के निकट प्रवायार में उन्होंने प्रपना केन्द्र बनाया। भारत में इस आनंदोलन की सफल बनाने का प्रयत्न अमेरिकी एनो बीसेप्ट की है।

पियोसफी धारीतम ने हिन्दू धर्म की प्राचीन कहियों, विश्वासों और कर्म-काप्त का बड़ा प्रयत्न विज्ञानिक नमर्गन किया। इसका उद्दृष्ट प्राचीन भारतीय प्राचीनी और परमार्थों को तुम्हराजीवित करना था। अधिकारी वीसेप्ट के प्रयत्न से इन सकृद की पुत्रि के लिए बनायस में "हिन्दीय हिन्दू स्कूल" की स्तराना हुई, बाद में इसने कालेज तथा धर्म विद्यालय का काय प्राप्त किया। प्राचीन संस्कृति पर वह देने के कारण, यह आनंदोलन हिन्दू-भारत में वहा सोकप्रिय हुआ, किन्तु तुरंगी शहियों और विश्वासों के समर्थन तथा उद्धयमय कर्मकाल और तत्काल एवं वहने से विजित समुदाय में इसके प्रति प्राकर्त्तन घट गया। इनका अधिक प्रभाव दक्षिण भारत के आधिक और सामाजिक धारीतमों पर ही पहा।

केन्द्र युपार आनंदोलनी का एक सुरक्षित्याम मह तुधा कि तत्काल एवं विजित हिन्दू धर्म ने प्राचीनवाद का भारत किया। प्राचीनत्य विज्ञा और सम्भवता की पहसु विज्ञानीय में विजित वर्ग हिन्दू-धर्म में विश्वास को दूका था, उसमें तात्त्विकता और सद्बहु की प्रयुक्तियों प्रयत्न हो गई थी, उस समय यसेक व्यक्तियों को भागने को हिन्दू व्यवायों में लगवा भक्तवत्ती थी। १८५० से १८८० ई० तक यह मनोवृत्ति उत्पात हुई। उत्पात विजित व्यवाय तक तुरंगीय और विकिमनन्द इस आनंदोलन

के नेता थे। इनका प्रधान कार्य हिन्दूओं की सालरिक वसति को दूर करना था। इन्होंने नेतृत्विक प्रमाणों के आधार पर हिन्दू कर्मकाण्ड तथा लूँगों को गाय्य एवं बालशरक ठहराया। शासपर के मतानुसार केवल भारत ही ऐसा देश था जहाँ सम्मत का पूरा विकास हो सकता था, बाकी सब घरें और सभ्यताएँ हिन्दू-जगंत की सुनना में अपूर्ण, नेतृत्विक और हानिप्रद थे। चिकित्साधारण इसलिए उचित एवं विज्ञान-सम्मत था कि इसमें आरोर में विष्वृत आरोग्यों का चक्र दीक तरह भवता रहता है। शासपर न उसके साधियों की युक्तियों में भर्ते ही पूरी सत्यता न हो, किन्तु मध्यम वर्ग के हजारों लोगों, व्यापारियों तथा विद्यकों पर उनका महरा घसर पड़ा, इनमें उनमें छपने वर्षे के प्रति आत्मविश्वास और आत्माभिमान जाइत हुआ। विजित वर्ग में यही कार्य श्री वैकिष्ण ने किया, उन्होंने गार्दियों द्वारा कृष्ण-वरित्र पर किये गए आवेदों का सुन्दर समाधान किया।

आयंसमाज—इसे सुधार तथा समाजसंदोषन के विद्वती शही के द्वावोलनों में सम्मिलित सबोच्च स्थान आयंसमाज का है। इसके नेतृत्वापक स्वामी द्वावान्द सुरस्वती (१८२४-१८८३ ई०) थे। १२ वर्ष की वृद्धिमा में सत्य की ओल में उन्होंने भागवान् बुद्ध की भौति महाभिनिरक्षण (शुह स्पात) किया। १५ वर्ष तक सच्चे यज्ञ की दुर्दृष्टि रहे, उन्होंने अुग्रम तीभों में योग-साधना करते हुए आनंदचय लिया। १८६० ई० में तो मधुरा में दण्डी स्वामी विश्वामन्द के शिष्य बने। ३ वर्ष तक उनके द्वावों में बैठकर विद्याभ्यास करते रहे, उनसे उन्होंने प्रत्येक वस्तु के सर्वात्मक निरूप की आयं-दृष्टि प्राप्त की। १८६६ में हरिद्वार के कुम्भ में हिन्दू-घर्में की दोष-नीय दशा देखकर उन्होंने इसके महान् पालन के विष्वृत वास्तव-सत्त्विकी पालका गाराकर आपने जीवन का महत्वपूर्ण कार्य भारमन किया। उनका धमता जीवन हमें सहमा लंकाराघात की श्रृङ्खिल करा देता है। ज्युगि दमानन्द का प्रधान सनातन या कि श्रुतिनूला वेद-वित्ति नहीं है। गर्वक वे परिदृष्टों को उसे वेदानुकूल लिख करने की ज़्यादी होते थे। काशी के लोन सो विष्णुत स्वामी जी को वेदों से सूचित-पूर्वा लिख करने वाला एक भी प्रमाण दूँकर नहीं दे सके (१८८८मवर, १८६८ ई०)। इसके बहकर उनको विजय लाते ही सकती थीं। स्वामी जी ने आपना देश जीवन सुतिनूला सभा हिन्दू घर्में के आनंदविद्यालयों वथा कुरीतियों के लग्न और वैदिक विद्वाओं के प्रधार में लमाया। १८७४ ई० में उन्होंने 'सत्यायं-प्रकाश' लिया। जीवन के विजितम चार वर्ष वे वेदी रजतार्द्ध में रहे। 'सत्यायं-प्रकाश' के बाद उन्होंने 'सत्यार-विद्वित' 'यजुर्वेद-भाष्य' (समूल), 'ऋग्वेद-भाष्य' (समूल), 'क्लेशादिमात्य युक्तिका' वादि महत्वपूर्ण वन्द लिये। ३० दिक्कूर, १८८३ ई० को दीपमातिका के लिए, भावसेर में उन्होंने प्राप्ती जीवन-नीति लूँगी की।

आयंसमाज की विशेषताएँ—स्वामी द्वावान्द ने आपने कार्य को स्पालो का देने के लिए पहुँचे दावकोट और पुना तथा किर बम्बई में १८७५ ई० में आयंसमाज

को स्थापना की। पर्याप्त उन्होंने उत्तर भारत के सभी प्रान्तों में वैदिक धर्म का प्रचार किया, किन्तु इसका सबसे अधिक प्रभाव पंजाब में हो पड़ा। कर्मठ पंजाबियों ने इस भारद्वाज को उन्नीतवीं शती का सबसे महत्वपूर्ण आमदान बना दिया। पार्वती-भारद्वाज के भारद्वाजन की कही विलेपताएँ थीं। उसने नृति-नृत्रा का लक्षण करते हुए हिन्दू धर्म के मूल स्रोत वेद को प्राप्तान भारतर बनाया था। श्री अद्विन्द के दलों में रामसोहन राम उपनिषदों पर ही बहुर गए थे, दयामन्द ने उपनिषदों से भी अलै देखा और यह जान लिया कि हमारी संस्कृति का वास्तविक मूल वेद ही है। गामिनिक धर्म में पार्वतीभारद्वाज ने जाति-वेद, प्रस्तुश्यता, बाल-विवाह, वहू-विवाह की अपेक्षा कुरीतियों के उन्मुखन का यत्न किया, स्त्रियों की दशा उन्मत की। इन दिवां में पार्वतीभारद्वाज का सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य चुनिंदा था। विलोमी शती के किसी अन्य भारद्वाज-सुभारद्वाज को इस बात को कलना भी नहीं हुई थी कि वह विधिमिमों को हिन्दू-भारद्वाज से मिलाते की अवस्था करे। अहि दयामन्द और पार्वतीभारद्वाज को इस बात का अर्थ है कि इस अवस्था से उन्होंने हिन्दू जाति को तबल और लिपातील बनाया। राष्ट्रीय दृष्टि से स्वामी दयामन्द का यह काम बहुत महस्त्र रखता है कि उन्होंने भारतीयों की मानविक पराधीनता को दूर किया। शिक्षित वर्ग-प्रदिव्यम की देशानिक उपराजि ने उसका अंध-भक्त बनकर भारत गौरव को बढ़ाया। उसमें अपनी प्राचीन संस्कृति और राष्ट्रीय अभिमान का सोप ही चुका था। ऐसे सब प्रयत्न में अहि दयामन्द ने यह प्रचार किया कि येद सब सत्यं विद्यायोः का भण्डार है, उसमें विज्ञान के सभी धारुनिक साक्षिकार तथा विद्यार्थी की जैव रूप से विस्तृत है। हमें इस दिव्यम में अद्विन्द से अविकृत होने की प्राप्तव्यकाला नहीं, वैदिक काल में पार्वती-जगद्गुरु था। अहि दयामन्द के इस प्रचार ने बैलों की माया से मुक्त भारतीयों की मोह-गिरा को भंग किया। उसमें जात्य विवाह और राष्ट्रीयता की भावना को दृष्टि किया। भारत में स्वराज्य का मान उन्नाप्न करने वाले अहि भारतीय अहि दयामन्द हैं। १८८३ है० में कांग्रेस की स्थापना से हो वारं फहले जागरित 'सत्यार्थ-प्रकाश' में उन्होंने निलंगा या कि अन्नों से प्रचलित विदेशी राज्य स्वदेशी राज्य की तुलना लहो कर लकड़ा।

अहि दयामन्द को भूत्यु के लाद, एवं तीर, लेखराम, मुख्यत निवार्ही, भासा लाजपतराज, महात्मा दंतनाथ, तथा स्वामी अद्वानन्द प्रादि ने प्रार्वतीभारद्वाज के भारद्वाजन को सकितगाली बनाया। विद्या के प्रश्न पर पार्वतीभारद्वाज में कालेज तथा गुरुकृत मामक दो दल हो गए। कालेज-दल ने १०० ए० ली० कालेज स्थापित करके विद्या का प्रचार तथा वैदिक विद्यालय का प्रचार किया। मुख्यत दल के नेता महात्मा मुख्यराम (स्वामी अद्वानन्द) ने १९०० में योग-ज्ञ एवं हरिहार के पास मुख्यत बांधवी की स्थापना की। यह देश का वहला विद्यविवाहनय था जहाँ मातृभाषा गिन्धों के भाष्यम छारा उच्च विद्या करकातापूर्वक दी गई। पार्वतीभारद्वाज ने विद्या, विन्दी-प्रचार,

युद्ध, समाज-नुसार, राजितोद्धार, वैदिक वर्म के प्रसार, आतिथेय के उच्छेद, जोक में वा तथा राष्ट्रीय आनुष्ठानिक कामों में वहा महत्वपूर्ण भाग लिया है।

समाज-नुसार

विटिया शासन स्वापित होने पर भारतीय समाज की दशा अत्यन्त शोजनीय थी। इसमें कन्या-उप, यतो-प्रथा जैसी भीषण एवं बाल-विवाह जैसी आतंक और अस्मृत्युका दशा आतिथेद जैसी हानिप्रद कुरीतियाँ प्रखरित थीं जो देश के यथ-प्रधान का कारण बनी हुई थीं। दलीलेवी जाति के यांत्रिक अस्मीतनो—इन्ह-समाज, प्राचीन-समाज और विशेषतः यांत्रिसमाज ने इनके निवारण के लिए बहुत प्रयत्न किया।

१८८५ ई० में जब देश की राजनीतिक दशा उन्नत करने के लिए कांग्रेस की स्थापना हुई उस गमन मह अनुभव किया गया कि यांत्रिक दशा नुसारने के लिए भी प्रगल्प करना आवश्यक है। इस उद्देश्य की पूति के लिए १८८८ ई० से कांग्रेस की अलोक बैठक के माध्य प्रतिशर्य 'राष्ट्रीय समाज नुसार परिषद्' को संघिकेशन होने लगे। इस परिषद् के प्राण महात्मा गोदानन्द रामादेव थे। इसमें हर साल स्वी-गिरजा के ब्रह्मार, बाल-विवाह और पर्व के विशेष, विशेषाओं और स्वस्मृत्यों की दशा नुसारने, प्राक्तनीव लाज-गाज और विवाहों के प्रोत्तात्त्व आदि विषयों पर प्रस्ताव पात्र होते थे। १८८० से समाज-समार का प्रबल समर्थक 'हिन्दूयन नोशल रिफामेंट' नामक यांत्रिक पत्र निकला। १८८७ ई० में बन्दूकी तथा गदार में समाज-नुसार के प्राचीन मैत्रिय बनाने लगे। जीतेवी जाति में समाज-नुसार का काम पहले यांत्रिसमाज और किर कांग्रेस द्वारा हुआ। गदारमा यांत्रि ने हिन्दूनोड्डार और सादक-उत्थन-नियोग पर कहुत बहुत दिग्गज। १८८० के बाद ने भारतीय जातियों में अभ्यन्तरीन यादृति हुए है। यही काल-कम से यांत्रिक नुसारों का तंत्रिका वर्तन होगा।

सती-प्रथा—जिल्लो जाती में विटिया यांसकों तथा भारतीय समाज-नुसारकों का अवान सुबहे पहले सती-प्रथा और कन्या-उप की ओर गया। यहि की मृत्यु पर यहाँ द्वारा उसकी चिता पर जाती होने की प्रथा का विशेष प्रधार यथ्य पुमें हुआ था। आरम्भ में यहि के विवरत होने पर यहाँ के नामने यावन्म देवत्य या चिता-गोहन के विकल्प थे। किन्तु बाद में यावन्माओं में यहाँ होने की महिमा बाही जाने लगी। न्युतिकारों ने यह कहा कि यहाँ होने वाली जाति में विवरत यहि के साथ अन्तम यावन तथा द्वर्ग के सबों का उभयोग करती है किन्तु वह यहाँ इस कार्य के याति और यित्कृत की तीन वीलियों का भी उदार करती है। इस प्राचार यांत्रिक अवस्था होने पर यीकों यित्कारों जाती होने लगी, किन्तु कई यार विषेषाओं की अनुष्ठान के लिए यहाँ यहाँ यहाँ भी यित्कारों को यहाँ होने के लिए यांत्रित करने लगे। इस उद्देश्य की पूति के लिए बड़े वास्तव उपायों का अवलम्बन किया जाता था। यित्कारों में यहाँ होने की स्वीकृति याने के लिए जन्म अपील यादि मार्क पदार्थ वित्ताकर वित्तकूल वैद्यु

कर दिया जाता था। सियों चिता की ज्वाला प्रभवित होने पर वही से उठकर भगवती तो उन्हें बीमों से बबरदस्ती चिता में डेला जाता था, उनका कलण बीलार दर्शकों के हृदय को बिरीरा न कर सके, इसलिए शल, ढोक, बड़ताल आदि वाच नुव बोर से बचाये जाते थे। सियों चिता से उठकर भाग न सके, इसलिए प्रायः सियों को चिता के साथ रसिसयों से शुक करकर बीम दिया जाता था।

प्रथम्युग में मुहम्मद तुगलक तथा फ़खर ने इस कुप्रधा की समाज करों का प्रयत्न किया, किन्तु यह बन्द नहीं हुई। विटिय शासन की स्वापना के समय से असेंज अफसर और ईसाई पादरी इसे बन्द करने पर बत दे रहे थे, किन्तु विटिय चरकार चार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहती थी। और-और चरकार अफसरों द्वारा इस दारण प्रधा का निरन्तर विरोध किये जाने पर चरकार ने १८१२, १८१५ और १८१७ ई० में कुछ ऐसे नियम बनाये जिनमें छोटी प्राप्ति की, गम्भीरी तथा बड़ी बड़ी चिपकायाँ के साथी होने पर रोक लगा दी गई, किसी स्वीको इसके तिए बाधित करना और उसे अपील आदि से बेमुख करता भी दण्डनीय अपराध बना दिया गया।

श्री रामभीहन राय १८११ ई० में शपनी भाजी के बबरदस्ती सती किये जाने का वारण दूसरे दैत्यकर इस प्रधा के घोर विरोधी हो गए। उन्होंने अपेक्ष साधनी बारा इसके विरुद्ध प्रचार किया। १८१७ का सती प्रधा विरोधी नियम बनाये पर चरक अम्बाज के कट्टरधिकारों ने इसे रद्द करने के लिए सरकार को आवेदन-पत्र भेजा तो रामभीहन राय ने इसका बबरदस्ती प्रथम्युत्तर देते हुए सती-प्रधा की हृदय कियारक बट्टार्डी का कर्त्ताम करने हुए चिता कि सब शासनों के अनुसार यह नारी-हृत्या है और इसका धूत होना चाहिये। धूत से दिराम्बर, १८२८ ई० को लाइ वेटिय में चरकारी कानून डारा द्ये गई और दण्डनीय अपराध बना दिया।

बालवध—बालवध की हुशाई दो लाई में प्रवतित थी। बंगाल में मह वडी पुरानी प्रधा थी कि लोई अभोष्ट तूरा होने पर बच्चों की बनि दी जाती थी। उद्य-हरणार्थ नियन्त्रान चिपायी यह संकल्प करती थी कि यदि उनके एक से अधिक बच्चों हुए-हो वे एक बद्ध भूमि-भूमाल की भेट करेंगी। १७६५ ई० में बंगाल में इस प्रधा को कानून डारा नर-हृत्या का अपराध घोषित करके बन्द किया गया। दूसरी शोधनीय प्रधा बालिकान्वय थी थी। मण तथा परिवही भारत के राजपूतों, जाटों, मंडों में कम्भा का वर्ण होते ही उसे अपील आदि देकर या मण डंगों से भार दिया जाता था ताकि अप्या के विवाह के समय दौड़ आदि के कारण खो अपमान सहना पड़ता है तथा अवैधत होता है, उसे मुक्ति हो जाय। १८०२ ई० के एक कानून के अनुसार इसे भी बन्द करने का यन्म किया गया।

चिपका-विवाह—सती-प्रधा बाल हो जाने के बाद चिपकायाँ की समस्या विवेद का से विषम हो गई। बाल-चिपाह और बेसेल चिपाह की प्रधा के कारण हिन्दू

समाज में बाल-विवाहों की संख्या बहुत अधिक थी। प्रचलित प्रथा के अनुसार विवाह युवतिवाह नहीं कर सकती थी। उन्हें अस्थन्त संघर्ष और बहावर्य का चीज़न वित्तना पड़ता था। हिन्दू परिवार में उन्हें प्रतिदिन भर्यकार अपमान महसूस होता था। श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के प्रबन्ध से भारत सरकार ने १८५६ ई० में विवाह युवतिवाह को जानव छहराने वाला कानून बनाया।

किन्तु इस कानून से भी विवाह-विवाहों की संख्या नहीं बढ़ी, यद्योऽहि सोकमत इसके गहरे में नहीं था। शार्न-वासौः इस प्रथा के विरुद्ध जनसत् प्रबल होने वाला और इन विवाहों को यह समाज में पहुँचे की तरह बुरी दृष्टि से नहीं देखा जाता। विवाहों की सहायता करने तथा उनकी दशा सुधारने के लिए देश में घनेक संस्थाएँ काम कर रही हैं। १८८७ ई० में वाणिपद बनजी ने इस प्रकार को मार्ज प्रबन्ध संस्था कलकत्ता के पास बरहामगढ़ में खोली थी। १८८६ में एक इंसाईटी गविता रमा वार्दे ने पूरा में हिन्दू विवाहों के लिए शारदा सदन खोला। इस सदन की विवाहों के इन्साईट ही जाने से हिन्दू विवाहों की सेवा के लिए भी काढ़े ने १८८६ में हिन्दू विवाहाद्यम को स्थापना की। १८८६ के बाद आमेसमाज ने विवाहाद्यम स्थापित किये। उत्तर भारत में इस प्रकार का सबसे बड़ा प्रयत्न सुर गंगाराम का था। १८८४ में उन्होंने लाहौर में विवाह-विवाह-सहायक सभा की स्थापना की और इनके लिए लालों की समर्पिति का दाना किया। पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश के घनेक लालों में इसकी दास्ताएँ हैं।

बालविवाह—मध्य मुम् में बालविवाह को बुराई भासी सहम दीमा तक तो पहुँची थी। ऐसे भी उपाहरणों की कमी नहीं बिना॒ दू॒प गीते तथा गम्भीरपूर्ण विषयों की शादी तप लो जाती थी। बहु रामान्, यापि समाज और एक पारसी पक्ष-कार बहराम जी मलावारों ने सबं प्रथम इस बुराई की ओर देश का ध्यान लो चा। भी मलावारी ने १८८० ई० में घनेक हिन्दू नेताओं और सरकारी भास्त्रों को सम्मतियों के साथ इसके विरोध में एक युद्धिता प्रकाशित की। १८८० में एक खेलाड़ी इसी सूत्रमयी दासी के विवाहान में देवाली बालविवाह को बुराई को तीक्ष्णा में घनुभव करने वाले। मारह-वारे को प्रबन्धमा में पति इच्छा सहवास से फूलमर्गी की मूल्य हो जाए और जब यह पर हृत्या का अनियोग जलाया गया तो उसने घमनी सहाई में भारतीय दृष्टि विवाह की वह यारा पैदा की जिसके अनुसार विवाहित घोड़ी गंगा सहूलाम के लिए न्यूताम भासु इस वर्षे थी। भी मलावारी पाटि सुधारकों ने तथा इसाइयों ने भारत सरकार पर सहवास-गायु बहाने तथा बाल-विवाह रोकने के लिए कानून लाने पर बल दिया। भारत सरकार ने जब गहवास-वर्ष को दस से बारह वर्ष करने वाले वस्त्राव वाल किया तो कहुरपन्नियों ने उसका घोर विरोध किया। किर भी १८८१ में यह प्रस्ताव कानून लाया। देशी राज्यों में बड़ीदा ने सबं प्रथम १८०१ में बाल-विवाह-विवेचक कानून लाया। लक्ष्मे-नारायणों के विवाह के लिए न्यूताम भासु वस्त्रः सोलह और बारह वर्षे रखी। विटिय भारत में भी हरविवास शारदा के प्रबन्ध

मेरे १६२६ में बाल-विवाह-निपोषक कानून पाया हुआ। इसने भानुसार अद्यार्थ कर्त्ता से कम आयु के नहीं के तथा जीवह वर्ष से कम आयु की वहकी का विवाह नहीं हो सकता। बाद में इस कानून में कहीं संशोधन हुए। विवाह के प्रसार से बालविवाह भी तुराई शहरों में बहुत घट रही है।

जाति-भेद—हिन्दू समाज की सबसे बड़ी विशेषता जाति-नाम बताई जाती है। हिन्दू जाति जगभग तीन हजार एवं बगीं से विभक्त है जिनका जाति-नाम और विवाह आपने ही बगीं तक सीमित रहता है। विदेश जाति के प्रारम्भिक काल में जाति-भेद की व्यवस्था बड़ी कठोर थी। एक जाति का विविध ने देखल जाति-नाम और विवाह के विषय में जातीय बलवतों में बहुत दुष्पाठ किया था किन्तु वह आपना यैतृक पेंडा भी नहीं छोड़ सकता था, विवेशियों के सम्पर्क से दूरित होते के भय से विदेश जाति-नाम जाति-नाम भी नहीं कर सकता था। जाति-नाम में बाल्यों के कुछ ऊंचे वर्ष शुद्धि का इसी गतिक विवाह रखते थे कि एक ही उप-जाति के अक्षित एक शूसरे के हाथ का बना भोजन भी नहीं जाते थे। यही बात 'नौ कनोली तरह चुन्हे' प्रावि-कहानियों में प्रतिविमित हुई है। स्वामी विवाहानन्द ने इसी वरिस्पति से लीभकर कहना पढ़ा था कि 'हमारा धर्म रसीदेश्वर में है, हमारा ईश्वर ज्ञाना बनने के बताते हैं—हमारा चिकित्सा है 'नुकेज छुपो, मैं पतित हूँ।'

पिछली व्यक्तियों द्वारा सर्व प्रथम जाति-नाम और विदेश-जाति के बनाने लोगे गए। पिछली जाती के पन्ने में कांपेग के साथ होते जाती समाज-मुख्यार-नियमों की तरफालि जलतबर्तीय भोजी के साथ होती थी। सापारव जनता में रेलों ने इस विवाह को विविध करने में बड़ी यहायता की है, कांपोक इसमें छुपाया और शुद्धि की मर्यादायों का बालन करना बहा कठिन है। होटल भी इसमें बहुत यहायक मिड हुए हैं। यात्रा से भी वर्ष आपने विदेश-जाति करता बड़े बाल्य का आवं था। राजा रामेन्ह राय इमलैण्ड जाते हुए आपने जाप ब्राह्मण रसीद्वा लेते थए मेरे ताकि यातिर विवेदी भोजन में ये अमंजस्ट न हों। विवेद जामे जाती को भारत वापस आने पर वह कलिनाइयी ब्रह्मती बढ़ती थी। प्रायविवाह ने शुद्धि न करने पर ये जाति से बहिरात बह दिए जाते थे। किन्तु भीरे-भीरे विवाह के लिए पूरोहित और धमरीका जामे जाती की संख्या बढ़ने से वह बन्धन विविल हो गया।

जाति-भेद का बदले बदलने वाल्यन विवाह-विधयक था। यार्थ समाज ने जाती को तुराईकर्मनुसार मानते हुए इसे लोकने पर बहुत बल दिया। इससे समाज की बड़ी हानियों हो रही है, ज्ञानव का लेन लकुचित होने से यह बहुत गतिक भीता जाता है, इसलिए या तो विवाह कठिनाई के ही होते हैं या जड़कियों गतिशाहित यह जाती है ज्ञानव के मेल विवाह होते हैं। यार्थ यों विवृत्यनाई पठेन ने इस तुराईका को दूर करने के लिए १६१० में एक विजय प्रधा किया था, किन्तु उसका कट्टरणीयी वर्ण ने इसना विशेष किया कि वह यास न हो सका। १६२१ में जाहूर में जाति-नाम का

विरोध करते के लिए जात-जात-उद्देश-मण्डल स्वामित हुया। १९३७ में आर्य-विद्यालङ्घ-कानून द्वारा आर्यसमाजियों के धनतज्जीवीय विवाहों को वैध बता दिया गया।

जाति-भेद की श्रद्धालुओं परिवर्मी शिखा, अपरिच्छिक-जातिय, जमातिय एवं उन देश वालों उदार विचार-भारा तथा रेलों आदि के आगमन से तभा नई शाश्वत योग्यता विषयों से टूट रही थी। ये वालों बहुत ज्ञान, जो पहले प्राप्त नहीं जातियों के साथ था, नम्बरम् समाज हो रहा है, जोकि अपने पुरुषों पर्याय की आपेक्षा नवीं कारबाहों व जाति करने से अधिक जाप होता है, दूसरी ओर वाह्याण आदि उच्च वर्णों के अपकृत शाश्वत शाश्वत परिवर्तियों से वापस होकर वर्णों, अपार्वी, दुकानदार बन रहे हैं। इन्हें देख में एक कानून लाइ द्वारा तथा समाजता के मिठान का गालन होने से भी पुराना जातीय भेदभाव समाप्त हो जा है। स्वतंत्रता पाने के बाइंग महासनुभव किया जा रहा है कि सच्चे सोकलाच वीर स्वतंत्रता के लिए जाति-भेद को मिठाना अनिवार्य है। जाति में ही पूला में इसी उद्देश्य से जाति-निर्मूलन सामरक संस्था स्थापित हुई है। १९४६ ई. में बम्बई में जाति-भेद-पर कुठारायात करने वाला एक नया कानून पास हुया है, इसमें अनुसार जाति-विद्युकार को कष्टमीम अपराध बता दिया गया है।

जोशिविक देश में आधुनिक भारत के दो बड़े आमिकारी सुपार हरिजनोदार और महिलाओं की आध्यात्मिक उन्नति है। हिन्दू समाज ने कई सी वर्ष तक नीच जातियों तथा स्त्रियों के साथ कूरा अपवाहन और ओर उत्तीर्ण किया था, पिछले एकांस वर्षों से वह उनका प्रायत्वित करने में जाप हुया है, उहै सम्पुर्ण हीन स्थिति से उद्धारने के बारे में जापित प्रयत्न किये जा रहे हैं।

हरिजनोदार—प्रतिश शासन के प्रारम्भ में भीष जातियों के करोंको हिन्दू प्रहृत माने जाते थे, इनके साथ असहा और अव्यवस्थार होते थे। इसीपर में यह प्रथा उत्पन्न करने में थी। वहाँ उच्च जातियों भीष जातियों के लालों ही नहीं, लापा तक से अपविष्ट हो जाती थी। कोर्नीन की सरकारी स्टोरें के अनुसार जातियां नापर के स्वर्ण ने दूधित समझे जाते थे, किन्तु कम्बलन (राज, बड़ौद, लुगार, बम्बई) जातियों ने २४ कुट वी दूरी वे शाश्वत कर देता था, ताकी जिकालने वाला ३६ कुट थे, जिसमें कुपक ४८ कुट से, और परेवन (गोमाता-बछड़ा वरिहा) ५४ कुट थे। वह सम्मीण की बात थी कि इसमें पुरानी रिपोर्ट में परिहा ७२ कुट की दूरी में अपविष्ट करने वाला माला गया है। अन्याय प्रहृत शाही से कहर रहते थे, मन्दिरों में इनका प्रवेश बंजित था, जोकि सब भक्तों का उद्धार करने वाले देवता भी इनके दर्शन से दूषित हो जाते थे। ये कुपों से वासी नहीं भरे रहते थे, हस्तानों और गाढ़शालाओं का लाभ नहीं उठा सकते थे। उच्च वर्ग के लोगों आदि के अल्पाचार सहते हुए ये बड़े कुल से जाति लारकोय जीपन को अविद्या बिताते थे।

इसके उद्धार की ओर सबसे पहले आर्य समाज ने आग दिया। १९३६-३७ ई. में हमारे देश में भव्यकर दुष्प्रिय पड़ा। देहांतों में हजारों अस्तुत चुरों के बहुत

तरे । इस समय ईसाइयों में जहायता-नाम का संभव किया । १००० ई० से दक्षिण भारतीय बड़ी संख्या में ईसाई होने लगी । आदेशमान ते इस वर्तरे को सनुभव किया और उनके उद्घार ता बहुत गल किया । बहुत समाज और आर्थना-समाज ने भी इस द्वेष में कुछ काम किया । १६२० ई० के बाद से महात्मा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने संस्कृतता-निवारण को रचनात्मक रूपकाल का खंग बना लिया । हरिजनों के मन्दिर-प्रवेश के लिए कानून लगा । १६३२ में नवीन शासन-योजना बनाते हुए विदेश अधिकारियों ने निवीन के लिए जब धरकों को हिन्दुओं से अलग रखने का मत लिया तो महात्मा गांधी ने पूजा में अलगन करके इसका विरोध किया और उनकी बात स्वीकार कर नी गई । इसी समय उन्होंने धरकों को हार्दिजन का नाम दिया और उनकी दशा-मुद्धारने के लिए 'हरिजन सेवक संघ' और 'हरिकन' पत्र की स्थापना की और हरिजनों के लिए देव का दौरा किया ।

१६३३ में कांग्रेसी सचिवाओं के स्पष्टित हो जाने के बाद हरिजनों की उपति, विदेश-तथा-सामाजिक बाधाओं को दूर करने की ओर ध्वनिक धारा दिया गया । दक्षिण विदेश-गुदा के बाद तब विदेश-भारत के स्वतन्त्र होने के बाद कांग्रेसी ध्वनि-संघों ने परिवर्णित एवं दक्षिण भारतीयों के उत्पान के लिए 'हुरा' प्रवल किया है । आप सभी धाराओं में संस्कृतता-निवारण का मन पाया हो चुके हैं । इनके अनुसार संस्कृतता कानूनी १५० से दफ्तरीय प्रपत्राएव बना दिया गया है । हरिजन यव तक पुरानी सामाजिक प्रवा के अनुसार सार्वजनिक जलाशयों, मन्दिरों तथा शिला-संस्थाओं का अद्वृत होने से उपयोग तहा कर सकते हैं । अस्तु इनके कामण होटों में भी बन करने वाला इनके स्वामों पर बोला-यात्रियों आदि सवालियों पर दृढ़ता का ध्वनिकार नहीं रखते हैं । १६५५ ई० के संस्कृतता उत्पत्ति के तर्मे कानूनः द्वारा बहुतों को डंडी भारियों के बदला समझते हुए उपर्युक्त सभी सामाजिक प्रतिवर्धन धर्म एवं दक्षिण वाराप बना दिए गए हैं । शिला को दक्षि से हरिजन भारतीय बहुत प्रियो हुए हैं । उनमें शिला-प्राप्त का विशेष गल किया जा रहा है, हरिजन विदेशियों के लिए शिला संस्कृताओं में पर्याप्त स्थान मूरछित रहे जाते हैं, उनके लिए पवन लेनी वे विदेशियाँ अधीक्षित हैं, उन्हें कठा तक नियुक्त शिला बाने की अपर्द्धा है, सरकारी होमेन्टों में उत्तर की विशेष नुविधाएँ हैं, लालाबार के सभी लोग आप हैं । सरकारी नीतियों में इस प्रतिशासन स्थान इनके लिए मुरछित है । इन परों पर नियुक्ति के लिए नियत प्राप्त में उन्हें लोन बद्द की जात है । अस्त्रवापिका-सभाओं में उनके स्वाम सुरक्षित हैं तथा पार्लीय व चैम्बरी सभी सांख्यभृतों में संस्कृतों के प्रतिनिधि हैं । भौतिक के नोड नविधान में संस्कृतता को एक समराप गोप्तित किया गया है और इस प्रकार कानूनी दृष्टि से इसको अन्वेषित कर दी गई है ।

विदेशों का उत्पान—शिलों तरी में हरिजनों के ध्वनिकार समाज में विदेशों की दशा भी अलगत वालीय और यिरी हुई थी । नारियों को समाज में अत्यन्त विरक्तार की दृष्टि से देखा जाता था, उन्हें वेर की जूती समझा जाता था । स्तो-

भास्माज को शिशा से विचित एवं ज्ञान-कूम्भकर पद्म में रखा जाता था। पुराणों की प्राप्ति उनके दास्ताव एवं ग्रन्थात्मिक अधिकार नाम-नाम को ही थे। विष्णुने पश्चात् कार्यों में इस स्थिति में आमूल गर्वितरह था गया है। हमारे ऐसे को नारियों में असाधारण बाधृति हुई है और उन्होंने अभी क्षेत्रों में पुरुषों के समान अधिकार और स्थिति ग्राप्त कर ली है।

पिछली शती में स्त्रियों के उत्थान का लोगरेता स्त्रीशिशा में हुआ। ईसाई शिशनरियों ने ईसाईयत के प्रचार की दृष्टि से इसे प्रारम्भ किया। बंगाल में वहाँ भास्माज ने उच्च ईश्वरजन्म विद्यालयमर ने स्त्री-शिशा के लिए वहाँ पठन किया। १८६० के बाद से आपें भास्माज ने उच्चर भारत में और विशेषतः पंजाब में इस कार्य को बड़े जोर-दोर से किया तथा याम ही गद्व को कुरीति के विशेष भी यान्दोलन किया। स्त्रियों में शिशा का प्रचार होने से वही जाधृति हुई। वे भी अपने राजनीतिक अधिकारों को मार्ग ढरने लगीं। १८८५ विद्यमहर, १८९७ को भारतीय स्त्रियों के प्रतिनिधि मण्डल ने यात्री बार भारत-मन्दीर मार्गटेप्पू से भद्राम में मत्ताधिकार की मार्गी लौ, किन्तु १८९८ की मार्गेमू-नेमाकोड रिफाम-मन्दीर में स्त्रियों के मत्ताधिकार का शोरी स्पष्ट उल्लेख नहीं था। इस पर भारतीय स्त्रियों ने इसके लिए और भाल्दोलन किया और नारियों का एक प्रतिनिधि-मण्डल यात्रियामैष्ट के सदस्यों से यह मार्ग मनवाने दूरपीछ भी गया। १८९६ के शासन विधान के अनुसार ग्रामीण व्यवस्थापिका-परियदों को नारियों को बोटर बनाने का अधिकार दे दिया गया। इसके अनुसार मन्दीर पहले मण्डल ने १८२६ में स्त्रियों को व्यवस्थापिका-परियद के सदस्यों के विवरण तथा अधिकार प्रदान किया और वे वर्षे में लगभग अभी ग्रामीणों में स्त्रियों निवारिक बन गईं। मूरोंमें नारियों को जो अधिकार और गुणपूर्व के बाब्द प्राप्त हुए, वह भारतीय स्त्रियों को अल्प प्रयास से और कठोर शादि कर्त्तव्य देखी की स्त्रियों से यहाँ बिल गया।

यही दशा भास्माधिक और कामनी शिशाधिकारों की थी है। १८८० के बाद स्त्रियों ने राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य संघारों ने जो बहुत याम लिया। उनमें शिशा और जाधृति वह रही थी। १८२६ में शीमती मार्मरेट कविता ने महिलाओं के नंगड़न का प्रधान किया, कलाकृति भास्माधिक भहिला वरियद की स्पापता हुई। इसका पहला अधिकार जनवरी, १८२६ में तूना में हुआ। यह विजित भहिलाओं का प्रधान तंगड़न है और विकली दी व्याख्यायों में भारतीय नारियों पर वर्णे प्रतिक्रियों और कामनी-बासायों को हटाने तथा मामान अधिकारी की मार्ग करने में इरु संस्था ने मुख्य भाग लिया है। इनके अमारति एवं को बहीदा कथा द्रावनकोर की महाराजियाँ, नवाब भूपाल को देगम, शीमती शहोविनी जापहू, राजकुमारी अमृतकोर, रामेश्वरी नेहरू, विद्यमानझमी शहित-जैसी प्रसिद्ध भारतीय नारियों मुखोभित कर ली गई हैं। प्रतिकर्ष मह स्त्रियों की स्थिति के सुधार करने के लिए एमेक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास करती है।

भारत सरकार की भीति भी जारी-भागदोलन के अनुकूल रही है और नायियों को बड़ी तेजी से राजनीतिक अधिकार मिले हैं। १८३५ के पालन-विवाह में प्रारंभ एवं केन्द्रीय असेम्बलियों में नियमों के लिए कुछ स्थान सुरक्षित रखे गए। बड़ात में इनको संख्या आठ थी, अर्थात् और ४० पी० में छे, प्रविधिक विवाह में पाँच, पुराने दबाव तथा विवाह में चार, मालवान्त में तीन, उड़ीसा तथा झिल्ल में दो तथा झाराम में एक, अलकानन्द-पर्वीट बलाया में जियों केन्द्रीय अवस्थागिका-परिषद् में सदस्य है। जियों के भारत-समाजों में पहुँचने का एक सुपरिणाम पहुँचा है कि उड़ीसे समाज-नुणार और खड़ीजों को तीनों कानूनी प्रविधिक विवाहों के प्रत्याव येते किये हैं। सर्वेक्षण में सबसे बड़ी अवस्थागिका-गमा को भिल्हा-सरदारायी ने इस प्रकार के अनेक विवाहस्थित किए। वहाँ पुरानों के बहु-विवाह पर प्रतिबन्ध लगाने की तथा तिन्हीं स्त्री-नुणाओं को कुछ जियों अवस्थायों में लगाक का अधिकार देने का नानून नाम ही चुके हैं। १८५५ में भारतीय समझ ने इस प्रकार का हिन्दू विवाह कानून पाया किया।

कलिशों सरकारों ने जियों को डेंचे पह देकर नायियों को उड़ीसाम प्रविधिक देने के प्रारंभिन भारतीय धाराओं का पालन किया है और जियों को जियति को बहुत कौचा उठाया है। स०. २० अमरीका तथा ऐट विटेन में भारतीय राजदूत के पह को श्रीमती विवाहाइयों परिषत् ने असंबृत किया, राजकुमारी घमृतकीर, श्रीमती तार-पेथरी जिन्होंना आदि कई जियों केन्द्रीय समितिमण्डल में, यानियों बनी हैं। विवेगता भारत-कोकिला गरोलिनी नामहू उसक अदेश के गवर्नर पह पर आसीन थी। उन्होंने पुरी प्रदेश नामहू विवाह विवाह की राजपत्राल बनी। पह रमरा रखना चाहिये कि समाजाधिकारादारी परिचयी देशों में जियों अभी तक इन्हें डेंचे पहों पर नहीं पहुँची। संयुक्त राज्य अमरीका में १८५६ई० पहली बार एक नहिला को राजकूल लगाया गया है। स्वतन्त्र भारत ने न केवल याने जासन-विवाह में स्पष्ट रूप से जियों और गुरुओं के समिकार नमान माने हैं जिन्हे १८५८ में केन्द्रीय सरकार ने भारतीय अवस्थानिक सेवा (आई. ए० एस०) की प्रतिमीमिता-परीक्षायों में जारीयों को भी बेठने का अधिकार देकर उनक प्रोफेशन को किसानक रूप प्रदान किया है। यह अधिकार यहीं तक जियों को परिचयी देशों में बहुत कम प्राप्त है।

मेरे कानून—नायियों को पुरानों के तुल्य कानूनी अधिकार देने का सबसे बड़ा और कमिकारी परिक्षयम ये सामाजिक कानूनों का निर्माण है। भारतीय प्रतिमा-सेप्ट ने तिन्हीं जियों की जियति सुधारने के लिए निम्नलिखित सामाजिक कानून बनाये हैं।

(१) १८५५ का हिन्दू विवाहित जियों के पूर्वक विवाह और निर्वाह अवधि का कानून।

(२) १८५५ का हिन्दू विवाह कानून।

(३) १८५५ का हिन्दू उत्तराधिकार कानून।

(४) १८५६ का दिन्हू दक्षकपुत्र ग्रहण तथा जियोंह अवधि कानून।

(v) १९५५ का हिन्दू प्रलवणकालीन समाजभित्तिकता कानून (Hindu Minority and Guardianship Act.) ।

इस कानूनों से नियमों को बद्दा पहले की अपेक्षा बहुत उन्नत हो गई है, लेकिन अत्येक दोष में इनके अधिकार पुरुषों के बराबर हो गये हैं। पहले विवाहित स्त्री पुरुष का से पति की हत्या और दण्ड पर अवश्यक थी। एक बार विवाह हो जाने पर पुरुष प्रेमचंड विवाह कर सकता था, किन्तु पत्नी पति के कुर, मतभाचारी या दावों से दीमत होने पर भी उसके साथ रहने वाला था। पति की सम्पत्ति का वह केवल उपभोग कर सकती थी, किन्तु उद्दे इस सम्पत्ति को पुरुष का से प्राप्त करने वाला प्रेमचंड विविधों करने का कोई अधिकार नहीं था। अहंकारी को पिता की सम्पत्ति में पुरुष की तरह कीर्ति हुक नहीं मिलता था। अब ऊपरुक्त कानूनों में शिवमों को पति और शिवा की सम्पत्ति में अधिकार दिये गए हैं और पुरुषों विवाहों को विशेष व्यवस्थाओं में बन करने का एक अतिकृती दोनों की शमाल का से प्राप्त है। हिन्दू-पुरुषों के कानूनी अधिकारों में पुरुष समानता खालित हो गई है।

उपर्युक्त नहर्त्यार्थी समाज सुधारों के अतिरिक्त माइक-दब्ब-नियेट को और भी कांग्रेसी चरकारों ने बहुत ध्यान दिया है। देवदातियों के मुधार, मन्दिरों की सम्पत्ति के उचित उपयोग, जेमेन विवाह आदि कुप्रधारों के लिये, देव की बुराई तथा शारी का लंबे काम करने का भी यान्दोलन हो रहा है। याता है स्वतन्त्र भारत में कुछ दसातियों में अधिकारी सामाजिक दृष्टियों का अव हो जाएगा।

साहित्यिक जागृति

आधुनिक कान में सामाजिक जागृति के सात साहित्यिक जागृति भी हैं। अनेकों द्वारा संस्कृत के अध्ययन ने भारत-विषयक अध्ययन का उद्योग हुआ जिससे ऐसे ध्यान देश के सुप्रतीक्ष और अतीत इतिहास का ग्रामाधिक परिचय मिला। अनेकों विद्या के प्रतार और लांगोलानों के व्यापक से जाति का औद्धिक जागरण प्रारम्भ हुआ और इसका सबसे बड़ा और विलक्षण परिवास प्रतीक्ष सामाजिक के साहित्य का विभास है।

भारत-विषयक अध्ययन का प्रारम्भ—जटाघीरी धर्म के अन्तिम चरण में विद्या शासकों की शासन-प्रवाद के लिए भारतीय माध्यमों का जान वाले की व्यापकता घनूमत हुई। अरेन होस्टिल में संस्कृत एवं धर्मों की विद्या के लिए भारत में संस्कृत शास्त्रीज और कलकाता में धर्मों मदरसे की स्थापना हो। उद्योग शोलाहन से संस्कृत शीखने वाला पहला ध्येन जाति विकल्प था, जिसमें भारत-विषयक अध्ययन को नींव लेने वाला था। संस्कृत का महान् जल्दी-भाँति सुन्दर करने वाले पहले अवित तर विविध जोग्य (१९४६-१९४८ ई०) थे। वे १९४३ ई० में तुरीय कीर्ति के जब बनकर भारत आये थे और १९४४ में इन्हें वीरसत्य वाल्मीय और शाल-निवान को शोध के लिए बंगाल रामन एवियालिंग सोसायटी की स्थापना हो।

इनहीं ग्रन्थपत्रम् विद्वानों का व्याप्त है और जीवा कि पुरोग की पुरानी जाहिनिक भाषाओं—यूनानी तथा लैटिन की तथा वैराग्य की पुरानी जन्म का जांस्कृत से अनेक सम्बन्ध है, ऐसे सब भाषाओं एवं मूल ज्ञात से प्राप्त है। वाह मे इन्हीं भाषाओं के युलनात्मक ग्रन्थपत्र से पुरोग मे युलनात्मक भाषा-ज्ञान (Comparative Philology) की जीव पड़ी। इसी से महं भी जात हुआ कि इन्हें जोत्ते जाती जातियों के घर्म-कर्म, देवगात्राओं, प्रजातों तथा सत्याओं मे भी बड़ा साधन था, यो व्यावैज्ञानिक पता लगा। पुरोगीप विद्वानों द्वारा संस्कृत की ज्ञान विद्या के सांस्कृतिक इतिहास मे कोशलस्वरूप उत्तर घमरीका यो लोक-जीव ही बहुत रखती है।

कौन्तम ने पुराणों के यान्दसुप्त तथा यूनानी लेखकों के मेफुवांडुस वी ग्रन्थिनात्मक, प्राचीन भारत के लिखित-क्रम की व्याप्त योग्यता देखी। १९८५ ई० से पुराने ग्रन्थिनात्मक ग्रन्थों की भी विद्वानों का व्याप्त योग्यता। वहसे युग-युग तक तो लिखि पढ़ी गई भीर वाह मे १८३०^० तक विनोप ने यूनानी लिखकों की साहायता से योग्य-युग को बाहुदी लिखि पढ़ा ली। इन सिन्धकों के एक घोर यूनानी लिख वे भीर-दूसरी घोर उन्हीं के प्राकृत अनुवाद। यूनानी लिखि की सवाइ मे प्राकृत लिख पढ़े जाने से पुराने ग्रन्थिनात्मक योग्यता ही गया। कनिष्ठम ने भारतीत तथा शब्दों जादि स्थानों की युगाद कराई। कनिष्ठ के समय पुरातत्त्व-विभाग की स्थापना हुई, सारे देश का पुरातत्त्वीय विद्योपास्त्र किया जाने योग्य और उसकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई। लाडू वर्जन के समय प्राचीन द्विषांतों का बींबाण-कालून बना तथा उत्तरानम की घोर यांत्रिक व्याप्त व्याप्त योग्य। उस समय से पुरातत्त्व विभाग ने उल्लिखा, नाल्मदा, मोहोजोदहो (सिन्ध), हड्ड्या (यंजाद), पहाड़पुर, गोदो, मारनाम, नागार्जुनीकोडा यादि प्राचीन ग्रन्थिनात्मक स्थानों की युगाद कराई। इनसे भारत के प्राचीन इतिहास का युनिक्वार हुआ। इस जाने से गण-प्रवर्षक अध्येतर, भारत अपने योग्यपूर्णी जीवों पर प्रकाश दालने वाले इन विद्वानों का भीर जल्दी रहेगा। वह प्रसन्नता की जात है कि सब भारतीय विद्वान् भीर संस्कारे इतिहास की ज्ञान घोर संस्कृत-कार्य मे असामर ही रही है।

प्राचीन भाषाओं का लिकान—विटिश वास्तव की व्याप्ति के समय लिखित एवं सुन्मन्दृत भारतीय घरवी तथा संस्कृत का व्याख्यन करते हैं। हिन्दी वामा, गुजराती, गोदी, उड्डी, तामिल, तेलुगु वहत काल से लोक-प्रचलित ही, किन्तु इसमे उस समय व्याख्यक साहित्य—वीरवत, नद्याव रस और भवित रस जी कविता एवं तथा भूषाकाम्य ही है। विटिश काल मे अनेक ज्ञानों से लोक-भाषाओं मे यथ साहित्य का लिखित तथा इसका व्याख्यान उत्पन्न हुआ। इसाई पाइडियों ने वाइलिन का निर्देश जनता सक पृथ्वीयों के लिए लोक-भाषाओं की ज्ञानीती की भीर व्याप्त योग्यता, विराम-पूर्ण के वैलिक विज्ञानी इन ज्ञाने मे अप्रभावी है। इन्हीं सबसे पहले वंगमा, हिन्दी भावि लोक-भाषाओं के उत्तर व्याप्ति, उत्तरायण व्याख्यन दिये, इनका पूर्ण जात याने के लिए व्याख्यात भीर व्याप्त-कीर्ति बनाये। भावि ज्ञानीय भाषाओं के पहले व्याख्यात-लिखक इसाई वादी है। यूनानी यूकिक्यित लोक-भाषाओं के प्रतिरिक्ष

इन्होंने दोहोरी और अविवाहित भाषणों को भी ईसाइयट के प्रचार के लिए उपयोग, उनका स्वरूप निश्चित किया। और उनमें जाहिल्य बनाया। यथा प्रेसक दृष्टियों से ईसाई प्रचारकों का कामः जाहिल्य नहीं रहा, किन्तु लोक-जाहिल्य के निर्माण हारा उन्होंने भारत की अमूल्य देखा करी है।

भ्रातीय भाषणों वेद तक अपेक्षी के प्रभाव से इको रही जिन्हु राष्ट्रीय जागरण और पूर्वापिकाओं के प्रकाशन से लोक-भाषणों को बढ़ा उत्तेजन भिजा है। जिसे भी यदों में साधिता की विविध शासाधी—ईप्यादास, नाटक, निष्ठन, कविता आदि सभी धाराओं भाषणों के साहित्य में उत्कृष्ट उत्तराधि लिखी गई है। बगला रात्रा रामनवीम राय, ईश्वरनवाह विचारनामर, माझेकल मधुसूदनदत्त, बौद्धमठनद घटयो, रवींगडनाथ ठाकुर तथा बासवन्द घटनी को प्रमूल्य कहियो से महूर्ज तुर्दे है। हिन्दी के उत्तराधि और उत्तराधि में अल्पलाल, सदलपिल, भारतेकुहिंस्त्र, महापोरप्रगति द्विवेदी तथा प्रेसवन्द आदि लेखकों द्वारा नामदो प्रकाशियों जबा, हिन्दी साहित्य सम्मलन आदि सम्बादी से बहुत जहरील दिन। उद्दु मुण्ड बादामी को अक्षय व्रतमा में भी उप उन्नत, परिष्कृत एव परिमावित हुई। दूरे, भीषा, नालिज और औक ने इसे जगाका दिया। १८८५, १८६५ में यदाताती भाषा हो जाने के बाद उसी भारत में उद्दु का प्रचार यहाँ बढ़ा। गोर सख्त धारमदत्त, याकाद तथा इत्याल-प्रभूति विद्वानों ने तथा धर्मीयहु सुनितम विवरणियां और हैदराबाद की उत्तरानिया सुनिविटो और प्रज्ञमन-जातकी-ए-उद्दु यादि संस्थाओं ने उद्दु के साहित्य को बहुत उप्रति किया है। मराठी साहित्य की यह विशेषता भी कि विद्यिय शासन में पहले उनमें काफी गद्य था, वह उन इनो-गिनी भाषाओं में है वितका बल्य-काल पद्म से मही जिन्हु गद्य में बीता है। असेज प्रदर्शियों के कोणों सचा अप्करणों से मराठी का नगर गद्य ग्राहीन परम्परा में छल्ल छीने सका। और विष्णुवास्त्रो विष्णुप्रकरण में धारणी निष्ठनामाला में इस अपेक्षी 'वत्तार' (संघ) को एव गवर्नर सी द्वारा मराठी साहित्य में नवगुण का प्रारम्भ किया। विष्णुवास्त्र, रामगोप्य घटकी, वेशमस्त, विश्वलाल, कलशीमाल रामवारी, हरसाराध्यण आदि तथा लोकभाष्य तिलक ने यदों साहित्य के विविध भागों को नहुर्ज किया। गुजराती में आधुनिक साहित्य अपेक्षी विलो के साथ प्रारम्भ हुआ। १८८८ में भारती द्वारा 'गुजरात बनेमस्त्र जीमायटी' की स्वापना द्वारा इस साहित्य की उन्नति के लिए संगठित प्रबल होने लगा, इत्यपि राम और मन्दिराकर के साथ बनेमाल साहित्य का भीयरोध होता है। १८८०-भाई उदयराम, सवधकर तुलजा-शंकर, गोवान्तराम विपाठी, कन्दियालाल मणिकलाल मूर्ती, महादेव देवार्थी, तथा महामा गांधी भावित की रचनाओं से इस साहित्य को विविध शासाधी की उपति हुई है। तामिल में आधुनिक गद्य का प्रारम्भ वीरेम्भुनि तथा धरमगुरुनारायणर ने किया। महामहिम जगत्रत्तो राजगोपाल-चारियर की उन्नती से सामित्र महूर्ज हुई। तेलुगु के उत्तराधियों से विश्वल गुरु तथा वरेलियम् द्वारेलनीव है। आधुनिक भाषाओं साहित्य 'जीमायटी' नामक मासिक विविका के प्रकाशन से १८८८ में प्रारम्भ हुआ। इसके द्वारायकों—लद्दमीनान बक्ष्या,

चन्द्रकुमार तथा हेमचन्द्र गोपवासी ने साक्षिप्त के प्रत्येक लेख में रखनाएँ लिखीं और उनके बाद कमल काम, निमित्तोवाला, विरचि कुमार, बदला भादि लेखकों ने इस साहित्य को उप्रति किया। बल्मीय डडिया साहित्य को समृद्ध बनाने का लेख राजनाय राम, फकीर मोहम्मद सेनापति और मधुसूदन भादि साहित्यकारों को है।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद लोक-भाषाओं का स्थले दुग भारतम् हुआ है। यहाँ राज्य की भाषा प्रभेजी होने से इनके लिखान में वही बाधा थी। लिपान् परिषद् ने हिन्दी को राज्य-भाषा स्वीकार कर लिया; यह उत्तर प्रदेश, विहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान की राजभाषा पहुँच ही थी। राजभाषा होने से हिन्दी का भवित्व भावधार उत्तरत है।

वैज्ञानिक उन्नति

इसी वर्ती तक वैज्ञानिक लेख में भारत संसार का देशा था। फहले यह देशा या चूका है कि महम्मद-दुग में किन कारणों से लक्ष्यन् वैज्ञानिक धनुस्त्रधात बन हो गया। बारह ली कर्ण की मोह-निरा के बाद विदिया धाराम् स्थापित होने पर यह भारत में नवजागरण हुआ तो दूसरोंहन्तराय भादि नेताओं में यह अनुभव किया कि परिषद् की घट्टगप्तव उच्चति का एक विषय कारण विज्ञान की उन्नति है, भारतीयों को वैज्ञानिक विद्यों की विज्ञा ही जानी चाहिए। प्रारम्भ में नवजाग वीरों ने नेवल विजित्या-वास्तव या सिविल इंजीनियरिंग के ध्यानपत्र ली थींहाना थी। १८५८ ने १८६७ ई० तक भास्तकों ने भौतिक-वास्तव, रसायन भादि के ध्यानपत्र की ओर कोई ध्यान नहीं दिया, विश्वविद्यालयों में उच्च वैज्ञानिक विषयों के विज्ञण तथा परीक्षाओं का कोई प्रयत्न नहीं था। वीर महेन्द्रलाल नवजाग द्वारा १८७८ ई० में संस्थापित 'वैज्ञानिक युग्मयन' की भारतीय परिषद्-वैसी इसी-गिरी सम्पर्क-वैज्ञानिक विज्ञान और सोम का कार्य कार रही थी। भारतीय वैज्ञानिकों को याज्ञ या विश्वविद्यालयों की ओर से न प्रश्नपत्र को मुख्यपत्र दी गयी थी। इस विश्ववायुर्ण वातावरण में जब जगदीश्वरन् बहु ने १८६३ में धापनी भौतिक वास्तव-विषयक शोड़ी से यूरोपियन विद्यान् को धारण्य-वकित किया तो भारतीयों में यह धार्म-विज्ञान काहूल हुआ कि वैज्ञानिक लेख पर यूरोपियाँ का ही एकाधिकार नहीं है। १८६२ में वीर बहु के यैह-नीयों ने वैज्ञानिक्यान् मन्त्रेष्यम् यूरोप में भाग्य हुए। इसी बायं वीर प्रकृत्यावस्थ राम का 'हिन्दू रसायन का इतिहास' प्रकाशित हुआ, जिसमें परिषद् की भारतीय रसायनिक उच्चति को बान हुआ। इसी सामन कलकत्ता-विद्यालयात् ने वैज्ञानिक विषयों की स्नातक परीक्षा (वीर पम-सी०) लघा। १८०८ में धार्मस्थि (पम-धूत-सी०) की विज्ञा का प्रबन्ध किया। नवेशी यास्त्रोलग के समय १८०५ ई० में वरात्र में व्यापित 'भारतीय विज्ञा परिषद्' ने वैज्ञानिक और शोड़ीगिक विज्ञा की ओर विदेश ध्यान दिया। १८११ में वीर जगदीश्वर नवजाग जी तात्काले के पुरों मर दोराव जी तथा गर रत्न के उदार-उम से भौतिक-वास्तव तथा इसायन धार्म

प्राचि विद्याओं के इनामकोस्तर अनुसन्धान काम के लिए बंगलौर में 'इविधिपत्र इमटीइन्डस्ट्रीज़ माइस' का स्थापना हुई। १९१४ई० में तारकनाथ पलित और राजविहारी शेष के उदास दान तथा शाशुद्ध मुकुर्मा के प्रयत्न से कलात्मक विद्यविद्यालयों में गुरुकृष्ण विद्यालय का सेवन स्थापित हुआ। यहाँ-यहाँ धन्य सभी विद्यविद्यालयों में विज्ञान की कंठी शिक्षा दी जाने जाना तथा अनुसन्धान की व्यवस्था हुई।

प्रथम विद्यमुद्र तक भारत में वैज्ञानिक विद्याएँ गहरी नींव पड़ चुकी थीं, द्वितीय विद्यमुद्र (१९११—४५) में उसके प्रत्यक्ष परिणाम दृष्टिमोर्पर होने लगे। इस बीच में शोलानाथ रामानुजन् (१८१०), शो बर्मोशनन्द बोग (१८२०), शो चन्द्रेश्वर बैकटरमण (१८३०), शो बेसनाथ लाहा (१८३१) तथा शो बीचल शाहनी विद्यालय वैज्ञानिक शोर्मों में ध्यानी शोलिक शोर्मों से शोधन सोसायटी के सदस्य होने का विट्ठि शाश्वात्मक में उच्चतम वैज्ञानिक सम्मान पा चुके थे। शो रमण वैज्ञानिक शोर्मों पर नींवेन प्राप्त (१९३२) बीतने काने पहले भारतीय थे। द्वितीय विद्यमुद्र की प्राचीनकालीनों के कारण भारत में वैज्ञानिक अनुसन्धान ने बड़ी प्रगति की। १९४५ में भारत सरकार ने 'वैज्ञानिक सद्य शोर्मोगिक अनुसन्धान की परिषद्' का प्राप्ति की और युद्धकालीन शोधसंस्थानों को दृष्टि में रखते हुए विज्ञान तथा उद्योग को लगभग सभी शोधार्थों के सम्बन्ध में शोध अनुसन्धान समितियों विद्यविद्यालयों तथा वैज्ञानिक संसाधारों में शोध का काम करने लाई। इन समितियों ने रेडियो, रानाविलिंग रसो, प्लास्टिक तथा उद्योगों में सम्बन्ध रखने वाली विद्यालय प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में काफी काम किया है। युद्ध के दिनों में दौर भारतीय वैज्ञानिकों शोकृष्णन (१९४०), माता (१९४१), शामिस्त्वलक्ष्मी भट्टाचार्य (१९४३), नवदेवेश्वर (१९४४) तथा महाननदीस (१९४५) को शानी शोलिक शोर्मों के कारण रामन सोसायटी का सदस्य बनाया गया।

स्वतन्त्रता गाने के कान भारत ने उपनिषदों के 'विज्ञान वद्य' (विद्याम हो चहा है) पर प्रास्त्वा रखते हुए तथा विज्ञान को भौतिक उपरिति का भूल भावते हुए वैज्ञानिक अनुसन्धान की और विद्यालय ज्ञान दिया है। प्रथम मणी शो चक्राहृत्यान नेहूल में १९४८ में शगनी शोभाजल्ता में वैज्ञानिक अनुसन्धान की प्रगति के लिए १९४८ ई० में एक गुरुकृष्ण विद्यालय लोका और एक वैज्ञानिक परामर्शदाती परिषद् भी स्थापित की। धरमपुरिक की शोज के लिए भारत सरकार ने एक विद्यालय बोर्ड बनाया। वैज्ञानिक न शोलिक अनुसन्धान-परिषद् की वैज्ञान-रेख में प्रत्येक 'राष्ट्रीय अनुसन्धानशालामों' की स्थापना हो चुकी है। इनमें प्रमुख है—गुरा की राष्ट्रीय अनुसन्धानशाला, दिल्ली की राष्ट्रीय शोलिक शास्त्रीय प्रयोगशाला, बमोरिय रामायनिक प्रयोगशाला, दिल्ली की राष्ट्रीय शोलिक शास्त्रीय प्रयोगशाला, बमोरिय की राष्ट्रीय धार्म-वैज्ञानशाला, धर्मवाद की राष्ट्रीय ईश्वर अनुसन्धानशाला तथा कलकत्ता की केन्द्रीय शोलिक व शोर्मों के कर्तव्यों की, भद्रास की जैसे अनुसन्धानशाला, नेतृत्व की केन्द्रीय शोलिक तथा नेतृत्व की केन्द्रीय शोलिक-अनुसन्धानशाला, बड़ह-अनुसन्धानशाला विल्लो, भवन-नियंत्रण अनुसन्धानशाला बड़ही, केन्द्रीय विष्णु धर्मायनिक अनुसन्धान-

वाला करेकुदी (मद्रास), केन्द्रीय समकां अनुसन्धानशाला भावनगर, केन्द्रीय इलेक्ट्रोनिक एवं बीमियरिंग अनुसन्धानशाला विजयनारायण अनुसन्धानशाला में अनुराग की तुष्टि देश के उच्चकाल नवियाल को सूचित करती है।

तत्त्वित कलाएँ

हिन्दू दासत के प्रारम्भिक काल में दासकों की उपेक्षा तथा शिक्षित व्यक्तियों पर परिचयी कला की चकाचौथ का महार असर होने से भारतीय लिपि कलाओं की दया प्रत्यक्ष थी। मुख्य वायपशाही के भरतवर्ष में कलाओं की यही उन्नति हुई थी, उनके पतम के बावजूद कलाकारों को देखी राजाओं का गोत्सव मिला, किन्तु वे भी औरें-योरे विदेशी वस्तुओं को प्रसन्न करने लगे, जबता सस्ती और तड़क-भट्टक वाली विदेशी वस्तुओं के भूतावे में पड़ गई। भारतीय कलाओं के मष्ट होने की नीति या नहीं। किन्तु इसी समय राष्ट्रीय जागृति का आरम्भ होने से भारतीयों का व्यापक कलाओं की ओर भी मगा। भारत सरकार ने कलाकारा, कम्बई, मद्रास तथा लाहौर में कलान्विद्यालय (यार्ट स्कूल) खोले और भारतीय कलाओं का पुनरुत्थान प्रारम्भ हुआ। इसे आरम्भ करने का बोय कलाकारों के सरकारी द्वारा महाविद्यालय के प्रिमिसपाल थी हैवत तथा डॉ० घासनद्दुमार स्थानीय थी है। इसी रचनामी हाथ भारतीयों को सर्वप्रथम यात्री प्राचीन कलाओं के मध्य और गहरे का परिचय मिला और उनमें यात्मविद्यालय उत्पन्न हुआ। उन्नीसवीं शती में भारतीय कलाकार को प्रतिभा गायत्राएँ शैलों के सामने प्रवाहित हो गई, वर्तमान शती के प्रारम्भ से उसने अपने स्वरूप और गौरव को वहनाना तथा प्राचीन एवं नए प्रेरणा पाकर नई शैली का विकास किया। इसका सबोत्तम उदाहरण मिथन-पाणा है।

पिछली शती के अन्त में रविवर्मी नामक केरल के विद्यार्थ ने परिचयी शैली में भारतीय कल्पनाओं को प्रकट करना चाहा, पर उसकी रचनाएँ अहृत अन्ती नहीं हुईं। इस शैली की पहली शैली में हैवत ने प्राचीन भारतीय विद्यनकाल के पुनरुत्थान पर बह दिया, १८०३-४ में व्या प्रवनीन्द्रमार ठाकुर ने एक नई विद्यशैली का विकास किया जो विदेशी शैलियों की सतत वाले भासना लेने के बावजूद भी पूरी तरह भारतीय है। यह यूरें और परिचय नी कलाओं का सुन्दर सम्मिलण है। वी प्रवनीन्द्र के शिष्यों में व्या नन्दलाल वसु सदसे अधिक प्रसिद्ध है। वर्तमान काल के अन्य विद्यार्थी में अभित्तद्वारा हुआ द्वारा, यामिनी राय, देवीप्रसाद राय और गोपनी, रहमान जुगलाह, जैनलक्ष्मीबद्धीन विदेशी उत्तरवालीय है। मूर्ति-कला में भी शवनीन्द्रनारा ठाकुर ने प्राचीन वरम्परा को गुनश्वीप्रिया किया। इस धैर्य में उनके प्रयत्न विषय व्या देवीप्रसाद राय और गोपनी हैं। भारत की भाषुनिक ताम्तु-कला में व्या प्रधान शैलियों हैं—

(1) देखी करोनरो द्वारा बनाये गए भवन—में प्रधान स्तर से राज्यालय में है।

(२) परिचयी सौंदर्य पर वर्णन इसारते—विटिलॉसरकार ने भारत की प्राचीन वास्तु-परम्परा का कोई ध्यान न रखते हए देश में परिचयी ऊंची हड्डारों इमारतें बनवाई हैं। अब पुरानी वास्तु-कला की ओर कुछ ध्यान दिया जाने लगा है। अब्य कलाधीयों की भौति संर्गीत का भी पुनरुत्थान हुआ और इसका ऐसे सबूत प्रियज्ञ दिग्भाव तथा भारतवर्ष को है। कलकाता, बम्बई, पुना, बहोदा आदि वह नगरों में भारतीय संर्गीत और वार्चों की विद्या के लिए अन्वर्ष विद्यालय बहु गए हैं। नृसंकल्प में भी पुरानी वीलियों का उद्घार हो रहा है। उदयशंकर, रामगोपाल, बाबिलभी देवी और मेनका ने विदेशों में भारतीय नृत्य के गौरव को बढ़ाया है। भरतनाथ, कम्पाकातो, मणिपुरी आदि गृह इस गमय भारत में लोकान्तर ही रहे हैं। यामिनीकोटन, केरल कलाम-मन्दिर, कला-ओर वैसों संस्थाएं भारतीय गृह कला के पुनरुत्थान में लहूलीगे रही हैं। भारत सरकार ने लनित कलाधीयों के प्रोत्तराहन के लिए संगीत नाटक अकादमी स्वापित की है। इसकी ओर से उत्तम कलाकारों को प्रतिष्ठान पुरस्कारों से सम्मानित किया जाता है।

उपर्युक्त—पिछले शी वारों में हमारे देश में युगान्तर हुआ है। इसका शीगरण तब हुआ जब हमने जात और अकाश के लिए धर्मना सुनह गुरु से परिचय की ग्राह मोक्ष। परिचयी विद्या और विचार-वाचन से प्रभावित भानुतीयों ने देश में सर्वोत्तम गृहार की अधीति को बनाया। ग्रन्थ-विद्यालय और जड़ों का स्वातंत्र्य तुल्य और तकनी वेहाल किया। उद्यानों और स्वतन्त्र विद्यार फुटुराता तथा शास्त्रवाद पर विजयी होने लगे। यामिनी और सामाजिक कांडियों की वीक्षियों से भारत मुक्त होने लगा। सती-दर्शा, बालन्याय आदि कुरीतियों की अन्वेषित हुई, जाति-भेद का दुर्ग परायायी हो रहा है, अस्तुद्यायों का जनाजा लिकल रहा है। परिचय की समानता, स्वतन्त्रता तथा राष्ट्रीयता की विचारपारायाँ ने हमारे देश पर गहरा प्रभाव लाया है। भवित्वान् परिपद द्वारा स्वीकृत गवीन यामन-विचार पर इसकी स्पष्ट लाभ है। परिचय में दुर्ग तीव्रातिक प्रतिष्ठानों और पन्नों के घटणा द्वारा भारत के भौतिक एवं प्राचिक और सामाजिक वीक्षन का कापा-नलट हो रहा है। परिचय की भौतिक उपर्युक्ति के लाभ भारत उनसे परामृत है। सर्ववेतिक दृष्टि से लक्षणावाला या वेतन पर भी देश में परिचयी सम्भव हुए उपर्युक्त प्रतुक्तरण की प्रतिष्ठा प्रवर्तन है।

इसमें भी कोई अदेह नहीं कि अक्षयी वार्तों की मृक्ख होनी चाहिए, किन्तु तुल्यत्वके लक्षण ही लाभदायक ही मृक्खी है। महात्मा गांधी तुल से कहा करते हैं कि हम लोग जान-नान, लहू-महू और फौज में ही परिचय का अनुसरण करते हैं किन्तु तंगठन, अनुशासन, यामन-वाचन, उत्तमता, सार्ववित्त सेवा की भावना, कर्तव्य-प्राप्ति, जातीय हित के वर्णयन-व्याप, विचार-प्रेम, वैज्ञानिक अनुसंधान आदि परिचय के प्रयत्नोंमें भूमों तो अपने जीवन में नहीं आते। परिचय का अनुकारण करते हुए हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि हम वापास की भाँति उसकी उत्तरायों की भी

न होते हैं। बापाजून शुरूप का एकत्र बेला बना और गुफे से विज्ञान प्रहण करते के ताम-साथ, उसने उसकी प्राकमण्डलीता, उच्च राष्ट्रीयता, संहार-यदुता, और कमवोर देखीं की भाग उमड़ने वाली लोधीं और हवाई जहाजों से 'शन्यता' का पाठ पढ़ने का मन्त्र भी सीख लिया। इसका जो भवकर परिणाम हुआ, उसे देखते हुए परिचय के बान्धानूकारण से बचना चाहिए।

परिचय की बहुमान तथा पूर्व की प्राचीन संस्कृतियों में बहु अपूर्णताएँ हैं। आज्ञायात्रिमकाला की उत्कृष्टता में कोई मतभेद नहीं हो। यह कहता, किन्तु कोरो प्राज्ञात्रिमकाला जीवन की मुखी नहीं बना सकती। इसके होते हुए भी भारत परायीन और दुरबन्धापन रहा है। जब तक इसका भौतिकाला के माध्य उचित सामंजस्य नहीं होगा, भागत की यही ददा रहेगी। एक प्रतिष्ठ परिचयी लेलक द्वारा दिये गए दृष्टान्त से यह बात स्पष्ट हो जायगी। भारत में धन्यों की संख्या बहुत अधिक है, यदि ऐदा होते ही बच्चों की प्रति चारी के एक समांस (रजत नित्रित Silver Nitrate) में भी दी जाय तो यह भन्धापन लग सकता है। एक और भारत के मन्दिरों में घनन्त जाया है और दूसरी और हुआरों आवित प्रथ्ये हैं। चारी के उपयोग से भन्धापन दूर हो सकता है किन्तु कट्टरपंचियों की दृष्टि से यह महान् अघ्रमें होगा और भन्धापन धन्यों दूर किया जाय, तो तो पूर्वजन्म के गायों का फल है। यह स्पष्ट है कि इस प्रकार की कोरो प्राज्ञात्रिमक धूति से हमारो भौतिक उपत्यक मही हो सकती।

दूसरी ओर परिचयी संस्कृति भौतिक उपत्यक को पराकााड़ा पर पटुच बुकी है। उसे देखताहो की चकित मिल गई है, किन्तु वह उसका उपयोग दर्शाते की तरह कर रही है, जसमानुर की भाँति गरुड़म, उद्दलन रम, कोलोल्ट बम जैसे प्रत्यक्कर गान्धों से जपते जरूरतात को छोर बह रही है। गोरी के कुपक की भाँति एक भारतीय धूतोपियन भो कह सकता है—“दुम प्राकाश में पक्षियों की तरह उड़ सकते हो, चमुच में मछलियों की तरह तेर सकते हो किन्तु यह नहीं जानते कि पूछी तर कीसे जहां जाताएँ।” शुरोपियन राष्ट्रों में और प्राकीका के उन नन्द-भूषी जगलियों में कोई धम्तर नहीं बिनके भगड़ों का छेषता-मदा-तवधार नहीं होता है। परिचयी संस्कृति को भारत की प्राज्ञात्रिमकाला जानित पदान कर जाती है और भारतीय संस्कृति को परिचय की भौतिकाला मुखी बना जाती है। पूर्व और वृत्तिम का यह भावान-प्रदान, मुख्य सम्बन्ध और सामंजस्य लोनों के लिए अप्रकर सिद्ध होगा।

भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ

पिछले वर्षों में पर्म, दशन, कन्ता, विजान, राजनीति आदि विविध लोगों में भारतीय संस्कृति की प्रवति का परिचय दिया जा चुका है। अब इनमें में उसकी प्रधान विशेषताओं, उसके विकास और हासि के कारणों तथा भविष्य पर प्रकाश दाला जायगा।

विशेषताएँ

प्राचीनता—भारतीय संस्कृति की पहली विशेषता प्राचीनता है। जौन के अतिरिक्त किसी अन्य देश की संस्कृति इस पॉइंट से इसकी मुलाया नहीं कर सकती। इसने यूनान और रोम का उत्तराम सब्बा पतन देखा। जरूरतवी, महावी, ईसाई और मूर्मितम् धर्मों के धारिभाव से पहले इसका जन्म हो चुका था। मोहन्जोदरो की मृदाई के बाद में भिल और मैसी-मोटामिया की सम्भवताएँ भी इससे पूरामो नहीं रही। विश्वनकाश रवीन्द्रनाथ ने इन लोडों में बड़ी जल्दाई की है—“अमात उद्देश तक घमने। प्रथम नामरक तक चोकने।”

वीर्यजीविता—किन्तु प्राचीनता के साथ इसकी दूसरी लोकी विशेषता वीर्य-जीविता, विश्ववाचिता और अमरता है। यह पूर्णमी होते हुए भी वाय तक जीवित और कियरतील है। इसके साथ की मुमेह, कामुक, भिल, यूनान, रोम की वीर्यवाही प्राचीन संस्कृतियाँ एक केवल मानवहरों के साथ में बची हैं, उनके निर्माण मष्ट हो चुके हैं और यूरोपियन विज्ञान उनकी कई लोककर उनका जान प्राप्त कर रहे हैं। किन्तु भारतीय संस्कृति की उत्तमता भी ओज़लोदरहो ने महामारा शोधी के पुण्य तक कई महाकालियों का सुरीचं काल असीख हो जाने पर भी बहुला है। संस्कृत भाजन भी गणित-मात्राओं में डाइनीज इवार वर्ष पहले की भाँति विश्वी, गहो, बोली और गम्भीर जाती है। अनेक सामाजिक परिवर्तन होने पर भी एकमात्रामें विभिन्न वैज्ञानिक विविध वर्गमय दार्ढ़ी हवार वर्षे से एक-जैवी है। भारतीय जगत का भावसं और भाक्षोद्धार्द्ध राजायन, महाभास्तु के गम्भीर से लम्भग नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं कि विविध समयों में नवीन संकुलितों उत्तर लोगों रही, जो भारत पर प्रभाना जगदरस्त प्रभाव डालती रही, इस पर ईरानी, यूनान, अक, ग्रीक, बुगाण, हिन्द, अरब, तुर्क, पठान, मंगोल व तुर्को-पश्चिम जातियों के आधारग्रंथ हैं; किन्तु किसी भी भारतीय संस्कृति

को परम्परा का कभी सन्त नहीं हुआ। यमरीका के प्रसिद्ध लेखक विल ड्यूरेस्ट ने भारतीय संस्कृति की इस विशेषता को बड़े मुन्दर शब्दों में प्रकट किया है—“यही ईसा से १६०० वर्ष पहले या इससे भी पहले सोहेन्जोदहो से महारामा गाम्यी, इसमें थीर टैमोर तक उप्रति और सम्यता का सामवार सिलसिला बारी रहा है। ईसा से अठांशताल्ली पहले उपनिषदों से आरम्भ होकर ईसा के पाठ से वर्ष बाद तक तक ईश्वरवाद के हृजारों का प्रतिपादन करने वाले दार्शनिक गही हुए हैं। यही के विज्ञानिकों ने उसी हृजार वर्ष पहले ज्योतिष का प्राविष्टार किया और इस विभाग में भी नोवल पुरस्कार जीते हैं। कोई भी लेखक मिल, येबोसोनिया और एसोसिए के इतिहास की भाँति भारत के इतिहास को समाप्त नहीं कर सकता, चर्चोंके भारत में इतिहास का सभी तक निर्माण हो रहा है, उसकी सम्पत्ति भव भी कियाशील है।” यहाँवाले इकावाल ने इसी बात को लक्ष्य में रखते हुए लिखा था—“पूनर्न मिथ्ये रोमां सब मिट गए जहाँ से, कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं जाती।” वह ‘कुछ बात’ क्या है, घमली विशेषताओं से भवी-भाँति स्पष्ट हो जायगा।

आनुकूल्य—भारतीय संस्कृति के दोष जीवन का रहस्य उसकी सीम विशेषताओं में छिपा हुआ है—यानुकूल्य, सहजान्वयता, वहसादीतता। यानुकूल्य का आसान है—प्राप्ति को परिस्थितियों के अनुकूल बनाते रहना। जीव-जाग्रत का यह गियर है कि वही प्रणी जीवनीयी होते हैं, जिनमें वह विशेषता पाई जाती है। भूतत्व पर पहले हाथियों से भी कही गुना के भीभकाय जानवर रहते थे, वे जीवन-संरक्षण की प्रतियोगिता में समाप्त हो गए, परोंकि नई परिस्थितियों उत्पन्न होने पर वे अपने को उनके अनुकूल नहीं ढाल सके। संस्कृतियों पर भी वही नियम लागू होता है। मिल, लेखिकों और ईरान की संस्कृतियों विदेशी आक्षयणों में अपने को नहीं संभाल सकी, उनका प्रत्यक्ष हो गया, किन्तु भारतीय संस्कृति अपने इस गुण के कारण इन सब विषयम् परिस्थितियों में उपर्युक्त परिवर्तन करती हुई जीवित रही। हमारे पास, समाज, आचार-विवाह में निरन्तर अन्तर भाता भाता गया, किन्तु वह इन्होंने और सूधयता से हुआ कि हम उसका विकल्प जान नहीं। ऐडिक युग से वर्तमान तक पृथिव्ये-पृथिव्ये तुम कान्ही बदल चुके हैं, जैसे उस समय में हमारा घर में बग-बधान था, जात अकिञ्चन-मूलक है। इसी प्रकार विभिन्न आक्रमणाओं के धारे ने वो नवीन परिस्थिति पेका हुई, उसमें भी इसी अनुकूलता ने भारतीय संस्कृति को बचाने रखा। यह स्वरूप इन्होंने बाहिये कि गुण युग में भारत के भौतिक प्रादृश्यों में कोई अन्तर नहीं थाया। मुसलमानों और अरबों के जासन-काल में विभिन्न वर्ष द्वारा विदेशाओं का रहन-साहृण, वेद-भूषण और भाषा भावि-वहस करने पर भी भारत ने अपने परम्पराओं के द्वारा सामाजिक कहियों का परिचय नहीं किया, इसलाम और ईसाइयत की अनीकार मही किया।

सहिष्णुता—यह भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है। विदेशाओं में व्रात, प्रसंहिष्णुता होती है, मुराम-जामामें में सब घमी और जातियों में यह भावना

इह सम से नाई नाती थी। दूनाम में मुकरात को इसीलिए बहर का पाला थीना चाहा था, फिलस्टीन में इसी भारत ईसा की मूली पर लटकना पड़ा था। पाचीन इतिहास में समवत् भारत ही एक मात्र ऐसा देश था, जहाँ हिंगा और घमांघरता का अधिकार नहीं रहा। सामान्य विवेताओं की नीति प्रामः विध्वंस और विनाश की होती है। तूरोपियनों ने अमरीका में मध्य संस्कृति का अन्त लिया, अर्थात् ने मिथ की मूरगानी और ईरान की पुरानी समवताओं को समाप्ति की। उसे भी दूषण से स केरल एक बमें ने दूसरे घमें पर किन्तु पारने ही वर्म में विभिन्न भूत रखने वालों पर जी भीषण अत्याचार किये, उनसे गुरुप्रियम् इतिहास के अनेक पुण्य रक्तरन्जित है। सोलहवीं शती में वालों पंचम के शासन-काल में केवल हालेड में रोमन कौशिलिकों से भिन्न निहानों वाले विन ग्रोटेस्टों को खिता पर जलाकर या धन्य दंगों दे भारा गया, उनको संक्षया एवाम् हजार थी। यह स्मृत्यु रखना चाहिए कि यह कम-ने-कम अन्याय है। काल में कालिस प्रलम ने १५५५ ई० में अपनी मृत्यु से पूर्व आलम परंतु माला के लीन हजार निरीह निशान-कृष्णों के लाले-धाम की धारा देकर धार्मिक शान्ति प्राप्त की। उनका एक मात्र धारणाय यह था कि वे ईसाइयात के भूत लिद्दानों में विवास रखते हुए पोता तथा पादरियों की प्रसूता नहीं मानते थे। इस प्राचार की दाक्षतम घटना फाल में उस समय हुई जब कि एक ही रात (२३-२४ अगस्त १२७२ ई०) तो पेरिस में दो हजार वाला जनाटो (पौंछ ग्रोटेस्टों) का वज्र लिया गया। समूने फाल में एक महीने तक यह कूर हत्याकाण्ड चलता रहा। इस धन्य वाल में ही सतर हजार नर-नारियों और घरोंव लिशुमों की उम्र के नाम पर वज्र चढ़ाई गई। यह सब इसीलए हुआ कि रोमन कौशिलिक यह नहीं चाहते थे कि कोई उनसे भिन्न विश्वास रखे।

किन्तु भारत में प्रारम्भ से ही सहिष्यनुता की प्रवृत्ति प्रवल रही। सबको धार्मिक विश्वास और पूजा-विधि की पूरी स्वतन्त्रता थी गई। जल्देद में कहा गया था—एक सांद्रिप्रा बहुपा वदन्ति (एक ही भगवान् का वाली नामालम से बदलने करते हैं)। शीता में इसी विश्वार को गरामाला तक पहुँचाया गया है। भगवान् हुण को इस कलने ही सततोंप रही है कि ये गमा माँ प्रददन्ते ठोसार्वेष भजाम्यहम्। किन्तु उन्होंने यही तक भी कहा है कि धन्य देवताओं की अदार्वेष उपासना करने वाले भी मेरा ही भवन करते हैं। (६/२३) अमीक से इस तरफ पर ज्ञा देते हुए कहा—‘भगवान् एव माधु’। भारतीयों का यह विश्वास था कि भगवान् एक धारिण, धर्मकर, सर्वदावितमान् रहता है, विविध प्रकार की उपासनाएँ उस तक पहुँचने के मार्य हैं। जब लक्ष्य एक ही हो मार्यों के बारे में क्या भगवान् किया जाए। वही भारत है कि यही सभी पूजा धीतिपूर्वक रहते रहे। इस सहिष्यनुता से यात्री के धरने से भिन्न अनादी और विभिन्नों की उपासन-विधियों भी चलीकार की। भारत ने विदेशी से धार्मिक धाराओंकी द्वारा धीतिव होकर धरने वाले पारमिती, धृष्टियों और सौरियन् ईसाइयों की अपने यही उपाराम्युर्वेक चरण दी। इसी से यात्रे विधिष्ठ धाराएँ

विचार और धार्मिक-विद्वानों वाली भारत की जातियों में न केवल एकता उत्तमन कर सके, प्रखुत भारत में अपनी संस्कृति का प्रगाढ़ करने में भी समर्थ हुए।

प्रह्लादीलता—साहिष्णुता से भारतीय संस्कृति में प्रह्लादीलता या सारामणी करण की प्रवृत्ति उत्तमन हुई। इसका आधार यह है कि भारत में जो जने तत्त्व प्राप्ते थे, भारतीय उन्हें प्रभाकर अपना अंग बनाते गए। शरीर तभी तक बढ़ता है जब तक वह जाई जाने वाली वस्तुओं को अपना अंग बनाता रहे। भारतीय संस्कृति जो उस समय तक उत्तराधीन होता रहा जब तक वह बाहर से प्राप्ते जाने वाले तत्त्वों को अपनी रही। अलीं काल में उसने द्वितीयी, तृतीयी, चतुर्थी, षष्ठी, कुलाच, हुक्का आदि यनेक विदेशी तत्त्वों को यात्मसात कर लिया। जातियों को पचासे के प्रतिरिक्ष, उसने दूसरी संस्कृतियों के मुन्द्र तत्त्व पहुँच करने में कभी सफल नहीं किया। भारतीय ज्योतिष और कला के गुणानों तथा इत्तलामी प्रभाव से समृद्ध होने का पहले उल्लंघन किया जा चुका है, बतौमान काल में उसने घूरीन से बहुत-सुछ सीखा है।

इस प्रह्लादीलता के कारण भारत में जितना वैदिक्य, विशालता और ध्यापकता दिलाई रखती है, उत्तरी शायद ही किसी दूसरे देश में हो। हमने प्रह्लादीलता के कारण जो कुछ धारा उसे रखा लिया और साहिष्णुता के कारण उसे नष्ट नहीं किया। यही कारण है कि जैवे हमारे देश में सब प्रकार भाजन, बायू, वृक्ष, बनस्तान और पशु-जन्मी जाने जाते हैं जैवे ही सब प्रकार के धार्मिक विवरण, तथा रहन-पाहन के ढंग भी मिलते हैं। यो कुलतामी ने इस विवेषता का बड़े मरोटक रूप से प्रतिपादित किया है—“हमारा बोजन और पोशाक हर मुग में बदलती रही है। पहले दाल-बाज और रोटी भोजन था फिर विकाही आई; पठान, मुगल और तुके पुनर्वाप, कुरमा तथा कबाद जाग, पूरोधियनों में चाम, केल, डबल-रोटी, बिस्कूट आदि, ये सब भारत में विना कोई भावना किये जान्तिपूर्वक रह रहे हैं। जाने के बतौरों का भी यही हाल है। पहले केले के तथा दूसरे गते, मिट्टी और पातू के बतौर, किर मुगलमानों का सोटा याका और दम्त में भीनी के बतौर, अम्बल और झुरो-कटि। ये सब भी इकट्ठे जल रहे हैं। तनबाहू गीते तक के ढंग में। कृता नहीं है, इसमें हमें से विवर, बीकी, गियरेद, यिगार और पाहर तक सब कैशन जाते हैं।—जैलों में मानव जाति को विनिमय हिस्सों में बांटने वाले सब पन्थ वही पाए जाते हैं। सब प्रकार की पूजा-नहानीयाँ यही प्रचलित हैं। अलीं काल के बेद, कपिल और चार्वाक से भागुनिक मुग के इन्द्रायनक भीतीकवाद तक सब विचारणारण् और दर्जन वहीं मिलते हैं।”—सब प्रकार के वैदिक्यक जातून महीं प्रचलित हैं। विवाह वैदिक संस्कार है और इसमा मेरोड़ा जाने वाला सम्बन्ध-मात्र भी। बहुतालीत भी है और बहुप्रतिवर्त भी। दूरने वार जल्दी भी है और वे जार हुआर जातियों तक जा गैंगे हैं। जो धरा, संस्का मा अवस्था एक बार पहुँच की जाती है, उत्तम हो जाती है, यह कभी नष्ट नहीं होती। भारतीय संस्कृति की विवेषता प्रह्लादी और तंत्रज्ञान है, विनाश और विष्वस नहीं। पहाँ का मुख्य विद्वान् ‘विद्यो और जीवे दी’ का है।

भारत इसी से अतीत में अमर रहा है और अब तक वह इसका पालन करेगा, अमर करा रहेगा।"

सर्वांगीजता—भारतीय संस्कृति की एक और विमुद्धणता सर्वांगीण विकास की ओर ध्यान देना था। उसका लक्ष्य ऐहिक और पारस्परीक दोनों प्रकार की उन्नति करना था। यही शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार की विकितयों के विकास पर समान बल दिया गया। पुराने घूनानियों की दृष्टि शारीरिक और मानसिक उन्नति से आगे नहीं गई। सुकरात का भारतमा को पहचानने का उपदेश वही अरथ-शोदन ही थिद हुआ। आज विद्यमी संस्कृति भी भौतिकवाद में आगाम-मस्तक निमग्न है। उसने प्रकृति के अधिकार सहस्र हूँड लिए है, उत्तरी-दक्षिणी ध्रुवों की जीव जाला है, पकोका के पने जंगल और भू-मण्डल के सब बागर भय लाने है। यह प्रकार के विज्ञानों के अनुसरणान् द्वारा मूलतः की अत्येक सदृश का समझने का प्रगति किया है, वही उसने किसी विज्ञान का विकास नहीं किया तो वह है भारत-विज्ञान। किन्तु भारत में प्राचीन काल से शरीर, मन और भारतमा के जाम-जस्त्यपुरां विकास को जीवन का अपेक्षित माना गया था। शास्त्रकारों के मतानुसार मनुष्य को जार पुरुषार्थ प्राप्त करने का बल करना चाहिए। ये हैं—यर्म, यर्ष, काम और मोक्ष। इनमें पहला और प्राचिन आधिक विकास के लिए या और दूसरा उन्ना तीसरा चारीर और मन की उन्नति के लिए। इनकी समुचित प्राप्ति के लिए जीवन चार भावसम्मी में बाटा रखा था। ब्रह्मजर्य और शृहस्त्र पहले तीन पुरुषार्थों के लिए थे और धनितम् दो आधिमों में मीष्ठ-श्राविति का यस्त किया जाता था। आज भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिक तरफ की प्रधानता मानी जाती है; किन्तु अपने सर्वोत्तम काल में उसने आध्यात्मिक और भौतिक दोनों तरफों पर समान भय से बल दिया। यह और मोक्ष का यातना ही आवश्यक था, जितना कि यर्ष और काम का योग्य। यह कहा जाता था कि नारों की प्राप्ति का प्रयास समान भय से करना चाहिए, जो एक का ही सेवन करता है, वह निनदा का योग्य है (अमोर्चकामः समेव निनदा, तो हृषेकसमतः त ज्ञो विष्वनामः)। मनुष्य का चारदौ चतुर्वीण विकास है, वह न तो यर्म की उपेक्षा करे और न ही काम और यर्ष की ओर ध्यान देनी चाही, उसका उल्लंघन होता रहा। उसके पातन का मूलपाल उसी काल से भारतम् हुए जब उसने दोनों के उचित सामंजस्य और समर्पण की ओर ध्यान भ देकर केवल परतोंका ही किन्ता की।

संवरणशीलता—भारतीय संस्कृति पर आग: यह दोष समाप्ति जाता है कि संवरण और वैनाम्य के तरफों पर बल देने के कारण वह विविदया को छोड़ा हुआ करती है। किन्तु दूसरे वर्षायम् में यह बापाता जा पूछा है कि आचीन काम से इनका मूल मन्त्र निरमल आगे लड़ने की भावना थी, उसमें योग्यती भावों की प्रधानता थी। 'कृष्णस्तो विद्यमायम्' का भेद लिए हुए, वह दुर्मिला की किसी जाह्नविक या

भारतीय वाचा के पाये हार मानसे को लेखा नहीं थी। उसे अपने पुराणों की सफलता में पूरा विश्वास था, उसमें वह प्रशंसन, साहस, महत्त्वाकांक्षा, ऊँची जलना, विजात दृष्टि, पाये वाले की उम्रण थी, जो मनुष्य को नवे देवा लोकों से और जीतने की तथा नई जिम्मेदारियाँ लड़ने की प्रेरणा देती है। प्राचीन संस्कृत में समझ वही योजनिकता और महाप्राप्ति थी, जो मध्य काल में अरबों ने प्रदर्शित की और आजकल गुरुविषयन जातियाँ दिला रही हैं।

जगद्गुरु—सत्त्वरक्षोऽता के कारण भारतीय संस्कृति का निरेशों में समृद्धि प्रमाण हुया। दुनिया की किसी दूसरी प्राचीन संस्कृति ने इसने बड़े माम को प्रभावित नहीं किया। भिल्वे लेवी के दालों में “इतन से चोनी समृद्ध तरु, माइवेरिया के तुपाराकृत प्रदेशों से जाता, बोनियो के दामुखों तरु, प्रशान्त महासागर के तीरों से सोकीतरा तक भारत ने अपने भारिक विश्वासों, कथा-साहित्य और सम्भवा का प्रसार किया। उसने बासव जाति के चतुर्भास पर अनेक शतियों के मुद्रों पर काल तक अपना अमिट प्रभाव डाला।” एशिया के अधिकांश भाग में संस्कृत और सम्भवा का भालोक फैलाने वाले भारतीय ही थे। यही उस समय का जात जगत् था, प्रतएव भारत को जगद्गुरु कहा जाता है।

अपनी जग्नुकर विकेन्द्रियों के कारण, गुण युग तक भारत ने असाधारण उत्तरि की, उसके बाद सबनति प्रारम्भ हुई। यहसे अध्यायों में उत्तरपं और ध्राकर्प के कारणों पर प्रकाश दाला जा चुका है। यहीं इतना ही कहना पर्याप्त है कि भक्ती-खंति और धनुदारता की वृत्तियों, जमे तथा परतोंको अत्यधिक चिन्ता, मोहनिद्वा और मिथ्याभिमान, अथ-विद्वासों और संकुचित मनोधृतियों का प्राधान्य इसके मुख्य कारण थे। इनसे अध्य एवं वर्तमान युग में प्राचीन काल की भौति हमारी भाषणों की स्थिति नहीं रही।

भारतीय संस्कृति का भूत अस्तन्त उत्तरवत् है, भविष्य को उपर्युक्त भूलों से बचते हुए, और भी धर्मिक और व्यापारी बनाया जा सकता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद, इस विषय में हमारा उत्तरदावित्व बहुत धर्मिक बढ़ गया है। प्राचीन काल में भारत में समझ सारे एशिया में ज्ञान की व्योति जगाई थी, लड़ी जाती ई० तक विषय का नेतृत्व किया था। इसके बाद हम प्रगाढ़ मोहनिद्वा में पड़ गए। ऐसे ही शतियों के मुद्रों विद्वास के बाद हम भाज फिर बगे हैं; किन्तु इस बीच में दुनिया में भासुन-पूर्व गरिवतें दी चुके हैं।

इस समय जान का मुद्र परिवर्तन में जमक रहा है। लैजानिक धारिण्हारों ने जानव-जीवन का जाया-स्टॉप हो गया है। विजान ने मनुष्य को ऐसा गुरु-स्तर प्रदान किया है, जिसे प्रकृति की गुरुत तिथियों के द्वारा सहज में सुन जाते हैं, जेवताओं की यातीरिक विकित सुविषया में प्राप्त हो जाती है। हमारे देश की पुरानी परिवारी यही है कि हम दूसरों के असेह जान और जनाई को गहू करे तथा उसमें रुदि

करके, उसे दूसरे लेखों को दें। जो कामें भारत ने यहले मणित और जीतिप के लेख में किया, वह धारा ज्ञान-विज्ञान की प्रत्येक भागता में होना चाहिए। इसी प्रकार भारत दूसरों का युग बन सकता है और अपने जगद्गुरु होने की प्राप्तीन परम्परा को छोड़ना दब सकता है।

किन्तु इसमें भव्य यथा की उपर्युक्त प्रकृतियों लक्षणस्त वापक है। धारा हमें सकोएं एवं अनुदार जारी को तिलाज्जलि देनी होगी, मिथ्याभिमान का तर्पण और धन्यवादिकासों की होसी करनी होगी। जातीय लोकन को दुर्बल बनाने वाले धर्मशृणुता आदि लोकों का परिमार्जन करना होगा। कर्मयोग की विद्यारथारा को प्रशान्तता देनी पड़ेगी। परसोक से इहलोक की ओर भुजे होड़ना होगा। इसको यह कहकर अचहेतना नहीं की जा सकती कि वह तो जड़वाद की ओर चढ़ाना चाहाना है। वरिचम ने विज्ञान की त्रिख दानवीं मणित की ओर सकेत करके अध्यात्मवाद का समर्पन नहीं किया जा सकता।

कहा जाता है कि प्राचीनता में केवल संघर्ष है, नहीं। आधुनिकता में केवल मति है, संघर्ष नहीं। एक जगह समाज है, जोका नहीं; दूसरी जगह जोका है, जगान्न नहीं। यूरोप ने गतिशील विज्ञान का आश्रम लेकर संघर्ष-विज्ञान धर्म को छोड़ दिया है। अतएव वहाँ असाध्य आदि के रूप में सूचित का संहार करने वाली उन की ऐसी शूति प्रकट हो रही है।

यह सत्य है। किन्तु अध्यात्मवाद और प्रकृतिवाद दोनों आवश्यक हैं। दोनों का उचित सामर्ज्य होना चाहिए। प्रकृतिवाद अध्यात्मवाद के बिना अन्या है, अध्यात्मवाद प्रकृतिवाद के बिना लगड़ा है। 'धन्यवान्मुमाय' से दोनों का अन्मित्यण होना चाहिए। अमेर का नष्ट वारलीचिक ही नहीं किन्तु ऐहिक उन्नति भी है। 'यतो अन्युदयनिष्ठेऽप्यनिदिस धर्मः' विष्णु इहलोक और परसोक दोनों से उत्पन्न हो, वही धर्म है। विष्णुम में धर्म ही और उत्पात इन्द्रिय है कि वहाँ केवल जड़वाद है, भारत में दुल और इन्ड का कारण यह है कि वहाँ किवल योग साधन और प्राचारायाम है। विज्ञानन्द कहा करते थे—“भारत को विद्यान्त भूलाने की आवश्यकता है, वरिचम को अध्यात्म सीखने की जरूरत है।”

धार्मकल प्राचीन संस्कृति के धूनस्त्वीकरण पर बड़ा बल दिया जा रहा है; किन्तु यदि इसका आश्रम लेकर इतना ही हो कि हम उस संस्कृति की गीरचनामा का गान करें, उस पर विभिन्न करके, उससे सम्बुद्ध होकर खेठ जाएं तो यह उसके साथ घोर अन्याय होगा। मिथ्याभिमान मण्डपमें हमारी निष्क्रियता और पतन का कारण बना, प्राच भी वह हमारी उन्नति में वापक होता। हमारे पूर्वज भूमि की बहुत बड़े हों, किन्तु सोबता तो नहीं है कि हम क्या हैं? यदि वे समार के नेता वे तो हमारा उनके बहुत होने का विभिन्न तब्दी सार्वक होगा, जब हम भी अपने प्रधानों से देख की सर्वीरीण उन्नति का प्रयत्न करें और उसे किर जगाएगुण बनाएं।

यह काम कोरी बातों का नहीं, किन्तु उनकी भावताथों और मुर्खों—संवरणशोलता, सहिष्णुता, प्रह्लादीतता, समन्वय, निरन्तर कर्मशोलता आदि—के प्रयोग से और उदात्त प्राच्यात्मक शब्दों को कियात्मक अर्थ देने से होता।

जब सामार के उद्धार की धारा भारतीय संस्कृति पर है। इस समय गुरोपियन् राष्ट्रों की सामाजिकादी गतिश्वर्ती से तृतीय विश्वनृद के काले बाष्ठों की घटा छा रही है, बारी तरफ बनान्वकार पैला हुआ है, मानव अपने सर्वनाश की धारकों से भयभीत और संप्रस्त है। किन्तु इस ओर तिमिर में भारतीय संस्कृति तथा उसकी प्राच्यात्मकता ही एक-मात्र प्रकाश की किण्ठ है, जैसे बादलों में आकाश की चमकीली रेता है। विश्व की भस्म कर देने वाले महाराष्ट्रों में प्रचण्ड शावानन की बुझाने का सामर्थ्य गुरोपियन् राष्ट्रों या संयुक्त राष्ट्र संघ के पास नहीं। वह अन्तर्राष्ट्रीय परिवर्तों ओर समियों से भी नहीं जान्त हो सकता। उसे भारतीय संस्कृति, आँहेसा तथा बायू के उपदेशाभृत पर बाबरण ही बुझा सकता है। विश्व शान्ति की समस्या का हल भारत के ही पास है। यह भारतीय संस्कृति का भविष्य भूत की अपेक्षा अधिक उत्तमता ओर गोरक्षपूर्ण है।

सामान्य प्रश्नावली

पहला प्रश्नाव

१. संस्कृत और सभ्यता का बया अभिप्राय है ?
२. 'भारतीय संस्कृत सम्मिलन का परिणाम है' इसे रघुट कीजिये ।
३. भारतीय संस्कृति को मौलिक एकता पर प्रकाश दालिये ।
४. विभिन्न धर्मों को भारतीय संस्कृति का विहंगम परिचय दीजिये ।

दूसरा प्रश्नाव

१. भारत की प्रधान मस्तों कीमती है ?
२. आमनेय और इविष्ट लोगों ने भारतीय संस्कृति को किस प्रकार समृद्ध किया है ?
३. इन्द्र शंस्कृति का संलिप्त परिचय दीजिये ।

तीसरा प्रश्नाव

१. बैदिक गाहित्य का प्रतिपादन कीजिये, उसका निर्माण काल वया समझ जाता है ?
२. बैदिक धर्म के धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक और आदित लोकत पर प्रकाश दालिये ।

चौथा प्रश्नाव

१. रामायण और महाभाग्वत का भारतीय संस्कृति में क्या महत्व है ?
२. उपर्युक्त दोनों महाकाव्यों का कब निर्माण हुआ ?
३. इनसे भारतीय संस्कृति पर वया प्रकाश पड़ता है ?

पाँचवां प्रश्नाव

१. लंग और बोडू धर्म की दरवति के इष्य मारत की इसी दृष्टका थी ?
२. लंग धर्म के अवतार की अधिकी और विस्तारों का वर्णन कीजिये ।
३. महारामा युद्ध के बीचन और दशरथों का इतिहास कीजिये ? (हीनयान, महायान, फलपिटक तथा वार बोडू समाजों पर प्रकाश दालिये ।
४. बोडू धर्म को इष्यसत्ता के वया कारण क्ये ? इसका भारतीय संस्कृति पर वया प्रभाव पढ़ो ?

बुद्ध अध्याय

१. भगवत्-प्रधान पीराणिक धर्म की पिछले धर्म से क्या विशेषता थी ? इसका विकास कितने कालों में हो चुका जाता है ? इसका धारणिक स्वरूप क्या था ?
२. भागवत् या वैष्णव, शंख और शास्त्र सम्प्रदायों का संक्षिप्त परिचय दीजिये।

सातवां अध्याय

१. दर्शन का भारतीय संस्कृति में क्या महत्व है, उसका ऐतिहासिक विकास किस प्रकार हुआ ?
२. नास्तिक दर्शन कीन से है ? उनके प्रधान मिथ्यान क्या हैं ?
३. तः धार्मिक दर्शनों के प्रभुत्व वर्गों तथा भाष्यकारों का परिचय देते हुए इनमें से किन्हीं दो के मुख्य तिद्धान्त बताइये।

आठवां अध्याय

१. बौद्ध-सातवाहन युग की सामान्य विशेषताएँ बताइये।
२. इस युग में नाहिंियक, धार्मिक और सामाजिक जीवन का विकास किस प्रकार हुआ ?

नवां अध्याय

१. गुप्त युग को भारतीय इतिहास का सर्वोच्च वर्षों कहा जाता है ?
२. इस युग की नाहिंियक, सामाजिक और धार्मिक दशा किस प्रकार की थी ?

दसवां अध्याय

१. भारतीय संस्कृति भारत से बाहर किस देशों में फैली ? इसका प्रसार किस कारणों से हुआ ? इसे फैलाने वाले कौन से ?
२. वीरांगना, मध्य एशिया, चीन, जापान तथा तिब्बत में भारतीय संस्कृत का और कौन से पहुंचे ?
३. दक्षिण यूरोप एशिया में भारतीय संस्कृत का प्रसार कब और कौन से हुआ, यही भारतीयों ने कौन से अवित्तात्मी राज्य स्वापित किये ?
४. पहिली जगत् पर भारतीय संस्कृत का क्या प्रभाव पड़ा ?

चारहवां अध्याय

१. मध्य युग के नाहिंियक और विजात का परिचय दीजिये ?
२. मध्य युग में किस कारणों से वेदान्तिक और बोटिक विकास की प्रवर्ति मन्द बढ़ने लगी ?

बारहवां अध्याय

- इस्लाम का भारत में प्रवेश किस प्रकार हुआ ? मुसलमान, युनानी, ग्रीक, हज़ार्दि आकाशतारों की भाँति भारतीय संस्कृति प्रहर कर के हिन्दू तमाज़ में ही वर्षों नहीं थुम-भुल गए ?
- इस्लाम का भारतीय संस्कृति पर यदि, कला और साहित्य के क्षेत्र में क्या प्रभाव पड़ा ?

तेरहवां अध्याय

- प्राचीन भारत में मूल्य रूप से कौन सी रासान-प्रणालियाँ प्रचलित थीं ?
- वैदिक युग या ग्रीष्म युग को रासान-व्यवस्था पर प्रकाश दीतिये !
- प्राचीन भारत में राजतन्त्र पर जो प्रतिक्रिया थे, उनका वर्णन कीजिये ।
- प्राचीन काल में भारत में कौन से लग्नराज्य थे ? इनकी कार्य-प्रणाली वर्णन कीजिये ।

चौदहवां अध्याय

- भारतीय कला की क्या विशेषताएँ हैं ?
- मीमंसा युग की कला पर प्रकाश दीजिये । भारहुत, सौखी, मथुरा, अमरावत और गामधार-कला-वीलियों का परिचय दीजिये ।
- गुप्त युग में भारतीय मूर्ति और विष्णु-कला लप्पनों परामाण्डा पर पट्टें गई थीं, इन उत्तरों को पुष्ट कीजिये ।
- माध्यमित्राय, इलोरा, घारायुदी, ओरोम्बुर, खजुराहो, बेलवाडा और भूखनेश्वर के कला-वेमब का परिचय दीजिये ।

पन्द्रहवां अध्याय

- प्राचीन भारत में चित्रा की क्या यहाँ प्रचलित थी ? जिला किस प्रकार थी जानें थी ? इसका क्या व्यावरण था ?
- लखनऊ, यालानदा, बलनी, दिल्ली, उदयपुर के विद्वितालयों का परिचय दीजिये ।

सोलहवां अध्याय

- धार्मानुषिक भारत में तक जापान किस कारणों से हुआ है ?
- उद्दीपनी शरीर में भारत में कौन से यद्य-सुधार भास्योत्तन हुए ?

३. वर्तमान युग की साहित्यिक, कलात्मक और वैज्ञानिक उन्नति का परिचय दीजिये। सामाजिक क्षेत्र में कौन से आनंदकारी परिवर्तन हुए हैं?
४. परिवर्तन का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा है?

सन्त्रहनी अध्याय

१. भारतीय संस्कृति को मुख्य विद्योपतारे क्या हैं?
२. वर्तमान युग में भारतीय संस्कृति का क्या महत्व है?

पहला परिशिष्ट

संस्कृति-विषयक संस्कृत के महसूपूर्ण ग्रन्थों तथा लेखकों का काल संकेत य०—पश्च, ल०—लगभग, ल०—लेखक, इ०—इच्छा काल, म०—मृत्यु काल
अभिनवउत्तरण—८००-६०० ई० (हरप्रसाद अग्रवाल—१२०० ई० पू० वैष्णवमूलर,
शास्त्री)।

अभिनव मृत्यु—२० ६६३-१०१५ ई०।
अमरात्मह—२० अमर कोश ४००—
४५० ई०।

अमरक—नवीं शा० से शुरू।

अमरदाम भासक—१०० ई० से २०० ई०।

अमरधोष—१००ी शा० ई०।

अमरहाय—७०ी शा० ई०, नारद स्मृति
का टीकाकार।

अमर्ता—ल० ४५०।

आनन्दवर्णन—१००ी शा०।

आपस्तम्भ—६००-३००६० पू० (कारो)

आपदेव—३०ी ५०ी शा० ई०, माध्यमिक
सम्बद्धाय के भावाय।

आपद्भृ—२० ४७६ ई०, र० ४६६।

आपदर कृष्ण—४० सांख्य कार्तिक
४५३-८३ ई० में जीवी अनुवाद।

आपदात्मार्थ—२० ६८४ ई०, प्रसिद्ध
नैयायिक श०कुमुकान्तिकि, न्यायपात्रिक
की टीका।

आपोतकार—६३५ ई०, श० नाम दर्शन पर
टीका।

आपास्तम्भ—८० ८५ ई०, जैन दार्शनिक,
श० तत्त्वाधारित्यम।

२५०० ई०पू० विष्टरमिद्व, ४०००
ई०पू०तिलक और वाकोमी, अविनाश-
चन्द्र धार २५००० ई० पू०।

कामात्मस्तिमार—८० सौमदेव २० १०६३-
८२ ई०।

कपित—८००-५०० ई०पू० (विष्टरमिद्व)
माल्य दर्शन का प्रयोग।

कमलाकार भट्ठ—१६१०-१५० व० निरांय-
मिष्टु।

कलह्य—४० राजतरंगिनी, २० ११४८-
५० ई०।

कामन्द—८० आर्यमार्गी, १००ी शा० ई०।

काम्यायन स्मृति—५००-६०० ई०।

कामन्दक—३००-३५० ई०व०, नौतिसार।

कामिदाम—२००ी शा० ई० पू० यम सुखा,
१००ी शा० ई० पू० यिन्नामणि वैज्ञ।

१८०-१९३ भज्जात्कर। पौष्टी शा०
ई०पात्र। १००ी शा० ई० मिळमूलर।

कुमारदाम—३००-३५० ई०।

कुमुक भट्ठ—११५०-१३०० ई०, श०,
ममुम्भति का टीकाकार।

कूमुकुराम—२००ी शा० ई० (हरप्रसाद-
शास्त्री)।

कैष्ठ—महाभाष्य की प्रदीप टीका का
कठोर १००० ई० के बाद।

गदाधर भट्ट—लगभग १६५० ई०, नव्य-
न्याय के प्राचार्य ।

महेश पुराण—१३वीं शताब्दी (इ०प०) ।

मंगेश उपाध्याय—१६७६ ई०, तत्व न्याय
के प्रवर्तक ।

मुहूर मुनि—८००-१०० ई० पू० ।

मोक्षधनात्मार्य—यामुक्षुष्टी ११५०-
१२०० ई० ।

मौड़पादाचार्य—८० ७८० ई० ।

मौतम—न्यायमूलकार, अथी शताब्दी पू० ।

मौतम घर्मनुष्ठ—८००-८५० ई० पू०
(काले) ।

मृक्षपाणि—लगभग १०५० ई०, मुमुक्षु
टीकाकार, चिह्नित्या उपह का लेखक ।

म्बरक—१३वीं शताब्दी की विष्णु का राजकीय ।

मृद्गवर—१३१४ ई०, वर्मनामूलकार ।

मृद्गनोमि—१२वीं शताब्दी बोद्ध वैदिकारण ।

मृद्गदीश तत्त्वलंकार—१६२५ ई०, प्रसिद्ध
नव्य नैयायिक ।

मृद्गन्नाय तके पंचामन—८० १२०५,
८० विवादासांख्येतु ।

मृद्गन्नाय परिक्षतराज—उत्तरोत्तर
१६२०-१५०, ८० रस गंगाधर, गंगा
तहसी ।

मृद्गदेव—१२०० ई०, ८० गीत गोविन्द ।

मृद्गदित्य—८० ६६२, ८० कामिका ।

मृद्गेष्ट बुद्धि—८० ६०० ई०, लेन्द्र
व्याकरण ।

मौमूलवाहन—१३००-१०, ८० दामभाग
व्याकरण माल्यकार ।

मैत्रिनि—मीमांसा मूलकार ५००-५००
ई० पू० ।

मृद्गुष—११वीं शता. सुवृत का दीक्षाकार ।

तक्कभाषा—८० वेदाक ग्रन्थ १२७२ ई०

तत्त्विरीय तंहिता—२३५०प० (तिसरा)
वाली—८० ६४०-६५५ ई० ।

दिक्षनाम—८० ५०० ई०, शौक
नैयायिक, ८० प्रमाण समुच्चय, न्याय
प्रवेश ।

दिप्यावदाम—१८०ी शता ई० ।

दुक्षवस—तत्त्वी शता चरक-सहिता का
संघीयक ।

देवत्य भट्ट—८० १५२५-१५३५
४० समृति चन्द्रिका ।

देवत्य समृति—५००-६०० ई० ।

द्यनपात्र—८० ६५३, ४०, तिसरा-मूलकी ।

द्यनप्रवर्प—८० ६६७ ई० ४० द्यनप्रवर्प
घर्मकोति—८० ६३५ ई०, ४० प्रभाल
वातिक ।

द्यामार्जन—३३ ६७७४ से ३०० ई०, ४०
मायायिक कारिका प्रशाप्तरमिता ।

द्यामोक्षिमह—लगभ (१५००-१५), ४०
शब्देन्दुसेवर ।

द्यामह पुराण—५००-६०० ई० ।

द्यामद समृति—१००-५०० ई० ।

द्यामनीतिक—४५१ शता ई० का व्याकरण
का मात्र एविया से मिला रामन्म ।

निरक्षत वाचाकार्य—८००-१०० ई०,
७०० ई० पू० वेदवस्त्राण ।

मीमांसा भट्ट—(१६१५-१५५ ई०), ४०
व्याकरण माल्या ।

पञ्चतान्त्र—हठन के मतामुलार इसका
मूल तत्त्वात्मका २०० ई० पू०
की हक्का है ।

पत्तन्नलि—१५० ई० पू० ।

प्रबोध-सन्देश—जै० कुणामिश्र, १०५०
११६६ ई० ।

प्रशासनपद—प्रकी या० ई० (कीच) ।

प्रशासन समृद्धि—१००-५०० ई० ।

प्राणिनि—५०० ई०२० (सिल्वरनिट्ज),
१५० ई० पू० (कीच) ।

पुराण—इनका काल-निर्णय बहुत कठिन
है। इनके दो प्रथमन कर्म हैं (१) पहले
पुराण—वाष्प, विष्णु, मार्कण्डेय, कृष्ण,
शौर मत्त्व, वे ३००-६०० ई० में
बते किन्तु इनका बहुत-ना प्रया
३०० या० ई० से भी बहुत पहले
कर है (२) चिह्नित पुराण-लिङ, वराह
मूर्हमार्गीय, गणड, स्वर्ण, बहु,
भविष्यत् ६००-१००० ई० ।

प्राणभट्ट—६४८ ई० ।

प्रियकृष्ण—१०३०-११००, या० विजयक
देवतारित ।

प्रहृष्टकृष्ण जै० गुणाहृष्ट—२०० या० ई० ।

प्रहृष्ट वता—४०० या०२०० पू० कीच ।

प्रहृष्टपति समृद्धि—२००-४०० ई० ।

प्रोत्याशन धर्मसूत्र—१००-२०० ई० पू०

प्रसादगुप्त—५६६-६६५ ई०, या० बहु राष्ट्र
सिद्धान्त ।

प्रसाद धर्म—रघुना॒-कृष्ण ऐतरेय, तैति॒रीय,
बैदिनी॒य, वैचविद्या, कौशीतकी॒ वालामय,
गोशय, २०० ई० पू० (कीच) ।

प्रसवृष्टिकृष्ण—२०० ई० पू० (सिल्वर-
निट्ज) ५०० ई० पू० (सिल्वर) ।

प्रदि—५०० या० ई० ।

प्ररत—पहली या० ई०, या० माटूप्रासाद ।

भर्तुहरि—यावदपर्वीय रा० ६५६ ।

भ्रवसृति—३००-३५० ई० ।

भ्रामह—६०० वाती गम्य ।

भ्रामवि—५७५ ई० ।

भ्रामवत् पूराण—नवीं या० ई० ।

भ्रामप्रकाश—जै० भ्राम मिथ, १५५०
ई० ।

भ्राम—भ्रामपति यास्थी ६०० या० ई०
पू०, दासमुत्ता॒ दूरी या० ई० पू०;
ब्रामेट उम या० ई० ।

भ्रामहसाधार्य—८० चिद्वान्त चिरोमणि
रा० १११० ई० ।

भ्रमनपाल निष्ठाद—रा० १३६०-१४० ई० ।
भ्रमवत्तार्य—११६६-१२०८ ई० के
प्रसवारक ।

भ्रमसृति—२०० ई० पू०—२०० ई० ।

भ्रमस्ट—लग्नमय ११०० ई० ।

भ्रमित्वमात्र—१४५० ई० ।

भ्रह्मारत—२०० ई० पू०—४०० ई०,
२०० ई० पू० के लग्नमय पू०
(कीच, त्रिपुरिन्द्र) ।

भ्रह्मवत्तु—८०० या० ।

भ्रंत—१३२०-१०० ई०, या० वैद्यीकल्पवत्तिः ।

भ्राम—लग्नमय ८२५ ई० ।

भ्रामप्रवाचार्य—पू० १३७२ ई०१०० परामर
मात्रवीय ।

भ्रामप निष्ठाव—८०० वाती या० ।

भ्रामारासग—विद्यालयदस्त ५००६० (जायस-
काल) धन्य, ६०० या० ई० ।

भ्रामारि—१०५०-११३५ ई० ।

भ्रेदिनी—या० भ्रेदिनार्थ भ्रेदिनी॒ (या०
दाम्पत्य॑) ।

भ्रेष्यालिपि—२५५-२०० ई०, मनुसृति का

- प्रथम दीक्षाकार ।
मिहिरकुल—१४०-४० ई० ।
मिलिव—१५० ई० ।
वात्तव्यवध-समृद्धि—१००-३०० ई० ।
रघुनन्दन—१४२०-३५ ई० ।
रघुनाथ शिरोभिष्ठि—१४७७—१५४७
 प्रशिद्ध नव्य नैवायिक तत्त्वचिन्ताभिष्ठि
 दीपिति के प्रसोता ।
राम-रत्नाकार—८० नामानुग, ७० वीं वर्षी
 शा० ।
राजनिप्रभु—८० नरहरि, १२३५-५० ई०
राजगोविल—११० ई० काल्य मीमांसाकार
रामायण—८००-५०० ई० पू० जेकोवी,
 ४००-५०० पू० कीम ।
शब्द—५००-५०० ई० काल्यालकार ।
शम्भव—११५० ई० गर्वकार शास्त्री ।
सलिल वित्तर—दूरारी शा० ई० ।
सलमोधर—११०४-५४ ई० कल्पेष के
 राजा गोपिनाथसम्बन्ध के मन्त्री, कल्प-
 काल तद के सेवक ।
सोलिम्बराज—१६३३ ई०, ४० वैष्ण-
 वीकर ।
चरत्ति—(८० २०० ई०) श० प्राहृत
 प्रकाश ।
चराहमिहिर—(५०२-५०२) श०
 बहुतालिता ।
चतुर्भाष्यम्—१४३८-१४३१ शुद्धादित-
 तादी के सेवक ।
चर्चिष्ठ अमेसूत—३०० ई०-१०० ई० पू०
चमुदण्ड—४०० ई० वीद वात्तोलिक, ८०
 चभिप्रम कीम ।
चामट—(१) दुर्वासामट, घटाम चमट
 कसीं पाठीं श० ई० ।
- (२) वामट-घटाम हृदय का सेवक
 नवी श० ई० ।
वाचस्पति मिथ्य—(१) ८४१ ई०, नाय,
 सांख्य योग विद्यास के प्रसिद्ध
 भाष्यकार ।
 (२) लगभग १४५० ई०, प्रसिद्ध
 परम्परास्थी विवाद-चिन्ताभिष्ठि के
 सेवक ।
वात्स्यायन—(१) न्यायभाष्य-प्रसोता श्री
 शा० ई० पू० ।
 (२) कामसूत्र के प्रसोता श्री शा० ई०
 पू०, कीम ५०० ई० ।
वामन—८०० ई०, य० वाम्बलकारसम ।
वायु पुराण—४० वीं श० ई० (सिम्ब) ।
वामन पुराण—२० वीं श० ई० (ह० प्र०)
विद्यापति—१३७५-१४१० ई० ।
विद्यवाष—१३२० ई० श० वाहित्यर्पण
 विद्यवाष पंचानन —१६३४ ई० प्रसिद्ध
 नैवायिक ।
विद्यव लघ—१००-८२५ ई० गाजा० समृद्धि
 नी वात्तकीडा नामक दीका का कर्ता ।
विद्यु वसंसूत—१००-८०० ई०, १००
 श० ई० (ह० प्र०) ।
विद्यु पुराण—३० वीं श० ई० (हरयनाम
 यास्त्री) ।
विद्यान निधि—१६० वीं श०, सांख्य सूत्रों
 का भाष्यकर्ता ।
विद्यानेश्वर—१०५०-११०० ई०, गाजा०
 समृद्धि पर विद्यानेश्वर दीका का सेवक ।
वीरभिमित्रोदय—८० विविध, १३१—
 ४० ई० ।
वृत्तरत्नाकार—८० केदारमट—१२५० ई०
 से शुरू ।

वेदी संहार—भट्ट नारायण, वेदी शत्रु
गुप्तोद्धव ।
वृक्षटमध्यव—१०५०-११५० ई० अस्मेद
आप्यकार ।
वेदिक संहिताये—श्राद्धाण थोर उपनिषद्
४०००-६००० ई० पू० ।
व्यास-स्मृति—२००-५०० ई० ।
शब्दर—२००-५०० ई०, च० मीमांसा
द्वयेन का भाष्य ।
शंकराचार्य—३८८-४२० ई० ।
शालालिति शम्भुव—३००-१००
ई० पू० ।
शाहूङ घर—१२८० च० संगीत रत्नाकर ।
शुद्धक—मूल्लकटिक २०० ई० ।
ओहूय—लगभग ११०२, च० तैयारीय
वरित ।
ओत्तम—२००-४०० ई० पू०, रचनाकम
मानव, वीथाएन, शालायन प्रारम्भक
शालायन (४०० ई० पू०) शालायन
श्रीतमूल, शापस्तम्भ (३५०-३००
ई० पू०) (वीय), शत्यागान, काठक ।
समन्वयन—६०० ई०, च०
प्राप्तमीमांसा ।
मदुमंसुःहरीक—२०० ई० ।
शापस्तम्भ—पू० १३८७ ई०, १३८४ ई०

मे वेदनाय पूर्ण किया ।
तिद्वयेन्द्रिय—६०० ई० उमास्वाति के
उत्त्वादीनियम के टोकाकार जैन
विद्वान् ।
तिद्वयेन विकाकर जैन दार्शनिक—
(५३३ ई०) च० नामावतार ।
सोदृश—१०२५-५०, च० उद्यमस्त्री,
कथा ।
सोमदेव—१०६२-८१, च० कथा-
सरित्सामर ।
सोमदेव सुरि—८५८ ई० य० नीति
वाचवासृत ।
हृष्टत—११०० ई०, आपस्तुम्ब भन्न फाड,
शाश्वतायन गृह्ण सूत, यमे सूतों के
टीकाकार ।
हृष्टवृत्त—५० ६५८, च० रत्नाकरी,
प्रियदर्शिका, नामानन्द ।
हृष्टीत यमे सूत—१००-३०० ई० ।
हेमचन्द्र—१०८०-११५२ ई० ।
हेमाद्रि—जगभग १२६०-१२७५, च०
वत्तार्णे विनामणि ।
श्रीरक्षामी—१०५०-११००, अमरकोप
का टोकाकार ।
श्वेतद—१०२०-१०५०, च० उद्यमस्त्री
संकरी ।

दूसरा परिशिष्ट

संक्षेप सम्बन्धी प्राचीन भौगोलिक स्थानों के वर्तमान रूप

संकेत—ब० वस्ती, रा० शहर, न० नदी, प० पर्वत, द० देश,
जा० जाति, गा० राजधानी, ल० लगभग

- भंग द०—भागवतपुर, मुंगेर का प्रदेश।
 भग्नि ब०—करायहर (भग्न एविया)।
 भग्नरान्त द०—उत्तरी कोकण।
 भग्नराजती ब०—मुहूर विं मे कृष्णा
 नदी पर।
 भग्नोप्या ब०—द्रामुभिगा (स्वाम), हृदय-
 राज्यादार ल० १३५० मे संस्थापित।
 भरिमदेवनपुर ब०—नगान (वर्मा)।
 भर्षन्ति—पश्चिमी मालया।
 भड़मक—यहमदेवनपुर।
 भट्टवकायन जा०—यासगान।
 भस्तिकी न०—चिनाड।
 भहिकलपा ब०—रामनगर, विलावरेली।
 भावत्स द०—काठियावाह का पश्चिमी भाग,
 इसपासी द्वारका।
 भास्त्र द०—मीदावरी कृष्णा का दोस्ताव
 प्राचीन राजा यमराजसी या यमकटक।
 भास्त्रांवत्ते द०—उत्तर भारत।
 भास्त्रमून—यमदेवन द्वीप।
 भास्त्रात्ती न०—इरावदी (वर्मा)।
 भहिपाल द०—हात नदी की पाटी,
 इसका अन्य नाम उद्यान है।
 भद्र (लोह) द०—पश्चिमी निशनपुर प०
 सिंहभूमि, द० बीकुड़ा के विषे।
- भक्तम द०—(उत्तरी कलिंग) बालालोर
 मे सरगुवा तक का प्रदेश।
 भत्तर कुह—माइवरिया।
 भपरिजाएन प०—हिन्दूकुश पर्वत।
 भरोनह द०—भग्न मधियाना (पश्चिमी
 पंचाब)
- भेष्योप्यन द०—ईरात।
 भविक द०—लानदेश।
 भट्टाह द्वीप—केदा (मलाया)।
 भविलपरस्तु—तैपाल मे तुम की भग्नभुजि
 हम्मिमरेह (मुम्बिनी वन) मे १० मी०
 पश्चिमी लिसोरा गाँव।
 भविष्य द०—काफिरिस्तान।
 भविशा—संघाम, काल्पुक से ५० मी० उत्तर।
 भव्यज—कम्बोडिया (कम्पोडी हिन्दूपीन)।
 भव्योज—जामीर बदलावी।
 भण्डावती—यहमदावाद।
 भत्तिमध्यन द्वीप—बोनियो।
 भलिंग—बालालोर के भट्टक से दक्षिण मे
 विजगापटम् तक का द्वीपशा का प्रदेश।
 भमु—कुर्म न०।
 भाग्यकुम्भ—कलोन (जि० कर्णलावाद)।
 भास्त्रित्य—व० भवित (जि० कर्ण खालाद)।
 भास्त्रत्य—धासाम।

काँची—काँचीवरम् ।

कुलिन्द—जमुना का उपरला प्रदेश ।

कुमा न०—काषुल नदी ।

कुह—उत्तरज यमुना के मध्य का भूभाग,
प्रान्वाला द्वीपन ।

कुमीमगर—कमिया (जि० गोरखपुर) तुङ्ग
का निवारण स्थान ।

किक्ष्य—शाहपुर युवराज जिंत (पश्चिमी
प्रदेश) ।

कोकनद—कोकनीरससान ।

कोकल—कलम (राजधानी धार्मोद्धा) ।

कोठार—नहालग (कोक्ष हिन्दचीन) ।

कोकास्ती—कोकम, इताहालाद से ३० मी.
इ. द० ।

गल्मार द०—रावलपिण्डी और पेशावर के
बिल, पूर्वी गान्धार को राजधानी तर्फ़—
सिला और गोर पश्चिमी की काषुल, और
स्वात नदी के संगम पर बसी पुष्करा-
कली (धारुनिक प्रांग और चारसहा)।
जीन का दलिली प्रान्त मुहमान मी
गल्मार कहलाता था ।

गिरिप्रज छ०—मगध की राजधानी धारुनिक
राजमिर के निकट इसके प्रवेश है ।
गुर्जर—जब्बी, दसवी शती में वर्तमान राज-
प्रान्त गुर्जर जाति का प्रदेश होने से
गुर्जरभूमि कहलाता था । इसकी एक
प्राची जातुकर्मी द्वारा जीते जाने पर
वर्तमान युवराज का यह नाम पड़ा ।

गोमती—गोमत न०

गोङ द० लथा छ०—बैकात, इसकी राज
का नाम भी गोङ (वारेन्ट)
लडमणापती मा ललमोती का ।
मालदा से १० मील दूर ।

धोरक—गोर-प्रबकोरा (धीरी) नदी के
उद्गम पाल का देश ।

धमपा—(१) अन्ताम (हिन्दचीन) (२)
भागलपुर के पास प्राचीन ग्राम देश
की राजधानी ।

धमंजलती—धम्पत ।

धेदि—यमुना के दक्षिण में युग्मेलखण्ड
का प्रदेश, इसका दुसरा नाम बाहुल
भी था ।

धेर—हेरल, मतावार ।

धोल—मेल्लूर से पुहे नोटे लक का
प्रदेश, राजधानियो उरयूर, (कावेरी
पर त्रिवलनायस्ती के पास), कांची
गोर तंत्रीर ।

धाहल द०—नेदि ।

धक्कोल—तकुमारा (उमा) ।

धलशिला—रावलपिण्डी से १२ मी०
उत्तर गूँज शाहडेरी की बस्ती ।

धातिक छा०—परव ।

धात्रिनिपित—तामपुक (जि० मेदिनीपुर) ;
तोकाल—धीली (उमीसा) ।

धृष्टद्वयती न०—पग्दर (पूर्वी प्रजात) ।

धृष्टिकापथ—नमंदा से वर्तमान का प्रदेश ।

ध्राराजती—मेलार नदी का निवास काठा ।

ध्रक्कमारम्—मिकोवार ।

धरमरहार—जलालाबाद ।

धाममदा—राजमिर से ६ मी० उ०
बहुमीठ की बस्ती ।

धेमियाराय—नीमसार (जि० सोरापुर)

धर्मन जा०—पठान ।

धरूपायन—फिलिपाइन ।

धरकली—राजी ।

धंबाल—होगलखण्ड द्वीपन तथा गंगा

यमना के दीपावल का कुछ भाग इसके दो भाग थे ।

(१) उत्तर पांचाल—रा० अहिंश्चा
(रामनगर जिला बरेली) ।

(२) दक्षिण पांचाल—रा० कामिल्य
(कमिल जिला कर्णपालापुर) ।

पाटलिपुत्र—पटना ।

पालद्वय—तिलमण्डेली, महुरा के जिले ।

पारस्पर (आ०) —पारस्पर, पश्चु, फारस ।

पावा—(१) कसिया से २२ मी० उ० पू० वर्षमान पहरीता ।

(२) विहारलालीक से ० मी० पू० महावीर का निर्वाण स्थान ।

पुष्टि—मालदा तथा पूष्टिया पुष्टि दिल्लीपुर और राजवाही जिलों के कुछ भाग ।

पुकाश्चुपुर—पेताहर ।

पुकाश्चुपती—चारगढ़ ।

पौड़—सुन्धाल परगामा, तीरभूम के जिले तथा हवारी बाग का उत्तरी भाग ।

प्रतिष्ठान—पेताह, शोरगावाद, से २८ मी० द० गोदावरी के उत्तरी तट पर ।

प्रत्यक्षीक—बलू ।

प्रत्येष—वेदीलोमिया ।

भगवत्—भगवत् ।

भगवत्—दधिनी विहार, पटना, गया के जिले ।

भगवत्—भागुनिह भजनर ।

भद्र—भागल्कोट के भाग्यपास का प्रदेश ।

भद्रोद्धिष्ठि—बंगाल की भागी ।

भातव—भातवा ।

विधिना व०—विदेश की रा० इरवंदा वि० से जगत्पुर (वर्तमान बीसां सही के निकट) ।

वेह—पामीर का ऊंचा पठार ।
वरद्वीप—बावा ।

वर्साकर—घरव सामर ।

वर्माका—वर्माका; कांगुल नदी के उत्तर में जगलालाबाद से २० मी० उ० पू० ।

वर्मिनी बन—वर्मनदेह (नेपाल) ।

वर्णन, वर्णण—वर्णा, एकाग्रानिस्तान का उ० पू० प्रदेश ।

वर्स—इलाहाबाद के भासपाल का प्रदेश (रा० कोलाम्बी)

वलभी—काठिपायाक प्रावहीप तथा भरत तथा शुरत जिले । रा० वला भावनगर से १० मी० उ० पू० ।

वंग—मुहिदाबाद, नदिया, यशोहर के जिले तथा राजसाही पवना, फरीदपुर के कुछ भाग । युक्त चंगि के भनुपार—चंगाल के पाँच भागों पुष्टि (उत्तरी चंगाल), समठ (पूर्वी चंगाल), कर्णु-मुखरी (पश्चिमी चंगाल), ताम्रलिपि (दक्षिणी चंगाल), कामक्षय (धासाम) ।

वंश न०—मानु (पापसन) ।

वातापि—बीजापुर जिले में चानुपामी की राजवालों वातापी ।

वाश्य द्वीप—वीनियो ।

विलय—विल्लिल (केन्त्र हिन्दूनील में) ।

विलयमगर—हामी वि० बेलारी ।

विलसता—वेहनम ।

विपाता (विपात) —व्यास ।

विशाली—विशाल, विश्वविष्णु की राजवाली (वि० मुजलकरपुर) ।

विश्वामी—सीसान ।

विश्वम—विश्वकोट ।

मुत्रिं—मत्तामुत्र ।	मुखोदय—मुखीमई (हथाय) ।
बृंसेन—मवृता ।	मुषम्माषतो—पंसोन (बमो) ।
झार—मूरा (ईरान की एक दुरानी राजधानी) ।	मुवर्षंडीय—मूराजा, मूलाजा, जावा यादि हिन्द मूर्खों द्वाप गम्भे ।
आवस्तो—कोसल की राजधानी सहेट महेट (मोदा, बहराइच जिलों की गोमा पर) ।	मुवर्षंभूमि—बमो ।
ओविजय—पतिमबोग (मुमाजा) ।	मुवास्तु—स्वात ।
ओफेत—श्रीम (बमो) ।	मुवास्त—पामेश्वर से ५० मी० दूर ममुना
उरस्वती—प्रकाणानिलाम की उरमस्वदाव नदी ।	मध्य के गुर्जर किनार की बस्ती ।
सारनाथ—बनारस ।	ओराढ़—काठिनाचाड़ ।
सिहपुर—सिंगामुर ।	सतम्भ-सोय—सतम्भात ।
सिहल—बोलका ।	हसितनापुर—मेरठ से २२ मी० ३० मी० दूर ममपुर साँव ।
सीता—मध्य प्रदिया की यारकन्द नदी ।	हंसकामन—हुंवा ।
	हमायतो—पेट ।

सहायक ग्रन्थ-सूची

भारतीय संस्कृति और इतिहास विषयक सामान्य ग्रन्थ

- Cambridge History of India Vols. I to VI (S. Chand & Co., Delhi.)
D. N. Roy : The Spirit of Indian Culture (Calcutta University)
Dutta : Indian Culture (Cal. Uni.)
Gokhale, B. G. : Ancient India (Asia, Bombay)
J. N. Sarcar : India Through the Ages.
Kabir, H. : The Indian Heritage (Asia, Bombay).
K. T. Shah : The Splendour that was Ind.
Panikkar, K. M. : A Survey of Indian History (Asia, Bombay).
Ramakrishna Centenary Committee : Cultural Heritage of India
Revised Edition, 5 Vols., Calcutta.
R. C. Majumdar and A. D. Pusalkar : History and Culture of
the Indian People Vol. I, Vedic India, Vol. II The Age of Imperial
Unity, Vol. III The Classical Age, Vol. IV The Age of Imperial
Kanauj, Vol. V Delhi Sultanate (Bhartiya Vidyabhavan,
Bombay)
R. C. Majumdar, H. C. Raychaudhuri and K. K. Datta : Advanced
History of India, 2nd revised, enlarged edition (Macmillan
1960).
R. C. Majumdar : Ancient India, Revised (Enlarged edition)
Motilal Banarasidas, 1960.
R. K. Mukerji : Hindu Civilization
Sengupta, P. : Everyday Life in Ancient India (Oxford Uni. P.).
Smith, V. A. : Early History of India, 4th Revised edition (Oxford
University Press.)
Smith, V. A. : Oxford History of India, Revised Edition (Oxford
University Press.)
Thomas : Indianism and Its Expansion (Cal. Uni.)
- एड विल्यामस्टन्स : भारतीय संस्कृति का प्रधान
केशवराम शास्त्री : चितु-सम्बन्ध का धारि केन्द्र हृष्ण
केशवराम शास्त्री : भारत की सांस्कृतिक परम्परा
कश्यपेन : भारतीय संस्कृति का इतिहास।

- बयचन्द्र विद्यालंकार : भारतीय इतिहास का उम्मीलन ।
 बयचन्द्र विद्यालंकार : भारतीय इतिहास की मीमांसा ।
 बयचन्द्र विद्यालंकार : भारतीय त्रिप्ति का क, ख, ग ।
 वा० वामुदेव शरण अपवाह : भारत की सौनिक एकता
 वा० वामुदेव शरण अपवाह : पाणिनिकालीन भारतवर्ष ।
 पर्मानन्द कोसाम्बी : भारतीय संस्कृति और अहिता ।
 मधुरत्तात जामी : भारत की संस्कृति का विकास ।
 महावीर अधिकारी : भारत का विषमय इतिहास
 रामधारीसिंह दिनकर : संस्कृति के भारत अन्धाय ।
 विद्यालंकन्द पाण्डेय : भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास ।
 शाने गुह जी : भारतीय संस्कृति ।
 शिवदत्त जानी : भारतीय संस्कृति ।
 वा० देवराज : भारतीय संस्कृति ।
 गल्वकेतु विद्यालंकार : भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास ।

अनुक्रमणिका

अंकोटीम १३४, १३५, १६८	अमेकामतवाद ६२
अंकोरवाट १३८, १६८	अमेकार्य संघर्ष १४४
अग्निरथ ४३	अन्तलिलित ८३
अग्निवर १३०, १६८, २००, २२६	अग्नवक-वृणि १७५
अग्नका देवी १४६	अग्नागार, हड्डिया के २३
अग्नसंप्र १२६	अग्नधंग देवी १६१
अग्नि ४१	अग्न जन गढ १६५
अग्नि-पुराण १२२, १७१	अग्नाशुक्र १०४
अग्निमित्र ११०	अग्नवदीयित २५
अग्निष्ठोम ३७	अग्निवधम चिट्ठा ६८
अग्नहार पास २११, २१२	अग्निधानरत्नमाला १४६
अग्नस्त्रा १५८	अग्निवदगुज १४६
अग्नवर्षोह १२२	अग्निवमयालकार ६३
अग्नातमान् १०३, १०४	अग्नरक्षोप १११, १२२
अग्नातामा देवी की महिला १६२	अग्नरसिंह १११
अग्नवंशेह ३५, ३६, २०३	अग्नरात्री १०३
अग्नवंशिरम् ८६	अग्नरात्री देवी १८३
अग्निति ४२	अग्नरी २२
अग्नीमा की महिला १६२	अग्नरक घतक १४८
अग्नेतसिद्धि ६५	अग्नीर अली २२१
अग्नवाय २०५	अग्नीर गुरुरो ५, १६२
अग्नीरात्र १७३, १७८	अग्नवध १७५
अग्नामता, भास्तीव शस्त्राति की विवेषता १७८	अग्नि ५०
अग्नुराध्युर १३०	अरब व्यापारी-इस्लाम के प्रचारक १५३
अग्नुलोम चित्ताह १०८, ११८	अग्नविन्द २२४
अग्नुसन्धान चित्तियाँ २३०	अग्नेयात्म ८, १०३, १०८, ११०
	अग्नवंशनी १२४, १४४, १४६, १५२, १०८
	अग्नमग्नूर, १२०

भरतमायूरी १२४
 भरत मायूरन १५०
 भरतार्इ उत्तराकां १६२
 भरताउद्दीन १५६
 भरतीमुद्राद २२
 भरतकाम के कुली १७३
 भरतार कल्पना ८८
 भवदान ११८
 भवदान यातका ११८
 भवनीमन्दनाष याकुर २३८
 भवततोमूल्दी १४६
 भविनाशमन्ददास ४०
 भवोक ३, ५०, ७८, १०१, १०३, १०६,
 १०७, १०९, ११४, १३०, १३८,
 १६०, १७२, १७४, ३८०, ३८३
 भववालोग ११०, ११८, १३१
 भवयति २०३
 भविनी ४१
 भव्यागमार्ग ६०
 भव्याग संघर्ष १२५
 भव्याग हृष्ण १५०
 भव्याग्यामी २०८
 भव्यं ६३
 भव्यवर्ण विवाह १४२
 भविनी ३५
 भव्यम्भव्यपा ६०
 भव्यम्भव्यता ११६, २३०
 भव्यम्भव्यता उन्मूलन २३०
 भव्योम २०
 भव्यवर्णनीयी १०६
 भव्यवाप ४६
 भव्यगम ८६
 भव्यस्त्र ११६
 भव्यम्भव्य जाति १५, १७, १८

भाठ प्रकार के विवाह ५८
 भाष्टतम्ब ३७, ३८
 भासोद प्रसोद २६, १०६
 भात्मयज ५७
 भाधुनिक युग का महात्म २१६
 भाधुनिक युग की संस्कृति का विकास
 २१६-४०
 भानन्द कुमार स्वामी (डा०) ८३८
 भानन्दवर्णन १४८
 भान्दरवेंग ८६
 भासेयवस्था १६८
 भारत्यक ३६
 भाकिमीदिस ११०
 भार्तु नायन १७५
 भार्यिक जीवन ५०
 भार्यिक विवाह ६१
 भार्ये तथा भार्येतर संस्कृतियों का विवर २०
 भार्येतर ८३, १०१, १२२
 भार्येभट्ट ११, १८४, १९३
 भार्येममाज २२३, २२८, २२९
 भालवार ८५
 भासुलोग मुकर्जी २३३
 भावधमध्यवस्था ४०
 भावस, कम्बुज से १३४
 भावशलाघन ३७
 भूषितयन इन्टीद्युट भाक साईन २३७
 भूषितयन लोकल रिफार्मर २२५
 भूक्तात २३५, २४२
 भूक्तातु याजा ११६
 भूतिग, ११२, २०६, २०८, २०९,
 २१४, २१५
 भूतुलेला १५६
 भूद्व ४१
 भूत्यम्भव्य १३४, १३५

इन्द्र लघुराजवंश १३६	उपवासत १००
इषाहीम भावितव्याह १५६	केन्द्रीय तथा प्रस्तुप्रता का विकास ४६
इनियड ४६	ग्रन्थवेद ३, ५, ६, ८८, २४३
इत्योरा ८८, १६१	ग्रहणों का विभाग ४७, २०३
इत्याम का एकोद्यवरचाद १५५	एग्लो-सेक्सल जाति ५१
इत्याम का प्रभार १५३	एकान्तिक धर्म ४३
इत्याम में परिवर्तन १६०	एरियन १०६
ईस्वरकृष्ण १२२	एशुदोक्ष १०८
ईरान का धर्माव ११३, ११४	ऐतरेय वाच्याल ३६, ५२, १६४
ईस्वरवर्षद्व विश्वासामर २३१, २३५	ऐसानीज १३८
ईस्वर सम्बन्धी विचार ४१	ओडिसी ५६
ईसा २४३	धीरंगजेव १०२, १५४, २०१
उडिया साहित्य २३६	धीरांवाम ४१
उत्तरकृष्ण ५०	कन्धायन १११
उत्तर मह १७३	कठोरनिष्ठद् ६०
उत्तर गीमांसा (वेदान्त) ६४	कालिर्दी १२६
उत्तरायासचित १७०, १४८	कालाद ६८
उत्तर वैदिक युग ५६, ५१	काल ६६
उत्तर वैदिक युग का धर्म ४३	कलासरित्यामर १४८
उत्तरायण १६६	कलम्ब ११८, ११२
उदयमपुरी १२३	कनिष्ठम २३८
उदयना वाम १७	कनिष्ठक ७०, ७८, ८८, १००, १०१, १६८
उद्यानकला ६१	कालदीयनाम १२६
उद्यान निर्माण कला १६३	कन्दहरी १२७
उद्योगमन्त्री २८, १०८	कालात २७
उद्योगमार २१, २७, १२२	कपिल ६३
उडाहिका १०६	कपिलवस्तु के याक्षय १७३
उपसर्व भास्तकार २०४	कर्मोर १५८, १५९
उपनिषद् ३६, ६०	कमलाकर भट्ट १२७
उपरस्ता विष्ट १६०	कमल १५०
उपर्युक्त ६५	कम्पुल १२, १२८, १३४
उमा १८	कम्बोज ५१, १०१, ११२
उर २८	उर गढ़ति ६२
उरा ३५, ४१	कर्मन २३४

- कामकाष्ठ की जटिलता ४३, ५०
 कमीर ५०
 कवि २२७
 कलय १७२
 कलिकार्य १४२
 कलहम १४७
 कल्याणी १६२
 कल्याण-भात्तग १३१
 कोलीवरम १६१
 काल्पन्य प्रतिमाएँ २००
 काशक ३८
 कातन १११, १४८
 कात्यायन ३७, १२३
 कादम्बरी १४८
 कायानिक ८६
 कामनदीप सीतिसार १२२
 कामद्वारा॑ १११, १२२
 कामयर्थन ८६
 कारखाकी १०५
 कार्ते की गुफाएँ १००, १८७
 कार्यमूल ८६
 कालिकास ११४, १२०, १२७
 कालीकट १५३
 कालिकामृत १४६
 कालमीर ६१, ८०
 किमलाव २०१
 किरातादुंसीय १२१
 कीथ ५१
 कुलिमद १७८
 कुलुर-सीतार १२५, १६२
 कुलेह १३०
 कुन्दकुमदाचार्य ८२
 कुमा ८५
 कुलारुचुल १०, १३६, १४५
 कुमारजीव ११०, ११८, १३१
 कुमारदेवी १७४
 कुमारपाल चरित १४७
 कुमारसम्भव १२६
 कुमारस्वामी ११५
 कुमारित भट्ट ८५, ८८
 कुरेम शुंग २६, २८
 कुर पांचाल ३५
 कुस्तुक भट्ट १५७
 कुषाण ८२
 कुशीनारा १७३
 कुड़ १८
 कुचा १३१
 कुत्तिलास १६३
 कुत्यकल्पदह १५८
 कुपलानी १४३
 कुपि ५०, ६१, १०७
 कुण्ड २०, ७५, ८३, १८३
 कुण्डल ५१
 कुल सीतार्द ८४
 कुण्ड यजुर्वेद ३५, ३६
 केशवपन्द्र उन २२०
 केशविन्द्याल २७
 केसपुत्र के कालाम १०३
 कैलास मनिर १८३, १८५
 कोक वास्त्र १५८
 कोटला निहत २२
 कोणाक १६६
 कोरिया १३२
 कोटिल ८०, १०५, १०६, १०८, ११०,
 ११३, ११४, १०२
 कोठार १०२
 कोलिन्य १०२, १२८, १३४, १३७
 कोहस २०७
 कोशिक ३८

- कोरीतकी ३६
 कामोद १३७
 काकुराहो १८१, १८५
 करोन्टोलिपि ११४, १३१
 काल-यात्रा मोहनजोदहो में २५, मौर्य युग
 में १०६
 कारवेत २२
 किलती ११
 किलोग १३३
 कोतन १३१
 क्षात्र १६२
 कंगा १८, ३५
 कंगा पात का हिन्द १२८
 कंगाराव १३५
 कंगेश उपाध्याय १६, ६७
 कणचिकित्सा १५१
 कण्ठतन ४६, ५०, १०५
 कणितशास्त्र १२३
 कणाकर भट्टाचार्य २३
 कणकलक नृ, नृ५, १००, १८६
 कण्ठविहित १११
 कण्ठवे विकास ५८, १०५
 कण्ठाकर १०१, १८६
 कण्ठाकर योगी १०५
 काला संत्रयती ११२, १४८
 कार्ती ७०
 कीषकोडिन्द १४८
 कीता १०, ५८, ८६, २०६, २४३
 कुबराती कीतो १८६
 कुबरतन ६२
 कुलवर्म ११८
 कुणाहो १४८
 कुप्त मूर्तिकला १८८
 कुप्तयुग की यात्रा यणाती १६८-००
 कुप्तयुग की विशेषताएँ ११६
- मुख्ययुग की संस्कृति १०३
 मुक्त और विष्णु के सम्बन्ध २०६
 मुकुल कागड़ी २२४
 मुक्तिजिणा २०६
 मुकुल पद्धति २०५
 मुख्यत ६४
 मुहारे १०२, १८३
 मृहमूत ३०
 मोरिकर्ता ४६
 मोरिन्द्रवन्द १४८
 मोरम ब्राह्मण ३६
 मोपराज १२०
 मोपियो ८६
 मोपुरम् १११, १८७
 मोमिल ३८
 मोमती ३५
 मोर्की २४०
 मोक्षिन्द्रराज १४८
 मोहमाद ६५, १६
 मीतम् २६, १७
 मीतन वर्मसूत्र ४७
 मीतमीपुत्र लातकार्णि १५५
 महाशीलता, भारतीय संस्कृति की विदेशी-
 पता २४३
 मामणी ४६
 मामप्रवापत १३०
 माम्यवादी ५०
 पारामुखी १८५
 पोषा, विश्ववाचा भौर मोषामुखा ४४
 पक्षियो २७
 पक्षपालिदत्त १५०
 नन्दगांधी १३, १२२
 नन्दगांधी योगे ७, ८, १८, १९, ११३,
 ११४, ११७
 नन्दगुप्त विकासिय ११६, १२०, १२६

- चन्द्र लोमी १२१, १२३
 चन्द्रलक्षण १२२
 चन्द्रेश्वर यैकटमण २३७
 चन्द्रदण्डी २२
 चम १३५
 चमा १२, १०२, १३४, १३८
 चमू १४८
 चरक १३१
 चमवन चूपि ३६
 चरित और शाश्वार, गोप्य युग में १०६
 चर्चन १३१
 चाहकियत १०२, १०६
 चागवय १६०
 चातुर्वाम ३६
 चार शार्य सत्य ६८
 चालसे पंचम २४३
 चालसे विलिंस २३३
 चालांक इर्सन २१, २२
 चिलारोहण १४६
 चिपकला १६२, १८८
 चित्तुलालार्य ३५
 चोलमला १५६
 चोल १२६
 चैतन्य १५२
 चैत्र १८७
 चुम्द ३८
 चुन्दोम्य उपनिषद् ७५, ८३, २०८
 चुगदीश्वरन्द वसु २३६, २३७
 चुन्दमज्ज ३६
 चुपततमहु १५८
 चुपकर्मा १३४
 चुपतिह १५७
 चुपाविल १४६
 चुपानक १५०
 चुलालूदीप चुलारी १५४
 चुहोमीर २००
 चुबलि ५७
 चुतक १८, ८३, २०७
 चुतपात की हानिया १४३, १४४
 चुतिमेव ४५, २२८, २२९
 चुंग मार्यांक ११७, १५५
 चुपान १३२
 चुपसवाल काशीप्रसाद ११५, १३६
 चुपा १३६
 चिन ५६
 चीतधर्म ४१
 चीकन का आवश्य ६०, १२०
 चीढ़ ६५
 चीतक २१३
 चुपा ४५, १०३
 चैन धर्म का आविधाव ६५
 चैन धर्म का लाल ८२
 चैन भासमा १२२
 चैनद शाश्वरण १२२
 चैमिनि ६३
 चौम्स २३४
 चौक २३५
 चौम्हर १५२
 चौतिप ८८, ११५, ११८
 चालमी १०८
 चालमी एकगत १०८
 चाप ३०
 चैबोर १२१
 चैत्तकीमुद्दी ६६
 चैकदीगिका ४५
 चैकार्पटीका १२३
 चैरसा ५३
 चैपोवन चुपति ५३
 चैमिन १६

तत्त्वाक १०५
तत्त्वशिला २०५, २१२, २१३,
तीमचंद्रा १३२
ताण्डम् प्राचारण ३६
तामिल साहित्य ८७
तिसर १३०
तिथ्वत १३३
तिरुवन्तुपुर ११२
तितक ३८
तीयरी बोड महात्मा ६६
तीलिरीथ उपनिषद् ६०
तुलनात्मक नामा शास्त्र २४४
तुलसी की पुजा २०
तुषारप ११४
तेजवाल १२६
तोरमाण ११६
तोलक्षणियम् १११, ११३
थियोगको २२२
थेराप्पूट १३५
थोल संभोट १३३
दधी १४८
दत्तगुरु १३५
दर्पण ८८
दर्शन ५८, ८८
दर्शनो का निर्माण ५५
दशाहमात्रचरित १४०
दशगुणीसर घंकलेश्वर १२४, १३६
दमारव २०३
दसवन्त १६२
दशिगायम् १६७
दाम ११५
दामोदर १८
दार्दीश्वरीह १६०
दार्शनिक विकास के चार मुख ८८

दास ११
दिल्लाम ६१, १२२
दिवाकर विष १४५
दिव्यावदान ११२
दिसायामीक्षा २१२
दीमार ११६
दीपकर श्रीज्ञान ११५, १३३
दीपजोगिता भारतीय संस्कृति की विद्या-
पता २४३
दुर्गा १६
दूङ्कल १११
दूलबाला १६६
देवकीपुत्र कृष्ण ४३
देवतमर्त १२६
देवनन्दि १२३
देवचिंगण १२२
देवेन्द्रनाथ ठाकुर २२०
दोरसमुद्र का होमशलेष्वर मन्दिर १६९
द्रम ११५
द्रीष्टि १२१
द्रविड़ प्रभाव १८, १२
द्राविड़यण ३५
द्रितवाद ८६
द्रिताद्वैत ६५
द्विराज्य १६६
धंग १२५
धनपात १४४
धर्म २४, ४०
धर्म का पालन ४८
धर्मकीर्ति ६१
धर्मचक्र प्रवर्तन ६७
धर्मतत्त्व की मुख्यता १७८
धर्मपात १२२

- धर्मभाषात्व १६८
 धर्मसत्त्व १३५
 धर्मविजय १००
 धर्मसंघ ८३
 धर्मसूत्र ३७, ३८
 धार्मिक आनदोलन २१९
 धार्मिक आग्नि ७४, ७५
 धार्मिक दक्षा ५६
 धार्मिक प्रभाव १५७
 ध्रुव ७२
 ध्रुवदेवी १२०
 नकुल ६२
 नकुलीय ८६
 नचिकेता ६०
 नटदण्ड विष २०१
 नल बीर्घुग ६
 नमदलाल वसु २३८
 नन्दी ८६
 नरवति ८८
 नल चमू १४०
 नवमाहसाक चरित १४७
 नष्टीप ८७
 नव्य न्याय धारा ६६
 नव्य न्याय ८०
 नवीर चाह १५३
 नहपाल १००, १०८
 नामद संवेदन १६८
 नाम वामाशक्ति-युग्म युग १०
 नामानन्द १४३
 नामाकुन ६६, १११, ११२, १२५, १३२
 नामाकुनी कोठा १०३, १०४
 नाममति ८५
 नामक १५८
 नामदेव १५८
 नामनार ८७
 नामद १२०, १२२, १७५, २०८
 नामायणी पन्थ १६०
 नामांकनी गायत्रे २०७
 नारियत १७
 नारी आन्दोलन २३२
 नार्थिक (धार्य) १६
 नामनदा ११, १६६, २११, २१३,
 २१४, २१५
 नामनीतकम् १२५
 नासदीय शूक्र ६०
 नासिक १०८
 नासिक दर्शन ६१
 निषष्ट १५०
 निकामदीन धीलिला १५४
 निरेश ८३
 निम्बार्क ८५, ८५
 निमा १३४
 नियोग ५८, १०५
 निषकत ८८
 निष्ठन्य ६६
 निष्ठांत-धायात १०६
 निषाद (धामन्य) ८
 निष्क ५०
 नीम २५
 नीलकण्ठ १५७
 नूसव ४२
 नेचिदो ८, १४
 नेचिदो नस्त की सांकेतिकृदेन ११
 नैगार्धीय चरित १५७
 न्यायकुमारीजति ८७
 न्याय दर्शन ८७
 न्याय भाष्य १२२
 न्यायमंजरी ८७

नायक वातिक १३, १४, १२२	पाट्ट्यविषय २०७
न्यायवल्लास १२३	पाणिमि ८३, १२२
नूठन १५०	पाचिनीय अस्टाध्यायी ६४
पञ्चतन्त्र १२१	पापदर्श १३५
पञ्चदशी ६५	पाप्त्य राजा सुन्दर ८२
पञ्चविंश वाट्टण ३६	पालंबन महाभाष्य १४५
पदोन्ना २०१	पारस्कर मृहसूत ३५
पर्णि ३४	पार्वतीर्थ ६४
पर्वतविति ८६, ८८, १०४, १०७, ११०, १११	पार्वते ६६
पर्वि ४२	पार्वतेनाथ पर्वत ६६
पद्मधन्यसंस्पर्श ८८	पातकार्य १२५, १५१
पद्ममाणि भवतोक्तेष्वर १५८	पातामल ८८
पद्मपुराण २०	पाति व्याकरण ११४
पद्मसम्भव १३५	पात्ती ४०
परमागुवाद ६०	पात्ता १०३
परसा हिन्द १२८	पात्तुपत वैकाशपद्माय ८६
परायार १२२, १५०	पात्ते ८६
परिमत १५९	पिण्डित्यन १६३
परीक्षाएँ और उपाधियाँ २१०	पित्राचा २१
पर्वत्य ४६	पीपल २५
पर्यु ४८	पूर्वसु ११४
पर्युषी ३५	पुराणों का विकास ८८
पर्वत १२२	पुराणपात और नवायमहान् ७
पर्वति २५	पुरावता और उपर्यु १६
पर्वति के विश्व आनन्देन ४३	पुरापाई ५०, २४५
पर्वत्याप ८३	पुरापातम देव १४६
परिचयी वृत्तकाल जाति १५	पुर्णमित्र ७६
परहन्त ८६, १०४	पुरा १८
परहाती वैती २००	पुर्णवर्मा १३६
पर्वत्याप पद्धति ८४	पुर्व भीमांसा ८३
पाटिसिंह का प्रवर्ण १६८	पुर्व वैदिक तुग ४०-४३, ४४, ४६, ५०
पात्रम प्रशासी २०८	पुरा ४१
	पुरु ८२

- पृष्ठीराज विजय १७५
 पेरिपत १०६
 पोमा-नी १३१
 पौराणिक हिन्दू संस्कृत के विकास के दो
 युग १४
 प्रगतिशीलता ५२
 प्रजापति ४३
 प्रजातन्त्र १७३
 प्रणाली अवस्था २३
 प्रजा ११२
 प्रजारामिता ११२, १६५
 प्रतिचाम विवाह १०४, १८८, १८९
 प्रकृत्यन्तर राष्ट्र २३६
 प्रभाणवातिक २४
 प्रभाषसमूहन २३
 प्रसस्तापाद ८८
 प्रस्तान नीरी ८५
 प्राह्ल ११३
 प्रागेतिहासिक युग ७, १४-२३
 प्राचीन राजवंश की ममीका १७३
 प्राच्य भूमध्यसागरीय जाति १५
 प्राकार्य ५६
 प्राचनाथ १३१
 प्रातिचाम २८
 प्रान्तीय भाषाओं का विवास २३४
 प्राचेन्द्रमाज २२०
 प्रिन्सेप २३४
 प्रियदर्शिना १४३
 पित्ती १०८, १०९
 पत्तहुर सीकरी १५२
 पत्तियान ११८, १३०, १८३
 पितोवाह उपलक १५४
 पूनाम १३४, १३५
 विकिमन्द्र चटर्जी २२५, २३५
 वंगाल की पाल चैनी १६६
 वस्त्राली पोथी १८४
 वर्ष्युहर १३८
 विनियर १०२
 वसुक २०६
 वहरामजी २२७
 वहतिवाह ५६
 वहमुखराक १३५
 वाण १४२, १५८
 वादरामण ८४
 वालवध २२६
 वालविवाह २२७
 वालिं १३७, १३८
 विनतल ८७
 विनविभृत १३५, १३६
 विलहर १५०
 वुढ ३३, २०६
 वुडगां १८४
 वुडबोय १२२
 वुडबनित ११०
 वुहतर भारत १२३-१२४
 वुहतर भारत की वास्तु कला १६५
 वुहतर भारत का दूषण १०१
 वुहत्तहिता १२८, १३३
 वुहत्तरप्पा ६०
 वुहत्तीवर का मनिर १६७
 वेगार १०३
 वेतुर १२१
 वेसलगढ १००
 वेटिक, लाड विलियम १२६
 वीमोज्जोहि ३६

- बोधिसत्त्व १०१
 बोरोबुदुर १३८, १४५
 बोनियो १२७
 बीड़पर्म का नोय ८२
 बीज पर्म का हिन्दू धर्म पर प्रभाव ७०
 बीज पर्म की लोकप्रियता के कारण ३०
 बीड़पर्म के मानवण ४०
 बीड़ धर्म ८२
 बीड़ साहित के मण्डल १०३
 बीषमायन धर्मसूत्र ३०, ३८
 बहु ६४, ६५
 बहुगुण १५०, १५२
 बहुवर्य के नियम २०४
 बहुवार्यात्रम और उपवास संस्कार
 २०३, २०४
 बहुवारी २०५
 बहुवास मूलत ४५
 बहुवासाज २१६, २२०, २३१
 बहुमूल ८४
 बहुमुकुटमिहान्त १५०
 बाह्यण धर्म १६
 बाह्यी लिपि १३१
 विद्या शुग १३
 भक्ति २७, ५७, ८५
 भगवद्गीता ५६, ७८, ८३
 भगीरथ की तपस्या १३२
 भट्ट नारायण १४६
 भट्ट १४०
 भट्टमी १३५
 भट्टलूट १२६, १४८, १५८
 भरत ६६
 भवदास ६३
 भवसूति १४०, १४८
 भागदूष ४६
 भागवत धर्म ०५
 भागवत धर्म का आरम्भिक प्रसार ८३
 भागवत पूराण ८५
 भाजा १०७
 भाष्मस्त ६४
 भातलाहै २३६
 भासी ८५
 भासह १४८
 भारत की मस्ते ४४
 भारत की विविधता और भीतिक
 एकता ४
 भारत विषयक ध्यायन २३३
 भारतीय कला की विवेषताएँ ११६
 भारतीय पूरातत्व का अन्वय ३१
 भारतीय संस्कृत १, इसकी विवेषताएँ
 २३२, ४८
 भारतीय संस्कृत पर बीड़ पर्म का
 प्रभाव ७१
 भारतीय संस्कृत में जैनियों की देन ७३
 भारतीय संस्कृत में सम्मिश्रण ३
 भारवि १२१
 भारविष ७६
 भारहुत की कला १८३, १८४
 भारविषेक १८८
 भार्यकान ८०
 भास ११०
 भास्कराचार्य १४६, १५०
 भिक्षावृति २०५
 भूमध्य भारतीय मस्त (इविष) १५
 भूमस्त १३८
 भूमूलस १३८
 भोज ८६, १४८, १५१

- मंगोल (किरात) १६, ८०
 मंसुर २००
 मण्डन मिथ १४५
 मधुरा १८, १०१
 मधुरानाल ८७
 मधुरा दीती १८४, १८५
 मद १७४
 मध्य एशिया ११२, १३०
 मध्यकालीन संस्कृत १५०, १५२
 मध्यम मार्गे ५७
 मध्यपूर्व की भारतीय कला १२७
 मध्यपूर्व की मूर्तिकला १८८
 मध्यपूर्वी मित्रकला १८८
 मध्य ८५
 मनु १०४, १०५, १०७, १२०, १५०,
 २०८
 मनुर ११६
 मनाया हीप समूह १३५
 मनसार १५४
 मनव १०३
 महितसेण सूरी ८२
 महाज्ञवी १३५
 महाज्ञवद गुरु ८
 महाराजा गाँधी २३०, २३१, २३२
 महात्मा पाट्टव ५५, ८५
 महाभारत का रचना काल ५५
 महाभारत की यात्रा ५५
 महाभाष्य १०४, १३०
 महाभिकानिकम ६०
 महाभिषेक ११२
 महाभोज १०४
 महाधाम ६२, ७०, १०१, १११, ११३,
 १२१
 महारथी १०८
 महात्मनवीर २३७
 महावस्तु १११
 महापीठ ८८
 महात्मारचनित १४७
 महात्मीरप्रसाद द्वितीय २३४
 महेन्द्र ६६, १२०
 महेन्द्र लाल सरकार २३६
 महासंघक ६८
 महासिनापति १०४
 महामध्य सूगलक २२६
 मा १८
 माघ १४७
 मातृदेवता १६
 मातृदेवी २४
 मातृशक्ति १६
 मात्रव १५०, १५१
 मात्र्यमिक १२, १३
 मानसार १२६
 मामलापूर्ण १८१, १८२, १८५
 मायावाद ८४
 मात्री मात्रव १५०
 मात्रव १७५
 मात्रविकालिमित १२१
 मिशनी १३१
 मित्रात्मा १४
 मिष्ठिला १०३
 मिनासदर ६६, ७०, १००
 मिष्ठिल संस्कृत १११
 मिहिर कुल ११८
 मीमांसी १२७
 मुद्रितुरीन विवरी १५४, १५५
 मुखियोगमिष्ठ ३०
 मुग्न मैती २००
 मुख्यकालिनषट् ४३

- मुद्रा ११५
 मुद्राराशस १२१
 मुद्रारि १४७
 मुद्रारि मिश्र १४
 मुद्रितम छकीर १५४
 मुहम्मद १५३
 मुहम्मद गीस १६२
 मुहम्मद बिन कासिम १५४
 मुहरे २८
 मूर्तिपूजा का प्रसार ०१
 मृच्छकाटिक ११०
 मेघदत्तोज ५०, ५३, १०२, १०३, १०६
 मेघदूत १२१
 मेलातिवि १४८
 मेसोपोटामिया ३०
 मेकानिक १५८
 मेक्सियन ३६
 मैथिली ४३, १२२
 मैत्री ४६, ६७
 मोहनीयहो २१-३१
 मवन १०५
 मवनिका ११४
 मव्वामरपुर ११४
 मव्वोवर्सी १४६
 मव्वोवर्सी १४८, १३८
 मव्वुबै ३५, ४१
 मव्वारियोगी चान्दोलन ४३
 मव्वोवी ३६
 मव्वावलय १०५, १०२, १०३
 मव्वावलय समूहि ११०, १२०, १२२,
 १४८
 मव्वाकालायं शौर मुद्रूत २०८
 मव्वालद १०२
 मुखान चार्य २६, २७, १८१, २०५
 २०६, २१४
 युवितकल्प तद १५१
 योग ६६
 योगाचार ६२
 यीथेय १७४
 यशुनन्दन १५८
 यदुनाथ शिरोमणि ६७
 यजुर्वला १२१
 यजुल १००
 यत्तावती १४७
 यत्ती ५८, ५६, १६६
 यथ १६१
 यथकार ५०
 यमितदेव ६२
 यमावाहि २२७
 यविवर्ण २३८
 यवीन्द्रनाथ डाकुट २३५, २४१
 यहुमाए नज्वायनात २२०
 याका १८
 यागमाना १६८
 याजकृत ४६
 याज्ञोपासानासिधर २३५
 याज्ञतन्त्र १६५-१७३
 याज्ञतन्त्र पर प्रतिष्ठन्य २७१
 याज्ञतरुमिली १०७, १०२
 याज्ञयोग ५८
 याज्ञवाज १६७
 याज्ञवेश्वर १२१, १४२, १४६, १४८,
 २३०
 यायस्थानी दीसी १६६
 याज्ञवर्णी १४५, १५३
 याज्ञायो ना देवत्व १६६८
 याज्ञा के कर्त्त्वा ६२
 युधा का मिश्रवर्ष ५६

- राधा ८४, ८५, ८६
 रामकृष्ण परमहंस २२१
 रामकृष्ण भण्डारकर ७६
 रामकृष्ण नियन आनंदोलन २२१, २२२
 राममोहनराम २१६, २२६, २२८, २३५
 रामायण और महाभारत ७८, ११०
 रामायण का महत्व ५५
 रामायण का अन्त काम ५४
 रामानन्द १५८
 रामानुज ८५, ८६, १५८
 रामन एशियाटिक सोसायटी २३३
 रामण वर्ष १४७
 रामेश्वर पन्नुतंशाल जानारे २३७
 रामेश्वर नमाज मुखार परिवह २२५
 राम विहारी थोर २३०
 रामस ५६
 रात ४३
 रात्रिमा १०७
 रात्मेन ११८
 रेखम का मान १०२, १०९
 रेखङ ८३
 रोमक ११५, १२५
 रामानन्द १५८
 रामित जाता २३८
 रामितविस्तार ११९
 राम्य जात २३५
 राम्यान ३७
 लियशाह का यन्दिर १११
 लियशाह मन्दिर ८०, ११८
 लियशी ११३, ११४, ११२
 लियशी ११५, ११६
 लुनिंदीवर ६०
 लेग १००
 लेखी ११२
- लोधल की गुडाई ३१, ३२
 लगिज १३३, १७४
 लग्जलेंटिका १३२
 लखाम ७७
 लखसूची ११२
 लरण ४८
 लस्तन्तु २०७
 लथ ४०
 लर्ण लर्णथा ४६, ११६, १७१
 लार्याम पढ़ति १०२
 ललभी १२२, १५४, २१५
 ललभालार्य ८८
 ललत विलास १२८
 लमु ४३, ४५, ८२
 लसुंदेव प्रबन १०१
 लसुकन्तु ८३, १२२
 लाकाटक ११८
 लाम्बांड १२५
 लालसति सिथ ८१, ८६, ८७
 लाल्मालन ८१, ८७, १११
 लामत १४८, १४९
 लामत और लति ४१
 लाममाली दलों का जम्म ८०
 लामण १३०
 लाते ५१
 लासपरता १४८
 लास्तुकला १५१
 लियमिला २१०, २११
 लिकमाकड़ेव चरित १५७
 लिकमालिय १५६, १५८
 लिकमोर्सी १२८
 लियहराल १४८
 लिलय १३०
 लिलित १६७

विजानमिति १६	प्रतियुग ४१
विजानवाद ८३	वृत्त ४१
विज्ञानवर १४८	वेणीसंहार १५७
विष्टरनिन्दा १८	वेदव्यास ३४
विस्तरा ३५	वेदों का महसूव ३४
विवेशियों की हिन्दू चराचरा ११६	वेदाग ३८
विवेशियों द्वारा भारतीय संस्कृति को बहुप करना १००	वेदान्त ३७
विवेशी व्यापार को अद्यत उत्तरि १०२	वेदान्तदेशिक ३५
विष्वा विश्वा १०३, १२०, २२६, २२७	वेद ६२, १७२
विष्वय पिटक ६४	वैज्ञानिक ३५, ३८
विमेषट स्थिर ११५	वैज्ञानिक और धीर्घोमिक प्रनुभवान् २३७
विम करना ८५, १००	वैज्ञानिक उपलि ५३, १५३, २३६,
विमल चाह १२६	वैतान्त्र्य ४२
विमल १२१	वैदिक और वर्तमान हिन्दूधर्म में भेद ४२
विलायूरेट २४२	वैदिक देवता ४०
विलियम बोल्ट २३३	वैदिक धर्म का पुनर्जागरण १०१
विवाह वदति ४४, ५६, १२०	वैदिक धर्म के साथ समर्पण =४
विवेकानन्द २४७	विक दुग १६३
विवाहकरणी ६३	वैवेदिक साहित्य और संस्कृत १५-१६
विविष्टाद्वृत ४५	वैदिक तात्त्विक का काल ३८
विवाहदत्त १२४	वैदिक संस्कृत ४०-४३
विशेष ६६	वैदिक संस्कृति को विवेषताएँ ५५
विवेषवर १५३	वैदूष्य ६१
विष्ठि १००	वैज्ञानिक ३५, ३८
विष्णु ४१, ५८	वैष्णववाद ३५
विष्णु विष्मय २३६	वैशाली ६६
विष्णु वर्मोत्तर पुराण १२२	वैशाली के विष्मय १३३
विष्णुवामी १२१	वैशेषिक ३०, ३८, १२२
विष्णुवा वेचर १५६	वैशाख मन =४
विहार १८०	वैराग्य ५०, १५३
वीतनाम १०२	वैरोचन १०२
वीरवेद ८७	व्यामहारण ३६
वृन्दी १३२	व्यापार ५१, १०८
	व्यापासनाय १२२

व्यास स्मृति १४१	शुद्ध शूष्ठ ३७,३८
ज्ञानमणिकालय १०	शूद्रक ११०
शक्तिवाचाय ८५, ८७, ८९, ९४, ९५,	शंख वस १३१, १३३, १३५
१४५, १४८	शैव वस ७६
शक ८६, १०५	शैव सम्प्रदाय ८७
शतपथ शास्त्रण ३६,४१	शैव माहित्य ८७
शब्दर स्वामी ६३,६४	शैवतिज्ञान ८७
शत्रुघ्नायाप्ताहक १०८	शोभन १०८
शहदवुद्दीन गोदी १५४	शोभ्न १३२
शाकवाचाय ६४	शमण ६६
शात्रू भर महिता १५०	शमण वेल गोला १६१, १६०
शाक्ष १७३	शावणी २०६
शास्त्राण ३६	शी १६
शास्त्ररतित ६३, १३३	शीक्षण ३७, ४६, ८४, १७५
शान्ति लक्षण महानगर २३३	शीमार १३२
शारियुक्त प्रकरण ११०	शीतका १३०
शालिहोष ६१	श्रीविजय १२
शास्त्रम प्रणाली १६५-१०६	श्रीहर्ष ६१, १५०, १४८
शाहवही १५२	शूलवस्त्र १३५
शिक्षा ३८	शैशिं १०६
शिक्षा शोर फोम २०६	शौतमूल ३७
शिक्षा काल २००	श्वेतप्रभवत्र उपतिष्ठ ५६, ५६
शिक्षा केन्द्र २११	संयम ११२
शिक्षा पद्धति २०३	संसीत १६२
शिक्षा पद्धति के वर्णन २१६	संसीत रसायक १४८
शिलालीत २६, २८	संश्वरीता ४६
शिल्प ५०,६१	संषमड १२२
शिव १००	संषमिता ६६, १२०
शिवि ७२	संषम्बलनग्नि ७०, ७१
शिशुग्रासवध १५७	संषात्तवाद ८२
शुग ६६	संस्तानवाद ८२
शुक्लपत्ति १४८	संवाल १८
शुक्ल शुक्लेन ३६	शुपुक्त निकाय ६८
शुद्धादृत ४५	संसारकन्द २००

- संस्कृतियों का संगम १४
 सहिता ३४
 सतनामी १६०
 सतीप्रवा ३३, ५३, १२०, १४५, २२५
 सत्यवीर १६०, १६१
 सत्यार्थ प्रकाश २३३
 सुदूरभिष्ठ २३५
 सद्गुणपूर्णहीन ११३
 समलक्ष्मार २०८
 समा ४६, १६६
 समयता और संस्कृति १, ३
 समन्वयभड १२३
 समन्वयात्मक हिन्दू चर्च ८१
 समाज १०३
 समाज्ञम १०३
 समिति ४८, १६६
 समुच्चयवादी ८१
 समुद्र ४१
 समुद्रगृह्ण १०, १३, १२१
 सम्पत्ति का विनिमय ५०
 सम्पर्क के माय परिणाम १५६
 सम्मान की प्रवृत्ति १५६
 सम्मत्रण की प्रवृत्ति १६०
 सरस्वती ३५
 सर सेवद अत्मद २२१, २३५
 सर्वोत्तमवाद ४२
 सर्वान्वितवाद ६३
 सर्वलीलावाह ११४
 सहदेव ८१
 सहित्याला का भाव ३, ५३, २४२
 सांख्यार्थिका ६६, ११२
 साक्षात् दाता ६५, ६६, १२२
 सांख्यी ८४
 सांखों की पूजा २५
 सांस्कृतिक एकता ५
 सांस्कृतिक प्रभाव, बृहत्तर भारत में १३३
 सांस्कृतिक प्रभाव के विवरक कारण १२८
 सातवाहन यूग ६, ३०, ६०, १६८, १८५
 सामवेद ३५, ३६
 सामाजिक दशा ४४, १०३, ११८, १४४
 सामाजिक संयोग ५८
 सारभाष ६७
 साहित्यिक उन्नति १६३
 सार्वात्म १२१
 सिहस्री १३६
 सिद्धान्त शारिरिका १४८
 सिकन्दर १५४, १७८
 सिकन्दर लोही १५४
 सिंहिरिया १२०
 सितार १६२
 सित्तनवासन १६०
 सिद्धेन दिवाकर १२३
 सिद्धेन १६६
 सिद्धान्तशारीरिक १५०
 सिन्हार १८
 सिंधु ३५, ३६
 सिंधु सम्पत्ता २१-३१
 सिंधु सम्पत्ता का काल २८
 सिंधु सम्पत्ता के नियोग ३०
 सिमुक ६८
 सिल्वे लेखी २४६
 सीता १०८
 सुकरात २४३
 सुखावती १३२
 सुसमिटक ६८
 सुकन्त १४८
 सुवर्णदीप ११, १२६, १३५, १३७
 सुवर्णगृह १३१

- मुखर्णभूमि १२६
 मुखस्तु ४५
 मुख्यत १११
 मुहूर्लेख ६३
 मूल ७८
 मूर्खकाल वशंगवाहित्य का ६०
 मूल भावित्य ३६
 मूर्ख ४१
 मूर्खवर्मा १३४
 मृण्युक्तेषु २३४
 मैलाकृत ११४
 मेहता १६४
 मेयप्रबन्ध ६३
 मीमदेव १४८
 मीति ५५
 मीषान्तिक २२, २३
 मीन्दरामन्द ११०
 मीवीर ५०
 मृतम् १८१
 मृष्ट १११
 मिथ्यी का उत्तरान २३०
 मित्रों की स्विति ४२, ४३, ४४,
 ४५, ४६, ४७
 मीत्यर्थ ८८
 मीठा विज्ञा २३१
 म्यांति ४६, ४७
 म्यानागार २३
 म्यथ १८२, १८८
 म्याते म्यादय ४१
 म्यूति अनिका १४२
 म्यादाद ६२
 मोगचन ममी १२३
 म्यामी इयानन्द तरस्ती १५५
 म्यामी विवेकामन्द २२१, २२२
 म्येज नहार १०८
 मृहपा तथा मोहेश्वोदरों की सम्पत्ति २११-१
 हम्मानामा २००
 हरविलास दारवा २२७
 हरिजनों की उन्नति २२६, २३०
 हरिषेण १२१
 हर्षचरित १४८
 हवतकुण्ड ३३
 हवायुध १४१
 हालंतपीढ १५८
 हाल ११८, १४८
 हालेविद ११७
 हिन्दूओं के राज्य १३३
 हिन्दसा १२४
 हिन्दूओं का नया रूप ७०
 हिन्दू धर्म के सुधार चान्दोलन १५१
 हिण्यलास १०२, १०८, ११६
 हिरण्यगर्भ ४५
 हीनमान ५६, १०१
 हुएनन्दीन १३४
 हुमातूँ २००
 हेतारी गेत ११४
 हेमवन्द ६२, १४७, १४८
 हेमदि १४२, १४७
 हेतियोडीरा ८३, ८४, १००
 हैषत १६३, २३८
 हता ४६
 हत्य ११४
 हीरस्वामी १४६
 हेमद १४८
 हृदक १३५
 हिकायह गेय १४६
 हिमटक ६८
 हिम्मती ११
 हिमूति ८१, ८८
 हिविकम भट्ट १४८





~~See
M 1/5125~~

Central Archaeological Library,
NEW DELHI

36851

Call No 901.0954/Har

Author — ~~A. W. Ward, M.A.~~

Title — ~~SIXTY ONE HUNDRED~~
"A book that is shut is but a block"

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY
GOVT. OF INDIA
Department of Archaeology
NEW DELHI

Please help us to keep the book
clean and moving.